Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास ग्रन्थावली

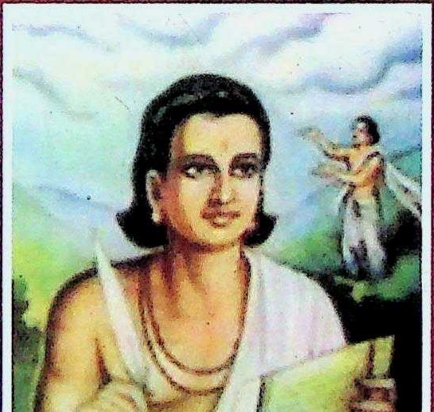

संपादक

डॉ. मिथिलेश पाण्डेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत 'कालिदास-ग्रन्थावली' के अन्तर्गत कालिदास के सम्पूर्ण ग्रन्थों को अध्ययन-सौकर्य की दृष्टि से दो भागों में संग्रहीत किया गया है। प्रथम भाग में ऋतुसंहारम्, मेघदूतम्, कुमारसम्भवम् एवं रघुवंशम् को प्रस्तुत किया जा चुका है। अतः इस द्वितीयभाग में महाकवि के नाट्यग्रन्थों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

संस्कृत-साहित्य में नाटकों की अपनी एक विशिष्ट परम्परा रही है। भारतीय साहित्य की विभिन्न काव्यविधाओं में लोकप्रियता की दृष्टि से नाटकों को सर्वप्रमुख स्थान प्राप्त है। सर्वविदित तथ्य है कि महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यकार एवं गीतिकाव्यकार होने के साथ-साथ सर्वश्रेष्ठ नाटककार भी थे। उनकी सुदीर्घ सांसारिक अनुभूति, शास्त्रीयज्ञान एवं लोकव्यवहार की प्रगाढ़ प्रवीणता का परिचय उनके नाटकों के अवलोकन से प्राप्त किया जा सकता है।

महाकवि कालिदास ने कुल तीन नाट्य ग्रन्थों का प्रणयन किया, जिनमें मानव-हृदय की विभिन्न परिस्थितियों में उदीयमान वृत्तियों का अत्यन्त सजीव एवं लोकव्यवहार के सामंजस्य से परिपूर्ण चित्रण किया गया है; यद्यपि इन तीनों नाटकों के आख्यान मूलतः प्रेममूलक ही हैं, तथापि इनमें प्रेम की विविध अवस्थाओं का विश्लेषण अत्यन्त मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक ढंग से किया गया है। कालक्रमानुसार इन नाटकों 'मालविकाग्निमित्रम्' महाकवि की प्रथम नाट्यकृति है। 'विक्रमोर्वशीयम्' द्वितीय एवम् 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' अन्तिम तथा काव्य सरस्वती का सर्वोत्कृष्ट प्रसादस्वरूप है।

ISBN 81-7487-528-X (Set)

(दो भाग में) मूल्य 1650/-

R
029
पाण्डे-का
145179

पुस्तकालय
...काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
आगत नं० 145179

...स्य ...या	दिनांक	सदस्य संख्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

R
O२२
वर्ग संख्या......पाण्डे-का   आगत संख्या 145179

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

16 JUN 2010
F-44/87/3

145179

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास ग्रन्थावली

भाग-दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास ग्रन्थावली

भाग-दो

सम्पादक

डॉ. मिथिलेश पाण्डेय

पुस्तकालय
145179
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

राधा पब्लिकेशन्स

नई दिल्ली-110002

145179

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम संस्करण 2007

© सुरक्षित

ISBN-81-7487-528-X (set)
81-7487-529-8 (भाग-1)
81-7487-530-1 (भाग-2)

राधा पब्लिकेशन्स
4231/1, अंसारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002
फोन : 23261839, 23254306

नितिन गर्ग द्वारा नमन प्रकाशन के लिए प्रकाशित। ओम् लेजर प्रिंटर्स, दिल्ली द्वारा शब्द-संयोजन तथा आर.के. ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली-32 में मुद्रित।

Kaleedas Granthavali Bhaag-II
by Dr. Mithilesh Panday

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रम

	प्राक्कथन	*1-3*
	भूमिका	*5-32*
1.	मालविकाग्निमित्रम्	33-132
2.	विक्रमोर्वशीयम्	133-240
3.	अभिज्ञानशाकुन्तलम्	241-390
	परिशिष्ट-I	*391-413*
	परिशिष्ट-II	*414-419*
	परिशिष्ट-III	*420-430*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन
(Foreword)

संस्कृत साहित्य के सनातन शृंगार कविकुलगुरु महाकवि कालिदास अपनी अप्रतिम प्रतिभा के कारण 'कविता-कामिनी के विलास' कहे जाते हैं। महर्षि अरविन्द ने लिखा है, "Valmiki Vyas and Kalidas are the essence of the history of ancient India; if all else were lost, they would still be its sole and sufficient cultural history." अर्थात् वाल्मीकि, व्यास और कालिदास, प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास के सारतत्त्व हैं तथा अन्य सम्पूर्ण सामग्री के अभाव में भी वे उसके सांस्कृतिक इतिहास को आलोकित करते रहेंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि वाल्मीकि और व्यास के बाद भारतवर्ष को राष्ट्रीय-चेतना का सुस्पष्ट तथा जीवन्त अभिव्यक्तिकरण महाकवि कालिदास के काव्यों में ही दृष्टिगोचर होता है।

किसी भी साहित्यकार अथवा तत्त्वचिन्तक का मौलिक विचार उसकी स्वयंप्रभा प्रतिभा के साथ-साथ उसके समय की प्रथित परम्पराओं एवं सुदृढ़ मान्यताओं पर अवलम्बित होता है। उसके समय से पूर्वयुग की पृष्ठभूमि, उसके समय की युगापेक्ष आवश्यकता एवं युगधर्मानुकूल चेतना, सब कुछ उसकी चिन्तनशैली को अत्यन्त सहजता पूर्वक प्रभावित करती है। यही कारण है कि प्रत्येक युग का साहित्य तद्‌युगीन समाज का जीवन्त प्रतिबिम्ब होता है।

महाकवि कालिदास का आविर्भाव उस काल में हुआ, जब महिमामण्डित शास्त्रों एवं विविध दार्शनिक सिद्धान्तों का उद्‌घोष हो चुका था, अनेक धार्मिक, आध्यात्मिक आन्दोलन, उद्‌भव एवं विलय की अवस्था को प्राप्त कर चुके थे। कलाएँ चरमोत्कर्ष को प्राप्त करके रूढ़िवादिता की ओर अग्रसर हो चुकी थीं। एक ओर वैदिक कर्मकाण्ड, उपनिषदों के अद्वैतवाद का सामना कर रहा था, तो दूसरी ओर रामायण, महाभारत के शक्तिशाली कथासाहित्य के बाद पौराणिक कथाओं की अप्रत्याशित वृद्धि हो रही थी। कालिदास इन सम्पूर्ण प्रवृत्तियों, तत्कालीन सम्पूर्ण विद्याओं, ज्ञान-विज्ञान एवं दर्शनशास्त्र की मान्यताओं से पूर्णतः परिचित थे। उन्होंने वैदिक संहिताओं के आचारशास्त्रीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियमों तथा विधानों को स्वीकार करते हुए, अपनी रचनाओं में उन उच्चादर्शों के प्रति अभ्यर्थना का भाव भी व्यक्त किया है। जिस प्रकार रामायण तथा महाभारत में एक बौद्धिक आवेग अथवा नैतिक अथवा अनैतिक उत्तेजना की गत्यात्मक शक्ति उनके पात्रों को अनुप्राणित करती रहती है, उसी प्रकार कालिदास के काव्यों में एक उत्कट आनन्दवादी भावना, वाणी एवं व्यापार को स्पन्दित एवम् उन्मेषित करती रहती है यही कारण है कि विश्वकवि के रूप में प्रतिष्ठित महाकवि कालिदास की रचनाएँ अपनी काव्यगत चारुता के कारण प्रायः सभी पाश्चात्य एवं पौरस्त्य विद्वानों की जिज्ञासा एवम् आकर्षण की केन्द्र बनी हुई है।

प्रस्तुत 'कालिदास-ग्रन्थावली' के अन्तर्गत कालिदास के सम्पूर्ण ग्रन्थों को अध्ययन-सौकर्य की दृष्टि से दो भागों में संग्रहीत किया गया है। प्रथम भाग में ऋतुसंहारम्, मेघदूतम्, कुमारसम्भवम् एवं रघुवंशम् को प्रस्तुत किया जा चुका है। अतः इस द्वितीयभाग में महाकवि के नाट्यग्रन्थों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

संस्कृत-साहित्य में नाटकों की अपनी एक विशिष्ट परम्परा रही है। भारतीय साहित्य की विभिन्न काव्यविधाओं में लोकप्रियता की दृष्टि से नाटकों को सर्वप्रगुख स्थान प्राप्त है। सर्वविदित तथ्य है कि महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यकार एवं गीतिकाव्यकार होने के साथ-साथ सर्वश्रेष्ठ नाटककार भी थे। उनकी सुदीर्घ सांसारिक अनुभूति, शास्त्रीयज्ञान एवं लोकव्यवहार की प्रगाढ़ प्रवीणता का परिचय उनके नाटकों के अवलोकन से प्राप्त किया जा सकता है।

महाकवि कालिदास ने कुल तीन नाट्य ग्रन्थों का प्रणयन किया, जिनमें मानव-हृदय की विभिन्न परिस्थितियों में उदीयमान वृत्तियों का अत्यन्त सजीव एवं लोकव्यवहार के सामंजस्य से परिपूर्ण चित्रण किया गया है; यद्यपि इन तीनों नाटकों के आख्यान मूलतः प्रेममूलक ही हैं, तथापि इनमें प्रेम की विविध अवस्थाओं का विश्लेषण अत्यन्त मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक ढंग से किया गया है। कालक्रमानुसार इन नाटकों 'मालविकाग्निमित्रम्' महाकवि की प्रथम नाट्यकृति है। 'विक्रमोर्वशीयम्' द्वितीय एवम् 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' अन्तिम तथा काव्य सरस्वती का सर्वोत्कृष्ट प्रसादस्वरूप है।

कालक्रम से महाकवि कालिदास के इन ग्रन्थों में संक्रमित पाठगत अशुद्धियों अथवा भ्रान्तियों को दूर करने या शुद्धपाठों के निर्धारण में अब तक प्रकाशित जिन ग्रन्थों, ग्रन्थकारों अथवा विद्वानों का सहयोग प्राप्त हुआ है, उन सभी के प्रति मैं सविनय आभार व्यक्त करता हूँ।

समय-समय पर जिन सुहृदों तथा शुभचिन्तकों ने अपने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सहयोग से उपकृत किया है, उनमें डॉ. श्यामानन्द मिश्र (वरिष्ठ-प्रवक्ता, संस्कृत विद्या धर्मविज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी), डॉ. राधाकृष्ण दीक्षित (वरिष्ठ-प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, के.ए. कॉलेज, कासगंज, एटा), डॉ. श्रीकान्त मिश्र (वरिष्ठ–प्रवक्ता, अद्वैत वेदान्त-विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवाँ, मध्य प्रदेश), डॉ. विजय कुमार कर्ण (वरिष्ठ-प्रवक्ता, संस्कृत-विभाग, विद्यान्त महाविद्यालय,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लखनऊ), डॉ. कमलेश कुमार सिंह (वरिष्ठ प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान विभाग, के.ए. कॉलेज, कासगंज), पं. प्रेमनारायण तिवारी (सुरैला, उमरी, जौनपुर) तथा अग्रज श्री व्यास पाण्डेय के प्रति सविनय आभार व्यक्त करते हुए, इस सम्पादन रूप गूढ़कार्य के प्रेरणास्रोत अपने पिताश्री प्रतापनारायण पाण्डेय एवं माता श्रीमती शारदा देवी के श्री चरणों में साष्टांग प्रणाम करता हूँ। इसी क्रम में अपने परमपूज्य गुरुदेव प्रो. श्रीनारायण मिश्र (पूर्व विभागाध्यक्ष, संस्कृतविभाग एवं पूर्वसंकाय प्रमुख, कलासंकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी) के श्री चरणों में कोटिशः नमन करते हुए तथा अपनी सत्प्रेरणा एवं सहयोग से प्रस्तुति कृति को यह स्वरूप प्रदान करने वाले श्री नितिन गर्ग (प्रकाशक, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली) को शतसः धन्यवाद देते हुए, इस सम्पादित कृति को सुध ी विद्वानों एवं विदुषी बहनों के कर-कमलों में सादर समर्पित करता हूँ।

—डॉ. मिथिलेश पाण्डेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक-परिचय

डॉ. मिथिलेश पाण्डेय

जन्मतिथि	01 जुलाई, सन् 1971
पिता	श्री प्रताप नारायण पाण्डेय
माता	श्रीमती शारदा देवी
जन्मस्थान	सुरैला, गौराबादशाहपुर, जौनपुर (उ.प्र.)
शिक्षा	एम.ए. (संस्कृत), पी-एच.डी. (बी.एच.यू., वाराणसी); यू.जी.सी.नेट/जे.आर.एफ. (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, दिल्ली); एडवांस डिप्लोमा इन योग, एडवांस डिप्लोमा इन मराठी, डिप्लोमा इन उर्दू, डिप्लोमा इन फोटोग्रॉफी (बी.एच.यू, वाराणसी)।
सम्प्रति	रीडर, संस्कृत-विभाग, के.ए. (पी.जी.) कॉलेज, कासगंज, एटा (उ.प्र.)
दूरभाष-क्रमांक	09412062131;
प्रकाशन	औपनिषदिक ब्रह्मविद्या और शाण्डिल्यविद्या (राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली)। आदितीर्थ सूकरक्षेत्र (समग्रदृष्टि), राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली। संस्कृत-निबन्ध-निकरः (उपकार प्रकाशन, आगरा)। स्वप्नसुमन (काव्यसंग्रह), नमन प्रकाशन, नई दिल्ली। कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम् (सम्पादन एवं व्याख्या), महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा। ध्वन्यालोक (सम्पादन एवं व्याख्या), महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा। वेदान्तसार (सम्पादन एवं व्याख्या), महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा। कालिदास-ग्रन्थावली (सम्पादन), राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली (सम्पादन), नमन प्रकाशन, नई दिल्ली। मालवीय जीवनदर्शन (राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली)। संस्कृत मुख्य परीक्षा (संघ लोक सेवा आयोग), उपकार प्रकाशन, आगरा। तर्कशक्ति परीक्षा (यू.जी.सी.नेट/जे.आर.एफ.), उपकार प्रकाशन, आगरा।
शोधपत्र	Philosophical Study of the Garuna Purana. एटा जनपदस्य कवियित्र्य : कवयश्च। बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषियों का संस्कृत-साहित्य में योगदान। यजुर्वेद में गन्धर्व एवम् अप्सराएँ। कालिदास की बालपोषिका दृष्टि।
पुरस्कार एवं सम्मान	उ. प्र. सरकार के माध्यमिक शिक्षा मन्त्री 'मानस-मनीषी' की उपाधि से सम्मानित। पं. प्रताप नारायण मिश्र युवा साहित्यकार पुरस्कार 2006 से पुरस्कृत।
अप्रकाशित कृतियाँ	हिन्दी एवं संस्कृत में लिखित सात पुस्तकें।
विविध	कुशल वक्ता, समालोचक, सम्पादक एवं लब्धप्रतिष्ठ प्राध्यापक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

1. नाटक

''अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्'' आचार्य धनंजय के इस वचन के अनुसार, अवस्था का अनुकरण ही नाट्य कहलाता है। अर्थात्, नट का भाव या कर्म ही नाट्य कहलाता है; वह कर्म नायक की उदात्तादि अवस्थाओं का अनुकरण अथवा अभिनय कौशल के द्वारा नट का अनुकार्य (राम आदि) के साथ तादात्म्य प्राप्त करना है। आंगिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्विक के भेद से अभिनय चार प्रकार का होता है; इसमें वचन द्वारा किया जाने वाला अभिनय वाचिक, अलंकरणादि वेश रचना द्वारा किया जाने वाला अभिनय (आहार्य, भुजा आदि अंगों द्वारा किया जाने वाला अभिनय) अंगिक कहा जाता है, जबकि दूसरे के सुख-दुःख से भावित अन्तःकरण को सत्त्व कहते हैं।

'दृश्य' और 'श्रव्य' भेद से काव्य के दो प्रकार बताए गए हैं; इनमें 'दृश्यकाव्य' चक्षु तथा श्रवण दोनों ही इन्द्रियों का विषय होने से 'श्रव्यकाव्य' की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है। 'दृश्यकाव्य' का तात्पर्य उस काव्य से है; जो नेत्रों के माध्यम से हमारे हृदय में प्रवेश करता है; इसी को 'रूपक' के नाम से भी जाना जाता है। **'रूपारोपात्तुरूपकम्'** इस परिभाषा के अनुसार, 'रूपक' नामकरण का अभिप्राय यह है कि अभिनय में अभिनेता का तादात्म्य अभिनय के मूलपात्र के साथ स्थापित किया जाता है। अर्थात्—'रूपक अलंकार' में जिस प्रकार उपमेय तथा उपमान का ऐक्य स्थापित किया जाता है; उसी प्रकार 'रूपक' में नट का नायक (दुष्यन्त आदि) के साथ और नटी का नायिका (शकुन्तला आदि) के साथ ऐक्य स्थापित किया जाता है। इस ऐक्यस्थापना के अनन्तर ही नट के व्यापार को दुष्यन्त आदि का व्यापार मानकर दर्शकों के हृदय में रस (Sentiment) का संचार होता है और दर्शक आह्लादित हो उठते हैं। यह रससंचार तथा आह्लादन यद्यपि 'श्रव्यकाव्य' में भी होता है; परन्तु केवल विद्वानों या सहृदयों के हृदय में; जबकि 'दृश्यकाव्य' के रसास्वादन में बालक, वृद्ध एवं अशिक्षित जन भी सामान्य रीति से प्रभावित होते हैं। इसका कारण यह है कि सूक्ष्म की अपेक्षा मूर्त वस्तु सदैव अपेक्षाकृत अधिक प्रभावोत्पादक होती है श्रव्यकाव्य की वर्णनशैली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितनी भी ललित क्यों न हो; वह दृश्यकाव्य (रूपक) की समता कर सकने में सक्षम नहीं हो सकती। यद्यपि गीतिकाव्य (Lyric) में भावों की विद्यमानता रहती है; फिर भी उसमें व्यापक मानवता का इतना प्राबल्य नहीं होता है। वस्तुतः रूपकों का भावानुकीर्तन तो लोकवृत्तानुकरण पर ही अवलम्बित होता है। यहाँ पर ध्यातव्य है कि नट के द्वारा नायक (राम आदि) की अवस्थाओं का अनुकरण किए जाने के कारण 'रूपक' को 'अभिनय' भी कहा जाता है–

"भवेदभिनयो अवस्थानुकारः।।"

।। साहित्यदर्पण।। 6/2

नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिमाः, ईहामृग, अंक, वीथी तथा प्रहसन के भेद से 'रूपक' के दस प्रकार बताए गए हैं[1]; परन्तु प्रसङ्गप्राप्त केवल 'नाटक' (Drama) का ही यहाँ पर विवेचन किया जाएगा; वैसे भी दस रूपकों तथा अट्ठारह उपरूपकों में 'नाटक' की प्रधानता होने के कारण यदा-कदा 'नाटक' को रूपक का पर्याय मान लिया जाता है।

2. नाटक का लक्षण

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ कविराज के शब्द में 'नाटक' का निर्दुष्ट लक्षण निम्नलिखित है–

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धि-समन्वितम्।
विलासद्ध्र्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः।।
सुख-दुःख समुद्भूति नाना-रस-निरन्तरम्।
पञ्चादिका दशपरास्तत्रांकाः परिकीर्तिताः।।
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः।।
एक एव भवेदंगी शृंगारो वीर एव वा।
अंगमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः।।
चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः।
गोपुच्छाग्रसमायं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम्।।

।। साहित्यदर्पण।। 6/7-11।।

अर्थात्–'नाटक' का वृत्त (कथानक) रामायण, महाभारत, या पुराणेतिहासादि में प्रसिद्ध होना चाहिए तथा मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण; इन पाँचों सन्धियों

---

1. नाटकमय प्रकरणं भाण-व्यायोग-समवकार-डिमाः।
ईहामृगांक-वीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश।।

।। साहित्यदर्पण।। 6/3।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रयोग होना चाहिए। इस प्रकार नाना-विभूतियों से युक्त, शृंगार आदि अनेक रसों से समन्वित, सुख-दुःख की अनुभूति कराने वाला, अधिकतम दस तथा कम-से-कम पाँच अंकों वाला 'नाटक' होता है। इसका 'नायक' किसी प्रख्यात वंश का राजर्षि, धीरोदात्त, प्रतापी, दिव्य (कृष्णवत्) अथवा दिव्यादिव्य (रामादिवत्) होना चाहिए। शृंगार या वीर में से कोई एक रस प्रधान होता है तथा अन्य सभी 'रस' गौण होते हैं। इसे निर्वहणसन्धि में अत्यन्त अद्भुत वनाना चाहिए। इसमें कुल चार या पाँच पुरुष, प्रधान कार्य के सम्पादन में संलग्न रहते हैं तथा गाय की पूँछ के अग्रभाग के समान इसके अंकों की (रचना) को समायोजित किया जाता है।

३. अङ्क का लक्षण

नाटक-लक्षण के दौरान बताया गया कि नाटक में अंकों की संख्या 5 से 10 तक हो सकती है। ये अङ्क क्या हैं? इस प्रश्न के समाधान हेतु अङ्क के स्वरूप को सुस्पष्ट करते हुए आचार्य विश्वनाथ कविराज लिखते हैं–

प्रत्यक्षनेतृचरितो रस-भाव-समुज्ज्वलः।
भवेदगूढ़शब्दार्थः क्षुद्रचूर्णकसंयुतः।।
विच्छिन्नावान्तरैकार्थः किञ्चित्संलग्नबिन्दुकः।
युक्तो न बहुभिः कार्यैर्बीजसंहृतिमान्न च।।
नानाविधानसंयुक्तो नातिप्रचुरपद्यवान्।
आवश्यकानां कार्याणामविरोधाद्विनिर्मितः।।
नानेकदिननिर्वर्त्यकथया सम्प्रयोजितः।
आसन्ननायकः पात्रैर्युतस्त्रिचतुरैस्तथा।।
दूराह्वानं वधो युद्धं राज्यदेशादिविप्लवः।
विवाहो भोजनं शापोत्सर्गो मृत्यू रतं तथा।।
दन्तच्छेद्यं नखच्छेद्यमन्यद् व्रीड़ाकरं च यत्।
शयनाधरपानादि नगराद्यवरोधनम्।।
स्नानानुलेपने चैभिर्वर्जितो नातिविस्तरः।
देवी-परिजनादीनाममात्य-वणिजामपि।।
प्रत्यक्षचित्रचरितैर्युक्तो भावरसोद्भवैः।
अन्त-निष्क्रान्त-निखिल-पात्रोऽङ्कइति कीर्तितः।।
अंकोदर-प्रविष्टो यो रंगद्वारामुखादिमान्।
अंकोऽपरः स गर्भांकः सवीजः फलवानपि।।
।। साहित्यदर्पण।। 6/12-20।।

अर्थात्–'अङ्क' में नेता (नायक या नायिका) का चरित्र प्रत्यक्ष होना चाहिए; जो रसों और भावों से सुशोभित हो। सरल अर्थ वाले तथा समासरहित छोटे-छोटे गद्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चूर्णक) होने चाहिए। अवान्तर कार्य तो पूरा हो जाना चाहिए, परन्तु विन्दु कुछ लगा रहना चाहिए, अर्थात् प्रधानकथा की समाप्ति नहीं होनी चाहिए। अनेकविध हास्य, उद्वेगादि के जनक होने के कारण बहुत कार्यों से युक्त नहीं होना चाहिए तथा बीज का उपसंहार भी नहीं होना चाहिए। अनेक प्रकार के संविधान (घटनाएँ) हों, किन्तु अत्यधिक पदों से युक्त नहीं होना चाहिए। अंक के अन्तर्गत संध्या-वन्दनादिक आवश्यक कार्यों का विरोध नहीं होना चाहिए तथा जो कथा अनेक दिनों में सम्पन्न हुई हो, उसे एक ही अंक में नहीं दिखाना चाहिए। अविद्यमान होने पर भी वर्णन की दृष्टि से नायक को सदैव समीप रहना चाहिए, जो तीन या चार पात्रों से युक्त हो।

'अङ्क' में जो बातें प्रत्यक्ष नहीं दिखानी चाहिए; उनका निषेध करते हुए आचार्य विश्वनाथ कविराज लिखते हैं कि दूरस्थ व्यक्ति को बुलाना, वध, युद्ध, राज्य और देशादि का विप्लव, विवाह, भोजन, शाप, मलमूत्रादि-त्याग, मृत्यु, सम्भोग, ओष्ठादिकों में दन्तच्छेद, स्तनादिकों में नखाघात, शयन, अधरपान (चुम्बन), नगरादि का घिराव, स्नान, चन्दन आदि का अनुलेपन तथा समस्त लज्जाजनक कार्यों का अभिनय नहीं करना चाहिए, क्योंकि इनका अभिनय दर्शकों तथा अभिनेताओं के लिए अमंगलजनक सिद्ध होता है। अंक का आकार अत्यन्त विस्तृत नहीं होना चाहिए। देवी (रानी), परिजन, मन्त्री तथा वैश्यादि के चरित्रों का भावपूर्ण तथा रसपूर्ण गुम्फन होना चाहिए और अंक की समाप्ति पर सभी पात्रों को निकल जाना चाहिए।

अङ्क के प्रसंग में **गर्भांक** का लक्षण करते हुए विश्वनाथजी लिखते हैं कि जो अङ्क किसी अंक के बीच में प्रविष्ट हो तथा जिसमें रंगद्वार और आमुख आदि वक्ष्यमाण अंग हों और जिसमें वीज तथा फल का सुस्पष्ट आभास होता हो; उसे 'गर्भांक' कहते हैं। उत्तररामचरितम् का सातवाँ अंक इसका समुचित उदाहरण है।

4. नाटकों का उद्भव और विकास

संस्कृत साहित्य में नाटकों की अपनी एक विशिष्ट परम्परा रही है। भारतीय साहित्य की विभिन्न विचार-वीथियों में लोकप्रियता की दृष्टि से नाटकों का पहला स्थान है। वैदिक युग में नाट्यकला के अस्तित्व के सम्वन्ध में हमें पर्याप्त सामग्री मिलती है। ऋग्वेद के आविर्भावपर्यन्त, जोकि वैदिक साहित्य का प्राचीनतम भाग तथा विश्वसाहित्य का प्रथम ज्ञानसंग्रह; नृत्यकला पर्याप्त रूप से विकसित हो चुकी थी। उपा के वर्णनप्रसंग में उसकी उपमा एक नर्तकी से दी गई है। पुरुरवा-उर्वशी[1], यँम-यमी[2], इन्द्र-इन्द्राणि-वृषाकपि[3], सरमा-पणि[4], विश्वामित्र-नदी[5] इत्यादि ऋग्वेदोक्त सम्वाद-सूक्तों में नाट्यकला के बीज यथेष्ट रूप में उपलब्ध होते हैं। कात्यायन श्रौत-सूत्र में तो सोमपान-प्रसंग में एक लघु अभिनय का भी उल्लेख मिलता है। सोमयाग नामक यज्ञक्रिया की योजना सोमरसिक

1. ऋग्वेद ।। 10/95।। 2. ऋग्वेद ।। 10/10।। 3. ऋग्वेद ।। 10/86।।
4. ऋग्वेद ।। 10/108।। 5. ऋग्वेद ।। 3/33।। ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मवादी इन्द्र के अनुयायी किया करते थे। सोमविक्रेता वनवासियों के यजमान और अध्वर्यु के सम्वाद भी नाट्यकला की प्राचीनता का द्योतन करते हैं।

मैक्समूलर, लेवी और ओल्डेनबर्ग प्रभृति विद्वानों ने वेदों में प्रयुक्त इस प्रकार के संवादात्मक सूक्तों को आधार मानकर भारतीय नाट्यकला की उत्पत्ति वैदिक युग में सिद्ध की है। इन विद्वानों के अनुसन्धानों का परीक्षण करके और वेदमन्त्रों में बिखरे हुए तत्सम्बन्धी सूक्तों का बारीकी से अध्ययन करके डॉ. दास गुप्ता भी इस मत से सहमत हैं कि वेदमन्त्रों में नाटकीय तत्त्व प्रचुर रूप में विद्यमान हैं और तत्कालीन जन-जीवन के धार्मिक-अवसरों, संगीत-समारोहों तथा नृत्योत्सवों से 'नाटक' का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

संस्कृत नाटकों की प्राचीनता के सम्बन्ध में ऋग्वेद के बाद यजुर्वेद में भी कुछ विस्तार से चर्चा की गई है। यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता के एक प्रसंग से ज्ञात होता है कि वैदिक युग में शैलूष नामक जातिविशेष के लोग व्यावसायिक रूप से नाटकों का आयोजन करके जीविकोपार्जन किया करते थे;[1] फिर भी हमें वेदमन्त्रों के किसी भी प्रसंग में पात्रों के वर्णन तथा नाटकसम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली के दर्शन नहीं होते हैं।

उत्तरवर्ती साहित्यों में हमें नाटकों तथा नाट्यकला की शिल्पविधियों का पूरा इतिहास दिखाई देता है। अष्टाध्यायी, रामायण, महाभारत, अर्थशास्त्र, बौद्धजातक और महाकाव्य आदि संस्थानों में नाट्यकला के विभिन्न अंगों, उसके पात्रों और पारिभाषिक शब्दावलियों का पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। रामायण के एक प्रसंग में कहा गया है कि नटों, नर्तकों और नायक-मण्डलियों की कर्णसुखद वाणियों को जनता पूर्ण तन्मयता से सुनती थी–

नट-नर्तक-संघानां गायकानां च गीयताम्।
यतः कर्णसुखा वाचः शुश्राव जनता ततः।।

महर्षि वाल्मीकि का स्पष्ट कथन है कि शासकहीन जनपद में 'नट' और 'नर्तक' प्रसन्न नहीं दिखाई देते।[2] महाभारत में 'रामायण नाटक' तथा 'कौबेर-रम्भाभिसार' नामक दो नाटकों का भी उल्लेख मिलता है।[3]

इसी प्रकार वैयाकरण महर्षि पतञ्जलि के 'महाभाष्य' में 'कंसवध' और 'बालिवध' नामक दो नाट्यकृतियों का उल्लेख, मिलता है। डॉ. कीथ के मत में पतञ्जलि के समय तक 'नट' केवल नर्तक ही नहीं रह गए थे; अपितु संगीत तथा अभिनय के द्वारा नाटकों का सफल प्रदर्शन भी करने लगे थे।

उपर्युक्त साक्ष्यों से सुस्पष्ट है कि संस्कृत साहित्य में नाटकों के निर्माण की परम्परा बहुत पुरानी है। आदिकाल से ही भारतीय जन-जीवन में मनोरंजन के लिए नाटकों को श्रेष्ठ माध्यम के रूप में अपनाया जाता रहा है। नाटकों की उत्पत्ति से

1. यजुर्वेद-संहिता।। अध्याय 30/ मन्त्र 6।।
2. नीराजने जनपदेऽपहृष्टनटनर्तकाः ।। रामायण /2/67/15।।
3. महाभारत (वनपर्व) ।। 15/13।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धित कुछ प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

1. परम्परागत द्युलोकवाद (आचार्य भरत)–भारतीय परम्परा के अनुसार, जैसाकि आचार्य भरत मुनि के 'नाटयशास्त्र' के प्रथम अध्याय में बताया गया है कि सांसारिक मनुष्यों को अत्यन्त खिन्न देखकर इन्द्रादि देवताओं ने ब्रह्मा के पास जाकर ऐसे वेद के निर्माण की प्रार्थना की, जिससे वेद के अनाधिकारी स्त्री, शूद्रादि सभी लोगों का मनोरंजन हो सके। यह सुनकर ब्रह्माजी ने सांसारिक जीवों के मनोरंजनार्थ 'नाट्यवेद' (नाट्यशास्त्र) को प्रकट किया। इसके लिए उन्होंने चारों वेदों से सहायता ली। ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लेकर नाट्यकला की सृष्टि की और इसे पञ्चम-वेद कहकर प्रसिद्ध किया। इसमें भगवान् शंकर ने 'ताण्डव-नृत्य', भगवती पार्वती ने 'लास्य-नृत्य' तथा भगवान् विष्णु ने चारों वृत्तियों का समावेश करके पूर्ण कलात्मकता उत्पन्न कर दी। इतना ही नहीं स्वर्ग के सबसे बड़े शिल्पी ब्रह्मा ने इसके लिए एक 'रंगमंच' का निर्माण किया। सर्वप्रथम 'इन्द्रध्वज' पर्व पर 'त्रिपुरदाह' एवं 'समुद्रमन्थन' नामक नाटकों का अभिनय किया गया। ब्रह्माजी ने नाटकों की सम्पन्नता हेतु आचार्य भरत मुनि को सौ अप्सराएँ भी समर्पित कीं। भरत मुनि ने उन सबको नाट्यकला में प्रशिक्षित करके इस कला को मृत्युलोकपर्यन्त पहुँचाने का दायित्व स्वीकार किया।

2. धार्मिक भावना या मृतकपूजावाद (डॉ. रिज्वे)–डॉ. रिज्वे का विचार है कि सम्पूर्ण विश्व में नाटकों की उत्पत्ति मृत-आत्माओं के प्रति उद्भूत श्रद्धा से सम्बद्ध है। इनकी मान्यता है कि मृत-वीर-पुरुषों के शव पहले सुरक्षित रखे जाते थे और उनके श्राद्ध के दिन उनकी वीरतापूर्ण जीवनी का प्रदर्शन होता था। उसी परम्परा को भारत में 'रामलीला' और 'कृष्णलीला' के साथ जोड़कर यह निष्कर्ष निकाला है कि ये 'वीरपूजा' की ध्वंसावशेष हैं। भारतीय मत में डॉ. रिज्वे का यह मत अत्यन्त हास्यास्पद है।

3. मे (May) पोलवाद (डॉ. कीथ)–डॉ. ए.बी. कीथ ने ऋतुपरिवर्तन के समय होने वाले उत्सवों तथा नृत्यगान से नाटकों की उत्पत्ति स्वीकार किया है। पाश्चात्य विद्वान् इसे "May Pole Theory" के नाम से जानते हैं। ध्यातव्य है कि पाश्चात्य जगत् में मई (May) का महीना अत्यन्त आनन्दप्रद होता है। इस माह में लोग खूब नाचते, गाते तथा उत्सव मनाते हैं। इतना ही नहीं ये लोग एक लम्बा बाँस गाड़कर उसके नीचे इकट्ठे होते हैं और सभी स्त्री-पुरुष मिलकर एक साथ नृत्य करते हैं। भारतवर्ष में 'इन्द्रध्वज' का उत्सव भी लगभग इसी प्रकार का हुआ करता था। इससे सिद्ध होता है कि नाटकों की उत्पत्ति बसन्त में मनाए जाने वाले त्यौहारों के आधार पर हुई होगी। इस सिद्धान्त में दोष यह है कि 'May Pole' बसन्त में होता है, जबकि 'इन्द्रध्वज' का पर्व वर्षा ऋतु के अन्त में हुआ करता है। अतः भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह मत भी असंगत प्रतीत होता है।

4. छाया नाटकवाद (डॉ. स्टेन कोनो)–डॉ. कोनो का मानना है कि भारतवर्ष में पहले छायानाटक (Shadow Play) बहुत प्रचलित थे। इन छायानाटकों में रामायण तथा महाभारत के आख्यानों को मिलाकर नाटकों की कथावस्तु तैयार की गई। डॉ. कोनो का यह मत समीचीन नहीं प्रतीत होता; क्योंकि डॉ. कोनो ने जिन प्रमाणों का उल्लेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है, वे सभी महाभाष्य के समकालिक या उसके बाद के हैं, जबकि महाभाष्यकाल एक नाटकों का विकास हो चुका था। अतः डॉ. कोनो का मत सर्वथा असंगत लगता है।

5. पुत्तलिका-नृत्यवाद (डॉ. पिशेल)—जर्मन विद्वान् डॉ. पिशेल (Dr. Pischel) ने 'कठपुतलीनृत्य' (Puppet Show) से भारतीय नाटकों की उत्पत्ति स्वीकार की है। 'सूत्रधार' और 'स्थापक' आदि शब्दों का मूल अर्थ इस मत को और भी पुष्ट करता है। यहाँ 'सूत्रधार' का मूल अर्थ है; सूत्र (डोरे) को पकड़ने वाला तथा 'स्थापक' का मूल अर्थ है; किसी वस्तु को लाकर रखने वाला। इन दोनों शब्दों का सम्बन्ध पुत्तलिका (कठपुतली) नृत्य से है। डोरी पकड़कर पुतलियों को नचाने वाला व्यक्ति सूत्रधार कहलाता था। भारतीय नाट्य के निर्देशक (Director) को सूत्रधार कहने का तात्पर्य भी यही हो सकता है कि भारतीय नाटकों की उत्पत्ति पुत्तलिका-नृत्य से हुई। शारदातनय के अनुसार, कथावस्तु, नायक तथा रस आदि को सूत्र (संक्षिप्त) रूप में प्रस्तुत करने वाला सूत्रधार; पुत्तलिका के सूत्र को धारण करने वाले सूत्रधार से सर्वथा भिन्न है। इससे रस, भाव-संवलित भारतीय नाटकों की उत्पत्ति मान बैठना नितान्त निराधार तथा प्रमाणरहित है।

6. संवाद-सूक्तवाद (वेद)—अनेक भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वान् नाटकों की उत्पत्ति वेदमूलक मानते हैं। ऋग्वेद में ऐसे अनेक सूक्त हैं; जिनमें एक से अधिक वक्ता हैं। इन सूक्तों को 'सम्वाद-सूक्त' कहते हैं। कालिदास का 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक ऋग्वेद के 'पुरुरवा-उर्वशी-सम्वाद' पर आधारित प्रतीत होता है।

सन् 1869 ई. में प्रो. मैक्समूलर का ध्यान इस दिशा में गया। उन्होंने अत्यन्त खोजबीन के बाद संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति का बीज इन सम्वाद-सूक्तों में पाने का दावा किया। कुछ दिनों के बाद प्रो. लेवी ने भी मैक्समूलर के विचारों का समर्थन किया। डॉ. हरटल ने एक पग और आगे बढ़कर यह घोषणा की वैदिक नाटक के विकास का मूलरूप हमें 'सुपर्णाध्याय' में देखने को मिलता है। इस प्रकार अन्यान्य पाश्चात्य एवं पौर्वात्य विद्वानों ने ऋग्वेद के सम्वादों में नाटकोत्पत्ति की मूलसामग्री खोजने की चेष्टा की है। वैसे नृत्य, गीत तथा सम्वाद; ये नाटक के तीन मुख्य उपकरण होते हैं। पहले इन सम्वादों के साथ नृत्य एवं गीत भी रहे होंगे, किन्तु आज उनका रूप वहाँ नहीं मिलता; वैसे ऋग्वेद में विवाहसूक्त के अन्तर्गत नवदम्पत्ति के साम्ने पुरन्ध्रियों के नृत्य करने का उल्लेख मिलता है। भारतीय परम्परा भी इस सिद्धान्त में आस्था रखती है।

निष्कर्ष (Conclusion)—निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि महाभाष्यकार पतञ्जलि से पूर्व महाकवि भास से लेकर बीसवीं सदी तक संस्कृत-नाटकों की एक विशिष्ट-परम्परा दिखाई देती है। भारतीय नाटकों की उत्पत्ति और विकास में किसी विदेशी बीज का अन्वेषण करना, दुराग्रह अथवा हठधर्मिता के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। मात्रा एवं गुण दोनों ही दृष्टियों से संस्कृत साहित्य का नाटक इतना समृद्ध है कि हर दृष्टि से विश्व की किसी भी भाषा के नाटक-साहित्य (Dramatic Literature) के सम्मुख अपना गर्वोन्नत मस्तिष्क ऊपर उठा सकता है। इनकी उत्पत्ति वेदमूलक है; इसमें कोई सन्देह नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5. संस्कृत-नाटकों की विशेषताएँ

संस्कृत-नाटक, ग्रीक-नाटकों से सर्वथा भिन्न हैं, इन्हें किसी भी भाषा के नाटकसाहित्य से प्रभावित नहीं कहा जा सकता; क्योंकि ये सर्वथा मौलिक गुणों से सम्पन्न हैं; इनकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. सुखान्त एवं दुःखान्त भेद से ग्रीक नाटकों के दो भेद हैं, परन्तु संस्कृत-नाटकों में इस वर्गीकरण का सर्वथा अभाव है। संस्कृत-नाटक सामान्यतौर पर सुखान्त ही मिलते हैं।
2. संस्कृत-नाटकों का परिमाण अन्य भाषाओं के नाटकों से अपेक्षाकृत बड़ा है। अकेले 'मृच्छकटिकम्' ही ग्रीक नाटककार एसकिलस के तीन नाटकों के बराबर है।
3. संस्कृत-नाटकों का स्वरूप सर्वथा लोकव्यवहार के अनुरूप है। इसमें नायक तथा उच्चवर्गीय पात्र संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं, जबकि स्त्रियाँ तथा निम्नवर्गीय पुरुष प्राकृतभाषा का प्रयोग करते हैं।
4. संस्कृत-नाटकों के विभागों को 'अंक' कहते हैं। अंक की समाप्ति पर सभी पात्रों का रंगमंच से निकल जाना आवश्यक होता है। यह परम्परा ग्रीकनाटकों में नहीं मिलती है; यदि कहीं पाश्चात्य नाटकों में अंक-विभाग की यह परम्परा मिलती भी है, तो वह संस्कृत-नाटकों का ही प्रभाव है।
5. संस्कृत-नाटकों में 'विदूषक' की योजना एक निराली वस्तु है; इस स्तर का कोई भी पात्र ग्रीक नाटकों में नहीं मिलता है। हास्यरस का उत्पादक होने के कारण भी विदूषक हमारे नाटकों के लिए बहुत ही उपयोगी पात्र है।
6. संस्कृत-नाटकों का आख्यान नितान्त मौलिक तथा भारतीय है। यह रामायण, महाभारत, वेद, पुराण तथा बृहत्कथा आदि पर आश्रित है। इसमें किसी भी प्रकार की विदेशी कथाओं का मिश्रण नहीं दिखाई देता।
7. ग्रीक-नाटकों में 'अन्वितित्रय'[1] की योजना होती है; जबकि संस्कृत में एकमात्र कार्यान्विति की ही योजना है; जिसके अन्तर्गत समग्र घटनाओं का एक ही उद्देश्य होता है। अर्थात् निर्वहण-सन्धि के माध्यम से विभिन्न अंकों में प्रयुक्त घटनाओं के द्वारा एक कार्य विशेष का प्रतिपादन आवश्यक होता है।
8. ग्रीक-नाटकों में 'कोरस'[2] का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है, लेकिन संस्कृत-नाटकों का 'कोरस' जैसी परम्परा से कोई सम्बन्ध नहीं है।

---

1. (i) स्थानान्विति, (ii) कालान्विति तथा (iii) कार्यान्विति; इन तीन अन्वितियों (Unities) को ही अरस्तू ने अन्वितित्रय (Three Unities) कहा है।
2. 'कोरस' का अर्थ है, एक साथ गाने तथा नाचने वालों की टोली। यह 'कोरस' घटनाओं तथा क्रियाओं की व्याख्या एवं समालोचना किया करता था; साथ-ही-साथ नृत्य तथा गान के द्वारा मनोरंजन का साधन भी प्रस्तुत करता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

9. रंगमंच की भी दृष्टि से भारतीय नाट्य परम्परा, ग्रीक नाट्य परम्परा से सर्वथा भिन्न है। यूनानी-नाटकों का मंचन खुले आकाश के नीचे होता था, जिसमें परदा उठाने-गिराने की कोई परम्परा न थी, परन्तु भारतीय नाट्य परम्परा में प्रारम्भिककाल से ही प्रेक्षागृहों (नाट्यमण्डपों) में ही अभिनय का कार्य सम्पन्न किया जाता था।

इस प्रकार संस्कृत-नाटक, अन्य नाटक परम्पराओं से बिल्कुल अलग पहचान रखते हैं, जिन्हें हम इन नाटकों की विशेषताओं के रूप में जानते हैं।

6. मालविकाग्निमित्रम् की कथावस्तु

'मालविकाग्निमित्रम्' महाकवि कालिदास—विरचित पाँच अंकों का एक उत्कृष्ट नाटक है।इसकी कथावस्तु ऐतिहासिक है; जिसमें शुंग-वंशीय नरेश अग्निमित्र और मालविका की प्रणयकथा का अत्यन्त हृदयाह्लादक कमनीय चित्रण किया गया है। इस नाटक की कथावस्तु का सारांश अंकवार इस प्रकार है—

प्रथम अंक में विष्कम्भ के द्वारा महाकवि कालिदास ने यह सूचित किया है कि महारानी धारिणी के भाई (दूर के रिश्ते में) वीरसेन ने मालविका नामक किसी कन्या को महारानी के पास इस सन्देश के साथ भेजा है कि यदि इसे नाचने-गाने की कला सिखलाई जाए, तो इस कला को यह अत्यल्प समय में सम्पूर्ण कौशल के साथ सीख सकती है। यद्यपि मालविका का रूप-रंग किसी उच्चकुल की राजकुमारी जैसा लगता है; (जिसका रहस्योद्घाटन अन्तिम अंक में किया जाएगा)। महारानी धारिणी ने वीरसेन (नर्मदातट के अन्तपाल-दुर्ग के रक्षक) से प्राप्त सन्देश के अनुसार राजकीय संगीतज्ञ आचार्य गणदास को मालविका की नृत्यशिक्षा का दायित्व सौंप दिया है। अनिन्द्य सुन्दरी उस मालविका ने अत्यल्प समय में नृत्यसंगीत में महारत भी हासिल कर लिया।

ज्ञातव्य है कि यज्ञसेन और माधवसेन दोनों चचेरे भाई हैं। यज्ञसेन विदर्भ के सिंहासन पर प्रतिष्ठित हैं। माधवसेन अपनी बहन मालविका का विवाह विदिशा-नरेश महाराज अग्निमित्र से करना चाहता है। इस निमित्त जब वह अपनी बहन को लेकर विदिशा आ रहा था, तो उसके भाई यज्ञसेन ने उसे बन्दी बना लिया। ऐसी स्थिति में माधवसेन के मन्त्री सुमति ने राजकुमारी मालविका और अपनी विधवा बहन कौशिकी (परिव्राजिका) को साथ लेकर गुप्तरूप में विदिशा की ओर प्रस्थान किया, जिससे कि महाराज अग्निमित्र के साथ मालविका का विवाह सम्पन्न कराया जा सके; किन्तु दुर्भाग्यवशात् कुछ लुटेरों ने मार्ग में ही इनके काफिले पर आक्रमण कर दिया और उन लुटेरों से युद्ध करता हुआ सुमति मारा गया। किसी तरह नर्मदा तट पर 'मालविका' वीरसेन (महारानी धारिणी के भाई) के हाथ लग गई और वीरसेन ने उसे अपनी बहिन धारिणी के पास विदिशा भेज दिया। इधर मूर्च्छित पड़ी हुई कौशिकी को जब होश आया, तो उसने कषाय वस्त्र धारण करके विदिशा की ओर प्रस्थान किया और विदिशा में आने पर उसकी भेंट मालविका से हुई और दोनों (मालविका तथा कौशिकी) छद्मवेश में विदिशा में रहने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज अग्निमित्र को चित्र के माध्यम से जब मालविका के रूप-लावण्य का पता चलता है, तो वह उसके सौन्दर्य को प्रत्यक्ष रूप में देखने के लिए व्याकुल हो उठता है। विदूषक की पूर्वयोजना के अनुसार संगीताचार्य गणदास और हरदत्त स्वं को एक-दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए विवाद कर बैठते हैं। अन्त में यह दोनों आचार्यों को अपनी-अपनी शिष्याओं के द्वारा अपनी उत्कृष्टता प्रदर्शित करने का आदेश दिया जाता है।

द्वितीय अंक में योजना के अनुसार, गणदास अपनी शिष्या मालविका को नृत्य एवं संगीत के लिए रंगमंच पर प्रस्तुत करता है; जिससे राजा को मालविका साक्षात्कार का अभीप्सित अवसर प्राप्त हो जाता है। मालविका के कमनीय सौन्दर्य को देखकर राजा श्रृंगार की धारा में भाव-विभोर हो जाता है; वह अपने मन में सोचता है—

दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्तिवदनं बाहूनतावंसयोः,
संक्षिप्तं निविडोन्नतस्तनमुरः पार्श्वे प्रवृष्टे इव।
मध्यः पाणिमितो नितम्बि जघनं पादावरालांगुली,
छन्दो नर्तयितुर्यथैव मनसिश्लिष्टं तथास्या वपुः।। 2/3।।

अर्थात्, इसकी बड़ी-बड़ी आँखें, शरत्कालीन चन्द्रमा के समान मुख, कन्धों पर थोड़ी झुकी हुई भुजाएँ, उभरते हुए कड़े स्तनों से जकड़ी हुई छाती, चिकनी-चिकनी काँखे, पतली कमर, मोटी-मोटी जाँघें, थोड़ी झुकी हुई पैरों की अँगुलियाँ, ये सब ऐसे जान पड़ते हैं, मानों इसका शरीर, इसके नाट्याचार्य गणदास के कहने पर ही गढ़कर बनाया गया हो।

इस अंक के अन्त में गणदास को हरदत्त से श्रेष्ठतर सिद्ध किया जाता है और राजा तथा मालविका परस्पर एक-दूसरे के प्रेम-पाश में आसक्त हो जाते हैं।

तृतीय अंक की कथावस्तु विदिशा में राजप्रासाद के प्रमदवन में नियोजित है; इसमें अग्निमित्र और विदूषक, मालविका और उसकी सहेली वकुलावलिका तथा रानी इरावती और दासी निपुणिका; ये तीन युग्म एकत्र मिलते हैं। बसन्त-ऋतु का आगमन हो जाने के बाद भी प्रमदवन के अशोकवृक्ष में अभी तक फूल नहीं निकले हैं, अतः महारानी धारिणी ने मालविका को दोहद-क्रिया (अशोकवृक्ष पर पैर से प्रहार करने) के लिए प्रमदवन में अपने प्रतिनिधि के रूप में भेजा है; क्योंकि झूले से गिर जाने के कारण महारानी के पैर में चोट आ गई है और महारानी धारिणी इस दोहद-क्रिया के करने में स्वयं असमर्थ हैं।

रानी इरावती के आमन्त्रण पर महाराज अग्निमित्र झूला-झुलने के लिए विदूषक के साथ प्रमदवन में प्रवेश करते हैं। भाग्यवशात् रानी इरावती के आने में विलम्ब हो जाता है। इस बीच दोहदकार्य के सम्पादनार्थ आई हुई मालविका से महाराज अग्निमित्र प्रथम बार प्रमदवन में मिलते हैं। इसी दौरान इरावती का भी प्रमदवन में प्रवेश होता है और प्रेमालाप में संलग्न राजा को देखकर इरावती बहुत क्रोधित होती है तथा विना झूला-झूले ही वह वापस लौट जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ अंक में रानी इरावती द्वारा 'मालविका' की शिकायत किए जाने से क्रोधित महारानी धारिणी ने मालविका और बकुलावलिका को ऐसी भूगर्भ-गुहा में बन्दी बना दिया है, जहाँ सूर्य की किरणों का भी प्रवेश सम्भव नहीं है। इस भूगर्भ-गुहा की निरीक्षिका माधविका है, जिसे महारानी धारिणी ने आदेश दिया है कि जब तक मेरी नाग-मुद्रांकित अँगूठी ने दिखाई जाए, तब तक इन दोनों बन्दियों को मुक्त न किया जाए। गुप्तचरों के माध्यम से विदूषिका को उपर्युक्त सभी सूचनाएँ मिल जाती हैं और वह महाराज के साथ विचार-विमर्श करके मालविका के मुक्ति की एक गुप्त-योजना बनाता है। योजना के अनुसार, वह झूठा बहाना बनाता है कि वह महारानी के दर्शन करने आ रहा था, इस निमित्त वह भेंट के लिए प्रमद में फूल चुनने चला गया, जहाँ उसे सर्प ने काट लिया। इस प्रकार वह महारानी धारिणी के समक्ष अत्यन्त व्याकुलता का अभिनय करता है। महाराज उसे उपचार के लिए राजवैद्य ध्रुवसिद्धि के पास भेज देते हैं। इसी दौरान प्रतीहारी जयसेना योजना के अनुसार आकर रानी से निवेदन करती है कि राजवैद्य ध्रुवसिद्धि ने गौतम (विदूषक) की चिकित्सा के लिए नागमुद्रा से युक्त किसी वस्तु की आवश्यकता व्यक्त की है। ऐसा सुनकर महारानी धारिणी तत्काल अपनी नागमुद्रा-युक्त अँगूठी उतारकर जयसेना को दे देती है। इस अँगूठी को लेकर विदूषक 'माधविका' के पास जाता है और माधविका से कहता है कि महारानी धारिणी ने मालविका और बकुलावलिका को तत्काल मुक्त करने का आदेश दिया है, क्योंकि ज्योतिषियों के कथनानुसार इस समय राजा के ग्रहों की स्थिति अत्यन्त प्रतिकूल है, जिनके शमनार्थ बन्दियों को मुक्त करना अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार भू-गर्भ गुहा से मालविका और बकुलावलिका को मुक्त कराके विदूषक महाराज के साथ मालविका को समुद्रगृह में मिला देता है। इस प्रकार दोनों चिरप्रतीक्षित एवम् अभिलाषित मिलन सम्पन्न होता है; किन्तु इसी बीच रानी इरावती का निपुणिका के साथ आकस्मिक प्रवेश होता है और महाराज-मालविका के प्रेमाचार का समस्त रहस्य उद्घाटित हो जाता है।

रानी इरावती, महाराज के इस कृत्य से बहुत क्रोधित होती हैं। विदूषक, राजा एवं मालविका सभी रंगे-हाथ पकड़े जाने से किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं; किन्तु इसी समय प्रतीहारी जयसेना यह सन्देश लाती है कि राजकुमारी 'वसुलक्ष्मी' एक पीले बन्दर को देखकर अत्यन्त भयभीत हो गई है। ऐसा सुनकर राजा, इरावती, विदूषक, मालविका एवं बकुलावलिका सभी राजकुमारी वसुलक्ष्मी को देखने के लिए अत्यन्त घबड़ाहट के साथ समुद्रगृह से निकल जाते हैं।

पंचम अंक में अग्निमित्र और मालविका का बाधित प्रणय, मुक्त प्रेम-परिणय में पर्यवसित हो जाता है। महत्त्व की दृष्टि से यह अंक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस अंक के प्रारम्भ में प्रवेशक के माध्यम में सूचित किया गया है कि महाराज अग्निमित्र की विजयिनी सेना ने 'वीरसेन' के नेतृत्व में विदर्भ नरेश यज्ञसेन को पराजित करके उसके चचेरे भाई माधवसेन को मुक्त करा लिया है। साथ-ही-साथ सेना-नायक वीरसेन ने बहुत से अमूल्य रत्न, हाथी-घोड़े तथा अच्छे-अच्छे कलाकार सेवकों को भेंटस्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज अग्निमित्र के पास भेजा है। इस भेंट में नृत्य-गीतादि विविध-कलाओं में निपुण दो स्त्रियाँ भी सम्मिलित हैं।

प्रमदवन में मालविका ने महारानी धारिणी के आदेश से अशोकवृक्ष के साथ पाद-प्रहार स्वरूप जो दोहद-कार्य किया था, वह भी इस अंक में फलीभूत हो गया है और अशोकवृक्ष फूलों के गुच्छों से लद गया है इस उपलक्ष्य में महारानी धारिणी अशोकवृक्ष के पूजन का आयोजन करती हैं, जिसमें महाराज को भी आमन्त्रित किया गया है। .हारानी के आदेश से परिव्राजिका कौशिकी द्वारा मालविका का वैवाहिक शृंगार किया गया है; क्योंकि दोहद के पूर्व महारानी धारिणी ने यह निश्चय किया था कि मालविका द्वारा दोहद-क्रिया से यदि अशोकवृक्ष पुष्पित हो जाएगा, तो इस उल्लास के अवसर पर महाराज अग्निमित्र का मालविका के साथ विवाह सम्पन्न करा दिया जाएगा। अतः महारानी अपने पूर्व दृढ़-निश्चय के अनुसार 'मालविका' का हाथ महाराज के हाथों में समर्पित कर देना चाहती हैं। इसी समय सेना-नायक वीरसेन द्वारा विदर्भ से प्रेषित दो दासियाँ राजा के सम्मुख प्रस्तुत की जाती है, वहाँ मालविका, कौशिकी, महारानी इत्यादि सभी लोग उपस्थित हैं। दोनों दासियाँ 'मालविका' और 'कौशिकी' को पहचान जाती हैं और मालविका एक राजकुमारी के रूप में सभी लोगों के द्वारा सम्मानित होती है। इस अवसर पर परिव्राजिका कौशिकी अपने साथ एवं मालविका के साथ घटित समस्त घटनाओं का रहस्योद्घाटन भी करती है।

इस अंक के अन्त में यह सूचित किया गया है कि पुष्यमित्र ने राजकुमार वसुमित्र को अपने अश्वमेधयज्ञ के 'अश्व' की रक्षा के लिए सेनापति बनाया था, तभी से राजकुमार के दीर्घायुष्य के निमित्त महारानी द्वारा चार सौ स्वर्णमुद्राओं के बराबर धन योग्य ब्राह्मणों को दान के रूप में दिए जाने की व्यवस्था की गई थी। पुष्यमित्र ने एक पत्र इस आशय का भेजा है कि सिन्धु नदी के दक्षिणी तट पर विचरण करते हुए अश्वमेध के 'अश्व' को एक यवन-सैनिक ने पकड़ लिया था, अतः यवनसेना के साथ राजकुमार वसुमित्र का घमासान युद्ध हुआ, जिसमें कुमार वसुमित्र ने अत्यन्त पराक्रम के साथ शत्रुसेना को मार भगाया और अपने अश्वमेध के 'अश्व' की रक्षा में सर्वथा सफल रहे। इस विजय के उपलक्ष्य में पुष्यमित्र द्वारा एक यज्ञ का आयोजन किया गया है, जिसमें महाराज अग्निमित्र को भी पत्नियों के साथ सम्मिलित होने का निमन्त्रण प्राप्त हुआ है।

7. विक्रमोर्वशीयम् की कथावस्तु

पाँच अंकों में निबद्ध विक्रमोर्वशीयम् नामक 'त्रोटक' महाकवि कालिदास की दूसरी नाट्यकृति है। कलात्मक पूर्णता की दृष्टि से इसे मालविकाग्निमित्रं एवम् अभिज्ञानशाकुन्तलम् के बीच रखा जा सकता है। महाराज पुरुरवा इसके नायक हैं, जबकि स्वर्गसुन्दरी उर्वशी को इसकी नायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है सम्पूर्ण कथानक पुरुरवा एवम् उर्वशी की प्रेमकथा से ओत-प्रोत है। इसकी उपजीव्यता का श्रेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद 10/95 को प्राप्त है। इसके अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण में भी पुरुरवा-उर्वशी की प्रणयकथा का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। किंचित परिवर्तन के साथ इसे मत्स्यपुराण, विष्णुपुराण, भागवतपुराण एवं कथासरित्सागर में देखा जा सकता है। अंकानुक्रम के अनुसार 'विक्रमोर्वशीयम्' की कथावस्तु का सारांश इस प्रकार है।

प्रथम अंक में सूर्यपूजा करके लौटते हुए पुरुरवा को यह सूचना मिलती है कि कुबेर के भवन से वापस लौटते समय स्वर्ग सुन्दरी उर्वशी का 'केशी' नामक दैत्य ने अपहरण कर लिया है। अतः प्राप्त सूचना के अनुसार पुरुरवा अपने रथ एवम् सारथी के साथ 'उर्वशी' की मुक्ति के लिए पूर्वोत्तर दिशा (ईशानकोण) में तत्काल प्रस्थान करता है।

अत्यन्त वेगशाली रथ के द्वारा पीछा करता हुआ राजा पुरुरवा शीघ्र ही 'केशी' के पास पहुँचकर युद्ध में उसे पराजित करके उर्वशी और उसकी सहेली चित्रलेखा को साथ लेकर पुनः हेमकूट पर्वत पर वापस आ जाता है। दैत्यग्राह से मुक्त हुई उर्वशी, पुरुरवा के पराक्रम एवम् कमनीय रूप-सौन्दर्य से अत्यन्त प्रभावित होती है। उसका हृदय उसके शौर्य, पराक्रम, मधुरसम्भाषण एवम् अप्रतिम रूप की ओर आकृष्ट हो जाता है, इधर पुरुरवा भी उर्वशी के प्रेममयी वाणी एवम् रथ के झटके से अकस्मात् होने वाले उसके अंक-स्पर्श के कारण काम-विह्वल हो जाता है। इसी समय देवर्षि नारद के मुख से उर्वशी के अपहरण की बात सुनकर गन्धर्वराज चित्ररथ भी उसकी मुक्ति के लिए प्रस्थान करता है और मार्ग में हेमकूट पर्वत पर महाराज पुरुरवा के साथ सकुशल उर्वशी को पाकर अत्यन्त प्रसन्न होता है। धन्यवाद ज्ञापन के बाद चित्ररथ उर्वशी आदि अप्सराओं के साथ देवराज इन्द्र के पास प्रस्थान करता है। इस प्रस्थान के दौरान उर्वशी मुड़कर पीछे की ओर पुरुरवा को देखने के उद्देश्य से अपनी सहेली चित्रलेखा से कहती है, ''सखि! मेरी वैजयन्ती की माला इस लता की शाखा में उलझ गई है, अतः इसको निकालने में मेरी सहायता करो। इधर राजा पुरुरवा, उर्वशी की इस प्रगलभता पर अत्यन्त प्रसन्न होता है, तथा उसके हृदयगत भावों को जानकर अपने भाग्य को धन्यवाद देता है। इस प्रकार इस प्रथम दर्शन के अनन्तर उर्वशी इन्द्रपुरी को और पुरुरवा अपनी राजधानी को लौट आता है।

द्वितीय अंक में पुरुरवा और उर्वशी का प्रेम एक-दूसरे के प्रति अत्यन्त प्रगाढ़ होता जाता है। राजा का मन राजकीय कार्यों में नहीं लगता है वह अन्तःपुर के प्रति भी उदासीन हो जाता है। अतः रानी औशीनरी अपनी दासी को सूर्यपूजा से लौटे हुए उदासीन महाराज के मन की खिन्नता का कारण जानने के लिए आदेश देती है। दासी निपुणिका अत्यन्त चालाकी पूर्वक विदूषक के मुख से उर्वशी-विषयक समस्त रहस्यों को जानकर रानी की सेवा में उन रहस्यों का उद्घाटन करती है। इधर उर्वशी के सौन्दर्य से अभिभूत पुरुरवा दुर्लभ उर्वशी की प्राप्ति की दुर्निवार अभिलाषा से कामदेव के द्वारा अत्यन्त व्याकुल कर दिया गया है। वह नींद में सोना चाहता है ताकि स्वप्न में प्रिया का दर्शन कर सके; किन्तु उसे नींद भी नहीं आती है। चित्रफलक उर्वशी की प्रतिकृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाकर वह अपना मन बहलाव करना चाहता है; परन्तु बीच में ही उसकी आँखों में आँसू छलक पड़ते हैं। इस प्रकार उसकी मनोवेदना अत्यन्त सान्द्र होती चली जाती है और वह उर्वशी को उपालम्भ देने लगता है कि वह उसके निश्छल प्रेम की अवमानना कर रही है—

नितान्तकठिनां रुजं मम न वेद सा मानसीं,
प्रभावविदितानुरागभवमन्यते वापि माम्।
अलब्धफलनीरसं मम विधाय तस्मिञ्जने,
समागममनोरथं भवतु पञ्चबाणः कृती।। 2/11।।

इधर कामसन्तप्त उर्वशी और उसकी सहेली चित्रलेखा दोनों ही गुप्तरूप में छिपकर राजा के विह्वलतापूर्ण उपालम्भ को सुनती हैं। चित्रलेखा के कहने पर उर्वशी भूर्जपत्र पर पुरुरवा-विषयक प्रेमपत्र लिखकर राजा के समक्ष हवा में उड़ा देती है। राजा उस पत्र को अपने हाथों में लेकर हर्षगद्गद नेत्रों से विदूषक के समक्ष पढ़ता है—

स्वामि! आप क्या जानें मन यह रोता कैसी साँसत सहते,
इतना प्रेम बढ़ाया फिर भी मान रहे क्यों जैसा कहत।
मुझे बताओ पारिजात की कोमल शय्या पर जब सोती,
नन्दनवन की शीत बयारें अनल-सदृश क्यों दाहक होतीं।।

अन्ततः पुरुरवा की विह्वलता को देखकर कामसन्तप्त उर्वशी प्रणयवेदना का निवेदन करने के लिए चित्रलेखा राजा के सामने प्रकट हो जाती है। पुरुरवा उर्वशी की सहेली चित्रलेखा को सामने देखकर अत्यन्त आर्तवाणी में निवेदन करता है कि सुन्दरी! तुम अपनी सखी को प्रेम की पराकाष्ठा पर आसीन बतला रही हो, पर यह नहीं देख रही हो कि उसके प्रेम में यह पुरुरवा कितना व्याकुल है। यदि हम दोनों का प्रेम एक-दूसरे की ओर एक जैसा ही बढ़ा हुआ है, तो तपे हुए लोहे की भाँति इन दोनों को एक-दूसरे से जोड़ देना ही उचित होगा। इसी समय चित्रलेखा का संकेत पाकर 'उर्वशी' भी राजा के समक्ष प्रकट होती हुई राजा को अभिवादन करती है और दोनों एक-दूसरे के प्रेम में सराबोर हो जाते हैं; किन्तु यह नेत्रलाभ उन्हें अधिक देर तक नहीं मिल पाता है, इसी समय नेपथ्य द्वारा उसे आदेशित किया जाता है कि भरतमुनि द्वारा नियोजित 'अष्टरसाश्रय' नाटक में अभिनय करने के लिए उसे इन्द्रलोक में बुलाया जा रहा है। अतः इन्द्र की सेवा में तत्पर उर्वशी अपना हृदय अपने हृदयवल्लभ पुरुरवा को सौंपकर स्वर्गलोक की ओर लौट जाती है। इसी समय अकस्मात् रानी औशीनरी का भी उसी लतामण्डप में दासी के प्रवेश होता है और दुर्भाग्यवशात् उर्वशी का प्रेमपत्र विदूषक के हाथों से खिसकर हवा में उड़ता हुआ रानी के पास तक पहुँच जाता है और राजा का समस्त रहस्य उद्घाटित हो जाता है। राजा, रानी के पैरों पर अपना शिर रखकर क्षमा-याचना करता है; किन्तु क्रोधावेश में रानी रूठकर चली जाती है। राजा इतना उदात्त नायक है कि तिरष्कार करने वाली अपनी रानी की भी प्रशंसा करते हुए विदूषक से कहता है कि मित्र! इसमें रानी का कोई दोष नहीं है। यदि कोई पति ऊपरी मन से केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिकनी-चुपड़ी बातें करके ही अपनी प्यारी को मनाने लगता है, तो उसकी बातें स्त्रियों के हृदय में उसी प्रकार नहीं बैठती हैं, जैसे—सच्चे पारखी को बनावटी रंग से रंगा हुआ मणि प्रभावित नहीं कर पाता है। इसी के साथ यह अंक समाप्त हो जाता है।

तृतीय अंक मिश्रविष्कम्भक के माध्यम से सूचित किया गया है कि स्वर्गलोक में अभिनीत **'अष्टरसाश्रय'** नाटक में लक्ष्मी की भूमिका में संलग्न उर्वशी ने प्रमादवशात् 'पुरुषोत्तम' के स्थान पर 'पुरुरवा' उच्चारण कर दिया, जिससे अप्रसन्न होकर आचार्य भरतमुनि ने 'उर्वशी' को स्वर्ग से बहिष्कृत होने का शाप दे दिया; किन्तु देवराज इन्द्र ने उस पर कृपा करके शाप की अवधि कम करते हुए कहा कि पृथ्वीलोक निवासी पुरुरवा के साथ रहती हुई तुम सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत करो, जब पुरुरवा तुम्हारे पुत्र का मुख देख लेगा, तव तुम पुनः स्वर्गलोक में आ जाओगी। इस अंक की एक नवीन घटना यह भी है कि रानी औशीनरी ने **प्रियानुप्रसादन** नामक व्रत के द्वारा अपने प्रियतम महाराज पुरुरवा को प्रसन्न करने का निश्चय किया है। इस निमित्त उसने महाराज से निवेदन किया है कि वे मणिहर्म्यभवन के छत पर आने का कष्ट करें, जिससे वह चन्द्रमा और रोहिणी का मिलन देखकर अपने व्रत का समापन कर सकें। योजनानुसार राजकीय ठाट-बाट से राजा, रानी, विदूषक एवं समस्त परिजन मणिहर्म्यभवन के पृष्ठ पर उपस्थित होते हैं। रानी औशीनरी चन्द्रदर्शन एवं पूजन के बाद महाराज की पूजा करती हुई कहती है कि आज मैं चन्द्रमा और रोहिणी के युगल स्वरूप को साक्षी बनाकर आर्यपुत्र को प्रसन्न करना चाहती हूँ। आज से जिस किसी भी स्त्री की आर्यपुत्र अभिलाषा रखेंगे और जो भी स्त्री आर्यपुत्र से समागम करना चाहेगी, उसके साथ मैं सदैव प्रेम का व्यवहार करूँगी।

जिस समय 'प्रियानुप्रसादनव्रत' सम्बन्धी उपर्युक्त क्रिया-कलापों का सम्पादन हो रहा था, उस समय स्वर्गसुन्दरी उर्वशी अपनी सहेली चित्रलेखा के साथ गुप्तरूप में मणिहर्म्यभवन के पृष्ठ पर उपस्थित होकर समस्त क्रिया-कलापों को देखकर रानी की उदारता पर विचार करके मन-ही-मन आनन्दित हो रही थी। जब रानी व्रत का सविधि सम्पादन करके चली जाती है; तब उर्वशी अपनी सहेली के साथ राजा के समक्ष प्रकट होती है और विवाहिता स्त्री की भाँति सटकर राजा के बगल में बैठ जाती है। इस प्रकार मधुर प्रेमालाप करते हुए दोनों प्रेमी-युगल प्रेमरस की धारा से ओत-प्रोत हो जाते हैं। राजा इस प्रेम को अभिव्यक्त करते हुए कहता है कि जब अभिलाषित वस्तु मिल जाती है, तब विरोधी वस्तुएँ भी अच्छी लगने लगती हैं, जैसे—चन्द्रमा की वे ही किरणें आज मुझे अत्यन्त सुख दे रही हैं, कामदेव के वे ही बाण आज मन को अत्यन्त अच्छे लगते हैं। हे सुन्दरि! जो-जो वस्तुएँ पहले क्रोधभरी या कठोर जान पड़ती थीं, वे सब तुम्हारे मिलते ही कोमल हो गई हैं, क्योंकि दुःख के बाद जो सुख मिलता है, वह बड़ा लुभावना होता है; जैसे पेड़ की छाया उसी मनुष्य को अच्छी लगती है, जो धूप में तपकर आया हो—

यदेवोपनतं दुःखात्सुखं तद्रसवत्तरं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः।। 3/21।।

चतुर्थ अंक में प्रवेशक के माध्यम से महाकवि ने सूचित किया है कि दाम्पत्यभाव से जीवन व्यतीत करते हुए 'पुरुरवा और उर्वशी' विहार करते हुए गन्धमादन पर्वत पर चले जाते हैं। वहाँ जब मन्दाकिनी के तट पर उर्वशी बालू के टीले बनाकर खेल रही थी, उसी समय अकस्मात् उसने देखा कि 'पुरुरवा' उदयवती नामक विद्याधरकन्या की ओर अनन्यदृष्टि से देख रहा है। अतः ईर्ष्यावशात् वह रूठकर कुमार कार्तिकेय के उस वन में चली गई, जहाँ स्त्रियों का जाना वर्जित था। अतः कुमारवन के द्वार पर पहुँचते ही वह एक लता के रूप में परिवर्तित हो गई।

उर्वशी जब एकाएक रूठकर जाती हुई क्षणमात्र में ही आँखों से ओझल हो गई, तब पुरुरवा उन्मत्त व्यक्ति की भाँति चारों ओर उसे खोजने लगा। उसने पर्वत, नदी, हंस, मयूर, हरिण, कोयल, बादल, हाथी, वृक्ष इत्यादि सभी से एक-एक करके अपनी प्रिया उर्वशी का पता पूछा; किन्तु किसी से भी उसे सहानुभूति अथवा प्रिया पता न मिल सका। सीताहरण के बाद जो दशा श्रीराम की हुई थी, वही दशा पुरुरवा की भी हो गई; किन्तु राम को तो कुछ क्षणों के बाद गीधराज जटायु के द्वारा सीताहरण एवम् अपहर्ता रावण के विषय में पता चल गया था लेकिन इस बेचारे पुरुरवा को तो कहीं किसी से भी कुछ पता नहीं चला। इसके अतिरिक्त राम के साथ तो उनके अनुज लक्ष्मण भी थे, जबकि पुरुरवा नितान्त अकेला एवम् असहाय अवस्था में था। अतः पुरुरवा की दशा श्रीराम से ज्यादा कष्टतर प्रतीत होती है।

जिस समय पुरुरवा उन्मत्त की भाँति विलाप करता हुआ उस वन में विचरण कर रहा था, उसी समय दो पत्थरों की दरार के भीतर उसे एक लालरंग का मणि जैसा पदार्थ दिखाई दिया, किन्तु प्रिया के बिना उसे भी निःसार समझकर उसने उसे उठाना उचित नहीं समझा। उसी समय नेपथ्य से आवाज सुनाई पड़ती है, पुत्र! इसे ले-लो। यह प्रिया के साथ समागम कराने वाली **संगमनीयमणि** है, जो भगवती पार्वती के चरणों की लालिमा से उद्भूत हुई है। इसे जो व्यक्ति अपने पास रखता है, उसे शीघ्र से प्रियासमागम प्राप्त हो जाता है। ऐसा सुनकर वह अत्यन्त उत्साहपूर्वक उस संगमनीयमणि को उठा लेता है और कुमारवन के द्वार पर स्थित लता को पूर्ववत् विक्षिप्त व्यक्ति की भाँति अपनी प्रिया समझक गले लगाता है। भाग्यवशात् संगमनीयमणि के स्पर्श से वह लता तत्काल उर्वशी के रूप में परिणत हो जाती है। इस प्रकार अपनी प्रिया को साक्षात् अपने हाथों में पाकर पुरुरवा आनन्दरस में निमग्न हो जाता है। इधर उर्वशी को भी बहुत आत्मग्लानि होती है कि मेरे कारण महाराज को असह्य दुःख से सन्तप्त होना पड़ा। वह पुरुरवा को आत्मबीती समस्त कथा कह सुनाती है। अन्ततः दोनों अत्यन्त प्रेमसित्त हृदय से एक-दूसरे को प्रफुल्लित नेत्रों से देखते हुए राजधानी की ओर प्रस्थान करते हैं।

पंचम अंक में पुरुरवा और उर्वशी के वियोग की सम्भावना अत्यन्त बलवती हो उठती है। कुमारवन से प्राप्त संगमनीयमणि को कोई गृध्र मांसपिण्ड समझकर लेकर उड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

145179

जाता है। इस प्रकार उड़ता हुआ वह महर्षि च्यवन के आश्रम में भगवती सत्यवती द्वारा सुपोषित, उर्वशी के न्यासभूत कुमार आयु के बाणों से मार गिराया जाता है। राजा के सैनिक उस गीध को ढूँढ़ते हुए उसके पास पहुँचते हैं और बाणयुक्त गीध तथा संगमनीय को देखकर वे मणि तथा उक्त बाण को राजा की सेवा में प्रस्तुत करते हैं। राजा पुरुरवा मणि की प्राप्ति से अत्यन्त प्रसन्न होता है, किन्तु उस बाण को देखकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो जाता है; जिस पर लिखा है कि यह पुरुरवा और उर्वशी के पुत्र 'आयु' का बाण है; क्योंकि राजा अभी तक अपने को निःसन्तान ही समझता था। इसी समय भगवती सत्यवती बालक 'आयु' को साथ लेकर पुरुरवा के समक्ष उपस्थित होती है; क्योंकि गीधहनन रूप आश्रमविरुद्ध कार्य के कारण महर्षि च्यवन ने उसे आश्रम से निष्कासित कर दिया है। एतदर्थ सत्यवती राजा से निवेदन करती है कि उर्वशी की धरोहर मैं उसे समर्पित करना चाहती हूँ। राजा के आदेश से उर्वशी भी दरबार में उपस्थित होती है तथा सत्यवती को प्रणाम करते हुए स्नेहसिक्त हृदय से अपने पुत्र को गले लगा लेती है। राजा पुरुरवा भी पुत्र के अनुपम आलिंगनसुख में निमग्न हो जाता है और उर्वशी से कहता है, देवि! तुम्हारे इस पुत्र को देखकर आज मैं धन्य हो गया; किन्तु उर्वशी रोती हुई उसे इन्द्र के वचन की याद दिलाती हुई कहती है कि आज के बाद मैं आपके साथ नहीं रह पाऊँगी। मुझे स्वर्गलोक जाना ही होगा। ऐसा सुनकर पुरुरवा मूर्च्छित हो जाता है। जब उसकी मूर्च्छा दूर होती है, तब वह कहता है कि हे सुन्दरि! तुम जिस पराधीनता के कारण मुझे छोड़कर जा रही हो, उससे मनचाही वस्तु तो मिल नहीं सकती। इसलिए जाओ, तुम अपने स्वामी देवराज इन्द्र की आज्ञा का पालन करो और मैं भी आज ही तुम्हारे पुत्र को राज्यभार सौंपकर हरिणों से भरे हुए तपोवन में प्रवेश करने जा रहा हूँ।

कुमार आयु के राज्याभिषेक की तैयारी हो ही रही थी कि तब तक देवर्षि नारद ने आकर राजा पुरुरवा एवं उर्वशी के समक्ष देवराज इन्द्र का अत्यन्त हृदयाह्लादक सन्देश सुनाते हुए कहा कि भावी देवासुर-संग्राम में आपकी सहायता की अभिलाषा से देवराज इन्द्र ने आपको जीवनपर्यन्त उर्वशी के साथ रहने की अनुज्ञा प्रदान की है। इसके बदले आपको भी सदैव अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर राक्षसों के संहार के लिए तत्पर रहना चाहिए। यह समय आपके संन्यास के लिए उपयुक्त नहीं है। इतना कहकर देवर्षि नारद अपने कर-कमलों से कुमार आयु का राज्याभिषेक सम्पन्न करते हैं और पुरुरवा तथा उर्वशी भी देवराज इन्द्र की आज्ञानुसार दाम्पत्य सुखोपभोग पूर्वक राजकार्य में संलग्न हो जाते हैं।

8. अभिज्ञानशाकुन्तलम् की कथावस्तु

महाकवि कालिदासकृत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' संस्कृत साहित्य की ही नहीं,

1. "काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपितु विश्वसाहित्य की एक अमूल्य-निधि[1] है। इस ग्रन्थ के विषय में बहुत से दैशिक व वैदेशिक विद्वानों ने बहुत-सी प्रशंसाएँ लिखी हैं। वस्तुतः इसकी प्रशंसा में जो कुछ भी कहा जाए, वह सब थोड़ा ही है। महाकवि ने व्यावहारिक धरातल पर उतरकर जिन शाश्वतसत्य मानव-मूल्यों को प्रस्तुत किया है, वे अन्यत्र दुर्लभ हैं।

सप्तांक समन्वित, शृंगार-रस-प्रधान इस नाटक का नायक हस्तिनापुर की पुरुवंशी राजा 'दुष्यन्त' है; जबकि नायिका विश्वामित्र-मेनका से उद्भूत परमसुन्दरी 'शकुन्तला' है। इस नाटक की कथावस्तु राजा के द्वारा शकुन्तला को दिए गए अभिज्ञान (अँगूठी) के इर्द-गिर्द चक्कर काटती है। अतः ग्रन्थकार ने इसे अभिज्ञानशाकुन्तलम्[1] इस शीर्षक से अलंकृत किया है। इसकी उपजीव्यता का श्रेय 'पद्मपुराण' तथा 'महाभारत-शाकुन्तलोपाख्यान' को प्राप्त है।

कथावस्तु

प्रथम अंक की प्रस्तावना में सूत्रधार और नटी के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि कालिदासप्रणीत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नामक नाटक का अभिनय होने जा रहा है। सूत्रधार की प्रेरणा से सद्यःप्रारम्भ हुए उपभोग के योग्य ग्रीष्म ऋतु का आश्रय लेकर नटी एक सुमधुर गीत गाती है; जिसको सुनकर सूत्रधार कहता है—"जिस प्रकार हरिण (मृग) के द्वारा राजा दुष्यन्त बलात् दूर ले जाया गया था, उसी प्रकार मैं तुम्हारी सुमधुर गीतध्वनि से बलात् आकृष्ट किया गया हूँ।" सूत्रधार की इस उक्ति के साथ ही राजा दुष्यन्त रंगमंच पर प्रविष्ट हो जाता है। इस प्रकार प्रस्तावना की समाप्ति के साथ नाटक का प्रारम्भ हो जाता है।

रथ पर बैठा हुआ राजा दुष्यन्त सारथी के साथ हरिण का पीछा करते हुए दृष्टिगोचर होता है, तभी दो शिष्यों के साथ एक तपस्वी उपस्थित होकर राजा से यह अनुरोध करता है कि—"**राजन! आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः।**" अर्थात्—"हे राजन्! यह आश्रममृग है। मारने योग्य नहीं है।" ऐसा सुनकर दुष्यन्त तुरन्त अपने बाण को रोक लेता है। इससे सन्तुष्ट होकर वह तपस्वी राजा को आशीर्वाद देता है कि—"**अपने ही सदृश चक्रवर्ती पुत्र को प्राप्त करो**" तथा साथ ही साथ यह अनुरोध भी करता है कि हम लोग यज्ञीय समिधाओं को लाने के लिए वन में जा रहे हैं। यहाँ से ठीक सामने महर्षि कण्व का आश्रम दिखाई दे रहा है। महर्षि कण्व अपनी धर्मपुत्री शकुन्तला[3] को अतिथिसत्कार हेतु नियुक्त करके उसके प्रतिकूल-भाग्य को शान्त करने के लिए सोमतीर्थ गए हुए हैं। अतः यदि किसी अन्य आवश्यक कार्य में विघ्न न हो, तो आश्रम में जाकर आतिथ्य ग्रहण कीजिए।

---

1. "अभिज्ञायते अनेन इति अभिज्ञानम् (पहचान/अँगूठी), शाकुन्तलामणिकृत्य कृतं नाटकं शाकुन्तलम्' अर्थात्—"अभिज्ञानप्रधानं शाकुन्तलम् इति अभिज्ञानशाकुन्तलम्" अथवा—"अभिज्ञानेन स्मृता शाकुन्तला यत्र तद् अभिज्ञानशाकुन्तलम्।"
"शकुन्तभिः पक्षिभिः लाता लालिता-पालिता इति शकुन्तला।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा दुष्यन्त महर्षि कण्व के आश्रम में जाता है और शकुन्तला अपनी सखियों (अनसूया, प्रियंवदा) के साथ राजा का स्वागत करती है। दुष्यन्त और शकुन्तला दोनों का हृदय परस्पर एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट हो जाता है। शकुन्तला की सखियों से दुष्यन्त को ज्ञात होता है कि "शकुन्तला मेनका-विश्वामित्र की परित्यक्ता पुत्री है; जिसका लालन-पालन महर्षि कण्व ने किया है; जो इसे किसी योग्य वर को सौंपना चाहते हैं।" यह जानकर दुष्यन्त शकुन्तला की प्राप्ति के प्रति आशावान् हो उठता है। इसी बीच नेपथ्य (परदे के पीछे) से सूचना मिलती है कि—मृगया-विहारी राजा दुष्यन्त आश्रम के पास ही हैं। अतः, आश्रम के प्राणियों की रक्षा के निमित्त तैयार हो जाओ। इस नेपथ्यगत सूचना को सुनकर राजा यह कहते हुए उठ जाता है कि—"आप सब जाइए। हम भी जिस प्रकार से आश्रम के जीवों को कष्ट न हो, वैसा प्रयत्न करेंगे।"

द्वितीय अंक के प्रारम्भ में मृगयाशील दुष्यन्त की मृगया का विस्तृत वर्णन है। ग्रीष्म ऋतु के कारण जिस समय वृक्षों की छाया भी मिल पाना कठिन होता है, उस मध्याह्नकाल में भी दुष्यन्त अपने मृगया-विहार में व्यस्त है। विदूषक एतादृशी मृगया (शिकार) से बहुत खिन्न है। फलतः विदूषक के सविनय निवेदन से और कण्वपुत्री 'शकुन्तला' में मन के आसक्त होने से दुष्यन्त मृगया का विचार छोड़ देता है।

राजधानी हस्तिनापुर से राजमाता द्वारा प्रेषित दूत करभक राजा के लिए यह सन्देश लाता है कि—"आज से चौथे दिन मेरे उपवास की पारणा होगी, उस दिन तुमको घर पर अवश्य होना चाहिए।" इस सन्देश को सुनकर राजा का मन द्विविधा में पड़ जाता है—एक तरफ तो माता का अनुल्लंघनीय आदेश है और दूसरी ओर तपस्वियों का कार्य है। इस दोलायमान परिस्थिति में राजा दुष्यन्त विदूषक[1] को अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ यह सोचकर राजधानी वापस भेज देता है कि विदूषक को भी माताजी पुत्रवत् ही मानती हैं। इस प्रकार राजधानी को लौटते हुए विदूषक से राजा अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहता है कि "मैंने शकुन्तला के विषय में तुमसे जो कुछ भी कहा था, वह केवल विनोद (हँसी) मात्र था। इसे यथार्थ समझ लेने की भूल मत करना।"

तृतीय अंक में विष्कम्भक के प्रारम्भ में कुशाओं को हाथ में लिए हुए यजमान कण्व का शिष्य प्रवेश करता है और अत्यन्त गौरव के साथ उद्घोषणा करता है कि महाराज दुष्यन्त के तपोवन में प्रवेश करने मात्र से ही यज्ञकर्म निर्विघ्न समाप्त हो गया, तत्पश्चात् राजा दुष्यन्त प्रविष्ट होता है तथा चन्द्रमा और कामदेव को लक्ष्य करके अपनी कामव्यथा का वर्णन करता है। इसी समय मालिनी नदी के तट पर शकुन्तला भी मध्याह्न की तीव्र गर्मी को अपनी सखियों के साथ व्यतीत कर रही है, तब तक दुष्यन्त भी उसको ढूँढ़ता हुआ मालिनी के तट पर पहुँचता है और लताकुञ्ज में एक पाषाण पर पुष्पों की

---

1. "वामनो दन्तुरः कुब्जो द्विजिह्वो विकृताननः।
खलतिः पिङ्गलाक्षश्च य चिज्ञेयो विदूषकः।।"

नाट्यशास्त्र /24/57।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शय्या बनाकर उसी पर लेटी हुई शकुन्तला को देखता है और उसकी हार्दिक बातों को गुप्तरूप से सुनने की इच्छा से वहीं एक वृक्ष की ओट में खड़ा हो जाता है।

"इस तपोवन में जब से दुष्यन्त आया है, तभी से मैं अत्यन्त अस्वस्थ हो गई हूँ और इस समय एकमात्र वही मेरे प्राणों को बचा सकता है।" शकुन्तला की इस बात को सुनकर प्रियंवदा शकुन्तला से दुष्यन्त के नाम एक काम-पत्र (Love-letter) लिखवाती है और उस पत्र को देवता पर पुष्प चढ़ाने के बहाने राजा के पास पहुँचा देने की योजना बनाती है। इस वार्तालाप को सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न होता है, और शीघ्र ही उसके सम्मुख अपने को प्रकट करके अपनी भी कामजनित विरहव्यथा को सुनाता है और शकुन्तला के साथ गान्र्धव-विवाह (Love-marriage) करके कुछ समय तक वहीं शकुन्तला के पास रहता है। इसी बीच शकुन्तला के स्वास्थ्य का समाचार जानने के लिए गौतमी वहाँ पर आती है और उसकी इस अवस्था को देखकर तथा सायंकाल जानकर शकुन्तला और दोनों सखियों के साथ पर्णकुटी को लौट जाती है। इस प्रकार सबके चले जाने पर खिन्नमन दुष्यन्त अपनी प्रेयसी शकुन्तला की बातों को स्मरण करता हुआ वहीं पर खड़ा रहता है।

चतुर्थ अंक में पुष्पचयन में संलग्न प्रियंवदा और अनसूया के पारस्परिक वार्तालाप से पता चलता है कि यज्ञ की समाप्ति पर ऋषियों से विदा होकर राजा दुष्यन्त अपनी राजधानी को लौट गया है, परन्तु अपने अन्तःपुर की रमणियों में रमण करता हुआ आश्रम में घटित घटनाओं का स्मरण कर सकेगा या नहीं। इस प्रकार की सन्देहजनक स्थिति में शून्यहृदया शकुन्तला, दुष्यन्त द्वारा की हुई प्रतिज्ञाओं और आश्वासनों को स्मरण कर अपने हृदय में आश्वस्त हो जाती है। वह सोचती है कि राजा दुष्यन्त उसे अवश्य अपने अन्तःपुर में बुलाएगा, परन्तु कई दिन बीत जाने के बाद भी जब राजा के पास से कोई सन्देश नहीं आया तो अनेक ऊहा-पोहों के बीच दोलायमान् शकुन्तला किसी तरह अपनी पर्णकुटी में अपने दिनों को व्यतीत करने लगी।

एक दिन अकस्मात् महर्षि 'दुर्वासा' का स्वर सुनाई पड़ता है—

"विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा
तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्
कथां प्रमतः प्रथमं कृमामिव" ।। अभि. /4/1 ।।

अर्थात्—"एकाग्रचित्त होकर जिसका चिन्तन करती हुई तुम आए हुए मुझ तपस्वी (दुर्वासा) को नहीं जानती हो; वह व्यक्ति, उन्मत्त व्यक्ति के द्वारा पहले कही हुई कथा के समान स्मरण कराया जाता हुआ भी तुझको स्मरण नहीं करेगा।" ऐसा शाप देकर स्वभाव से ही कुटिल महर्षि दुर्वासा लौट कर जाने लगे। मार्ग में प्रियंवदा के द्वारा पौनः-पुन्येन अनुनय-विनय किए जाने पर दुर्वासा ने कहा कि मेरा शाप तो अन्यथा नहीं हो सकता, किन्तु किसी अभिज्ञान (आभूषण) के दिखलाने से इस शाप की निवृत्ति हो जाएगी। इस प्रकार प्रियंवदा को आश्वस्त करके महर्षि दुर्वासा वहाँ से चले गए। इधर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्वासा की बात पर विचार करके और राजा दुष्यन्त द्वारा दी गई अँगूठी का स्मरण करके प्रियंवदा ने अपने मन में सोचा कि सम्प्रति यह शाप अब इतना अनर्थकारी नहीं सिद्ध होगा। अतः, उसने इस शाप के वृत्तान्त को शकुन्तला के कान तक नहीं पहुँचने दिया।

'सोमतीर्थ' से लौटकर वापस आए हुए महर्षि कण्व यज्ञ के निमित्त जैसे ही यज्ञशाला में प्रवेश करते हैं, वैसे ही अशरीरिणीवाणी (आकाशवाणी) सुनाई पड़ती है–

"दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः।
अवेहि तनया ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव"।। अभिज्ञा. /4/4।।

अर्थात्–"हे ब्रह्मन्! पृथ्वी के कल्याण के लिए दुष्यन्त द्वारा सिंचित वीर्य को धारण करने वाली अपनी पुत्री को, अपने अन्दर अग्नि को धारण करने वाली शमी वृक्ष की लकड़ी के समान समझो।" ऐसी आकाशवाणी सुनकर शकुन्तला को आश्वासन व आशीर्वाद देकर महर्षि कण्व अपने शिष्यों के साथ शकुन्तला को उसके पतिगृह हस्तिनापुर में भेजकर वैसे ही निश्चिन्त हो जाते हैं, जैसे कोई किसी के न्यास (धरोहर) को लौटाने के बाद निश्चिन्त हो जाता है–

"अर्थो हि कन्या परकीय एव
तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं
प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा"।। अभिज्ञा. /4/22।।

पंचम अंक के प्रारम्भ में राजा अपने प्रिय मित्र विदूषक के साथ अपनी राजधानी हस्तिनापुर में वार्तालाप में व्यस्त है; तभी महारानी 'हंसपदिका' द्वारा गाया जाता हुआ एक लयबद्ध गीत सुनाई देता है–

"अभिनवमधुलोलुपो भवांस्तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम्।
कमलवसतिमात्रनिर्वृत्तो मधुकर! विस्मृतोऽस्येनां कथम्।।"
।। अभिज्ञा. /5/1।।

राजा हंसपदिका के इस गीत को सुनकर उसे सान्त्वना देने के लिए विदूषक को भेज देता है। इसी समय कञ्चुकी यह सूचना देता है कि महर्षि कण्व के किसी सन्देश को लेकर स्त्रियों के साथ तपस्वी आए हैं। राजा कञ्चुकी को आदेश देता है कि जाओ आतिथ्य सत्कार के पश्चात् उन्हें यज्ञशाला में लिवा आओ। मैं वहीं उनकी प्रतीक्षा करूँगा।

यज्ञशाला में कण्वशिष्य शार्ङ्गरव आशीर्वादपूर्वक शकुन्तला को लक्ष्य करके दुष्यन्त के समक्ष महर्षि कण्व के सन्देश को कह सुनाया कि–**"तुमने गान्धर्व विधि से मेरी पुत्री के साथ विवाह कर लिया है; अतः मैं हृदय से इसका अनुमोदन करता हूँ। सम्प्रति यह गर्भवती है। धर्माचरण हेतु इसे स्वीकार कीजिए।"**

राजा दुष्यन्त, महर्षि दुर्वासा के शापवशात् अपने इस वैवाहिक-प्रसंग को सर्वथा भूल चुका है; अतः वह अपने मस्तिष्क पर जोर देते हुए कहता है–**"हे तपस्वियों! मैंने इससे कभी विवाह किया है, ऐसा मुझे कुछ स्मरण नहीं है। इस गर्भवती को मैं**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसे ग्रहण कर सकता हूँ।'' ऐसा सुनकर क्रोधावेश में आकर कण्वशिष्यों ने राजा को बहुत कुछ बुरा-भला कहा। गौतमी ने शकुन्तला का घूँघट भी उठा दिया, परन्तु राजा ने उसे पत्नीत्वेन स्वीकार नहीं किया। राजा भी शकुन्तला को दुश्चारिणी व मिथ्याभाषिणी होने का आरोप लगाकर उसका तिरस्कार करता है, जिसे सुनकर शकुन्तला क्रोध से तमतमा जाती है और तिरस्कृत वचनों का प्रयोग करती हुई, अपने को दुष्यन्त-पत्नी सिद्ध करने के लिए प्रमाणस्वरूप राजा की दी हुई अँगूठी को दिखाना चाहती है, लेकिन दुर्भाग्यवशात् वह अँगूठी मार्ग में ही शचीतीर्थ में जनवन्दना करते हुए जल में गिर गई थी। अन्ततः दुष्यन्त द्वारा पत्नीत्वेन स्वीकार न करने पर कण्वशिष्य उसे छोड़कर चले जाते हैं।

किंकर्तव्यविमूढ़ राजा, राजपुरोहित से पूछता है कि इस आपातकाल में मुझे क्या करना चाहिए? पुरोहित बताता है कि—महाराज! सिद्धपुरुषों के कथनानुसार आपका प्रथम पुत्र चक्रवर्ती होगा। अतः यदि इस ऋषिकन्या को चक्रवर्ती पुत्र पैदा होगा तो आप इसे अन्तःपुर में पट्टमहिषी के पद पर अलंकृत कीजिएगा अन्यथा इसको इसके पिता के घर भेज दीजिएगा। राजा पुरोहित की बात स्वीकार कर लेता है और प्रसवपर्यन्त शकुन्तला को पुरोहित के ही घर में निवास करने का आदेश देता है।

बेचारी शकुन्तला, विवश अबला नारी अपने दुर्भाग्य को कोसती हुई विलाप करने लगती है। इसी बीच आकाश से एक स्त्रीसदृश दिव्यज्योति आकर शकुन्तला को उठा ले जाती है; जिसकी सूचना पुरोहित राजा को देता है। राजा इस सम्पूर्ण घटनाचक्र से व्यथित होकर अपने शयन-कक्ष की ओर चला जाता है।

षष्ठम अंक में प्रवेशक के प्रारम्भ में नागरिक श्याल (कोतवाल) दो सिपाहियों के साथ हाथ बाँधे हुए धीवर को लेकर प्रवेश करता है। धीवर के पास महाराज दुष्यन्त की स्वनामांकित, रत्नजटित बहुमूल्य अँगूठी निकलती है; जिसकी प्राप्ति के विषय में पूछे जाने पर वह राजदरबार में कहता है कि मैं धीवर हूँ तथा मछली पकड़कर अपनी जीविका चलाता हूँ। एक दिन जब में शक्रावतार (शचीतीर्थ) में मछलियों को पकड़ रहा था, तो एक रोहित मछली जाल में फँस गई। जब मैंने उसे वाहर निकाला और चाकू से उसके टुकड़े किए, तो उस रोहित मछली के पेट से यह रत्नजटित अँगूठी मुझे प्राप्त हुई। जव मैं इसको बेचने के लिए नगर में लाया, तो राजपुरुषों (सिपाहियों) ने मुझे पकड़ लिया और यहाँ लिवा लाए। राजा ने जैसे ही उस स्वनामांकित अँगूठी को देखा, वैसे ही उसे शकुन्तला के साथ किए हुए एकान्तप्रेम और गान्धर्व-विवाह का स्मरण हो आया। उस अँगूठी की प्राप्ति से प्रसन्न होकर राजा ने यह आदेश दिया कि इस धीवर को छोड़ दिया जाए तथा इस अँगूठी के मूल्य के बराबर इसको पारितोषिक के रूप में धन भी दिया जाए।

प्रवेशक की समाप्ति के साथ मेनका की सखी सानुमती प्रमदवन में आती है और उसे प्रमदवन के माली तथा कञ्चुकी के पारस्परिक वार्तालाप से ज्ञात होता है कि—जब से राजा ने अँगूठी को देखा है, तब से उसे शकुन्तला के साथ किए हुए अपने सम्पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रिया-कलापों की स्मृति हो आई है। अत्यधिक पश्चाताप के कारण उसको कहीं भी शान्ति नहीं मिल रही है। केवल अपने मित्र माढव्य के साथ शकुन्तला को याद करके अपने व्यवहार की निन्दा करता हुआ शकुन्तला के चित्र से अपना मन बहला रहा है। निरन्तर जागने के कारण शकुन्तला के साथ उसके स्वप्न-मिलन की भी कोई आशा नहीं है। सदैव अश्रुप्रवाह होते रहने से वह शकुन्तला के चित्र-फलक को भी ठीक से नहीं देख पाता है। वह इतना दुःखी है कि नगर में वसन्तोत्सव की तैयारी को स्थगित कर दिया है। प्रिया शकुन्तला के विरह में निरन्तर पीड़ित एवं दुःखी रहने के कारण राजा ने मन्त्री को यह आदेश दिया है कि—जो कोई भी विशेष घटना या पत्र हो, उसे यहीं प्रमदवन में मेरे पास भेज दिया करो, क्योंकि सम्प्रति मैं न्यायालय में आने में असमर्थ हूँ।

एक दिन समुद्रमार्ग से व्यापार करने वाले सार्थवाह धनमित्र की समुद्र में जहाज के डूब जाने से मृत्यु हो जाती है। वह निःसन्तान है। अतः संविधान के अनुसार उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति राजकोष में जमा होनी चाहिए—ऐसी टिप्पणी लिखकर मन्त्री ने राजा के पास उस विषय को भेज दिया। राजा ने सोचा—प्रायः धनपतियों के पास अनेक पत्नियाँ हुआ करती हैं, सम्भव है कि उसमें से कोई आसन्नप्रसवा हो; ऐसा सोचकर राजा ने मन्त्री को आदेश दिया कि जाकर पता लगाओ कि धनमित्र की कोई पत्नी गर्भिणी है या नहीं और यदि कोई गर्भिणी हो, तो सम्पूर्ण धन उसी को दे दिया जाए। इस सम्पूर्ण समाचार को सुनकर सानुमती अत्यन्त प्रसन्न होती है और इस समाचार को अपनी प्रिय शकुन्तला को सुनाने चली जाती है।

इधर इन्द्र का सारथि 'मातलि' राजा के पास आकर यह प्रार्थना करता है कि—कालनेमि के वंशज दुर्जय नाम के दानवों से आपके मित्र इन्द्र का युद्ध चल रहा है। अतः आप उस युद्ध में अपने मित्र की सहायता हेतु इन्द्रलोक में चलने की कृपा करें। मातलि के द्वारा इन्द्र का सन्देश पाकर राजा दुष्यन्त अपने सम्पूर्ण राज्यभार को मन्त्री को सौंपकर मातलि के साथ इन्द्र की सहायता करने को इन्द्रलोक चला जाता है।

सप्तम अंक में राजा दुष्यन्त, इन्द्र के शत्रु का संहार कर डालता है, जिससे प्रसन्न होकर इन्द्र महाराज दुष्यन्त का इन्द्रलोक में विशिष्ट सत्कार करते हैं; तदनन्तर स्वर्ग से पृथ्वी की ओर लौटते हुए राजा दुष्यन्त ने हेमकूट पर्वत पर तपस्यारत् भगवान् मारीच की उपस्थिति को जानकर उनके दर्शन की इच्छा प्रकट की, जिसके परिणामस्वरूप इन्द्र के सारथि मातलि ने वहीं रथ रोक लिया। मातलि जिस समय महर्षि मारीच को राजा दुष्यन्त के आगमन की सूचना देने जाता है, उसी समय राजा की दृष्टि एक ऐसे बालक पर पड़ती है; जो खेलने के लिए सिंह के बच्चे को खींचते हुए उससे कह रहा है—**"अपना मुख खोल, मैं तेरे दाँत गिनूँगा।"** उस बालक की परिचर्या में आई हुई दो तपस्विनियाँ उस बालक को ऐसा करने से रोकती हैं, परन्तु वह मानता नहीं है। इधर राजा का मन बलात् उस बालक की ओर आकृष्ट हो जाता है। वह बालक के हाथ में चक्रवर्तित्व के लक्षण भी देख लेता है। तपस्विनी के साथ पारस्परिक वार्तालाप से उसे ज्ञात होता है कि यह बालक पुरुवंशी है। इसकी माँ एक अप्सरा की पुत्री थी; जिसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालन-पोषण महर्षि कण्व ने किया था। जिसके साथ उसने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया उस राजर्षि ने उसका परित्याग कर दिया। उसी देवी शकुन्तला का यह पुत्र है। अब राजा को यह विश्वास हो जाता है कि यह बालक और कोई नहीं, अपितु उसका अपना ही पुत्र है और इसकी माता उसकी अपनी ही परिणीता पत्नी शकुन्तला है। इसी बीच सिंह के बच्चे को खींचने से रगड़ खाकर बालक के हाथ में बँधा हुआ 'रक्षाकरण्डक' नीचे गिर जाता है; जिसको दुष्यन्त मना करने के बाद भी उठा लेता है और तपस्विनियों से रोके जाने का कारण पूछता है; इस पर एक तापसी बताती है कि—इस बालक के माता-पिता और महर्षि कण्व को छोड़कर जो कोई भी अन्य व्यक्ति भूमि पर पड़े हुए इस रक्षाकरण्ड (अपराजिता नामक औषधि) को उठाता है, उसे यह सर्प बनकर काट लेता है। ऐसा कई बार हो चुका है। इतना कहकर तपस्विनी यह समाचार शकुन्तला को बताती है।

सम्पूर्ण घटनाक्रम को सुनकर शकुन्तला भी वहाँ आ जाती है। शकुन्तला को देखकर बालक सर्वदमन उससे पूछता है यह कौन है? जो 'पुत्र' कहकर मेरा आलिंगन कर रहा है। शकुन्तला अपने पुत्र सर्वदमन से कहती है, पुत्र! यह तो तुम अपने भाग्य से ही पूछो। इतना सुनकर दुष्यन्त, शकुन्तला के पैरों पर गिरकर अपने दुर्व्यवहार के लिए उससे क्षमा माँगता है और अँगूठी प्राप्त होने से लेकर स्मृतिजागरण तक की बात को शकुन्तला को कह सुनाता है तथा पुनः उसी अँगूठी को शकुन्तला की अँगुली में पहनाना चाहता है; तब तक मातलि भी आ जाता है और राजा को बधाई देने के साथ-साथ यह निवेदन भी करता है कि महर्षि मारीच आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

राजा दुष्यन्त अपनी पत्नी शकुन्तला और पुत्र सर्वदमन के साथ भगवान् मारीच के दर्शनार्थ उनके पास जाता है। भगवान् मारीच राजा दुष्यन्त को आशीर्वाद देते हैं और दुर्वासा के शाप की कथा बताते हुए कहते हैं कि आपने इस बेचारी शकुन्तला को जो अस्वीकार कर दिया था, इसमें आपका कोई दोष नहीं है। इस विषय में तुम दोनों को कोई शोक नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार भगवान् मारीच का आशीर्वाद पाकर राजा दुष्यन्त अपनी पत्नी शकुन्तला और पुत्र सर्वदमन के साथ पृथ्वीलोक पर अपनी राजधानी हस्तिनापुर वापस लौट आता है, जहाँ पर सभी प्रजाएँ उसका अभिनन्दन करती हैं, और **भरतवाक्य** के साथ इस नाटक का सुखद अवसान होता है—

"प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः
सरस्वती श्रुतमहतां महीयताम्।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः
पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः।।"

अर्थात्—"राजा, प्रजा के हितसाधन में प्रवृत्त होवे, ज्ञानवृद्ध महापुरुषों की वाणी का पूर्ण सत्कार होवे, सर्वशक्तिमान् स्वयंभू भगवान् शिव मेरे भी पुनर्जन्म को नष्ट कर देवें।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभारत आदिपर्व में उपलब्ध शकुन्तलोपाख्यान

जनमेजय ने वैशम्पायन से प्रश्न के रूप में यह पूछा है कि "हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ! मैं आपसे बुद्धिमान् भरत की उत्पत्ति और उसके शुभ्र चरित के विषय में, शकुन्तला की उत्पत्ति के विषय में तथा महापराक्रमी दुष्यन्त ने शकुन्तला को कैसे प्राप्त किया? इस विषय में सब कुछ जानना चाहता हूँ।" इसके उत्तर में वैशम्पायन ने दुष्यन्त और शकुन्तला की कथा निम्न शब्दों में जनमेजय को सुनाई है–

महाबाहु राजा दुष्यन्त एक बार अपनी विशाल सेना के साथ मृगया के लिए नन्दन सदृश वन में गए और वहाँ अन्य पशुओं का शिकार किया। इस मृगया के प्रसंग में राजा ने एक वन से दूसरे वन में प्रवेश किया। इस वन में उन्होंने एक सुन्दर आश्रम देखा। इस आश्रम में अनेक प्रकार के वृक्ष थे और यज्ञीय अग्नियाँ प्रज्वलित हो रही थीं। यह आश्रम पुण्य मालिनी नदी के दोनों ओर बसा हुआ था। यह कश्यप मुनि का श्रेष्ठ आश्रम था। उसने अपनी सेना को वन के बाहर ही रोक दिया और आदेश दिया कि मैं मुनि के दर्शन के लिए तपोवन में जा रहा हूँ, अतः जब तक मैं लौटकर वापिस नहीं आता हूँ तुम यहीं रूके रहना। इसके पश्चात् अपने राजचिह्नों को वहीं छोड़कर राजा, मन्त्री और पुरोहित के साथ तपोवन में गया। उसने वहाँ जाकर श्रेष्ठ ब्राह्मणों और जप तथा यज्ञपरायण सिद्ध मुनियों को तो देखा पर तपोनिष्ठ कण्व ऋषि को नहीं देखा। इस प्रकार उस आश्रम में किसी को भी न देखकर उसने उच्चैः स्वर से सम्पूर्ण वन को निनादित करते हुए **"यहाँ कौन है?"** ऐसा कहा, जिसको सुनकर तापसवेषधारिणी साक्षात् श्री के समान एक कन्या आश्रम से बाहर आई और राजा को देखकर **"आपका स्वागत है"** ऐसा कहकर उसका अतिथि सत्कार किया। पश्चात् मधुर वाणी से पूछा कि "कहिये, आप किसलिए आए हैं?" राजा ने संक्षेप में इतना ही उत्तर दिया कि मैं महर्षि कण्व के दर्शन के लिए आया हूँ। मुझे बताइए कि वे कहाँ गए हुए हैं? शकुन्तला बोली कि मेरे पिता फलों को लेने के लिए गए हैं, क्षण भर रुकिए वे शीघ्र ही आने वाले हैं। राजा मुस्कराती हुई रूप और यौवन से सम्पन्न उस कन्या को देखकर कहने लगा कि "हे सुश्रोणि! तुम कौन हो, किसकी पुत्री हो और इस तपोवन में किसलिए आई हो? तुमको देखने के साथ ही मैं तुम पर आसक्त हो गया हूँ। तुमने मेरा मन अपहरण कर लिया है। मैं तुम्हारे विषय में जानना चाहता हूँ।" मन ही मन मुस्कराती हुई शकुन्तला ने मधुर वाणी में उत्तर दिया कि "हे दुष्यन्त! तपस्वी, धृतशील, धर्मज्ञ और मनीषी भगवान् कण्व की मैं दुहिता हूँ।" दुष्यन्त कहने लगा कि भगवान् कण्व ऊर्ध्वरेता हैं, लोकपूजित हैं। धर्म अपने पथ से विचलित हो सकता है, पर तपोनिष्ठ भगवान् कण्व अपने तप से विचतलित नहीं हो सकते हैं। हे वरवर्णिनि! तुम उसकी दुहिता कैसे? मेरे हृदय में यह संशय उत्पन्न हो रहा है। इसे दूर कीजिए। शकुन्तला कहने लगी–

राजन्! महर्षि कण्व ने एक ऋषि को मेरी जन्म कथा इस प्रकार सुनाई थी कि "कुछ दिन पूर्व महातपस्वी विश्वामित्र अपने परम तप में लीन थे। उनकी उस भीषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपस्या से इन्द्र को भय हुआ कि कहीं यह अपने प्रबल तप से मुझे मेरे इन्द्रासन से च्युत न कर दे, अतः मेनका से जाकर कहा कि आदित्य के समान महातपस्वी विश्वामित्र घोर तप कर रहा है, जिससे मेरा मन काँपता है। अतः यदि तुम मेरा कुछ भला करना चाहती हो तो उसकी तपस्या में विघ्न खड़ा कर दो। तुम वहाँ जाओ और उसको अपने ऊपर आसक्त करके उसकी तपस्या भंग कर दो। मेनका उस आश्रम में गई, जहाँ ऋषि विश्वामित्र तप कर रहे थे। वहाँ जाकर उसने ऋषि को प्रणाम किया और अपने हाव-भावों को प्रदर्शित करती हुई वहीं पास में खेलने लगी जिसके परिणामस्वरूप उसके सौन्दर्य को देखकर ऋषि उस पर मोहित हो गया और उसके साथ रमण करने लगा। कालान्तर में मुनि विश्वामित्र ने मेनका में शकुन्तला को उत्पन्न किया। वह मेनका भी अपने यथेष्ट कार्य की सिद्धि को जानकर उस गर्भ को वहीं मालिनी नदी के किनारे छोड़कर इन्द्र के पास लौट आई। मेनका की पुत्री की पक्षियों ने रक्षा की। एक दिन मैं (कण्व) स्नान करने के लिए मालिनी नदी के किनारे गया तो पक्षियों से घिरी हुई इस (शकुन्तला) को सोता हुआ देखा। मैं उसे यहाँ ले आया।'' हे राजन्! इस प्रकार मैं उनकी दुहिता हूँ और वे मेरे पिता हैं, क्योंकि धर्मशास्त्र के अनुसार शरीर देने वाला, प्राण देने वाला और अन्न देने वाला—ये तीन पिता कहे गए हैं, और क्योंकि निर्जन वन में ''शाकुन्तैः परिवारिता'' थी, अतः मेरा नाम शकुन्तला रख दिया गया।

शकुन्तला से इस प्रकार उसके जन्म की कथा सुनने के पश्चात् दुष्यन्त कहने लगे कि 'तुम वस्तुतः राजपुत्री हो। हे सुश्रोणि! तुम मेरी भार्या हो जाओ। बताओ मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ? हे शोभने। मेरा सम्पूर्ण राज्य तुम्हारा है। हे सुन्दरि! तुम गन्धर्व-विवाह से मेरे पास आ सकती हो।' इस प्रस्ताव को सुनकर शकुन्तला कहने लगी कि ''हे राजन्, मेरे पिता इस समय फल लेने गए हुए हैं, तुम क्षण भर उनके आने की प्रतीक्षा करो। वही मुझे तुमको देंगे। यह सुनकर दुष्यन्त उसे समझाने लगा कि हे वरारोहे? अपना बन्धु आत्मा ही है और अपनी गति भी आत्मा ही है। अपने आप ही अपना दान किया जा सकता है क्योंकि धर्मशास्त्रानुसार आठ प्रकार के विवाह कहे गए हैं जिनमें से गान्धर्व और राक्षस विवाह क्षत्रियों के लिए धर्म्य होते हैं। तुम किसी प्रकार की मन में शंका मत करो। इसलिए हे वरवर्णिनि! तुम गान्धर्व विवाह के द्वारा मेरी भार्या हो सकती हो। इसको सुनकर शकुन्तला कहने लगी कि जैसा तुमने कहा है वैसा ही धर्म का मार्ग है और यदि मैं अपने आपको देने में अपनी स्वामिनी आप हूँ तो मेरी शर्त यह है, इसे स्वीकार करो—

मयि जायते यः पुत्रः स भवेत्त्वदनन्तरम्।।
युवराजो महाराज सत्यमेतद्ब्रवीमि ते।
यद्येतदेव दुष्यन्त अस्तु मे संगमस्त्वया।।

राजा ने बिना सोचे विचारे ''एवमस्तु'' कह दिया। इस प्रकार विधिवत् उसके साथ विवाह करके उसके साथ वहीं रहा और तदनन्तर पौनः पुन्येन उसको यह विश्वास दिलाकर कि ''मैं शीघ्र ही तुमको बुलाने के लिए अपनी चतुरङ्गिनी सेना को भेजूँगा''—वापिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चला आया। किन्तु सारे मार्ग में लौटते हुए वह मन ही मन काश्यप के विषय में सोचने लगा कि वे इस सम्पूर्ण कथानक को सुनकर क्या कहेंगे!

कुछ समय पश्चात् कण्व आश्रम में वापिस लौटे। शकुन्तला लज्जावश उनके पास नहीं गई। दिव्य ज्ञान वाले महातपस्वी कण्व ने इस विषय में जानकर शकुन्तला से कहा कि 'भद्रे! आज तुमने मेरा निरादर करके जो पुरुष के साथ समागम किया है, उससे धर्म नष्ट नहीं होता है, क्योंकि क्षत्रिय के लिए गान्धर्व-विवाह श्रेष्ठ माना गया है। तुम महापराक्रमी पुत्र को उत्पन्न करोगी जो इस सम्पूर्ण पृथिवी का उपभोग करेगा।' शकुन्तला कहने लगी–

मया पतिर्वृतो योऽसौ दुष्यन्तः पुरुषोत्तमः।
तस्मै ससचिवाय त्वं प्रसादं कर्तुमर्हसि।।

कण्व बोले कि हे वरवर्णिनि! तुम्हारे लिए मैं उससे प्रसन्न हूँ। तुम्हें जो वर अभीष्ट हो वह मुझसे माँग लो। शकुन्तला ने दुष्यन्न का हित सम्पादन करने की इच्छा से अपने पिता कण्व से पौरवों की धर्मिष्ठता और राज्य से अच्युति रूप वर माँगा।

समय पर शकुन्तला ने पराक्रमी पुत्र को उत्पन्न किया, जिसके जातकर्म आदि सभी संस्कार विधिवत् कण्व ने सम्पादित किए। छः वर्ष की अवस्था में वह आश्रम के पास में ही सिंह, व्याघ्र, वराह, भैंसे और हाथियों को वृक्षों से बाँध देता था। अतः सभी आश्रमवासियों ने उसका नाम **'सर्वदमन'** रख दिया क्योंकि–

अस्त्वयं सर्वदमनः सर्वान् हि दमयत्यसौ।
स सर्वदमनो नाम कुमारः समपद्यत।।

इस प्रकार उस ऋषिकुमार के असाधारण कर्मों को देखकर उस ऋषि ने शकुन्तला से कहा कि–सम्प्रति इसके "युवराज" बनने का समय आ गया है। अतः तुम अपने पति के घर जाओ और शिष्यों को यह आदेश दिया कि पुत्र के साथ शकुन्तला को शीघ्र ही उसके पति के पास पहुँचा दो क्योंकि स्त्रियों का चिरकाल तक अपने माता-पिता के पास रहना अच्छा नहीं होता। इस प्रकार आज्ञा पाए हुए वे शिष्य पुत्र सहित शकुन्तला को आगे करके दुष्यन्त के पास आए और सारी बात दुष्यन्त से कहकर पुनः वापिस आश्रम में लौट आए।

शकुन्तला ने विधिवत् राजा की अर्चना की और कहा कि हे राजन्! इस पुत्र को युवराज पद पर अभिषिक्त कीजिए क्योंकि प्रथम बार मेरे साथ समागम होने पर तुमने यह प्रतिज्ञा की थी। राजा उसकी बात सुनकर सब कुछ स्मरण होते हुए भी यह कहने लगा कि मुझे तो कुछ भी स्मरण नहीं आ रहा है कि मैंने तुम्हारे साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध किया है और तुम चाहो तो यहाँ ठहर सकती हो और चाहो तो यहाँ से जा सकती हो। ऐसा सुनकर वह बेचारी बड़ी लज्जित हुई और दुःख से अभिभूत होकर संज्ञाशून्य हो गई तथा ठूँठ के समान निश्चल खड़ी रही। अपने कटाक्षों से मानो जलाती हुई राजा को निर्निमेष दृष्टि से देखती रही। पुनः क्रुद्ध होकर कहने लगी कि हे राजन्! सब कुछ जानते हुए भी क्यों सामान्य व्यक्ति के समान **"मैं नहीं जानता हूँ"** ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते हो। मैंने पूर्व जन्म में ऐसा कौन-सा पाप किया था कि बाल्यकाल में तो मुझे मेरे माता-पिता ने त्याग दिया और इस समय तुम मुझे अस्वीकार कर रहे हो। इसे सुनकर राजा कहने लगा कि हे शकुन्तले! मैं तुमसे उत्पन्न इस पुत्र को सर्वथा नहीं जानता हूँ। स्त्रियाँ मिथ्या बोलने वाली होती हैं। तुम्हारे वचनों का विश्वास कौन करेगा। तुमको यह सब कुछ कहते हुए लज्जा नहीं आती, विशेषकर मेरे सम्मुख। हे दुष्ट तापसी! तुम यहाँ से चली जाओ।

किंकर्त्तव्यविमूढ़ शकुन्तला जैसे ही वहाँ से चलने लगी वैसे ही आकाशवाणी हुई कि—

भरस्व पुत्रं दुष्यन्त माऽवमंस्था शकुन्तलाम्।
त्वं चास्य धाता गर्भस्थ सत्यमाह शकुन्तला।।
शाकुन्तलं महात्मानं दौष्यन्ति भर पौरवम्।
भर्तव्योऽयं त्वया यस्मादस्माकं वचनादपि।।
तस्माद्भवत्ययं नाम्ना भरतो नाम ते सुतः।।

यह सुनकर राजा अत्यन्त हर्षित हुआ और पुरोहित और मन्त्रियों से कहने लगा कि इस आकाशवाणी को सुन रहे हो। मैं भी इसको इसी प्रकार अपना पुत्र समझता हूँ। परन्तु यदि मैं इस अपने पुत्र को इसी प्रकार इसके कहने से स्वीकार कर लेता तो संसार इसको सन्देह की दृष्टि से देखता और यह कभी शुद्ध नहीं हो सकता था।

कथा की समाप्ति पर वैशम्पायन राजा जनमेजय से कहने लगे कि इस प्रकार आकाशवाणी से पवित्र अपने पुत्र को राजा ने स्वीकार किया और प्रेमपूर्वक उसका आलिंगन किया। शकुन्तला को सान्त्वना देता हुआ राजा कहने लगा कि "मैंने संसार से परोक्ष में जो तुम्हारे साथ सम्बन्ध किया था उसकी शुद्धि के लिए ही मैंने यह सब कुछ किया है। हे शुभे! क्रोध में आकर जो तुमने मुझे बुरा भला कहा है, उसके लिए मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालविकाग्निमित्रम्

पुरुषा :

सूत्रधारः—नाटकस्य प्रबन्धकर्त्ता
पारिपार्श्विकः—सूत्रधारस्य सहचरः।
राजा—अग्निमित्राख्यो विदिशाधीशः।
वाहकः—प्राचीनमन्त्री।
विदूषकः—राज्ञो मित्रम्।
कञ्चुकी--अन्तःपुराध्यक्षो वृद्धब्राह्मणः।
गणदासः हरदत्तश्च—नाट्याचार्यो।
सारसः—कुब्जः किङ्करविशेषः।
वैतालिकः—स्तुतिपाठकः।

स्त्रियः

मालविका—मालवाधीशमाधवसेनस्य भगिनी।
धारिणी—अग्निमित्रस्य प्रधान महिषी।
इरावती—अग्निमित्रस्य द्वितीया पत्नी
परिव्राजिका—कौशिकी नाम्नी माधवसेनसचिवस्य सुमतेर्विधवा भगिनी।
बकुलावलिका—धारिण्याः परिचारिका। मालविकायाः सखी।
मधुकरिका—उद्यानपालिका।
कौमुदिका—दासी।
समाहितिका—पारिव्राजिकायाः परिचारिका
निपुणिका—इरावत्याः परिचारिका
जयसेना—प्रतीहारी
चेटी—अपरा दासी।।
मदनिका—विदर्भदेशीया शिल्पिकन्या
ज्योत्स्निका—विदर्भदेशीया शिल्पिकन्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीः ॥

॥ मालविकाग्निमित्रम् ॥

प्रथमोऽङ्कः

एकैश्वर्ये स्थितोऽपि प्रणतबहुफले यः स्वयं कृत्तिवासाः
कान्तासंमिश्रदेहोऽप्यविषयमनसां यः परस्ताद्यतीनाम्।
अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्बिभ्रतो नाभिमानः
सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमीशः।।1।।

[नान्द्यन्ते]

सूत्रधारः—अलमतिविस्तेरण। [नेपथ्याभिमुखमवलोक्य] मारिष! इतस्तावत्।

[प्रविश्य।]

पारिपार्श्विकः—भाव अयमस्मि।

सूत्रधारः—अभिहितोऽस्मि विद्वत्परिषदा कालिदासग्रथितवस्तुमालविकाग्निमित्रं नाम नाटकमस्मिन्वसन्तोत्सवे प्रयोक्तव्यमिति। तदारभ्यतां संगीतम्।

पारिपार्श्विकः—मा तावत्। प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं बहुमानः।

पहला अंङ्क

अपने भक्तों को मनचाहा फल देने का बेजोड़ भंडार अपने पास होते हुए भी जो केवल हाथी की खाल ओढ़कर ही अपना काम चला लेते हैं, अपने आधे शरीर में अपनी पत्नी को बैठाए रहने पर भी जो संसार के भोगों से अपना मन दूर हटाए रहते हैं और अपने आठों रूपों से सारे संसार का पालन करते हुए भी जो अभिमान को पास नहीं फटकने देते, ऐसे संसार के स्वामी महादेव जी, पाप की ओर ले जाने वाली हमारी बुद्धि को इस प्रकार मिटा दें कि हमारा मन अच्छे काम करने में ही लगे।।1।।

[नान्दी हो चुकने पर]

सूत्रधार—अब और देर नहीं करनी चाहिए [नेपथ्य की ओर देखकर] अरे भाई मारिष! इधर तो आओ।

पारिपार्श्वक—[आकर] लीजिए, आ गया हूँ, आर्य।

सूत्रधार—देखो! विद्वानों की सभा ने कहलवाया है कि इस वसन्तोत्सव पर कालिदास का लिखा हुआ मालविकाग्निमित्र नाम का नाटक ही खेला जाय। इसलिये चलकर संगीत तो प्रारम्भ करो।

पारिपार्श्विक—आप यह नाटक क्यों खेल रहे हैं? भास, सौमिल्लि और कवि पुत्र जैसे बड़े-बड़े प्रसिद्ध कवियों के नाटक छोड़कर आप आजकल के इस नौसिखिए कवि कालिदास के नाटक को इतना क्यों आदर दे रहे हैं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूत्रधार—अयि! विवेकविश्रान्तमभिहितम्। पश्य—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।।2।।

पारिपार्श्विकः—आर्यमिश्राः प्रमाणम्।

सूत्रधारः—तेन हि त्वरतां भवान्।

शिरसा प्रथमगृहीतामाज्ञामिच्छामि परिषदः कर्तुम्।
देव्या इव धारिण्याः सेवादक्षः परिजनोऽयम्।।3।।

[इति निष्क्रान्तौ।]

।। इति प्रस्तावाना।।

[ततः प्रविशति बकुलावलिका।]

बकुलाविलका—आणत्तम्हि देवीए धारणीए। अइरप्पउत्तोवदेसं छलिअं णाम णट्टअं अन्दरेण कीरिसी मालविअत्ति णट्टाअरिअं अज्जगणदासं पुच्छिदुं। ता दाव संगीतसालं गच्छम्हि। (आज्ञप्तास्मि देव्या धारिण्या। अचिरप्रवृत्तोपदेशं छलिकं नाम नाट्यमन्तरेण कीदृशी मालविकेति नाट्याचार्यमार्यगणदासं प्रष्टुम्। तत्तावत्संगीतशालां गच्छामि। [इति परिक्रामति]

[ततः प्रविशत्याभरणहस्ता कुमुदिनी]

सूत्रधार—अरे, यह बात तो तुमने अपनी बुद्धि को विश्राम देकर कही है। देखो—पुराने होने से ही न तो सब अच्छे हो जाते हैं, न नये होने से सब बुरे हो होते हैं। समझदार लोग तो दोनों को परखकर उनमें से जो अच्छा होता है, उसे अपना लेते हैं और जिन्हें अपनी समझ होती ही नहीं है, उन्हें तो जैसा दूसरे समझा देते हैं, उसे ही वे ठीक मान बैठते हैं।।2।।

पारिपार्श्विक—तो जैसा आप ठीक समझें।

सूत्रधार—हाँ, तो अब आप देर न कीजिए। सभा ने मुझे पहले से ही जो आज्ञा दे रखी है, उसका मैं वैसे ही आदर के साथ पालन करना चाहता हूँ, जैसे आदर से यह स्वामिभक्त दासी अपनी स्वामिनी महारानी धारिणी की आज्ञा पालन करने इधर चली आ रही है।।3।।

[दोनों चले जाते हैं।]

।। प्रस्तावना।।

[बकुलावलिका आती है]

बकुलावलिका—महारानी धारिणी ने मुझे आज्ञा दी है कि जाकर नाट्याचार्य आर्य गणदास से पूछो कि मालविकाने जो बहुत दिनों से छलिक नाम का नाट्य सीखना आरम्भ किया था, उसे वह कहाँ तक सीख पाई है, तो चलूँ संगीतशाला को। [घूमती है।]

[हाथ में अँगूठी लिए हुए और उसकी ओर देखते हुए कुमुदिनी आती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुलावलिका—[कौमुदिकां दृष्ट्वा।] हला कोमुदीए। कुदो दे दाणि इअं धीरदा। जं समीवेणवि अदिक्कमन्ती इदो दिट्ठिं ण देसि। (सखि कौमुदिके! कुतस्ते इदानीमियं धीरता। यत्समीपेनाप्यतिक्रामन्तीतो दृष्टिं न ददासि।)

कौमुदिका—अम्हो बउलावलिआ? सहि! देवीए इदं सिप्पिसआसादो आणीदं णागमुद्दासणाहं अंगुलीअअं सिणिद्धं णिज्झाअन्ती तुह उवालम्भे पडिदम्हि। (अहो बकुलावलिका? सखि! देव्या इदं शिल्पिसकाशादानीतं नागमुद्रासनाथमङ्गुलीयकं स्निग्धं निध्यायन्ती तवोपालम्भे पतितास्मि।)

बकुलावलिका—[विलोक्य।] ठाणे सज्जदि दिट्ठी। इमिण अंगुलीअएण उब्भिण्णकिरणकेसरेण कुसुमिदो विअ दे अग्गहत्थो पडिभादि। (स्थाने सज्जति दृष्टिः। अनेनाङ्गुलीयकेनोद्भिन्नकिरणकेसरेण कुसुमित इव तेऽग्रहस्तः प्रतिभाति।]

कौमुदिका—हला! कहिं पत्थिदासि। (सखि! कुत्र प्रस्थितासि।)

बकुलावलिका—देवीए एव्व वअणेण णट्टाआरिअं अज्जगणदासं पुच्छिदुं उवदेसग्गहणे कीरिसी मालविएत्ति। (देव्या एव वचनेन नाट्याचार्यमार्यगणदासं प्रष्टुमुपदेशग्रहणे कीदृशी मालविकेति।)

कौमुदिका—सहि ईरिसेण वावारेण असण्णिहिदा वि सा कहं भट्टिणा दिठ्ठा। (सखि! ईदृशेन व्यापारेणसंनिहितापि सा कथं भर्त्रा दृष्टा।)

बकुलावलिका—आम् सो जणो देवीए पास्सगदो चित्ते दिट्ठो। (आम्। स जनो देव्याः पार्श्वगतश्चित्रे दृष्टः।)

कौमुदिका—कहं विअ। (कथमिव।)

बकुलावलिका—[कौमुदिका को देखकर] क्यों सखी कौमुदिका! ऐसी भी क्या बात है कि तुम मेरे इतने पास से निकली चली जाती हुई भी इधर देखती तक नहीं हो?

कौमुदिका—अरे! तुम हो बकुलावलिका? सखी! अभी सुनार के यहाँ से महारानी की यह नागमुद्रा जड़ी हुई अँगूठी लाई हूँ। उसी को ध्यान से देख रही थी कि तुमने झट ताना कस दिया।

बकुलावलिका—[देखकर] सचमुच बड़ी बाँकी वस्तु पर तुम्हारी आँखें उलझी हैं। इस अँगूठी से केसर के समान जो किरणें निकल रही हैं, उनसे तुम्हारी हथेली मानो फूल उठी है।

कौमुदिका—क्यों सखी! तुम जा किधर रही थी?

बकुलावलिका—मैं भी महारानी के कहने से नाट्याचार्य गणदास जी से यह पूछने जा रही थी कि मालविका कैसा सीख-पढ़ रही है।

कौमुदिका—क्यों सखी! इतनी रोक-टोक होते हुए भी महाराज ने उसे देख कैसे लिया?

बकुलाविलका—अरे! वह चित्र में महारानी के पास बैठी हुई है; उसको महाराज ने देख लिया।

कौमुदिका—कैसे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुलावलिका—सुणु। चित्तसालं गदा देवी जदा पच्चग्गवण्णराअं चित्तलेहं आआरिअस्स आलोअन्ती चिट्ठदि भट्टा अ उवट्ठिदो। (शृणु। चित्रशालां गता देवी यदा प्रत्यग्रवर्णरागां चित्रलेखामाचार्यस्यालोकयन्ती तिष्ठिति भर्ता चोपस्थितः।)

कौमुदिका—तदो तदो। (ततस्ततः।)

बकुलावलिका—उवआराणन्तरं एक्कासणोवविट्ठेण भट्टिणा चित्तगदाए देवीए परिअणमज्झगदं आसण्णदारिअं देक्खिअ देवी पुच्छिदा। (उपचारानन्तरमेकासनोपविष्टेन भर्त्रा चित्रगताया देव्याः परिजनमध्यगतामासन्नदारिकां दृष्ट्वा देवी पृष्टा।)

कौमुदिका—किं ति। (किमिति।)

बकुलावलिका—अपुव्वा इअं दारिअ देवीए आसण्णा आलिहिदा किं णामहेएत्ति। (अपूर्वेयं दारिका देव्या आसन्ना आलिखिता किं नामधेयेति।)

कौमुदिका—आकिदिविसेसेसु आअरो पदं करेति। तदो तदो। (आकृतिविशेषेष्वादरः पदं करोति। ततस्ततः।)

बकुलावलिका—तदो अवहीरिअवणो भट्टा संकिदो देवीं पुणोवि अणुबंधिदुं। तदो कुमारिए वसुलच्छीए आअक्खिदम्। अज्ज एसा मालविएत्ति। (ततोऽवधीरितवचनो भर्त्ता शंकितो देवीं पुनरप्यनुबन्धुम्। ततः कुमार्या वसुलक्ष्म्याख्यातम्। आर्य एषा मालविकेति।)

कौमुदिका—[सस्मितम्] सरिसं क्खु बालभाअस्स। अदो अवरं कहेहि। (सदृशं खलु बालभावस्य। अतोऽवरं कथय।)

बकुलाविलका—किं अण्णं। संपदं मालविआ सविसेसं भट्टिणो दंसणपहादो रक्खीअदि। (किमन्यत्। साम्प्रतं मालविका सविशेषं भर्तुर्दशर्नपथाद्रक्ष्यते।)

बकुलावलिका—सुनो! जब महारानी जी चित्रशाला में पहुँचकर चित्रकला के आचार्य के हाथ के बनाए हुए गीले चित्रों को देख रही थीं, उसी समय स्वामी भी वहाँ पहुँच गए।

कौमुदिका—तब, उसके बाद....!

बकुलावलिका—प्रणाम-आशीष हो चुकने पर महाराज भी महारानी के साथ एक ही आसन पर बैठ गए। तब चित्र में बनी हुई महारानी की दासियों में पास ही खड़ी हुई कन्या को देखकर महाराज ने पूछा—

कौमुदिका—क्या?

बकुलावलिका—चित्र में देवी के पास बैठी हुई यह कौन सुन्दर लड़की है?

कौमुदिका—सुन्दर की ओर सबका मन खिच ही जाता है। हाँ, तो फिर क्या हुआ?

बकुलावलिका—देवी को चुप देखकर स्वामी का माथा ठनका और उन्होंने फिर वही बात दुहराई। इसी बीच कुमारी वसुलक्ष्मी बोल उठी—आर्य! यह मालविका है।

कौमुदिका—[मुसकारती हुई] बच्ची ही तो ठहरी। हाँ, तो फिर क्या हुआ?

बकुलाविलका—और होगा क्या? अब मालविका पर ऐसा कड़ा पहरा पड़ गया है कि उसे महाराज के आगे ही नहीं होने दिया जाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौमुदिका—हला! अणुचिट्ठ अत्तणो णिओअं। अहं वि एदं अङ्गुलीअअं देवीए उवणइस्सं। (सखि! अनुतिष्ठात्मनो नियोगम्। अहमप्येतदङ्गुलीयकं देव्यायुपनेष्यामि।)

[इति निष्क्रान्ता।]

बकुलावलिका—[परिक्रम्यावलोक्य।] एसो णट्टाअरिओ संगीदसालादो णिग्गच्छदि। जाव से अत्ताणं दंसेमि। (एष नाट्याचार्यः संगीतशालातो निर्गच्छति। यावदस्मै आत्मानं दर्शयामि।) [इति परिक्रामति।]

[प्रविश्य।]

गणदासः—कामं खलु सर्वस्यापि कुलविद्या बहुमता। न पुनरस्माकं नाट्यं प्रति मिथ्यागौरवम्। तथाहि।

देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधकम्।।4।।

बकुलावलिका—[उपेत्य।] अज्ज वन्दामि। (आर्य वन्दे।)

गणदासः—भद्रे चिरञ्जीव।

बकुलावलिका—अज्जादेवी पुच्छदि अवि उवदेसग्गहणे णदिकीलिस्सदि वो सिस्सा मालविएत्ति। (आर्य! देवी पृच्छत्यप्युपदेशग्रहणे नातिक्लिश्नाति वः शिष्या मालविकेति।)

कौमुदिका—अच्छा सखी! जाओ तुम भी करो अपना काम और मैं भी जाकर यह अँगूठी महारानी को दे आती हूँ [चली जाती है।]

बकुलाविलका—[घूमकर, देखकर] नाट्याचार्य जी तो संगीतशाला से निकले इधर ही चले आ रहे हैं। चलूँ इनसे मिल लूँ। [घूमती है।]

गणदास—[आकर] यों तो सभी अपने-अपने घर की विद्या को सबसे अच्छा समझते हैं, पर हम लोग जो अपनी नाट्यविद्या का इतना अभिमान करते हैं, वह झूठा नहीं है, क्योंकि मुनि लोगों का कहना है कि यह नाट्य तो देवताओं की आँखों को सुहाने वाला यज्ञ है। स्वयं महादेव जी ने ही उमा से विवाह करके अपने शरीर में इसके दो भाग कर दिए हैं, एक ताण्डव और दूसरा लास्य। इसमें सत्त्व, रज और तम तीनों गुण भी दिखाई पड़ते हैं और अनेक रसों में लोगों के चरित्र भी दिखाई पड़ते हैं इसीलिये अलग-अलग रुचि वाले लोगों के लिये प्रायः नाटक ही एक ऐसा उत्सव है, जिसमें सबको एक-सा आनन्द मिलता है।।4।।

बकुलावलिका—[आगे बढ़कर] आर्य, प्रणाम।

गणदास—बहुत दिन जिओ भद्रे!

बकुलाविलका—आर्य! महारानी ने पूछा है कि नाट्य सीखने में आपकी शिष्या मालविका आपका माथा तो बहुत नहीं चाटती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणदासः—भद्रे! विज्ञाप्यतां देवी परमनिपुणा मेधाविनी चेति। किं बहुना।

यद्यत्प्रयोगविषये भाविकमुपदिश्यते मया तस्यै।
तत्तद्विशेषकरणात्प्रत्युपदिशतीव मे बाला।।5।।

बकुलावलिका—[आत्मसगतम्।] अदिक्कमती विअ इर्रावदिं पेक्खामि। [प्रकाशम्] किदत्था दाणिं वो सिस्सा जाए गुरुअणो एवं तुस्सदि। (अतिक्रामन्तीमिवेरावतीं पश्यामि। कृतार्थेदानीं वः शिष्या यस्या गुरुजन एवं तुष्यति।)

गणदासः—भद्रे! तद्विधामसुलभत्वात्पृच्छामि। कुतो देव्या तत्पात्रमानीतम्।

बकुलावलिका—अत्थि देवीए वणावरो भादा वीरसेणो णाम। सो भट्टिणा णम्मदातीरे अन्तवालदुग्गे ठाविदो। तेण सिप्पाहिआरे जोग्गा इअं दारिएत्ति भणिअ भइणीए देवीए उवाअणं पेसिदा। (अस्ति देव्या वर्णावरो भ्राता वीरसेना नाम। सभर्त्रा नर्मदातीरेऽन्तपालदुर्गे स्थापितः। तेन शिल्पाधिकारे योग्यैयं दारिकेति भणित्वा भगिन्या देव्या उपायनं प्रेषिता।)

गणदासः—[स्वगतम्] आकृतिविशेषप्रत्ययादेनामनूनवस्तुकां संभावयामि। [प्रकाशम] भद्रे! मयापि यशस्विना भवितव्यम् यतः—

पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः।
जलमिव समुद्रशक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य।।6।।

बकुलावलिका—अज्ज! कहिं दाणिं वो सिस्सा। (आर्य! कुत्रेदानीं वः शिष्या।)

गणदासः—इदानीमेव पंचांगादकमभिनयमुपदिश्य मया विश्रम्यतामित्यभिहिता दीर्घिकावलोकनगवाक्षगता प्रवातमासेवमाना तिष्ठति।

गणदास—भद्रे! महारानी से कह देना कि वह बड़ी चतुर और समझदार है और क्या कहें, मैं जो जो भाव उसे सिखलाता हूँ, उन्हें वह और भी सुन्दरता के साथ करके दिखाने लगती है तो ऐसा जान पड़ता है मानो वह उल्टे मुझे ही सिखा रही हो।।5।।

बकुलावलिका—[मन ही मन] जान पड़ता है कि वह इरावती को तो पछाड़ ही देगी। [प्रकट] धन्य है, आपकी वह शिष्या जिसके गुरु उससे इतने प्रसन्न हैं।

गणदास—भद्रे। ऐसे शिष्य मिलते कहाँ हैं! इसीलिये तो मैं तुमसे पूछता हूँ कि देवी को यह मिल कहाँ से गई?

बकुलावलिका—देवी के एक वीरसेन नाम के दूर के भाई हैं, उन्हें महाराज ने नर्मदा तीर वाले अन्तपाल दुर्ग की देख-रेख का काम सौंप रखा है। उन्होंने ही अपनी बहिन धारिणी देवी के पास इस कन्या को यह कहलाकर भेज दिया है कि यह गाने बजाने का काम भली भाँति सीख सकेगी।

गणदास—[मन ही मन] पर रूप-रंग से तो यह किसी ऊँचे घराने की जान पड़ती है, क्योंकि सिखाने वाले की कला अच्छे ही शिष्य के पास पहुँचकर उस प्रकार खिलती है, जैसे बादल का जल समुद्र की सीपी में पहुँचकर ही मोती बन उठता है।।6।।

बकुलावलिका—क्यों आर्य! आपकी शिष्या इस समय है कहाँ?

गणदास—अभी उसे पाँचों अंगों का अभिनय सिखाकर मैंने उसे थोड़ा विश्राम करने को कहा है। इसलिये वह सरोवर की ओर वाली खिड़की पर बैठी हवा ले रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुलावलिका—तेण हि पुणो अणजाणादु मं अज्जो। जाव से अज्जस्स परितोसणिवेदणेण उस्साहं वड्ढेमि। (तेन हि पुनरनुजानातु मामार्यः। यावदस्या आर्यस्य परितोषनिवेदनेनोत्साहं वर्धयामि।)

गणदासः—दृश्यतां सखी। अहमपि लब्धक्षणः स्वगृहं गच्छामि।

[इति निष्क्रान्तौ]

।। इति मिश्रविष्कम्भकः।।

[ततः प्रविशत्येकान्तस्थितपरिजनो मन्त्रिणा लेखहस्तेनान्वास्यमानो राजा।]

राजा—[अनुवाचितलेखममात्यं विलोक्य] वाहतक! किं प्रतिपद्यते वैदर्भः?

अमात्यः—देव आत्मविनाशम्।

राजा—संदेशमिदानीं श्रोतुमिच्छामि।

अमात्यः—इदमिदानीमनेन प्रतिलिखितम्। पूज्येनाहमादिष्टः। भवतः पितृव्यपुत्रः कुमारो माधवसेनः प्रतिश्रुतसंबन्धो ममोपान्तिकमुपसर्पन्नन्तरा त्वदीयेनान्तपालेनावस्कन्द्य गृहीतः। स त्वया मदपेक्षया सकलत्रसोदर्यो मोक्तव्य इति। एतन्ननु वो विदितम्। यत्तुल्याभिजनेषु राज्ञां वृत्तिः। अतोऽत्र मध्यस्थः पूज्यो भवितुमर्हति। सोदरा पुनरस्य ग्रहणविप्लवे विनष्टा। तदन्वेषणाय प्रयतिष्ये। अथवा अवश्यमेव माधवसेनो मया पूज्येन मोचयितव्यः श्रूयतामभिसंधिः।

बकुलावलिका—तो आप मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं उसे यह कहकर उत्साहित करूँ कि आप उससे इतने प्रसन्न हैं।

गणदास—हाँ, हाँ, जाकर मिलो अपनी सखी से। मैं भी छुट्टी पाकर अपने घर जा रहा हूँ। [दोनों जाते हैं।]

।। मिश्र विष्कंभक समाप्त ।।

[एकान्त में अपने सभासदों के साथ राजा बैठे हुए हैं और मंत्री अपने हाथ में एक पत्र लिए हुए हैं।]

राजा—[मंत्री जब पत्र बाँच चुके तब] क्यों वाहतक! विदर्भ के राजा चाहते क्या है?

अमात्य—अपना सत्यानाश, देव!

राजा—अच्छा, पढ़कर तो सुनाओ उनका सँदेसा।

अमात्य—उन्होंने लिखकर भेजा है आपने जो मुझे यह आज्ञा दी थी—कि "आपके चचेरे भाई कुमार माधवसेन पहले से पक्के किए संबंध के अनुसार मुझसे अपनी बहन व्याहने के लिए जब चले आ रहे थे, तो बीच में ही आपके राज्य की सीमा के रखवालों ने उन्हें पकड़कर बाँध लिया है। उन्हें आप मेरे कहने से स्त्री और बहन के साथ छोड़ दीजिए।।" इस संबंध में मुझे यह कहना है कि आप बड़े हैं और यह भी आप भली भाँति जानते हैं कि समान वंश वाले राजाओं के झगड़े कैसे निपटाने चाहिए। इसलिये आप चाहें तो हम लोगों का बीच-बचाव कर सकते हैं। हाँ, इस धर-पकड़ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौर्यसचिवं विमुञ्चति यदि पूज्यः संयतं मम श्यालम् ।
मोक्ता माधवसेनस्ततो मया वन्धनात्सद्यः ।। 7 ।।

इति।

राजा–[सरोषम्] कथं कार्यविनिमयेन मयि व्यवहरत्यनात्मज्ञः। वाहतक! प्रकृत्यमित्रः प्रतिकूलकारी च मे वैदर्भः। तद्यातव्यपक्षे स्थितस्य पूर्वसंकल्पितसमुन्मूलनाय वीरसेनमुखं दण्डचक्रमाज्ञापय।

अमात्यः–यदाज्ञापयति देवः।

राजा–अथवा किं भवान्मन्यते।

अमात्यः–शास्त्रदृष्टमाह देवः।

अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरूढमूलत्वात् ।
नवसंरोपणशिथिलस्तरुरिव सुकरः समुद्धर्तुम् ।। 8 ।।

राजा–तेन ह्यवितथं तन्त्रकारवचनम्। इदमेव वचनं निमित्तमुपादाय समुद्योज्यतां सेनाधिपतिः।

अमात्यः–तथा। [इति निष्क्रान्तः]

[परिजनो यथाव्यापारं राजानमभितः स्थितः।]

[प्रविश्य।]

माधवसेन की बहन कहीं खो गई है। मैं उसे खोजने का प्रयत्न करूँगा और आप भी यदि माधवसेन को छुड़ाना चाहते हो तो आप मेरी इतनी बात मान लीजिए कि आपने मेरे साले मौर्य सचिव को जो पकड़ रखा है, उसे यदि आप छोड़ दें तो मैं भी माधवसेन को अभी छोड़ दूँगा।।7।।

राजा–[क्रोध से] क्या वह ठीक मुझसे इस प्रकार बदले का व्यवहार करना चाहता है। देखो वाहतक! यह विदर्भ का राजा स्वभाव से ही मेरा शत्रु है और जो कुछ मैं कहता हूँ, उसका ठीक उल्टा ही किया करता है। इसलिये वीरसेन के नायकत्व में जितनी सेना है, उसे आज्ञा दो कि जाकर उसे जड़ से उखाड़ फेंके, क्योंकि हम लोग पहले ही संकल्प कर चुके हैं कि ऐसे खोटे शत्रु को उखाड़ फेंकना ही ठीक है।

अमात्य–जैसी देव की आज्ञा।

राजा–पर इसमें आपकी क्या सम्मति है?

अमात्य–देव ने तो पहले ही शास्त्र की बात कह दी है–जो शत्रु अभी गद्दी पर बैठा हो और जो भली प्रकार अपने प्रजा में जड़ न जमा सका हो वह नये रोपे हुए दुर्बल पौधे के समान बड़ी सरलता के साथ उखाड़ा जा सकता है।।8।।

राजा–तब तो शास्त्र की बात यहाँ ठीक लागू हो रही है। इसलिये शास्त्र के इसी वचन के आधार पर सेनापति को तैयार करो।

अमात्य–अच्छी बात है। [चला जाता है।]

[सब सेवक राजा के चारों ओर खड़े हुए अपना-अपना काम कर रहे हैं।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—आणत्तोम्हि तत्तभवदा रण्णा। गोदम! दाव चिन्तेहि उवाअं। जह मे जदिच्छादिट्ठप्पदिकिदी मालविआ पच्चक्खदंसणा होदित्ति। मए अ तं कहा किदं दाव से णिवेदेमि। (आज्ञप्तोऽस्मि तत्रभवता राज्ञा। गौतम चिन्तय तावदुपायम्। यथा मे यदृच्छादृष्टप्रतिकृतिर्मालिविका प्रत्यक्षदर्शना भवतीति। मया च तत्तथा कृतं तावदस्मै निवेदयामि।) [इति परिक्रामति।]

राजा—[विदूषकं दृष्ट्वा।] अयमपरः कार्यान्तरसचिवोऽस्माकमुपस्थितः।

विदूषकः—[उपगम्य] वड्ढहु भवं। (वर्धतां भवान्।)

राजा—[सशिरःकम्पम्।] इत आस्यताम्।

[विदूषकः उपविष्टः।]

राजा—अपि कच्चिदुपेयोपायदर्शने व्यापृतं ते प्रज्ञाचक्षुः।

विदूषकः—पओअसिद्धिं पुच्छ। (प्रयोगसिद्धिं पृच्छ।)

राजा—कथमिव।

विदूषकः—[कर्णे] एव्वमिव। (एवमिव।)

राजा—साधु वयस्य निपुणमुपक्रान्तम्। इदानीं दुरधिगमसिद्धावप्यस्मिन्नारम्भे वयमाशंसामहे। कुतः—

अर्थं सप्रतिबन्धं प्रभुरधिगन्तुं सहायवानेव।
दृश्यं तमसि न पश्यति दीपेन विना सचक्षुरपि।।9।।

[नेपथ्ये]

विदूषक—[आकर] मुझे महाराज ने आज्ञा दी थी कि गौतम! कोई ऐसा उपाय सोच निकालो कि जिस मालविका को मैंने अचानक चित्र में देख लिया है उसे मैं अपनी आँखों से तो देख पाऊँ। मैंने उसके लिये जो ढंग निकाला है, चलकर उसे अभी महाराज को बताता हूँ। [घूमता है।]

राजा—[विदूषक को देखकर] लो, हमारे दूसरे कामों के मंत्री भी आ पहुँचे।

विदूषक—[पास पहुँचकर] बधाई है।

राजा—[सिर हिलाकर] आओ यहाँ बैठो [विदूषक बैठ जाता है।]

राजा—कहो, जिससे मिलने के लिये हम तड़प रहे हैं, उससे मिलने का कोई उपाय तुम्हारी बुद्धि में आया या नहीं?

विदूषक—अजी, यह पूछिए कि हमने काम बनाया कैसे है?

राजा—कैसे?

विदूषक—[कानों में] ऐसे।

राजा—वाह मित्र! तुमने बड़ी चतुराई का काम किया है। यह काम है तो बड़ा टेढ़ा, पर तुमने जैसा आरंभ किया है, उससे तो कुछ कुछ आशा हो चली है; क्योंकि झंझट वाले कामों में जब कोई साथी मिल जाय तो समझ लेना चाहिए कि अब काम बन गया। आँखों वाला मनुष्य भी अँधेरे में बिना दीपक के कुछ नहीं देख सकता।।9।।

[नेपथ्य में]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलं बहु विकत्थ्य। राज्ञः समक्षमेवावयोरधरोत्तरयोर्व्यक्तिर्भविष्यति।

राजा—[आकर्ण्य।] सखे! त्वत्सुनीतिपादपस्य पुष्पमुद्भिन्नम्।

विदूषकः—फलं वि अइरेण दक्खिस्ससि। (फलमप्यचिरेण द्रक्ष्यसि।)

[ततः प्रविशति कञ्चुकी।]

कञ्चुकी—देव देव! अमात्यो विज्ञापयति। अनुष्ठिता प्रभोराज्ञा। एतौ पुनर्हरदत्तगणदासौ।

उभावभिनयाचार्यौ परस्परजयैषिणौ।
त्वां द्रष्टुमुद्यतौ साक्षाद्भावाविव शरीरिणौ।। 10।।

राजा—प्रवेशय तौ।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः। [इति निष्क्रम्य ताभ्यां सह प्रविश्य।] इत इतो भवन्तौ।

गणदासः—[राजानं विलोक्य।] अहो दुरासदो राजमहिमा।

न च न परिचितो न चाप्यरम्यश्चकितमुपैमि तथापि पार्श्वमस्य।
सलिलनिधिरिव प्रतिक्षणं मे भवति स एव नवो नवोऽयमक्ष्णोः।। 11।।

बस-बस, अपनी बकवाद रहने दो। अभी महाराज के सामने ठीक-ठाक निर्णय हो जाता है, कि हम दोनों में कौन छोटा है कौन बड़ा?

राजा—[सुनकर] लो मित्र! तुम्हारी नीति के पेड़ में फूल तो दिखाई देने लगे।

विदूषक—थोड़ी ही देर में फल भी देखिएगा।

[कञ्चुकी आता है।]

कञ्चुकी—देव! मंत्री जी कहते हैं कि आपकी आज्ञा का पालन हो गया। अभिनय के दोनों आचार्य हरदत्त और गणदास आपस में एक दूसरे को हराने की ठानकर आपसे मिलने के लिये बाहर खड़े ऐसे लग रहे हैं, मानो स्वयं नाटक के भाव ही शरीर धारण करके चले आए हों।।10।।

राजा—ले आओ दोनों को भीतर।

कञ्चुकी—जैसी देव की आज्ञा [बाहर जाकर दोनों को ले आता है।] इधर से आइए आप लोग, इधर से।

गणदास—[राजा को देखकर] वाह, क्या कहने हैं राजा के तेज के भी! इनके तो पास तक पहुँचना दूभर लग रहा है, क्योंकि—ऐसी बात नहीं है कि इनसे पहले से जान-पहचान न हो या ये देखने में भयंकर लगते हों, फिर भी न जाने क्यों मुझे इनके पास जाते हुए बड़ी हिचक हो रही है। समुद्र के समान ज्यों के त्यों रहते हुए भी ये मेरी आँखों को पल-पल में नये-नये से दिखाई पड़ रहे हैं।।11।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरदत्तः—महत्खलु पुरुषाकारमिदं ज्योतिः। तथाहि—

द्वारे नियुक्तपुरुषाभिमतप्रवेशः सिंहासनान्तिकचरेण सहोपसर्पन्।
तेजोभिरस्य विनिवर्तितदृष्टिपातैर्वाक्याद्वृते पुनरिव प्रतिवारितोऽस्मि।। 12।।

कञ्चुकी—एष देवः उपसर्पतां भवन्तौ।

उभौ—[उपेत्य] विजयतां देवः।

राजा—स्वागतं भवद्भयाम्। [परिजनं विलोक्य।] आसने तावदत्रभवतोः।

[उभौ परिजनोपनीतयोरासनयोरुपविष्टौ।]

राजा—किमिदं शिष्योपदेशकाले युगपदाचार्याभ्यामत्रोपस्थानम्।

गणदासः—देव! श्रूयताम्। मया सुतीर्थादभिनयविद्या सुशिक्षिता। दत्तप्रयोगश्चास्मि। देवेन देव्या च परिगृहीतः।

राजा—बाढं जाने। ततः किम्।

गणदासः—सोऽहममुना हरदत्तेन प्रधानपुरुषसमक्षमयं मे न पादरजसापि तुल्य इत्यधिक्षिप्तः।

हरदत्तः—देव! अयमेव प्रथमं परिवादकरः। अत्रभवतः किल मम च समुद्रपल्वलयोरिवान्तरमिति अत्रभवानिमां मां च शास्त्रे प्रयोगे च विमृशतु। देव एव नौ विशेषज्ञः प्राश्निकः।

हरदत्त—पुरुष के रूप में राजा का तेज सचमुच बड़ा प्रभावशाली है; क्योंकि यद्यपि द्वारपाल ने मुझे यहाँ तक पहुँचा दिया है और मैं इनके सिंहासन के पास रहने वाले कञ्चुकी के साथ ही भीतर भी आया हूँ, फिर भी इनके तेज से आँखें इतनी चौंधियाँ गई हैं मानो बिना रोके ही मैं बढ़ने से रोक दिया गया होऊँ।।12।।

कञ्चुकी—लीजिए ये हैं देव! आप लोग आगे बढ़ जाइए।

दोनों—[आगे बढ़कर] देव की जय हो।

राजा—आप दोनों का स्वागत है! [सेवक को देखकर] आप लोगों के लिये आसन तो लाओ।

[सेवकों के लाए हुए आसनों पर दोनों बैठते हैं।]

राजा—कहिए, यह तो शिष्यों को पढ़ाने का समय है। इस समय आप दोनों आचार्य एक साथ कैसे आ पहुँचे?

गणदास—सुनिए देव! मैंने बड़े योग्य गुरु से विद्या सीखी है और इतने दिनों से सिखा भी रहा हूँ। देव और देवी ने मेरी विद्या का आदर भी किया है।

राजा—हाँ, यह तो मैं जानता हूँ। तो हुआ क्या है?

गणदास—आज इन हरदत्त जी ने एक बड़े राजपुरुष के आगे यह डींग हाँकी है कि गणदास तो मेरे पैरों की धूल के बराबर भी नहीं हैं।

हरदत्त—देव! इन्होंने ही पहले मेरी निन्दा की है और यह कहा है कि हमारे और हरदत्त में तो समुद्र और गड़ही का अन्तर है। इसलिये अब आप ही इनके और मेरे शास्त्र-ज्ञान की और प्रयोग दिखाने की चतुराई की स्वयं परीक्षा लें; क्योंकि आप ही परीक्षक होकर यह बता सकेंगे कि हम दोनों में कौन बड़ा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—समत्थं पइण्णादं (समर्थं प्रतिज्ञातम्।)

गणदासः—प्रथमः कल्पः। अवहितो देवः श्रोतुमर्हति।

राजा—तिष्ठ तावत्। पक्षपातमत्र देवी मन्यते। तदस्याः पण्डित-कौशिकी-सहितायाः समक्षमेव न्याय्यो व्यवहारः।

विदूषकः—सुट्ठु भवं भणदि। (सुष्ठु भवान्भणति।)

आचार्यौ—यद्देवाय रोचते।

राजा—मौद्गल्य! अमुं प्रस्तावं निवेद्य पण्डितकौशिक्या सार्धमाहूयतां देवी।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः। [इति निष्क्रम्य सपरिव्राजिकया देव्या सह प्रविष्टः।] इत इतो भवती।

धारिणी—[परिव्राजिकां विलोक्य।] **भअवदि! हरदत्तस्स गणदासस्स अ संरम्भं कहं पेक्खसि।** (भगवति! हरदत्तस्य गणदासस्य च संरम्भे कथं पश्यसि।)

परिव्राजिका—अलं स्वपक्षावसादशङ्कया। न परिहीयते प्रतिवादिनो गणदासः।

धारिणी—जइ वि एवं तह वि राअपरिग्गहो पहाणत्तणं उवहरदि। (यद्यप्येवं तथापि राजपरिग्रहः प्रधानत्वमुपहरति।)

परिव्राजिका—अयि! राज्ञीशब्दभाजनमात्मानमपि चिन्तयतु भवती। पश्य—

अतिमात्रभासुरत्वं पुष्यति भानोः परिग्रहादनलः।
अधिगच्छति महिमानं चन्द्रोऽपि निशापरिगृहीतः।।13।।

विदूषक—बात तो ठीक कही।

गणदास—यही सही। तो देव सावधान होकर सुनें।

राजा—अभी ठहरो। यदि हम निर्णय करेंगे तो देवी समझेंगी कि हमने पक्षपात किया है, इसलिये उनके और पंडिता कौशिकी के सामने ही निर्णय किया जाना चाहिए।

विदूषक—यह तो आप ठीक कह रहे हैं।

दोनों आचार्य—जैसा देव ठीक समझें।

राजा—मौद्गल्य! पंडिता कौशिकी और महारानी को सब बातें बताकर यहाँ बुला तो लाओ।

कञ्चुकी—जैसी देव की आज्ञा। [जाता है और परिव्राजिका तथा महारानी को लेकर आता है।] इधर से आइए देवी इधर से।

धारिणी—[परिव्राजिका की ओर देखकर] क्यों भगवती! हरदत्त और गणदास के झगड़े में आप किसकी जीत सोचती हैं?

परिव्राजिका—आप अपने पक्ष के हार की तो बात ही न सोचिए। गणदास कभी अपने जोड़वाले से नहीं हार सकते।

धारिणी—यह ही ठीक है। फिर भी राजा जिस पर कृपा कर दें, वह तो जीत ही जायगा।

परिव्राजिका—अजी! आप यह स्मरण रखिए कि आप भी महारानी हैं। देखिए—जैसे सूर्य की कृपा से अग्नि में बहुत चमक आ जाती है, वैसे ही रात की कृपा पाकर चन्द्रमा में भी बहुत चमक आ जाती है।।13।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—अइ उअट्ठिदा देवी पीठमहिअं पण्डिअकोसिइं पुरोकरिअ तत्तभोदी धारिणी। (अयि! उपस्थिता देवी पीठमर्दिकां पण्डितकौशिकीं पुरस्कृत्य तत्रभवती धारिणी।)

राजा—पश्याम्येनाम्। यैषा—

मङ्गलालंकृता भाति कौशिक्या यतिवेषया।
त्रयी विग्रहवत्येव सममध्यात्मविद्यया।। 14।।

परिव्राजिका—[उपेत्य] विजयतां देवः।

राजा—भगवति अभिवादये।

परिव्राजिका—

महासारप्रसवयोः सदृशक्षमयोर्द्वयोः।
धारिणीभूतधारिण्योभर्व भर्ता शरच्छतम्।। 15।।

धारिणी—जेदु जेदु अज्जउत्तो। (जयतु जयत्वार्यपुत्रः।)

राजा—स्वागतं देव्यै। [परिव्राजिकां विलोक्य।] भगवति! क्रियतामासनपरिग्रहः।

[सर्व उपविशन्ति।]

राजा—भगवत्यत्रभवतोर्हरदत्तगणदासयोः परस्परं विज्ञानसङ्घर्षिणोर्भगवत्या प्राश्निकपदमध्यासितव्यम्।

परिव्राजिका—[सस्मितम्] अलमुपालम्भेन। पत्तने सति ग्रामे रत्नपरीक्षा।

विदूषक—लो, महारानी धारिणी जी अपने सहेली पंडिता कौशिकी को साथ लिए हुए इधर चली आ रही हैं।

राजा—हाँ, देख तो रहा हूँ कि साधुनी के वेश वाली कौशिकी के साथ सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से सजी हुई महारानी ऐसी दिखाई पड़ रही हैं, मानो अध्यात्म-विद्या के साथ तीनों वेदों की देवी शरीर धारण किए हुए चली आ रही हो।।14।।

परिव्राजिका—[पास जाकर] देव की जय हो।

राजा—भगवती! अभिवादन करता हूँ।

परिव्राजिका—सैकड़ों शरदों तक, महातेजस्वियों को उत्पन्न करने वाली उन पृथ्वी और धारिणी देवी के आप स्वामी बने रहें जिनमें सहन करने की शक्ति एक जैसी ही है।।15।।

धारिणी—जय हो, आर्यपुत्र की जय हो।

राजा—देवी का स्वागत है। [परिव्राजिका की ओर देखकर] आइए, बैठिए भगवती!

[सब बैठते हैं।]

राजा—भगवती! आचार्य हरदत्त और गणदास आज एक झगड़ा लेकर आए हैं कि हम दोनों में कौन अधिक योग्य है? अब आप ही इनका झगड़ा निपटाइए।

परिव्राजिका—[मुसकराकर] ठिठोली न कीजिए। भला नगर के होते हुए कहीं रत्न की परख गाँवों में की जाती है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—नैतदेवम्। पण्डितकौशिकी खलु भगवती, पक्षपातिनावहं देवी च।

आचार्यौ—सम्यगाह देवः। मध्यस्था भगवती नौ गुणदोषतः परिच्छेत्तुमर्हति।

राजा—तेन हि प्रस्तूयतां विवादः।

परिव्राजिका—देव प्रयोगप्रधानं हि नाट्यशास्त्रम्। किमत्र वाग्व्यवहारेण। कथं वा देवी मन्यते।

देवी—जइ मं पुच्छसि तदा एदाणं विवादो एव्व ण मे रोअदि। (यदि मां पृच्छसि तदैतयोविवाद एव न मे रोचते।)

गणदासः—देवि! न मां समानविद्यया परिभवनीयमवगन्तुमर्हसि।

विदूषकः—भोदि पेक्खामो उअरंभरिंसंवादं। किं मुहा वेअणदाणेण एदेणं। (भवति पश्याम उदरंभरिसंवादम्। किं मुधा वेतनदानेनैतेषाम्।)

देवी—णं कलहप्पिओसि। (ननु कलहप्रियोऽसि।)

विदूषकः—मा एव्वं। चण्डि! अण्णोण्णकलहप्पिआणं मत्तहत्थीणं एक्कदरस्सिं अणिज्जिदे कुदो उवसमो। (मैवम्। चण्डि! अन्योन्यकलहप्रिययोर्मत्तहस्तिनोरेकतरस्मिन्ननिर्जिते कुत उपशमः।)

राजा—ननु स्वाङ्गसौष्ठवातिशयमुभयोर्दृष्टवती भगवती।

परिव्राजिका—अथ किम्।

राजा—तदिदानीमतः परं किमाभ्यां प्रत्यययायितव्यम्।

राजा—नहीं, ऐसी बात नहीं है। आप ठहरीं पंडिता कौशिकी और हम तथा देवी ठहरे आचार्यों के पक्षपाती।

दोनों आचार्य—यह तो देव ने ठीक कहा। पक्षपात से दूर रहने वाली भगवती ही हमारे गुण-दोष ठीक-ठीक जाँच सकेंगी।

राजा—तो आप लोग शास्त्रार्थ प्रारम्भ कीजिए।

परिव्राजिका—देव! नाट्यशास्त्र की जाँच तो करके दिखाने से होती है। इसलिये कोरी बात से लाभ क्या होगा? क्यों देवी! ठीक है न?

देवी—मुझसे पूछा जाय, तो मुझे इनका झगड़ा ही नहीं सुहाता है।

गणदास—देवी! आप यह न समझें कि मैं नाट्य-विद्या में किसी से पीछे रह जाऊँगा।

विदूषक—तो देवी! देख ही क्यों न लिया जाये इन दोनों पेटुओं का करतब? नहीं तो इन्हें वेतन दे-देकर पालने से लाभ ही क्या है?

देवी—हाँ, हाँ तुम्हें तो लड़ाई-झगड़ा ही अच्छा लगता है।

विदूषक—नहीं, ऐसा न कहिए चंडी। इन दो लड़ाकू हाथियों में जब तक एक की हार नहीं हो जायेगी, तब तक ये ठंडे कैसे होंगे?

राजा—भगवती! आपने तो इन लोगों के अभिनय की चतुरता देखी ही होगी?

परिव्राजिका—हाँ, देखी है।

राजा—तब इससे बढ़कर ये अपनी कुशलता का और क्या प्रमाण देंगे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिव्राजिका—तदेव वक्तुकामास्मि—

श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।

यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव।।16।।

विदूषकः—सुदं अज्जेहिं भअवदीए वअणं। एसो पिण्डितत्थो उवदेसदंसणादो णिण्णओत्ति। (श्रुतमार्याभ्यां भगवत्या वचनम्। एष पिण्डितार्थ उपदेशदर्शनान्निर्णय इति।)

हरदत्तः—परमभिमतं नः।

गणदासः—देवि। एवं स्थितम्।

देवी—**जदा उण मन्दमेधा सिस्सा उवदेसं मलिणेन्ति तदा आअरिअस्स ण दोसो।** (यदा पुनर्मन्दमेघा शिष्या उपदेशं मलिनयन्ति तदाऽऽचार्यस्य न दोषः।)

राजा—देवि! एवमापठ्यते, विनेतुरद्रव्यपरिग्रहोऽपि बुद्धिलाघवं प्रकाशयतीति।

देवी—[जनान्तिकम्।] **कहं दाणि।** [गणदासं विलोक्य प्रकाशम्।] **अलं अज्जउत्तस्स ऊसाहकारणं मणेरहं पूरिअ। विरम णिरत्थआदो आरम्भादो** (कथमिदानीम्। अलमार्यपुत्रस्योत्साहकारणं मनोरथं पूरयित्वा। विरम निरर्थकादारम्भात्।)

विदूषकः—**सुट्ठु भोदी भणादि। भो गणदास! संगीदपदं लम्भिअ सरस्सईए उवाअणमोदआणं खादमाणस्स किं दे मुहणिग्घेण विवादेण।** (सुष्ठु-भवती भणति। भो गणदास! संगीतपदं लब्ध्वा सरस्वत्युपायनमोदकान्खादतः किं ते मुखनिग्रहेण विवादेन।)

परिव्राजिका—मैं बताती हूँ न! देखिए! कोई गुणी तो ऐसे होते हैं जो अपने गुण को अपने आप भली भाँति जानते हैं। और कुछ ऐसे होते हैं जो अपने गुण दूसरों को सिखाने में बड़े चतुर होते हैं, पर सच्चा गुणी वही है जिसमें ये दोनों बातें हों और ऐसे ही गुणी को सबसे अच्छा समझना भी चाहिए।।16।।

विदूषक—[दोनों आचार्यों से] आप लोगों ने भगवती की बातें सुन लीं! इसका अर्थ यह निकला कि आप लोगों ने अपने शिष्यों को जैसा सिखाया है, वही देखकर आप लोगों की अच्छाई की जाँच की जायेगी।

हरदत्त—यही तो हम भी चाहते हैं।

गणदास—तो यही रहे देवी!

देवी—पर यदि कोई मोटी समझ वाली शिष्या सिखाए हुए प्रयोग बिगाड़ दे, तो इसमें आचार्य का क्या दोष है?

राजा—देवी! हमने कहीं पढ़ा है यदि गुरु अपनी विद्या देने के लिये निकम्मा शिष्य चुने तो समझ लेना चाहिए कि गुरुजी को भी कुछ आता-जाता नहीं।

देवी—[अलग] अब क्या हो? [गणदास की देखकर प्रगट] आर्यपुत्र को उत्साह दिलाने वाला यह टंटा छोड़ो। तुम क्यों यह बेकाम का काम सिर ले रहे हो?

विदूषक—आप ठीक कहती हैं। देखो! गणदास! जब तुम बैठे-बैठे संगीत के अध्यापक बने हुए, सरस्वती जी को चढ़ाए हुए लड्डू खा ही रहे हो, तब तुम ऐसी ठाँय ठाँय मोल ही क्यों लेते हो, जिसमें तुम्हारा मुँह बन्द हो जाये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणदासः—सत्यमयमेवार्थो देवीवाक्यस्य। श्रूयतामवसरप्राप्तमिदानीम्—

लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम्।
यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति।। 17।।

देवी—अइरोवणीदा दे सिस्सा। अवरिणिट्ठिदस्स उवदेसस्स उण अण्णाय्यं पआसणं।

(अचिरोपनीता ते शिष्या। अपरिनिष्ठितयोपदेशस्य पुनरन्याय्यं प्रकाशनम्।)

गणदासः—अत एव मे निर्बन्धः।

देवी--तेण हि दुवेवि भअवदीए उवदेसं दंसेध। (तेन हि द्वावपि भगवत्यायुपदेशं दर्शयतम्।)

परिव्राजिका—देवि! नैतन्न्याय्यम्। सर्वज्ञस्याप्येकाकिनो निर्णयाभ्युपगमो दोषाय।

देवी—[जनान्तिकम्।] मूढे परिव्वाजिए! मं जाग्गतिंपि सुत्तं विअ करेसि। (मूढे परिव्राजिके! मां जाग्रतीमपि सुप्तामिव करोषि।) [इति सासूयं परावर्तते।]

[राजा देवीं परिव्राजिकायै दर्शयति।]

परिव्रजिका—

अनिमित्तमिन्दुवदने किमत्र भवतः पराङ्मुखी भवसि।
प्रभवन्त्योऽपि हि भर्तृषु कारणकोपाः कुटुम्बिन्यः।। 18।।

गणदास—महारानी की बात का तो सचमुच यही अर्थ निकलता है। जब बात आ ही पड़ी है, तो मैं भी कह देता हूँ। सुनिए—जो अध्यापक नौकरी पा लेने पर शास्त्रार्थ से भागता है, दूसरों के उँगली उठाने पर चुप रह जाता और केवल पेट पालने के लिये विद्या पढ़ाता है, ऐसे लोग पंडित नहीं, वरन् ज्ञान बेचने वाले बनिए कहलाते हैं।।17।।

देवी—तुम्हारी शिष्या अभी थोड़े ही दिनों से तो सीखने लगी है। इसलिये बिना पक्की किए उसे यहाँ प्रयोग करने के लिये लाना सचमुच बड़ा अन्याय होगा।

गणदास—इन्हीं कारणों से तो मैं और भी उसे यहाँ लाने का हठ कर रहा हूँ।

रानी—तो तुम दोनों अपने-अपने सिखाने की चतुराई अकेले भगवती को ही दिखाओ।

परिव्राजिका—यह ठीक नहीं होगा देवी! कोई कितना भी बड़ा पंडित क्यों न हो, पर यदि वह अकेले न्याय करने बैठता है तो उसके निर्णय में भूल हो ही जाती है।

देवी—[अलग] अरी मूर्ख परिव्राजिका! तू मुझ जागती हुई को भी सोती हुई बना देना चाहती है। [डाह से मुँह फेर लेती है।]

[राजा परिव्राजिका को संकेत से रानी का भाव दिखाता है।]

परिव्राजिका—हे चंद्रमा के समान मुख वाली! तुम बिना बात ही महाराज से क्यों मुँह फेरे बैठी हो। जो अच्छे कुलवाली स्त्रियाँ होती हैं, उन्हें यद्यपि अपने पतियों पर सभी अधिकार होते हैं, फिर भी जब उन्हें रूठना होता है तो वे कोई न कोई कारण निकालकर ही अपने पति से रूठती हैं।।18।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—णं सकारणं एव्व। अत्तणो पक्खो रक्खिदव्वो। [गणदासं विलोक्य।] दिट्ठिआ कोवव्वाजेण देवीए परित्तादो भवं। सुसिक्खिदो वि सव्वो उवदेसदंसणेण णिण्हादो होदि। (ननु सकारणमेव। आत्मनः पक्षो रक्षितव्यः। दिष्ट्या कोपव्याजेन देव्या परित्रातो भवान्। सुशिक्षितोऽपि सर्व उपदेशदर्शनेन निष्णातो भवति।)

गणदासः—देवि! श्रूयताम्। एवं जनो गुह्णाति। तददानीम्

विवादे दर्शयिष्यामि क्रियासंक्रान्तिमात्मनः।
यदि मां नानुजानासि परित्यक्तोऽस्म्यहं त्वया।। 19।।

[इत्यासनादुत्थातुमिच्छति।]

देवी—[स्वगतम्] का गई। [प्रकाशम्।] **पहवदि आआरिओ सिस्सजणस्स।** (का गतिः। प्रभवत्याचार्यः शिष्यजनस्य।)

गणदासः—चिरमपदेशशङ्कितोऽस्मि। [राजानमवलोक्य।] अनुज्ञातं देव्या। तदाज्ञापयतु देवः कस्मिन्नभिनयवस्तुनि प्रयोगं दर्शयिष्यामि।

राजा—यदादिशति भगवती।

परिव्राजिका—किमपि देव्या मनसि वर्तते ततः शङ्कितास्मि।

देवी—भण वीसद्धं। पहवदि प्पहू अत्तणो परिअणस्स। (भण विस्रब्धम्। प्रभवति प्रभुरात्मनः परिजनस्य।)

विदूषक—वे कारण से ही तो रूठ रही हैं। उन्हें अपने पक्ष की तो रक्षा करनी ही चाहिए। [गणदास को देखकर] जाइए, बड़ा भाग्य है आपका कि महारानी ने रूठने के बहाने आपको बचा लिया। पर देखो, चाहे कोई कितना भी बड़ा पंडित हो, पर उसकी चतुराई उसके शिष्यों का करतब देखकर ही जानी जाती है।

गणदास—सुनिए देवी! जब ऐसी-ऐसी बातें कही जा रही हैं, तो अब मैं यही दिखा देना चाहता हूँ कि मैंने अपने शिष्यों को अपनी विद्या कैसे सिखाई है? यदि आप मुझे इस समय आज्ञा नहीं देंगी तो मैं यही समझूँगा कि आपने मुझे अपने यहाँ से निकाल दिया।।19।। [अपने आसन से उठना चाहता है।]

देवी—[मन ही मन] अब और चारा ही क्या है! [प्रकट] शिष्य तो आचार्य के हाथ में हैं।

गणदास—मैं इतनी देर से डर रहा था कि महारानी कहीं रोक न दें। [राजा को देखकर] देवी ने आज्ञा दे दी है, इसलिये अब देव भी आज्ञा दें कि मैं आपको कौन सा अभिनय दिखाऊँ।

राजा—जो भगवती कहें।

परिव्राजिका—देवी कुछ कहना चाहती हैं, इससे मैं हिचक रही हूँ।

देवी—नहीं आप निडर होकर कहिए। सेवकों को तो अपने स्वामी की आज्ञा माननी ही होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—मम चेति ब्रूहि।

देवी—भअवदि। भणेदाणीम्। (भगवति! भणेदानीम्।)

परिव्राजिका—देव! शर्मिष्ठायाः कृतिं चतुष्पादोत्थं छलिकं दुष्प्रयोज्यमुदाहरन्ति। तत्रैकार्थसंश्रयमुभयोः प्रयोगं पश्यामः। तावता ज्ञायत एवात्रभवतोरुपदेशान्तरम्।

आचार्यौ—यदाज्ञापयति भगवती।

विदूषकः—तेण हि दुवे वि वग्गा पेक्खाघरे संगीदरअणं करिअ तत्तभॅवदो दूदं पेसअह अहवा मुदङ्गसद्दो एव्व णे उत्थावइस्सदि। (तेन हि द्वावपि वर्गौ प्रेक्षागृहे संगीतरचनां कृत्वा तत्रभवतो दूतं प्रेषयतम्। अथवा मृगङ्गशब्द एव न उत्थापयिष्यति।)

हरदत्तः—तथा। [इत्युत्तिष्ठति।]

[गणदासो धारिणीमवलोकयति।]

देवी—[गणदासं विलोक्य।] विअई भोदु अज्जा। णं विजयअब्भत्थिणी अहं अज्जस्स।

(विजयी भवत्वार्यः। ननु विजयाभ्यर्थिन्यहमार्यस्य।)

[आचार्यौ प्रस्थितौ।]

परिव्राजिका—इतस्तावत्।

आचार्यौ—[परिवृत्य।] इमौ स्वः।

राजा—और मुझे आपकी आज्ञा माननी है, यह भी जोड़ दीजिए।

देवी—भगवती! अब आप कह डालिए।

परिव्राजिका—महाराज! शर्मिष्ठा का बनाया हुआ चौपदों वाला छलिक नामक अभिनय बड़ा कठिन बताया जाता है। उसी के किसी एक भाव में दोनों का अभिनय देख लेंगे और उसी से यह जान लिया जाएगा कि आप लोगों ने अपने-अपने शिष्यों को कैसा सिखलाया है?

दोनों आचार्य—जैसी भगवती की आज्ञा।

विदूषक—तो आप दोनों नाटक-घर में चलकर सब संगीत का साज जुटाइए और सब हो चुकने पर किसी दूत से यहाँ कहला दीजिएगा। या फिर मृदंग की धमक सुनकर ही हम लोग उठकर चले आयेंगे।

हरदत्त—अच्छी बात है। [उठता है।]

[गणदास धारिणी की ओर देखता है।]

देवी—[गणदास को देखकर] आपकी विजय हो। मैं सचमुच चाहती हूँ कि आपकी विजय हो।

[दोनों आचार्य जाने को उद्यत।]

परिव्राजिका—इधर तो सुनिए।

दोनों आचार्य—[लौटकर] कहिए, आ गए हम लोग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिव्राजिका—निर्णयाधिकारे ब्रवीमि। सर्वाङ्गसौष्ठवाभिव्यक्तये विगतनेपथ्ययोः पात्रयोः प्रवेशोऽस्तु।

आचार्यौ—नेदमावयोरूपदेश्यम्। [इति निष्क्रान्तौ।]

देवी—[राजानमवलोक्य।] जइ राअकज्जसु ईरिसी उवाअणिउणदा अज्जउत्तस्स तदो सोहणं भवे। (यदि राजकार्येष्वीदृश्युपायनिपुणतार्यपुत्रस्य ततः शोभनं भवेत्।)

राजा—

अलमन्यथा गृहीत्वा न खलु मनस्विनि मया प्रयुक्तमिदम्।
प्रायः समानविद्याः परस्परयशः पुरोभागाः।। 20।।

[नेपथ्ये मृदङ्गध्वनिः। सर्वे कर्णं ददति।]

परिव्राजिका—हन्त! प्रवृत्तं संगीतम्। तथा ह्येषा—

जीमूतस्तनितविशङ्किभिर्मयूरैरुद्ग्रीवैरनुरसितस्य पुष्करस्य।
निह्रादिन्युपहितमध्यमस्वरोत्था मायूरी मदयति मार्जना मनांसि।। 21।।

राजा—देवि! तस्याः सामाजिका भवामः।

देवी—[स्वगतम्।] अहो अविणओ अज्जउत्तस्स। (अहो अविनय आर्यपुत्रस्य।)

[सर्व उत्तिष्ठन्ति।]

परिव्राजिका—देखिए, मुझे निर्णय का अधिकार दिया गया है, इसलिये मैं यह बता देना चाहती हूँ कि पात्रों के सब अंगों के हाव-भाव ठीक-ठीक दिखाई देने चाहिएँ, इसलिये आप लोग अपने पात्रों को बहुत सजा-धजाकर न लाइएगा।

दोनों आचार्य—यह कहने की आवश्यकता नहीं थी।

देवी—[राजा को देखकर] यदि आर्यपुत्र अपने राज्य की देखभाल करने में इतनी कला लगाते तो कितना अच्छा होता।

राजा—देवी! तुम कुछ और न समझ बैठना। इसमें मेरा कोई हाथ नहीं है। देखो, जो लोग एक-सी विद्या वाले होते हैं, वे कभी एक दूसरे की बढ़ती नहीं सह सकते हैं।।20।।

[नेपथ्य में मृदंग की ध्वनि। सब सुनते हैं।]

परिव्राजिका—अरे लो! उन्होंने तो सङ्गीत छेड़ भी दिया। देखो! मृदंग शब्द को मेघों की गरज समझकर ये मोर ऊपर मुँह करके देखने लगे और दूर तक गूँजने वाली यह मध्यम स्वर से उठी हुई मायूरी नाम की गमक मन को मतवाला बना रही है।।21।।

राजा—चलिए देवी! चलकर देखा जाय।

देवी—[मन ही मन] आह! आर्यपुत्र भी कैसे ढीठ हैं।!

[सब उठ खड़े होते हैं।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—[अपवार्य।] भो धीरं गच्छ। तत्तभोदी धारिणी विसंवादइस्सदि। (भोः धीरं गच्छ। तत्रभवती धारिणी विसंवादयिष्यति।)

राजा—

धैर्यावलम्बिनमपि त्वरयति मां मुरजवाद्यरागोऽयम्।
अवरतः सिद्धिपथं शब्दः स्वमनोरथस्येव।।22।।

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे।]

।। इति प्रथमोङ्कः।।

विदूषक—[अलग] अजी, धीरे-धीरे चलिए। कहीं देवी धारिणी सब गड़बड़-घोटाला न कर दें।

राजा—मैं बहुत धीरे ही चल रहा हूँ फिर भी मुरज से निकला हुआ यह राग मुझे इस प्रकार जल्दी चला रहा है, मानो मेरा मनोरथ ही मुझे पुकारकर बुला रहा हो कि आओ तुम्हारा काम बन गया है।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीयोऽङ्कः

[ततः प्रविशति संगीतरचनायां कृतायाआसनस्थो राजा सवयस्यो धारिणी परिव्राजिका विभवतश्च परिवारः।]

राजा—भगवत्यत्रभवतोराचार्ययोः प्रथमं कतरस्योपदेशं द्रक्ष्यामः।

परिव्राजिका—ननु समानेऽपि ज्ञानवृद्धभावे वयोवृद्धत्वाद् गणदासः पुरस्कारर्महति।

राजा—तेन हि मौद्गल्य एवमत्रभवतोरावेद्य स्वनियोग्यमशून्यं कुरु।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः [इति निष्क्रान्तः।]

[प्रविश्य]

गणदासः—देव! शर्मिष्ठायाः कृतिर्लयमध्या चतुष्पदास्ति। तस्यास्तु छलिकप्रयोगमेकमनाः श्रोतुमर्हति देवः।

राजा—आचार्य। बहुमानादवहितोऽस्मि।

[निष्क्रान्तो गणदासः।]

राजा—[जनान्तिकम्] वयस्य—

नेपथ्यपरिगतायाश्चक्षुर्दर्शनसमुत्सुकं तस्याः।
संहर्तुमधीरतया व्यवसितमिव मे तिरस्करिणीम्।। 1।।

विदूषकः—[अपवार्य] **उवट्ठिदं णअअणमहु संणिहिदमक्खिअं अ। ता अप्पमत्तो दाणिं पेक्ख।** (उपस्थितं नयनमधु सन्निहितमक्षिकंच। तदप्रमत्त इदानीं पश्य।)

दूसरा अंक

[संगीतशाला में विदूषक के साथ राजा, परिव्राजिका, रानी धारिणी और सारा राज-परिवार दिखाई देता है।]

राजा—इन दोनों आचार्यों में से पहले किसका सिखाया हुआ नाटक देखा जाय।

परिव्राजिका—यद्यपि दोनों को नाट्यशास्त्र का एक-सा ही ज्ञान है फिर भी आचार्य गणदास अवस्था में बड़े हैं, इसलिये पहले उन्हीं को अवसर मिलना चाहिए।

राजा—तो मौद्गल्य! आओ, आचार्यो को यह बात बताकर तुम अपना काम देखो।

कञ्चुकी—जैसी—देव की आज्ञा। [चला जाता है।]

[गणदास का प्रवेश]

गणदास—देव! शर्मिष्ठा ने मध्यलय में एक चौपदी बनाई है। प्रार्थना है कि देव उसमें छलिक वाले अभिनय को मन लगाकर सुनें।

राजा—आचार्य! मैं बड़े आदर से ध्यान लगाए हुए हूँ।

[गणदास चला जाता है।]

राजा—(अलग) मित्र! परदे के पीछे जो मेरी प्यारी खड़ी है, उसे देखने के लिये मेरी आँखें ऐसी उतावली हो रही हैं, मानो वे इस अधीरता में परदे को ही हटाने पर तुल गई हों।।1।।

विदूषक—(अलग) लीजिए! आपकी आँखों की मिठाई तो आ गई पर मधुमक्खी भी पास ही बैठी है, इसलिये थोड़ी सावधानी से उधर देखिएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[ततः प्रविश्यत्याचार्यप्रत्यवेक्ष्यमाणाङ्गसौष्ठवा मालविका।]

विदूषकः–[जनान्तिकम्] **पेक्खदु भवं। ण क्खु से पडिच्छन्दादो परिहीअदिं महुरदा।**

(पश्यतु भवान्। न खल्वस्याः प्रतिच्छन्दात्परिहीयते मधुरता।)

राजा–[अपवार्य।] वयस्य!

चित्रगतायामस्यां कान्तिविसंवादशङ्कि मे हृदयम्।
सम्प्रति शिथिलसमाधिं मन्ये येनेयमालिखिता।। 2।।

गणदासः–वत्से! मुक्तसाध्वसा सत्त्वस्था भव।

राजा–[आत्मगतम्] अहो सर्वस्थानानवद्यता रूपविशेषस्य। तथाहि

दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्तिवदनं बाहूनतावंसयोः
संक्षिप्तं निबिडोन्नतस्तनमुरः पार्श्वे प्रमृष्टे इव।
मध्यः पाणिमितो नितम्बि जघनं पादावरालाङ्गुली
छन्दो नर्तयितुर्यथैव मनसि श्लिष्टं तथास्या वपुः।। 3।।

मालविका–[उपगानं कृत्वा चतुष्पदवस्तु गायति।]

दुल्लहो पिओ मे तस्सिं भव हिअअ णिरासं
अम्हो अपङ्गोअ मे परिप्फुरइ किं वि वामओ।

[मालविका आती है। उसके अंगों के हाव-भाव की देखभाल आचार्य कर रहे हैं।]

विदूषक–(अलग) देखिए, देखिए। यह जैसी चित्र में सुन्दर लगती थी, उससे किसी प्रकार कम सुन्दर नहीं है।

राजा–(अलग) वयस्य! चित्र में इसकी सुन्दरता देखकर मैं अपने मन में यह समझ रहा था कि यह सचमुच इतनी सुन्दरी नहीं होगी। पर इसे देखकर तो मैं यही सोचने लगा हूँ कि चित्रकार ने ठीक ध्यान से इसका चित्र नहीं बनाया।।2।।

गणदास–घबराओ मत वत्स! सँभली रहो।

राजा–(मन ही मन) वाह! यह तो सिर से पैर तक एकदम सुन्दर है; क्योंकि इसकी बड़ी-बड़ी आँखें, चमकता हुआ शरद् के चन्द्रमा जैसा मुख, कन्धों पर थोड़ी झुकी हुई भुजाएँ, उभरते हुए कड़े स्तनों से जकड़ी हुई छाती, चिकनी-चिकनी कोखें, मुट्ठी भर की कमर, मोटी-मोटी जाँघें और थोड़ी-थोड़ी झुकी हुई दोनों पैरों की उँगलियाँ बस ऐसी जान पड़ती हैं, मानो इसका शरीर इसके नाट्य गुरु गणदास के कहने पर ही गढ़ा गया हो।।3।।

(पहले अलाप भरकर चार पदों वाला गाना गाती है।)

(गीत)

दुर्लभ प्रिय हे, हृदय छोड़ दे तू मिलने की आशा।
पर क्यों बायाँ नयन फड़कता, कुछ-कुछ लेकर आशा।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एसो सो चिरदिट्ठो कहँ उण उवणइदव्वो।
णाह मं पराहीणं तुइ परिगणअ सतिण्हम्।। 4।।
(दुर्लभः प्रियो मे तस्मिन्भव हृदय निराश-
महो अपाङ्गो मे परिस्फुरति किमपि वामः।
एष स चिरदृष्टः कथं पुनरुपनेतव्यो
नाथ मां पराधीनां त्वयि परिगणय सतृष्णाम्।।)

[ततो यथारसमभिनयति।]

विदूषकः—[जनान्तिकम्।] भो वअस्स। चउप्पदवत्थुअं दुवारीकरिअ तुइ उवठ्ठाविदो अप्पा तत्तहोदीए। (भो वयस्य! चतुष्पदवस्तुकं द्वारीकृत्य त्वय्युपस्थापित आत्मा तत्रभवत्या।)

राजा—सखे! एवमेव ममापि हृदयम्। अनया खलु—

जनमिमनुरक्तं विद्धि नायेति गेये वचनमभिनयन्त्याः स्वाङ्गनिर्देशपूर्वम्।
प्रणयगतिमदृष्ट्वा धारिणीसंनिकर्षादहमिव सुकुमारप्रार्थनाव्याजमुक्तः।। 5।।

[मालविका गीतान्ते निष्क्रमितुमारब्धा।]

विदूषकः—**भोदि चिट्ठ। किंवि वो विसुमरिदो कम्मभेदो। तं दाव पुच्छिस्सम्।**
(भवति तिष्ठ। किमपि वो विस्मृतः कर्मभेदः। तं तावत्प्रक्ष्यामि।)

गणदासः—वत्से। क्षणमात्रं स्थित्वोपदेशविशुद्धा यास्यसि।

[मालविका निवृत्य स्थिता।]

राजा—[आत्मगतम्] अहो! सर्वास्ववस्थामु चारुता शोभान्तरं पुष्यति तथा हि—

बहुत दिनों पर देख रही हूँ पर कैसे अपनाऊँ।
नाथ विवश हूँ पर अपनी ही समझो मैं बलिजाऊँ।।4।।

(गीत के भाव के अनुसार नाट्य करती है।)

विदूषक—(अलग) लो वयस्य! इन्होंने तो इस चार चरण वाले गीत के बहाने आप पर अपने को न्यौछावर कर डाला।

राजा—मैं भी यही समझता हूँ कि इसने 'नाथ विवश हूँ पर अपनी ही समझो'—गीत गाते हुए अपनी ओर संकेत करके जो अभिनय किया है, वह इसीलिये कि महारानी धारिणी को पास देखकर इसने समझ लिया कि प्रेम दिखाने का कोई दूसरा उपाय तो है नहीं, इसलिये एक सुकुमार युवक से प्रेम की भीख माँगने के भाव वाला यह गीत गाकर इसने सचमुच मुझसे ही सब कुछ कहा है।।5।।

[गा चुकने पर मालविका चली जाना चाहती है।]

विदूषक—ठहरिए देवी! आप बीच में कुछ भूल गई हैं, वही मैं पूछना चाहता हूँ।

गणदास—वत्से! थोड़ी देर रुक जाओ और जब यहाँ सब लोग भली-भाँति समझ लें कि तुमने ठीक से नाट्य सीख लिया है तभी जाना।

[मालविका लौटकर खड़ी हो जाती है।]

राजा—[मन ही मन] अहा! इसे जिधर से देखो, उधर से ही यह मनोहर लगने लगती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वामं संधिस्तिमितवलयं न्यस्य हस्तं नितम्बे
कृत्वा श्यामाविटप सदृशं स्त्रस्तमुक्तं द्वितीयम्।
पादङ्गुष्ठालुलितकुसुमे कुट्टिमे पातिताक्षं
नृत्यादस्याः स्थितमतितरां कान्तमृज्वायतार्धम्।।6।।

देवी—णं गोदमवअणं वि अज्जो हिअए करेदि। (ननु गौतमवचनमप्यार्यो हृदये करोति।)

गणदासः—देवी! मा मैवम्। दैव प्रत्ययात्संभाव्यते सूक्ष्मदर्शिता गौतमस्य। पश्य—

मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः।
पङ्कच्छिदः फलस्येव निकषेणाविलं पयः।।7।।

(विदुषकं विलोक्य) तच्छृणुमो वयं विवक्षितमार्यस्य।

विदूषकः—[गणदासं विलोक्य।] कोसिइँ दाव पुच्छ। पच्छा जो मए कम्मभेदो दिट्ठो तं भणिस्सं। [कौशिकीं तावत्पृच्छ। पश्चाद्यो मया कर्मभेदो दृष्टस्तं भणिष्यामि।]

गणदासः—भगवति! यथा दृष्टमभिधीयतां गुणो वा दोषोवेति।

परिव्राजिका—यथा दृष्टं सर्वमनवद्यम्। कुतः—

अङ्गैरन्तनिहितवचनैः सूचितः सम्यगर्थः
पादन्यासो लयमनुगतस्तन्मयत्वं रसेषु।
शाखायोनिमृदुरभिनयस्तद्विकल्पानुवृत्तौ
भावो भावं नुदति विषयाद्रागबन्धः स एव।।8।।

इसने अपना बायाँ हाथ नितम्ब पर रख लिया है, इसलिये हाथ का कड़ा पहुँचे पर रुककर चुप हो गया है। दूसरा हाथ श्यामा की डाली के समान ढीला लटका हुआ है। नीची आँखें किए हुए यह अपने पैर के अँगूठे से धरती पर बिखरे हुए फूलों को सरका रही है। इस प्रकार खड़ी होने से इसके ऊपर का शरीर लम्बा और सीधा हो गया है। नाचने के समय भी यह ऐसी सुन्दर नहीं लगती थी, जैसी अब लग रही है।।6।।

देवी—क्या गणदास भी गौतम की बात सच मान बैठे हैं?

गणदास—ऐसा न कहिए देवी! महाराज के साथ रहते-रहते गौतम की आँखें भी भले-बुरे की ठीक पहचान करने लगी है। सुनिए विद्वानों की संगति में बैठकर मूर्ख भी उसी प्रकार विद्वान् बन जाता है, जैसे निर्मली के बीज से मटमैला पानी स्वच्छ हो जाता है।।7।। (विदूषक को देखकर) हम भी सुनें आप क्या पूछना चाहते थे?

विदूषक—(गणदास को देखकर) आप पहले कौशिकी जी से पूछ लीजिए, मैं पीछे बतलाऊँगा कि भूल कहाँ हुई है।

गणदास—भगवती! आपने जहाँ जैसा गुण या दोष देखा हो सब कह डालिए।

परिव्राजिका—मैंने तो जो देखा उसमें कहीं दोष दिखाई ही नहीं दिया; क्योंकि गीत की सब बातों का ठीक-ठीक अर्थ अंगों के अभिनय से भली-भाँति दिखा दिया गया है। इनके पैर भी लय के साथ चल रहे थे। फिर गीत के रस में भी ये तन्मय हो गई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणदासः–देवः कथं वा मन्यते।

राजा–वयं स्वपक्षशिथिलाभिमानाः संवृत्ताः।

गणदासः–अद्यनर्तयितास्मि। कुतः–

उपदेशः विदुः शुद्धं सन्तस्तमुपदेशिनः।
श्यामायते न युष्मासु या काञ्चनमिवाग्निषु।।9।।

देवी–दिट्ठिआ अपरिक्खदाराहणेण अज्जो बड्ढइ। (दिष्ट्यापरिक्षताराधनेनार्यो वर्धते।)

गणदासः–देवी परिग्रह एव मे वृद्धिहेतुः [विदूषकं विलोक्य।] गौतम वदेदानीं यत्तेमनसिवर्तते।

विदूषकः–पढमोवदेसदंसणे पढमं बम्हणस्स पूजा कादव्वा। सा णं वो विसुमरिदा। (प्रथमोपदेशदर्शने प्रथमं ब्राह्मणस्य पूजा कर्त्तव्या। सा ननु वो विस्मृता।)

परिव्राजिका–अहो! प्रयोग्याभ्यन्तरः प्रश्नः।

[सर्वे प्रहसिताः मालविका स्मितं करोति।]

राजा–(आत्मगतम्) उपात्तसारश्चक्षुषा मे स्वविषयः यदनेन–

स्मयमानमायताक्ष्याः किञ्चदिभिव्यक्तदशनशोभि मुखम्।
असमग्रलक्ष्यकेसरमुच्छ्वसदिव पङ्कजं दृष्टम्।।10।।

थीं और इनके नृत्य ने भी हमें प्रेम में मग्न कर दिया; क्योंकि ताल के साथ होने वाले अभिनय में अनेक प्रकार से अंग चलाकर जो भाव दिखाए जा रहे थे वे ऐसे आकर्षक थे कि मन किसी ओर जाने ही नहीं पाता था।।8।।

गणदास–देव! आप इसे कैसा मानते हैं?

राजा–इसे देखकर तो हमें अपने पक्ष का अभिमान कम होने लगा है।

गणदास–आज मैं सच्चा नृत्यकाल का पण्डित हुआ हूँ, क्योंकि जैसे आग में डालने से सोना काला नहीं पड़ता वैसे ही जिस शिक्षक के सिखाने में किसी प्रकार की भूल न दिखाई पड़े उसे ही सच्ची शिक्षा कहते हैं।।9।।

देवी–अपने परीक्षकों को सन्तुष्ट करने के लिये आपको बधाई है।

गणदास–देवी की कृपा से ही मुझे यह यश मिला है। (विदूषक को देखकर) गौमत! अब आप भी अपने मन की बात कह डालिए।

विदूषक–जब पहले-पहल अपनी सिखाई हुई विद्या लोगों के आगे दिखाई जाती है, तो सबसे पहले ब्राह्मण की पूजा करनी चाहिए। वह तो आप लोग भूल ही गए।

परिव्राजिका–वाह, क्या नाट्यकला के भीतर की बात पूछी है।

[सब हँसते हैं, मालविका मुस्कराती है।]

राजा–(मन ही मन) मेरी आँखों को तो चाही हुई वस्तु देखने को मिल गई। क्योंकि आज मेरी आँखों को इस बड़े-बड़े नेत्रों वाली के मुसकराते हुए उस मुख का दर्शन मिल गया है, जिसमें कुछ-कुछ दाँत झलक रहे थे जो उस खिलते हुए, कमल के समान जान पड़ता है, जिसमें केसर पूरे-पूरे न दिखाई दे रहे हों।।10।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणदासः—महाब्राह्मण न खलु प्रथमं नेपथ्यदर्शनमिदम्। अन्यथा कथं त्वां दक्षिणीयं नार्चयिष्यामः।

विदूषकः—मए णाम सुक्खधणगज्जिदे अन्तरिक्खे जलपाणं इच्छिदा चादआइदम्। अहवा पण्डितसंतोसपच्चआ णं मूढा जादी। जदि अत्तहोदीए सोहणं भणिदं तदो इमं से पारितोसिअं पअच्छामि। (मया नाम शुष्कघनगर्जितेऽन्तरिक्षे जलपानमिच्छता चातकायितम्। अथवा पण्डितसन्तोषप्रत्यया ननु मूढजातिः यतोऽत्रभवत्या शोभनं भणितं तत इदं ते पारितोषिकं प्रयच्छामि।)

[इति राज्ञो हस्तात्कटकमाकर्षति।]

देवी—चिट्ठदाव। गुणन्तरं अजाणन्ती किणिमित्तं तुम आहरणं देसि। (तिष्ठतावत। गुणान्तरमजानन् किंनिमित्तं त्वमाभरणं ददासि।)

विदूषकः—परकेरअंति करिअ। (परकीयमिति कृत्वा।)

देवी—[आचार्यं विलोक्य।] **अज्जगणदास! ण दंसिदोवदेसा दे सिस्सा।** (आर्य गणदास! ननु दर्शितोपदेशा ते शिष्या।]

गणदासः—वत्से! एहि गच्छाव इदानीम्।

[सहाचार्येण निष्क्रान्ता मालविका।]

विदूषकः—[जनान्तिकम्] एत्तिओ मे मदिविहवो भवन्तं सेविदुं। [एतावान्मे मतिविभवो भवन्तं सेवितुम्।]

राजा—अलमलं परिच्छेदेन। अहं हि—

गणदास—अरे ब्राह्मण देवता! हम लोग पहली बार तो नाटक दिखा नहीं रहे हैं। ऐसा होता, तो तुम्हारे जैसे भेंट-पूजा पर जाने वाले ब्राह्मण की हम अच्छी पूजा करते।

विदूषक—तो क्या मैं कोरे गरजने वाले बादलों से प्यास मिटाने की आशा करने वाले पपीहा ही बना रह गया? पर भाई! हमारे जैसे मूर्खों की तो ऐसी बात है कि यदि पण्डितों को सन्तोष हुआ तो समझो हमें भी सन्तोष हो गया। जब भगवती कौशिकी ने इसे सुन्दर बता दिया है, तो लाओ मैं भी तुम्हें यह पारितोषिक दे डालता हूँ [राजा के हाथ से कंगन निकालता है।]

देवी—ठहरो। दूसरे का अभिनय बिना देखे तुम अभी से इसे आभूषण क्यों दे हो?

विदूषक—दूसरे का है न, यही समझकर दे डाल रहा हूँ।

देवी—(आचार्य को देखकर) आपकी शिष्या अपना अभिनय दिखा चुकी।

गणदास—आओ वत्स! अब हम लोग चलें।

[आचार्य के साथ मालविका चली जाती है।]

विदूषक—(अलग राजा से) जहाँ तक मेरी बुद्धि की पहुँच थी वहाँ तक तो मैंने आपका काम कर डाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग्यास्तमयमिवाक्ष्णोर्हृदयस्य महोत्सवावसानमिव ।
द्वारपिधानमिव धृतेर्मन्ये तस्यास्तिरस्करिणीम् ।। 11 ।।

विदूषकः—[जनान्तिकम्] दलिद्दो विअ आदुरो वेज्जेण ओसदं दीअमाणं इच्छसि (दरिद्र इवातुरो वैद्येनौषधं दीयमानमिच्छसि।)

(प्रविश्य)

हरदत्तः—देव! मदीयमिदानीं प्रयोगमवलोकयितुं क्रियतां प्रसादः।

राजा—[आत्मगतम्] अवसितो दर्शनार्थः [दाक्षिण्यमवलम्ब्य प्रकाशम्] [ननु पर्युत्सुका एव वयम्।

हरदत्तः—अनुगृहीतोऽस्मि।

वैतालिकः—जयतु जयतु देवः। उपारूढो मध्याह्नः। तथाहि—

पत्रच्छायासु हंसा मुकुलितनयना दीर्घिकापद्मिनीनां
सौधान्यत्यर्थतापाद्वलभिपरिचयद्वेषिपारावतानि ।
बिन्दुक्षेपान्पिपासुः परिसरति शिखी भ्रान्तिमद्वारियन्त्रं
सर्वैरुस्रैः समग्रैस्त्वमिव नृपगुणैर्दीप्यते सप्तसप्तिः ।। 12 ।।

राजा—बहुत ढोंग न रचो। उसका पर्दे के पीछे छिपाना मुझे ऐसा लग रहा है मानो मेरी आँखों का भाग फूट गया हो, हृदय का हुलास ठंडा पड़ गया हो और धीरज पर ताला लग गया हो।।11।।

विदूषक—(अलग) तो क्या बिना पैसे वाले रोगी के समान यह चाहते हो कि वैद्य ही आपको अपने पास से औषध भी दे दे।

हरदत्त—(आकर) देव! अब मेरा सिखाया हुआ अभिनय भी देखने की कृपा कीजिएगा।

राजा—(मन ही मन) जो देखना था वह तो देख चुके। (उदारता दिखाने के लिये प्रकट) हाँ-हाँ हम लोग तो देखने को उत्सुक बैठे हैं।

हरदत्त—बड़ी कृपा है मुझपर।

(नेपथ्य में)

वैतालिक—जय हो, देव की जय हो। दोपहर हो गयी है, क्योंकि बावड़ियों में कमल की पंखुडियों की छाया में हंस आँख मूंदकर विश्राम कर रहे हैं। धूप से भवन ऐसा तप गया है कि छज्जों पर कबूतर तक नहीं बैठ रहे हैं। चलते हुए रहट से उछलती हुई पानी की बूँदे पीने के लिये मोर उसके चारों ओर चक्कर काट रहे हैं और सूर्य अपनी सब किरणें लेकर उसी प्रकार चमक रहा है ... ।।12।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—अविहा अविहा। अम्हाणं उण भोअणवेला उवठ्ठिदा। अत्तभवदो उइदवेलादिक्कमे चिइच्छआ दोसं उदाहरन्ति। [हरदत्तं विलोक्य] हरदत्त! किं दाणिं भणसि। (अविधा अविधा। अस्माकं पुनर्भोजनवेलोपस्थिता। अत्रभवत उचितवेलातिक्रमे चिकित्सका दोषमुदाहरन्ति। हरदत्त! किमिदानीं भणमि।)

हरदत्तः—अस्ति वचनस्यान्यस्यावकाशोऽत्र।

राजा—तेन हि त्वदीयमुपदेशं श्वोवयं द्रक्ष्यामः विरमतु भवान्।

हरदत्तः—यदाज्ञापयति देवः। [इति निष्क्रान्तः।]

देवीः—णिव्वठ्ठेदु अज्जउत्तो मज्जणविहिम् (निर्वर्तयत्वार्यपुत्रो मज्जनविधिम्।)

विदूषक—भोदि विसेसेण पाणभोअणं तुवरावेहि। (भवति विशेषेण पानभोजनंत्वरय।)

परिव्राजिका—[उत्थाय] स्वस्ति भवते। [इति सपरिजनया देव्या सह निष्क्रान्ता।]

विदूषकः—भो वअस्स! ण केवलं रुवे सिप्पे वि अदुदीआ मालविआ।

(भो वयस्य! न केवलं रूपे शिल्पेऽप्यद्वितीया मालविका।)

राजा—वयस्य!

अव्याजसुन्दरीं तां विधानेन ललितेन योजयता।
परिकल्पितो विधात्रा बाणः कामस्य विषदग्धः।। 13।।

किं बहुना। सखे। चिन्तयितव्योऽस्मि।

विदूषक—अरे रे! अब तो हम-लोगों के भोजन का समय हो गया है। वैद्य का कहना है कि समय पर भोजन न करने से बड़ी हानि होती है। कहो हरदत्त! क्या कहते हो?

हरदत्त—अब कुछ कहने की बात ही कहाँ रह जाती है?

राजा—तो अब आपका प्रदर्शन हम लोग कल देखेंगे। आप जाकर विश्राम करें।

हरदत्त—जैसी देव की आज्ञा। [चला जाता है।]

देवी—तो आर्यपुत्र! चलकर अब नहा-धो लीजिये।

विदूषक—देवी! अब झटपट भोजन-पानी का कुछ बढ़िया प्रबन्ध कराइए।

परिव्राजिका—(उठकर) आपका कल्याण हो। [सेविकाओं और रानी के साथ चली जाती है।]

विदूषक—वयस्य! सुन्दरता में ही नहीं कला में भी मालविका अद्वितीय ही है।

राजा—सच पूछो वयस्य तो विधाता ने इस सहज सुन्दरी मालविका को ललित कला का ज्ञान क्या दिया मानो उसने इसके हाथ में कामदेव का विष बुझा बाण दे दिया हो।।13।। क्या कहूँ मित्र! अब तुम जाकर मेरी कुछ चिन्ता करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—भवदा वि अहं। दिढं विपणिकन्दू विअ मे उअरब्भन्तरं दज्झइ। (भवता प्यहम्। दृढं विपणिकन्दुरिव मे उदराभ्यन्तरं दह्यते।)

राजा—एवमेव भवान्सुहृदर्थेऽपि त्वरताम्।

विदूषकः—गहीददक्खिणोम्हि। किं तु मेहावलीणिरुद्धा जोण्हा विअ पराहीणदंसणा तत्तहोदी मालविआ। भवं वि सूणापरिसरचरो विअ गिद्धो अमिसलोलुओ भीरुओ अ। अच्चंतादुरो विअ कज्जसिद्धिं पत्थन्तो मे रोअसि। (गृहीतदक्षिणोऽस्मि। किं तु मेघावलीनिरुद्धा ज्योत्स्नेव पराधीनदर्शना तत्रभवती मालविका। भवानपि सूनापरिसरचर इव गृध्र आमिषलोलुपो भीरुकश्च। अत्यन्तातुर इव कार्यसिद्धिं प्रार्थयमानो मे रोचसे।)

राजा—कथमनातुरो भविष्यामि—

सर्वान्तःपुरवनिताव्यापारप्रतिनिवृत्तहृदयस्य।
सा वामलोचना मे स्नेहस्यैकायनीभूता।। 14।।

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे।]

।। इति द्वितीयोऽङ्कः।।

विदूषक—आप मेरी चिन्ता कीजिए। मेरा पेट इस समय हलवाई की कहाड़ी की भाँति बड़ा जला जा रहा है।

राजा—तुम भी अब अपने मित्र के लिये कोई उपाय शीघ्र ही सोच निकालो।

विदूषक—उसके लिये तो मैं आपसे पहले ही दक्षिणा ले चुका हूँ, पर गड़बड़ तो यह है कि बादलों में छिपी हुई चाँदनी के समान मालविका जी का दर्शन भी तो दूसरों के हाथ में है। इधर आप माँस बेचने वाले व्याध के घर पर मँडराने वाले गिद्ध के समान उस पर ताक भी लगाए बैठे हैं और डरते भी हैं। इतनी घबराहट के साथ मुझे काम करने को कहते हुए आप बड़े अच्छे लगते हैं।

राजा--बताओ, घबराहट क्यों न हो? वह तिरछी चितवन वाली मेरे हृदय में ऐसी आ बसी है कि रनिवास की सब रानियों से मेरा मन एक दम उचट गया है।।14।।

[सब चले जाते हैं।]

।। दूसरा अंक समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीयोऽङ्कः

[ततः प्रविशति परिव्राजिकायाः परिचारिका समाहितिका।]

समाहितिका–आणत्तम्हि भअवदीए–समाहिदिए! देवस्स उवावणत्थं बीअऊरअं गेण्हिअ आअच्छ त्ति। ता जाब पमदवणपालिअं महुअरिअं अण्णेसामि। [परिक्रम्यावालोक्य] एसा तवणीआसोअं ओलोअन्ती महुअरिआ चिट्ठदि। ता जाव णं उपसप्पामि। (आज्ञप्तास्मि भगवत्या–समाहितिके! देवस्योपवनस्थं बीजपूरकं गृहीत्वागच्छेति। तद्यावत्प्रमदवनपालिकां मधुरिकामन्विष्यामि। एषा तपनीयाशोकमवलोकयन्ती मधुकरिका तिष्ठति। तद्यावेदनामुपसर्पामि।)

[ततः प्रविशत्युद्यानपालिका।]

समाहितिका–[उपसृत्य] महुअरिए। अवि सुहो दे उज्जाणव्वावारो। (मधुकरिके! अपि सुखस्त उद्यानव्यापारः।)

मधुकरिका–अम्हो समाहिदिआ। सहि सागदं दे। (अहो समाहितिका। सखि, स्वागतं ते।)

समाहितिका–हला भगवदी आणवेदि। अरित्तपाणिणा अम्हारिसजणेण तत्तहोदी देवी देक्खिदव्वा। ता बीअपूरएण सुस्सूसिदूं इच्छामि त्ति। (सखि भगवत्याज्ञापयति। अरिक्तपाणिनास्मादृशजनेन तत्रभवती देवी द्रष्ट्व्या। तद्बीजपूरकेण शुश्रूषितुमिच्छामीति।)

तीसरा अङ्क

[परिव्राजिका की दासी समाहितिका आती है।]

समाहितिका–भगवती कौशिकी ने मुझे आज्ञा दी है कि समाहितिका! जाओ, महाराज के उपवन से एक बिजौरिया नीबू तो ले आओ। तो चलूँ प्रमदवन की मालिन मधुकरिका का पता लगाऊँ! [घूमकर देखती है।] अरे, सुनहरे अशोक की ओर टकटकी लगाए यह क्यों खड़ी है? तो चलूँ इसके पास।

[मालिन मधुकरिका आती है।]

समाहितिका–[पास जाकर] कहो मधुकरिका! तुम्हारे उपवन का काम तो ठीक-ठीक चल रहा है?

मधुकरिका–अरे! तुम हो समाहितिका! आओ सखी, आओ, तुम्हारा स्वागत है।

समाहितिका–सखी! भगवती कौशिकी ने कहा है कि हमें छूछे हाथ महारानी से मिलने नहीं जाना चाहिए, इसलिये नीबू ही भेंट करके उनसे मिल लूँगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुकरिका—णं संणिहिदं बीजपूरअं। कहेहि दाव अण्णोण्णसंघरिसिदाणं णट्टाअरिआणं उवदेसं देक्खिअ कदरो भअवदीए पसंसिदो। (ननु संनिहितं बीजपूरकम्। कथय तावदन्योन्यसंघर्षितयो र्नाट्याचार्ययोरुपदेशं दृष्ट्वा कतरो भगवत्या प्रशंसितः।)

समाहितिका—दुवे वि किल आगमिणा पओअणिउणा अ। किंतु सिस्साए मालविआए गुणबिसेसेण गणदासस्स उवदेशो पसंसिदो। (द्वावपि किलागमिनौ प्रयोगनिपुणौ च। किंतु शिष्याया मालविकाया गुणविशेषेण गणदासस्योपदेशः प्रशंसितः।)

मधुकरिका—अह मालविआगदं कौलीणं कीरिसं सुणीअदि। (अथ मालविकागतं कौलीनं कीदृशं श्रूयते।)

समाहितिका—बाढं किल तस्सि साहिलासो भट्टा। कितु केवलं देवीए धारिणीए चित्तं रक्खन्तो अत्तणो पहुत्तणं दंसेदि। मालविआ वि इमेसु विअसेसु अणुहूदमुत्ता विअ मालदीमाला मिलाणा लक्खीअदि। अदो अवरं ण जाणे। विसज्जेहि मं। (बाढं किल तस्यां साभिलाषो भर्ता। किन्तु केवलं देव्या धारिण्याश्चित्तं रक्षन्नात्मनः प्रभुत्वं दर्शयति। मालविकाप्येषु दिवसेष्वनुभूतमुक्तेव मालतीमाला म्लाना लक्ष्यते। अतः परं न जाने। विसृज माम्।)

मधुकरिका—एदं साहावलम्बिदं बीअपूरअं गेण्ह। (एतच्छाखावलम्बितं बीजपूरकं गृहाण।)

समाहितिका—तह। [इति नाट्येन बीजपूरकं गृहीत्वा] हला तुमं वि अदो पेसलदरं साहुजणसुस्सूसाए फलं पावेहि। (तथा। सखि त्वमप्यतः पेशलतरं साधूजनशुश्रूषायाः फलं प्राप्नुहि।)

[इति प्रस्थिता।]

मधुकरिका—लो, नीबू तो पास ही है। हाँ, यह तो बताओ कि वह जो दोनों नाट्याचार्यों का झगड़ा चल रहा था, उनमें से भगवती ने किसे अच्छा बताया।

समाहितिका—यों तो दोनों ही शास्त्र के पण्डित और अभिनयकला में चतुर हैं, पर गणदास ने अपनी शिष्या मालविका को जैसा अच्छा सिखाया है, उसे देख लेने पर गणदास ही आज दोनों में अच्छे ठहराए गए हैं।

मधुकरिका—और कहो, ये मालविका के सम्बन्ध में कैसी-कैसी बातें सुनने में आ रही हैं?

समाहितिका—हाँ, महाराज उसे चाहने तो बहुत लग गए हैं, पर रानी धारिणी का मन रखने के लिये वे खुलकर प्रेम नहीं दिखाते। इधर इन दिनों मालविका भी पहनकर उतारी हुई मालती के माला के समान कुम्लाई जा रही है। बस इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानती हूँ। अच्छा तो छुट्टी दो।

मधुकरिका—हाँ, लो, यह डाल पर झूलता हुआ नीबू लेती जाओ।

समाहितिका—अच्छा, [नीबू तोड़ने का अभिनय करके] भगवान् करे सखी! साधुओं की सेवा करने का तुम्हें इससे भी अच्छा फल मिले। [चलती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुकरिका—हला समं जेव्व गच्छम्ह। अहं वि इमस्स चिराअमाणकुसुमोग्गमस्स तवणीआसोअस्स दोहलणिमित्तं देवीए णिवेदेमि। (सखि! सममेव गच्छावः अहमप्यस्य चिरायमाणकुसुमोद्गमस्य तपनीयाशोकस्य दोहदनिमित्तं देव्यै निवेदयामि।)

समाहितिका—जुज्जइ। अहिआरो क्खु तुइ। (युज्यते। अधिकारः खलु तव।)

[इति निष्क्रान्ते]

।। इति प्रवेशकः।।

[ततः प्रविशति कामयमानावस्थो राजा विदूषकश्च।]

राजा—[आत्मानं विलोक्य।]

शरीरं क्षामं स्यादसति दयितालिङ्गनसुखे
भवेत्सास्रं चक्षुः क्षणमपि न सा दृश्यत इति।
तया सारङ्गाक्ष्या त्वमसि न कदाचिद्विरहितं
प्रसक्ते निर्वाणे हृदय परितापं व्रजसि किम्।। 1।।

विदूषकः—अलं भवदो धीरं उज्झिअ परिदेविदेण दिट्ठा मए तत्तहोदीए मालविआए पिअसही बउलावलिआ। सुणविदा आ अत्थं जो भवदा संदिट्ठो। (अलं भवतो धीरतामुज्झित्वा परिदेवितेन। दृष्टा मया तत्रभवत्या मालविकायाः प्रियसखी बकुलावलिका (श्राविता चार्थं यो भवता संदिष्टः।)

राजा—ततः किमुक्तवती।

मधुकरिका—चलो सखी! दोनों साथ ही चलें। मुझे भी चलकर महारानी जी से निवेदन करना है कि यह सुनहरा अशोक अभी तक फूल ही नहीं रहा है, इसके फूलने का कोई उपाय किया जाना चाहिए।

समाहितिका—ठीक ही है, तुम न कहोगी तो कौन कहेगा?

[दोनों चली जाती हैं।]

।। प्रवेशक समाप्त।।

[विदूषक के साथ काम-पीड़ित अवस्था में राजा बैठे दिखाई पड़ते हैं।]

राजा—(अपनी ओर देखकर) प्यारी को छाती से न लगा पाने से मेरे शरीर का सूखना भी ठीक है और उसे पल भर के लिये भी देख न पाने की चिन्ता में आँखों का डबडबाए रहना भी ठीक है, पर मेरे हृदय! यह तो बताओ कि उस हिरण की आँखों वाली और मेरा जी ठण्डा करने वाली प्यारी के सदा पास रहते हुए भी तुम क्यों इस प्रकार जले जा रहे हो।।1।।

विदूषक—यह अधीर होकर रोना-कलपना छोड़िए। मैं मालविका की प्यारी सखी बकुलावलिका से मिला था और मैंने आपका पूरा संदेश सुना भी दिया है।

राजा—इस पर वह क्या बोली?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—विण्णवेहि भट्टारअम्। अणुगहीदम्हि इमिणा णिओएण। किदु सा तवस्मिणी देवीए अहिअं रक्खन्तीए णाअरक्खिदो विअ णिही ण सुहं समासादइदव्वा। तहवि जइस्सं।

(विज्ञापय भट्टारकम्। अनुगृहीतास्म्यनेन नियोगेन। किन्तु सा तपस्विनी देव्याधिकं रक्षन्त्या नागरक्षित इव निधिर्न सुखं समासादयितव्या। तथापि यतिष्ये।)

राजा—भगवन् संकल्पयोने! प्रतिवन्धवत्स्वपि विषयेष्वभिनिवेश्य किं तथा प्रहरसि यथा जनोऽयं न कालान्तरक्षमो भवति। [सविस्मयम्।]

क्व रुजा हृदयप्रमाथिनी क्व च ते विश्वसनीयमायुधम्।
मृदु तीक्ष्णतरं यदुच्यते तदिदं मन्मथ दृश्यते त्वयि।।2।।

विदूषकः—णं भणामि तस्सिं साहणिज्जे किदो मए उवाओवक्खेओ। ता पज्जवत्थावेदु भवं अप्पाण। (ननु भणामि तस्मिन्साधनीये कार्ये कृतो मयोपायोपक्षेपः। तत्पर्यवस्थापयतु भवानात्मानम्।)

राजा—अथेमं दिवसशेषमुचितव्यापारविमुखेन चेतसा क्व न खलु यापयामि।

विदूषकः—अज्ज एव्व पढमादारसुहआणि रत्तकुरवआणि उवाअणं पेसिअ णववसन्तावदार व्वदेसेण इरावदीए णिउणिआमुहेण पत्थिदो भवं—इच्छामि अज्जत्तेण सह दोलाहिरोहणं अणुहविदुं त्ति। भवदा वि से पडिण्णादं। ता पमदवणं एव्व गच्छम्ह। (अद्यैव प्रथमावतारसुभगानि रक्तकुरबकाण्युपायनं प्रेष्य नववसन्तावतारव्यप-देशेनेरावत्या निपुणिकामुखेन प्रार्थितो भवान्-इच्छाम्यार्यपुत्रेण सह दोलाधिरोहणमनुभवितुमिति। भवताप्यस्यै प्रतिज्ञातम्। तत्प्रमदवनमेव गच्छावः।)

विदूषक—उसने कहा—स्वामी से निवेदन कर देना कि यह काम सौंपकर स्वामी ने मुझपर बड़ी कृपा की है पर वह बेचारी महारानी की वैसी ही कड़ी देख-रेख में है, जैसे साँप की देख-रेख में कोई निधि हो। इसलिये वह सहज में हाथ लगने वाली नहीं है, फिर भी मैं प्रयत्न करूँगी!

राजा—हे भगवान् कामदेव! पग-पग पर बाधाओं से भरे हुए कामों में मुझे फँसाकर तुम मुझपर ऐसी चोटें क्यों किए जा रहे हो कि समय भी काटे न कटे। [आश्चर्य के साथ] हे कामदेव! कहाँ तो एक ओर हृदय को ढाढ़स देने वाला तुम्हारा कोमल फूलों का धनुष और कहाँ यह हृदय को भी मथ डालने वाला प्रेम का रोग। यह कहावत तुमपर तो पूरी-पूरी घटती दिखाई दे रही है कि जो जितने कोमल दिखाई पड़ते हैं, वे उतने ही कठोर होते हैं।।2।।

विदूषक—मैं कह तो रहा हूँ कि आपका मनोरथ पूरा करने का मैं सब उपाय कर चुका हूँ, इसलिये आप चिन्ता न कीजिए।

राजा—अपने किसी काम में तो मेरा मन ही नहीं लग रहा है, इसलिये यह तो बताओ कि आज का यह बचा हुआ दिन बिताया कहाँ जाय?

विदूषक—नये खिले हुए सुहावने लाल कुरबक के फूल आपके पास भेंट में भेजकर रानी इरावती ने आज ही निपुणिका के मुँह से नये वसन्त के आने का बहाना लेकर कहलाया है कि मैं आज आर्यपुत्र के साथ झूला झूलना चाहती हूँ, और आपने भी उनकी बात मान ली है; इसलिये चलिए उधर प्रमदवन की ओर ही चला जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—न क्षममिदम्।

विदूषकः—कहं विअ। (कथमिव।)

राजा—वयस्यक निसर्गनिपुणाः स्त्रियः। कथमन्यसंक्रान्तहृदयमुपलालयन्तमपि ते सखी न मां लक्षयिष्यति। अतः पश्यामि—

उचितः प्रणयो वरं विहन्तुं बहवः खण्डनहेतवो हि दृष्टाः।
उपचारविधिर्मनस्विनीनां न तु पूर्वाभ्यधिकोऽपि भावशून्यः।। 3।।

विदूषकः—णारिहदि भवं अन्तेउरट्ठिदं दक्खिण्णं एक्कपदे पिट्ठदो कादुम्। (नार्हति भवानन्तःपुरस्थितं दाक्षिण्यमेकपदे पृष्ठतः कर्तुम्।)

राजा—[विचिन्त्य।] तेन हि प्रमदवनमार्गमादेशय।

विदूषकः—इदो इदो भवं। (इत इतो भवान्।)

[उभौ परिक्रामतः।]

विदूषकः—णं एदं पमदवणं पवणबलचलाहिं पल्लवङ्गुलीहिं तुवरेदि विअ भवन्तं पवेसिदुं। (नन्वेतत्प्रमदवनं पवनबलचलाभिः पल्लवाङ्गुलीभिस्त्वरयतीव भवन्तं प्रवेष्टुम्।)

राजा—[स्पर्शं रूपयित्वा] अभिजातः खलु वसन्तः।। सखे पश्य—

उन्मत्तानां श्रवणसुभगैः कूजितैः कोकिलानां
सानुक्रोशं मनसिजरुजः सह्यतां पृच्छतेव।
अङ्गे चूतप्रसवसुरभिर्दक्षिणो मारुतो मे
सान्द्रस्पर्शः करतल इव व्यापृतो माधवेन।। 4।।

राजा—पर वहाँ चलना ठीक नहीं होगा।

विदूषक—क्यों?

राजा—देखो मित्र! स्त्रियाँ स्वभाव से ही बड़ी चालाक होती हैं। वहाँ चलकर यदि मैं उसी के मन का काम करने लगूँ तो क्या वह भाँप न लेगी कि मेरा मन कहीं और उलझा हुआ है? इसलिये मैं समझता हूँ कि बहुत से इधर-उधर के बहाने बनाकर प्रेम की उचित बात भी टाल जाना अच्छा है, पर चतुर स्त्रियों के आगे बनावटी प्रेम दिखाना अच्छा नहीं है।।3।।

विदूषक—पर इस प्रकार रनिवास की रानियों के प्रेम का एकाएक निरादर करना भी तो ठीक नहीं होगा।

राजा—[सोचकर] तो चलो। प्रमदवन की ओर ही ले चलो।

विदूषक—इधर से आइए देव! इधर से [दोनों घूमते हैं]

विदूषक—लीजिए, यह रहा प्रमदवन। देखिए वायु से हिलते हुए पत्तों की उँगलियों से यह प्रमदवन मानो आपको बुला रहा है कि झटपट भीतर चले आइए।

राजा—[वायु लगने के सुख का नाट्य करते हुए] सचमुच वसन्त आ पहुँचा है। देखो मित्र! मतवाले कोकिलों की, कान को सुहाने वाली कूकों में मानो वसन्त ऋतु मुझपर बड़ी दया दिखाते हुए यह पूछ रहा हो कि क्यों प्रेम की पीड़ा सही जा रही है? इधर खिली हुई आम की मञ्जरियों की गन्ध में बसा हुआ दक्षिणपवन मेरे शरीर से लगता हुआ ऐसा जान पड़ता है मानो वसन्त ने अपना अत्यन्त सुख देने वाला हाथ मेरे ऊपर रख दिया हो।।4।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—पविस णिव्वुदिलाहाअ। (प्रविश निर्वृतिलाभाय।)

[उभौ प्रविशतः।]

विदूषकः—अवहाणेण दिट्ठिं देहि। एदं क्खु भवन्तं विअ विलोइदुकामाए पमदवणलच्छीए जुवदीवेसलज्जावइत्तिअं वसन्तकुसुमणेवत्थं गहीदं। (आवधानेन दृष्टिं देहि। एतत्खलु भवन्तमिव विलोभयितुकामया प्रमदवनलक्ष्म्या युवतिवेषलज्जापयितृकं वसन्तकुसुमनेपथ्यं गृहीतम्।)

राजा—ननु विस्मयादवलोकयामि—

रक्ताशोकरुचा विशेषितगुणो विम्बाधरालक्तकः
प्रत्याख्यातविशेषकं कुरवकं श्यामावदातारुणम्।
आक्रान्ता तिलकक्रिया च तिलकैर्लग्नद्विरेफाञ्जनैः
सावज्ञेव मुखप्रसाधनविधौ श्रीर्माधवी योषिताम्।।5।।

[उभौ नाट्येनोद्यानशोभां निर्वर्णयतः।]

[ततः प्रविशति पर्युत्सुका मालविका।]

मालविका—अविण्णादहिअअं भट्टारअं अहिलसन्दी अप्पणो वि दाव लज्जेमि। कुदो विहवो सिणिद्धस्स सहीजणस्स इमं वुत्तन्तं आचक्खिदुं। ण जाणे अप्पडिआरगरुअं वेअणं केतिअं कालं मअणो मं णइस्सदि त्ति। [इति स्मृतिमभिनीय]

विदूषक—चलिए, भीतर चलकर आनन्द लीजिए।

[दोनों प्रवेश करते हैं।]

विदूषक—तनिक ध्यान से तो देखिए! इस प्रमदवन की लक्ष्मी ने आपको लुभाने के लिये ही युवतियों के साज-शृंगार को भी लजाने वाला यह वसंत के फूलों का शृंगार कर लिया है।

राजा—मैं भी [आश्चर्य के साथ] आँखें फाड़कर देख रहा हूँ कि—इस लाल अशोक की ललाई ने स्त्रियों के बिम्बाधरों की ललाई को लज्जित कर दिया है। काले, उजले और लाल रंगों के कुरबक के फूलों ने स्त्रियों के मुखों पर की हुई चित्रकारी फीकी कर दी है। काले भौंरों से लिपटे हुए तिलक के फूलों ने स्त्रियों के माथे के तिलक को नीचा दिखा दिया है। ऐसा जान पड़ता है मानो वसन्त की शोभा आज स्त्रियों के मुख के साज शृंगार का निरादर करने पर तुली हुई हो।।5।।

[दोनों उस उपवन की शोभा देखने का नाट्य करते हैं।]

[बड़ी चिन्ता में पड़ी हुई मालविका आती है।]

मालविका—जिस प्रियतम के मन की मैं थाह नहीं पा सकी हूँ, उससे प्यार करके मुझे अपने ऊपर बड़ी लाज लग रही है। अपनी प्यारी सखियों से भी यह बात मैं नहीं कह पा रही हूँ, वह प्रेम की पीड़ा न जाने कामदेव मुझे कब तक देता रहेगा जिसकी कोई औषधि नहीं है। [दो चार पग चलकर] अरे! मैं कहाँ के लिये चली थी? [स्मरण करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालविए गोदमचापलादो दोलापरिब्भट्ठाए सरुजौ मह चलणे। तुमं दाव गदुअ आदिट्ठम्हि देवीए–तवणीआसोअस्स दोहलं णिवट्टेहित्ति। जइ सो पञ्चरत्तब्भन्तरे कुसुमं दंसेदि तदो अहं अहिलासपूरइत्तअं पसादं दावइस्सं त्ति। ता जाव णिओअभूमिं पढमं गदा होमि दाव अणुपदं मह चलणलंकारहत्थाए बउलावलिआए आअन्दव्वं। ता परिदेवइस्सं ताव वीसद्धं मुहुत्तअं। (अविज्ञातहृदयं भर्तारमभिलषन्त्यात्मनोऽपि तावल्लज्जे। कुतो विभवः स्निग्धस्य सखीजनस्येमं वृत्तान्तमाख्यातुम्। न जानेऽप्रतिकारगुरुकां वेदनां कियन्त कालं मदनो मां नेष्यतीति। आ कुत्र खलु प्रस्थितास्मि। आदिष्टास्मि देव्या–मालविके, के गौतमचापलाद्दोलापरिभ्रष्टायाः सरुजौ मम चरणौ। त्वं तावद्गत्वा तपनीयाशोकस्य दोहदं निर्वर्तयेति। यद्यसौ पञ्चरात्राभ्यन्तरे कुसुमं दर्शयति ततोऽहमभिलाषपूरयितृकं प्रसादं दापयिष्यामीति। तद्यावन्नियोगभूमि प्रथम गता भवामि तावदनुपदं मम चरणालङ्कारहस्तया बकुलावलिकयाऽगन्तव्यम्। तत्परिदेवयिष्ये तावद्विस्रब्धं मुहुर्तकम्।

[इति परिक्रामति।]

विदूषकः–[दृष्ट्वा] ही ही। वअस्स! एदं क्खु सीहुपाणुवेजिदस्स मच्छण्डिआ उवणदा। (आश्चर्यमाश्चर्यम्। वयस्य! एतत्खलु सीधुपानोद्वेजितस्य मत्स्यण्डिकोपनता।)

राजा–अये! किमेतत्।

विदूषकः–एसा णादिपरिक्खिदवेसा असुअवअणाए आइणी मालविआ अदूरे वट्टदि (एषा नातिपरिष्कृतवेषोत्सुकवदनैकाकिनी मालविकाऽदूरे वर्तते।)

राजा–[सहर्षम्] कथं मालविका।

विदूषकः–अह इं। (अथ किम्।)

का नाट्य करती हुई।] हाँ ठीक है। मुझसे देवी धारिणी ने कहा है कि–मालविका! गौमत के नटखटपन से मैं झूले से गिर पड़ी हूँ और मेरे दोनों पैरों में चोट आ गई है, इसलिये तुम्हीं जाकर सुनहरे अशोक के फूलने का उपाय कर आओ। यदि पाँच दिनों के भीतर वह फूल उठेगा तो तुम्हें मुँह माँगा पुरस्कार दूँगी। मैं वहाँ पहले से ही पहुँच जाती हूँ, क्योंकि बकुलावलिका भी मेरे पीछे-पीछे बिछुए लेकर आ रही होगी जब तक मैं अकेले जी भरकर रो भी लूँगी।

[घूमती है।]

विदूषक–[उसे देखकर] हिः हिः! कैसे अचरज की बात है कि मित्र! मदिरा से मतवाले मनुष्य और अधिक मतवाला बनाने वाली कच्ची खाँड़ भी आ पहुँची।

राजा–अरे कौन-सी वस्तु है?

विदूषक–यह क्या पास ही अधमैले कपड़े पहने मालविका अकेली उदास बैठी हुई है।

राजा–[प्रसन्न होकर] क्या मालविका है?

विदूषक–और क्या?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—शक्यमिदानीं जीवितमवलम्बयितुम्।

त्वदुपलभ्य समीपगतां प्रियां हृदयमुच्छ्वसितं मम विक्लवम्।
तरुवृतां पथिकस्य जलार्थिनः सरितमारसितादिव सारसात्।।6।।

अथ क्व तत्र भवती?

विदूषकः—एसा तरुराइमज्झादो णिक्कन्ता इदो ज्जेव्व परिवट्टन्ती दीसइ। (एषा तरुराजिमध्यान्निष्क्रान्तेत एव परिवर्तमाना दृश्यते।)

राजा—[विलोक्य सहर्षम्] वयस्य पश्याम्येनाम्—

विपुलं नितम्वदेशे मध्ये क्षामं समुन्नतं कुचयोः।
अत्यायतं नयनयोर्मम जीवितमेदायाति।।7।।

सखे! पूर्वस्मादतिमनोहरावस्थान्तरमुपारूढा तत्रभवती। तथा हि—

शरकाण्डपाडुगण्डस्थलेयमाभाति परिमिताभरणा।
माधवपरिणतपत्रा कतिपयकुसुमेव कुन्दलता।।8।।

विदूषकः—एसा वि भवं विअ मअणव्वाहिणा परिमिट्टा भविस्सदि। (एषापि भवानिव मदनव्याधिना परिमृष्टा भविष्यति।)

राजा—सौहार्दमेवं पश्यति।

मालविका—अअं सो ललिदसुउमालदोहलापेक्खी अगिहीदकुसुमणेवत्थो उक्कण्ठिदाए मह अणुकरेदि असोओ। जाव एदस्स पच्छाअसीदले सिलापट्टए णिसण्णा अप्पाणं विणोदेमि। (अयं स ललितसुकुमारदोहदापेक्षी अगृहीतकुसुमनेपथ्य उत्कण्ठिताया ममाऽनुकरोत्यशोकः। यावदस्य प्रच्छायशीतले शिलापट्टके निषण्णात्मानं विनोदयामि।)

राजा—तब समझो कि अब मेरे प्राण बच जायँगे। जैसे सारस का शब्द सुनकर प्यासे पथिक को भरोसा हो जाता है कि पेड़ की झुरमुट के पीछे कोई नदी होगी वैसे ही तुम्हारे मुँह से यह बात सुनकर मेरे व्याकुल मन को बड़ा धीरज मिला है कि मालविका पास ही है।।6।। अच्छा वह है कहाँ?

विदूषक—वह वृक्षों के बीच से होती हुई इधर ही आती दिखाई दे रही है।

राजा—[देखकर प्रसन्नता से] देख रहा हूँ मित्र! यह बड़े-बड़े नितम्बों वाली, पतली कमर वाली, उठे हुए स्तन वाली और बड़ी-बड़ी आँखों वाली मानो मेरी जान ही चली आ रही हो।।7।। इसे जैसा मैंने पहले देखा था, उससे कहीं बढ़कर सुन्दर तो यह अब लग रही है। और देखा—इने-गिने आभूषण पहने हुए और सरकंडे के समान पीले गालों वाली यह सुन्दरी वैसी ही दिखाई दे रही है जैसे वसंत में पके हुए पत्तों वाली किसी कुन्दलता में इने-गिने फूल बचे रह गए हों।।8।।

विदूषक—तो इन्हें भी आपके जैसा ही प्रेम का रोग लग गया होगा।

राजा—मित्रों को ऐसा ही सूझा करता है।

मालविका—फूलों की सजावट से सूना यह अशोक वृक्ष भी अपने मन की सुहावनी और प्यारी साध पूरी कराने के लिये मेरे ही समान अधीर हो रहा है, तो चलूँ तब तक इसी की ठंडी छाया के तले पत्थर की पटिया पर बैठकर जी बहलाऊँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—सुदं भवदा उक्कण्ठिदम्हि त्ति तत्तहोदी मन्तेदि। (श्रुतं भवता उत्कण्ठितास्मीति तत्रभवती मन्यत्रयति।)

राजा—नैतावता भवन्तं प्रसन्नतर्कं मन्ये। कुतः—

वोढा कुरबकरजसां किसलयपुटभेदशीकरानुगतः।
अनिमित्तोत्कण्ठामपि जनयति मनसो मलयवातः।। 9।।

[मालविकोपविष्टा]

राजा—सखे! इतस्तावदावां लतान्तरितौ भवावः।

विदूषकः—इरावदिं विअ अदूरे पेक्खामि। (इरावतीमिवादूरे प्रेक्षे।)

राजा—नहि कमलिनीं दृष्ट्वा ग्राहमवेक्षते मतङ्गजः। [इति विलोकयन्स्थितः।]

मालविका—हिअअ णिरवलम्बणादो अदिभूमिलङ्घिणो ते मणोरहादो विरम। किं मं आआसिअ। (हृदय! निरवलम्बनादतिभूमिलङ्घिनो मनोरथाद्विरम। किं मामायास्य।

[विदूषको राजानं वीक्षते।]

राजा—प्रिये! पश्य वामत्वं स्नेहस्य—

औत्सुक्यहेतुं विवृणोषि न त्वं तत्त्वावबोधैकफलो न तर्कः।
तथापि रम्भोरु करोमि लक्ष्यमात्मानमेषां परिदेवितानाम्।। 10।।

विदूषक—संपदं भवदो णिस्संसअं भविस्सदि। एसा अप्पिदमअणसंदेसा विवित्ते णं

विदूषक—सुना आपने? वे कह रही हैं कि मैं अधीर हो रही हूँ।

राजा—केवल इतनी-सी बात से मैं यह नहीं मान सकता कि तुम ठीक समझ गए हो; क्योंकि कुरबक के पराग में बसा हुआ और खिली हुई कोपलों से जल की बूँदें उड़ा ले जाने वाला मलय का पवन बिना कारण ही मन में चाह भर रहा है।।9।।

[मालविका बैठ जाती है।]

राजा—आओ मित्र! चलो, हम लोग भी लता के पीछे छिप चलें।

विदूषक—इरावती जी भी अब आ ही रही होंगी।

राजा—हाथी जब कमलिनी को देख लेता है, तब उसे जल में छिपे हुए घड़ियाल नहीं सूझते हैं। [देखता रहता है]

मालविका—अरे हृदय! तू ऐसी चाह क्यों करता है, जिस पर न तो अपना कोई वश ही है और न जहाँ तक अपनी पहुँच ही है। मुझे सताने में तुझे मिल क्या रहा है?

[विदूषक राजा की ओर देखता है।]

राजा—देखो प्यारी! प्रेम की उलटी चाल तो देखो। यद्यपि अभी तक तुमने अपनी व्याकुलता का कारण न तो खोलकर बताया और न अनुमान से ही मुझे तुम्हारे मन की ठीक-ठीक थाह लग पा रही है, फिर भी मैं तो यही समझ रहा हूँ कि मेरे ही लिये इतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बउलावसिआ उवठ्ठिदा। (सांप्रतं भवतो निःसंशयं भविष्यति। एषार्पितमदन-संदेशा विविक्ते ननु बकुलावलिकोपस्थिता।)

राजा—अपि स्मरेदसावस्मदभ्यर्थनाम्।

विदूषकः—किं दाणिं एसा दासीए दुहिता तुह गरुअं संदेसं विसुमरेदि। अहं दाव ण विसुमरेमि। (किमिदानीमेषा दास्या दुहिता तव गुरुकं संदेशं विस्मरति। अहं तावन्न विस्मरामि।)

[प्रविश्य चरणालङ्कारहस्ता बकुलावलिका।]

बकुलावलिका—अवि सुहं सहीए। (अपि सुखं सख्याः।)

मालविका—अम्हो बउलावलिआ उवठ्ठिदा। हहि साअदं दे। उवविस। (अहो बकुलावलिकोपस्थिता। सखि स्वागतं ते। उपविश।)

बकुलावलिका—[उपविश्य] हला तुमं दाणिं जोग्गदाए णिउत्ता। ता एक्कं दे चलणं उवणेहि जाव सालत्तअं सणूउरं उ करेमि। (सखि, त्वमिदानीं योग्यतया नियुक्ता। तस्मादेकं ते चरणमुपनय यावत्सालक्तकं सनूपुरं च करोमि।)

मालविका—[आत्मगतम्] हिअअ! अलं सुहिदाए उवट्ठिदो अअं विहवो। कहं दाणिंअत्ताणं मोचेअं। अहवा एदं एव्व मे मित्तुमण्डणं भविस्सदि। (हृदय! अलं सुखितया उपस्थितोऽयं विभवः कथं वेदानीमात्मानं मोचयेयम्। अथवा एतदेव मे मृत्युमण्डनं भविष्यति।)

बकुलावलिका—किं विआरेसि? ऊसुआ क्खु इमस्स तवणीआसोअस्स कुसुमोग्गमे देवी। (किं विचारयसि? उत्सुका खल्वस्य तपनीयाशोकस्य कुसुमोद्गमे देवी।)

राजा—कथमशोकदोहदनिमित्तोऽयमारम्भः।

संदेश भेजा था, वह वकुलावलिका भी यहाँ उसके पास पहुँच गई है।

राजा—पर उसे क्या हमारी बात स्मरण होगी?

विदूषक—जब मैं अब तक नहीं भूल पाया हूँ, तब भला यह खोटी कहीं ऐसी आवश्यक बात भूल सकती है?

[पैर सजाने की सब सामग्री हाथ में लिए बकुलावलिका आती है।]

बकुलावलिका—कहो सखी, अच्छी तो हो?

मालविका—अरे बकुलावलिका! तुम आ गई स्वागत है सखी, आओ बैठो।

बकुलावलिका—[बैठकर] सखी! तुम्हें जो काम दिया गया है, उसके लिये तुम्हीं योग्य थीं। लाओ अपना एक पैर इधर बढ़ाओ तो मैं महावर लगाकर बिछुए पहना दूँ।

मालविका—[मन ही मन] मेरे हृदय! यह सम्मान देखकर बहुत फूलो मत। पर मैं इससे बच भी कैसे सकती हूँ? यह न करूँ तो कहीं इसी से मेरा अन्तिम शृंगार न हो जाये।

बकुलावलिका—सोच क्या रही हो? जानती हो, इस सुनहरे अशोक के फूलने की देवी को बड़ी चिन्ता है।

राजा—अच्छा तो क्या यह समाचार अशोक के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः–किं णु क्खु जाणासि तुमं। मह कालणादो देवी मं अन्ते उरणेवच्छेण योजइस्सदि त्ति। (किं नु खलु जानासि त्वम्। मम कारणाद्देवीमामन्तः पुरनेपथ्येन योजयिष्यतीति।)

मालविका–हला मरिसेहि दाव णं (सखि, मर्षय तावदेनम्।) [इति पादमुपहरति।]

बकुलावलिका–अइ सरीरअं सि मे। (अयि शरीरमसि मे।)

[इति नाट्येन चरणसंस्कारमारभते।]

राजा–

चरणन्तनिवेशितां प्रियायाः सरसां पश्य वयस्य रागलेखाम्।
प्रथमामिव पल्लवप्रसूतिं हरदग्धस्य मनोभवद्रुमस्य।। 11।।

विदूषकः–चलणाणुरूवो तत्तहोदीए अहिआरो उवक्खित्तो। (चरणानुरूपस्तत्र-भवत्या अधिकार उपक्षिप्तः।)

राजा–सम्यगाह भवान्।

नवकिसलयरागेणाग्रपादेन वाला स्फुरितनखरुचा द्वौ हन्तुमर्हत्यनेन।
अकुसुमितमशोकं दोहदापेक्षया वा प्रणमितशिरसं वा कान्तमार्द्रापराधम्।। 12।।

विदूषक–पहरिसदि तत्तहोदी तुमं अवरद्धम। (प्रहरिष्यति तत्रभवती त्वामपराद्धम्।)

राजा–मूर्ध्ना प्रतिगृहीत वचः सिद्धिदर्शिनो ब्राह्मणस्य।

[ततः प्रविशति युक्तमदा इरावती चेटी च।]

विदूषक–तो क्या आप समझ बैठे थे कि महारानी ने मेरे लिये इसे रनिवास के शृंगारों से सजाया होगा।

मालविका–लो सखी! पर मुझे इसके लिये क्षमा करना। [पैर आगे करती है।]

बकुलावलिका–वाह री! तू कोई दूसरी है। मैं तो मुझे अपनी देह जैसी ही प्यारी समझती हूँ। [पैर रँगने का नाट्य करती है]

राजा–मित्र! प्यारी के पैर में महावर की जो गीली लकीरें बनी हैं वे ऐसी दिखाई पड़ रही हैं मानो महादेव जी के क्रोध से जले हुए कामदेव के वृक्ष में नई-नई कोंपलें फूट आई हों।।11।।

विदूषक–और जैसे इनके पैर हैं, वैसा ही काम भी तो इन्हें सौंपा गया है।

राजा–यह तो ठीक कहा तुमने! चमचमाते हुए नखों वाले और नई कोंपलों के पँजों वाले इस सुन्दरी के चरण या तो फूलने की इच्छा करने वाले इस अनफूले अशोक पर पड़ने योग्य हैं या प्रेम में अपराध करने वाले सिर झुकाए हुए पति के सिर पर पड़ने योग्य हैं।।12।।

विदूषक–तो समझ लीजिए कि आप भी अपराध करेंगे तो यही चरण आप पर भी पड़ेंगे।

राजा–मनचाहा भविष्य बताने वाला ब्राह्मण का आशीर्वाद सिर माथे।

[दासी के साथ मदिरा पिए हुए रानी इरावती आती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इरावती—हञ्जे णिउणिए! सुणामि बहुसो मदो किल इत्थिआजणस्स विसेसमण्डणं त्ति। अदि सच्चो एसो लोअवाओ। (चेटि निपुणिके! शृणोमि बहुशो मदः किल स्त्रीजनस्य विशेषमण्डनमिति। अपि सत्य एष लोकवादः।

निपुणिका—पढमं लोअवाओ एव्व अज्ज सच्चो संवुत्तो। (प्रथमं लोकवाद एवाद्य सत्यः संवृतः।)

इरावती—अलं मयि सिणेहेण। कहेहि कुदो दाणिं ओगमिदव्वं दोलाघरं पढमं गदो भट्टा ण वेत्ति। (अलं मयि स्नेहेन। कथय कुत इदनीमवगन्तव्यं दोलागृहं प्रथमं गतो भर्ता न वेति।)

निपुणिका—भट्टिणीए अखिण्डदादो पणआदो। (भट्टिन्या अखण्डितात्प्रणयात्।)

इरावती—अलं सेवाए। मज्झत्थदं परिगाहिअ भणाहि। (अलं सेवया। मध्यस्थतां परिगृह्य भण।)

निपुणिका—वसप्तोस्सवुवाअणलोलुवेण अज्जगोदमेण कहिअं तुवरदु भट्टिणी त्ति। (वसन्तोत्सवोपायनलोलुपेनार्यगौतमेन कथितं त्वरतां भट्टिनीति।)

इरावती—[अवस्थासदृशं परिक्रम्य।] हञ्जे! मदेण किलाअमाणं अत्ताण अज्जउत्तस्स दंसणे हिअअं तुवरेदि। चलण उण ण मह पसरन्ति। (चेटि! मदेन क्लाम्यमानमात्मानमार्य पुत्रस्य दर्शने हृदयं त्वरयति चरणौ पुनर्न मम प्रसरतः।)

निपुणिका—णं संपत्ते मह दोलाघरं। (ननु संप्राप्ते स्वो दोलागृहम्।)

इरावती—णिउणिए! अज्जउत्तो एत्थ ण दीसदि। (निपुणिके! आर्यपुत्रोऽत्र न दृश्यते।)

निपुणिका—णं भट्टिणीए ओलोअदु। परिहासणिमित्तं कहिं वि अदिट्ठेण भत्तुणा

इरावती—निपुणिका! मैं बहुत सुना करती हूँ कि मदिरा पीने से स्त्रियाँ बहुत सुन्दर लगने लगती हैं। यह कहावत सच है क्या?

निपुणिका—पहले तो यह कहावत ही थी, पर आज तो यह बात सच दिखाई दे रही है।

इरावती—चल, चल। मुँह देखी मत कह। अच्छा यह बता कि यह पता कैसे चले कि स्वामी झूले घर में पहुँच गए हैं या नहीं।

निपुणिका—आपका अखंड प्रेम ही यह बता रहा है।

इरावती—ठकुरसुहाती रहने दो। लल्लो-चप्पो छोड़कर सच-सच बता।

निपुणिका—वसन्तोत्सव की पूजा की भेट पाने के लोभी आर्य गौतम ने यह कहलाया है कि देवी को झटपट भेज दो।

इरावती—[मद में झूमकर घूमती हुई] दासी! मद इतना चढ़ गया है कि आर्यपुत्र को देखने की अकुलाहट होने पर भी मेरे पैर आगे नहीं बढ़ रहे हैं।

निपुणिका—लीजिए, झूले घर में तो आप पहुँच गई।

इरावती—अरी निपुणिका! आर्यपुत्र तो यहाँ कहीं दिखाई ही नहीं पड़ रहे हैं।

निपुणिका—ध्यान से देखिए स्वामिनी! आपसे ठिठोली करने के लिये स्वामी यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होदव्वं। अम्हे वि पिअङ्गुलदापरिक्खितं असोअसिलापट्टअं पविसामो। (ननु भट्टिन्यवलोकयतु। परिहासनिमितं कुत्राप्यदृष्टेन भर्ता भवितव्यम्। आवामपि प्रियङ्गुलता-परिक्षिप्तमशोकशिलापट्टकं प्रविशावः।)

इरावती—तह। (तथा।)

निपुणिका—[विलोक्य] आलोअदु भट्टिणी चूदङ्कुरं विचिण्णन्तीणं पिपीलि-आहिं दंसिदं। (अवलोकयतु भट्टिनी चूताङ्कुरं विचिन्वत्योः पिपीलिकाभिर्दष्टम्।)

इरावती—कहं विअ एदं। (कथमिवेदम्।)

निपुणिका—एसा असोसअपादवच्छाआए मालविआए बउलावलिआ चलणालंकारं णिव्वट्टेदि। (एषाशोकपादपच्छायायां मालविकाया बकुलावलिका चरणालङ्कारं निर्वतयति।)

इवारती—[शङ्कां रूपयित्वा] अभूमी इअं मालविआए! कहं एत्थ तक्केसि। (अभूमिरियं मालविकायाः। कथमत्र तर्कयसि।)

निपुणिका—तक्केमि दोलापरिब्भंसिदाए सरुअचलणाऐ देवीए असोअदोहला-हिआरे मालविआ णिउत्तेत्ति। अण्णहा कहं देवी सअं धारिअंणूउरजुअलं परिअणस्स अब्भणुजाणिस्सदि। (तर्कयामि दोलापरिभ्रष्टया सरुजचरणया देव्याऽशोकदोहदाधिकारे मालविका नियुक्तेति। अन्यथा कथं देवी स्वयं धारितं नूपुरयुगलं परिजनस्याभ्यनुज्ञास्यति।)

इरावती—महदी क्खु से संभावणा। (महती खल्वस्याः संभावना।)

निपुणिका—किं ण अण्णेसीअदि भट्टा। (किं नान्विष्यते भर्ता।)

कहीं छिपे वैठे होंगे। आइए, हम लोग भी प्रियंगु-लता मंडप में चलकर अशोक के तले पत्थर की पटिया पर बैठें।

इरावती—ठीक है।

निपुणिका—[देखकर] देखिए तो स्वामिनी! हम चलीं थीं आमकी कोंपलें ढूँढ़ने और काट लिया चींटियों ने।

इरावती—कैसे रे?

निपुणिका—देखिए न। यहाँ बकुलावलिका, अशोक की छाया में बैठी हुई मालविका के पैर रँग रही है।

इरावती—[कुछ सन्देह करके] मालविका तो इधर आने नहीं पाती, आज क्या बात हो गई है?

निपुणिका—मैं समझती हूँ कि झूले पर से गिर जाने के कारण महारानी के पैरों में चोट आ गई है, इसलिये अशोक के फूलने के लिये उस पर लात मारने का काम मालविका को ही सौंपा गया होगा। नहीं तो क्या महारानी कभी अपने पैर के बिछुए उतारकर अपनी दासियों को पहनने के लिये भला दे सकती हैं?

इरावती—हाँ, हो न हो यही बात है।

निपुणिका—तो क्या महाराज को न ढूँढ़िएगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इरावती—हला ण मे चलणा अण्णदो पवट्टन्ति। मदो मंविआरेदि। आसङ्किदस्स दाव अन्तं गमिस्सं। [मालविकां निर्वर्ण्य। निरूप्यात्मगतम्।] ठाणे क्खु कादरं मे हिअअं। (सखि! न मे चरणावन्यतः प्रवर्तेते। मदो मां विकारयति। आशङ्कितस्य तावदन्तं गमिष्यामि। स्थाने खलु कातरं मे हृदयम्।)

बकुलावलिका—[मालविकायै चरणं दर्शयन्ती।] अवि रोअदि दे राअरेहाविण्णासो। (अपि रोचते ते रागरेखाविन्यासः।)

मालविका—हला! अत्तणो चलणं त्ति लज्जेमि णं पसंसिदुं। केण पसाहणकलाए अहिणीदासि। (सखि! आत्मनश्चरण इति लज्जे एनं प्रशंसितुम्। केन प्रसाधनकलायाम- भिनीतासि।)

बकुलावलिका—एत्थ क्खु भत्तुणौ सीसम्हि। (अत्र खलु भर्तुः शिष्यास्मि।)

विदूषकः—तुवरेहि दाव णं गुरुदक्खिणाए। (त्वरय तावदेनां गुरुदक्षिणायै।)

मालविका—दिट्ठिआ ण गव्विदासि। (दिष्ट्या न गर्वितासि।)

बकुलावलिका—उवदेसाणुरूवा चलण लम्भिअ अज्ज दाव गव्विदा भविस्सं। [रागं विलोक्यात्मगतम्] हन्त सिद्धो मे दप्पो। [प्रकाशम्] सहि एक्कस्स दे चलणस्स अवसिदो राअणिक्खेवो। केवलं मुहमारुदो लम्भइदव्वो। अहवा पवादं एदं ठाणं। (उपदेशानुरूपौ चरणौ लब्ध्वाद्य तावद्गर्विता भविष्यामि। हन्त सिद्धो मे दर्पः। सखि एकस्य ते चरणस्यावसितो रागनिक्षेपः। केवलं मुखमारुतो लम्भयितव्यः। अथवा प्रवातमेतत्स्थानम्।)

राजा—सखे पश्य।

इरावती—सखी, मेरे पैर ही आगे नहीं बढ़ रहे हैं। इधर मद भी मुझे बेहाल किए डाल रहा है, पर मेरे मन में जो खटका बैठ गया है, वह तो मिटाना ही होगा। [मालविका को देखकर और समझकर मन ही मन] इन्हीं सब बातों से तो मेरा जी जल जाता है।

बकुलावलिका—[मालविका को रँगा हुआ पैर दिखाती है।] कहो महावर की रँगाई तुझे अच्छी लगी?

मालविका—सखी! अपने पैर की प्रशंसा करते मुझे लाज लगती है, पर यह तो बताओ कि इतनी बढ़िया शृंगार की कला तुम्हें सिखाई किसने?

बकुलावलिका—अरी! यह कला तो मैंने स्वयं महाराज से सीखी है।

विदूषक—जाइए जाइए, झपटकर इससे गुरुदक्षिणा तो माँग लीजिए।

मालविका—बड़ी भागवान् हो कि इतने पर भी तुम्हें अभिमान छू तक नहीं गया है।

बकुलावलिका—पर मैंने जो कुछ सीखा है, वैसी कला दिखाने के योग्य तुम्हारे चरण पाकर आज तो मुझे अवश्य अभिमान हो रहा है। [रँगाई को देखकर मन ही मन] वाह आज ही तो मेरा अभिमान सच्चा हुआ है। [प्रकट] लो सखी! तुम्हारा एक पैर तो रँग गया है, अब इसे मुँह से फूँककर सुखाना भर रह गया है, पर यहाँ तो बयार भी चल रही है।

राजा—देखो मित्र! गीले महावर से रँगे हुए इसके पैर को मुँह की फूँक से सुखाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्द्रालक्तकमस्याश्चरणं मुखमारुतेन शोषयितुम्।
प्रतिपन्नः प्रथमतरः संप्रति सेवावकाशो मे।। 13।।

विदूषकः—कुदो दे अणुसओ। एदं भवदा चिरक्कमेण अणुभविदव्वं। (कुतस्तेऽनुशयः। एतावद्भवता चिरक्रमेणनुभवितव्यम्।)

बकुलावलिका—सहि! अरुणासतपत्तं विअ सोहदि दे चलणं। सव्वहा भत्तुणो अङ्कपरिवट्टिणी होहि। (सखि अरुणशतपत्रमिव शोभते ते चरणाम्। सर्वथा भर्तुरङ्कपरिवर्तिनी भव।)

[इरावती निपुणिकामवेक्षते।]

राजा—ममेयमाशीः।

मालविका—हला मा अवअणीअं मन्तेहि। (सखि, मा अवचनीयं मन्त्रयस्व।)

बकुलावलिका—मन्ताइदव्वं एव्व मन्तिदं मए। (मन्त्रयितव्यमेव मन्त्रितं मया।)

मालविका—पिआ क्खु अहं तव। (प्रिया खल्वहं तव।)

बकुलावलिका—ण केवलं मह। (न केवलं मम।)

मालविका—कस्स वा अण्णस्स। (कस्य वान्यस्य।)

बकुलावलिका—गुणेसु अहिणिवेसिणो भत्तुणो वि। (गुणेष्वभिनिवेशिनो भर्तुरपि।)

मालविका—अलिअं मन्तेसि। एदं एव्व मइ णत्थि। (अलीकं मन्त्रयसे। एतदेव मयि नास्ति।)

बकुलावलिका—सच्चं तुइ णत्थि। भत्तुणो किसेसु सुन्दरपाण्डरेसु दीसइ अंगेसु। (सत्यं त्वयि नास्ति। भर्तुः कृशेषु सुन्दरपाण्डुरेषु दृश्यतेऽङ्गेषु।)

निपुणिका—पढमं गणिदं विअ हदासए उत्तरं। (प्रथमं गणितमिव हताशाया उत्तरम्।)

इसकी सेवा करने का यह सबसे अच्छा अवसर मेरे हाथ लगा है।।13।।

विदूषक—तो पछताते क्यों हैं? आपको बहुत दिनों तक ऐसी सेवा करने को मिलेगी।

बकुलावलिका—अरी सखी! तेरा पैर तो लाल कमल के समान खिला पड़ रहा है। मैं तो मनाती हूँ कि तू सदा महाराज की गोद में ही लेटी रहे।

[इरावती निपुणिका की ओर देखती है।]

राजा—मैं भी यही आशीर्वाद देता हूँ।

मालविका—सखी! ऐसी बे-सिर पैर की बातें न कहा करो।

बकुलाविलका—जो कहना चाहिए वही तो मैं कह रही हूँ।

मालविका—मैं तुम्हारी प्यारी हूँ न? इसीलिये।

बकुलावलिका—केवल मेरी ही नहीं।

मालविका—और दूसरे किसकी।

बकुलावलिका—तेरे गुणों पर रीझे हुए महाराज की भी।

मालविका—तू झूठ कहती है। मुझपर उनका तनिक भी प्रेम नहीं है।

बकुलावलिका—हाँ सचमुच तुम पर तो नहीं, पर महाराज के दुर्बल, पीले सुन्दर अंगो पर वह प्रेम अवश्य दिखाई देता है।

निपुणिका—इस खोटी ने ऐसा उत्तर दिया है मानो पहले से ही सोच बैठी हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुलावलिका—अणुराओ अणुराएण परिक्खिदव्वो त्ति सुअणवअणं पमाणीकरेहि। (अनुरागोऽनुरागेण परीक्षितव्य इति सुजनवचनं प्रमाणीकुरु।)

मालविका—किं अत्तणो छन्देण मन्तेसि (किमात्मनश्छन्देन मन्त्रयसि।)

बकुलावलिका—णहि णहि। भत्तुणो क्खु एदाइँ पणअमिदुलाइँ अक्खराइँ वत्तन्तरिताइँ। (नहि नहि। भर्तुः खल्वेतानि प्रणयमृदुलान्यक्षराणि वक्त्रान्तरितानि।)

मालविका—हला! देवीं चन्तिअ ण मे हिअअं विस्ससदि। (सखि! देवीं चिन्तयित्वा न हृदयं विश्वसिति।

बकुलावलिका—मुद्धे! भमरसंपादो भविस्सदि त्ति वसन्तावदारसव्वस्सं किं ण चूदप्पसवो ओदंसिदव्वो। (मुग्धे! भ्रमरसंपातो भविष्यतीति वसन्तावतारसर्वस्वं किं न चूतप्रसवोऽवतंसितव्यः।)

मालविका—तुमं दाव दुज्जादे गच्छतस्स सहायिणी होहि। (त्वं तावद् दुर्जाते! गच्छतः सहायिनी भव।)

बकुलावलिका—विमद्दसुरही बउलावलिआ क्खु अहं। (विमर्दसुरभिर्बकुलावलिका खल्वहम्।)

राजा—साधु बकुलावलिके साधु।

भावज्ञानानन्तरं प्रस्तुतेन प्रत्याख्याने दत्तयुक्तोत्तरेण।
वाक्येनेयं स्थापिता स्वे निदेशे स्थाने प्राणः कामिनां दूत्यधीनाः।। 14।।

बकुलावलिका—अच्छा सज्जनों की एक बात तो तुम मान लो कि प्रेम की परीक्षा प्रेम से ही होती है।

मालविका—क्या यह सब अपने मन से गढ़ती जा रही हो?

बकुलावलिका—नहीं अपने मन से नहीं। ये प्रेम भरे कोमल अक्षर स्वयं महाराज ने अपने मुँह से कहे हैं।

मालविका—पर सखी! महारानी का व्यवहार देखती हूँ, तो सारी आशा ठंडी पड़ जाती है।

बकुलावलिका—अरी पगली! क्या भौंरों के डर से लोग अपने कानों में वसन्त की रानी बनी हुई आम की मंजरी को नहीं पहनते?

मालविका—मुझ पर कोई बिपदा आये तो तुम मुझे छोड़ न देना।

बकुलावलिका—अरी मेरा तो नाम ही बकुलावलिका है। मैं तो जितनी ही अधिक मसली जाऊँगी उतनी ही अधिक गन्ध दूँगी।

राजा—वाह री बकुलावलिका वाह—इस समय इसके मन की ठीक-ठीक थाह ले लेने पर जो मेरे प्रेम का प्रस्ताव करके और इसके नहीं नहीं करने पर भी इसे जोड़-तोड़ कर उत्तर देकर जो तुमने इसे पक्का कर लिया है, इससे मुझे विश्वास हो गया है कि सचमुच प्रेमियों के प्राण दूतियों की ही मुट्ठी में रहते हैं।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इरावती—हञ्जे! पेक्ख कारिदं एव्व वउलावलिआए एदस्सिं पदं मालविआए। (सखि। पश्य कारितमेव बकुलावलिकयैतस्मिन्पदं मालविकायाः।)

निपुणिका—भट्टिणि! अहिआरस्स उइदो उवदेसो। (भट्टिनि। अधिकारस्योचित उपदेश।)

इरावती—ठाणे क्खु संकिदं मे हिअअं। गहीदत्था अणन्तरं चिन्तइस्सं। (स्थाने खलु शंकितं मे हृदयम्। गृहीतार्थानन्तरं चिन्तयिष्यामि।)

बकुलावलिका—एसो दुदीओ वि दे णिव्वुत्तपरिकम्मा चलणो। जाव णं सणूउरं करेमि। [इति नाट्येन नूपुरयुगलमामुच्य।] हला! उट्ठेहि। असोअविआसइत्तअं देवीए णिओअं अणुचिट्ठ। (एष द्वितीयोऽपि ते निर्वृत्तपरिकर्मा चरणः यावदेनं सनूपुरं करोमि। हला उत्तिष्ठ। अशोकविकासयितृकं देव्या नियोगमनुतिष्ठ।)

[उभे उत्तिष्ठतः।]

इरावती—सुदो देवीए णिओओ! होटु दाणिं। (श्रुतो देव्या नियोगः भवत्विदानीम्।)

बकुलावलिका—एसो उवारूढराओ उअभोअक्खमो पुरदो दे वट्टइ। (एष उपारूढराग उपभोगक्षमः पुरतस्ते वर्तते।)

मालविका—[सहर्षम्] किं भट्टा। (किं भर्ता।)

बकुलावलिका—[सस्मितम्।] ण दाव भट्टा। एसो असोअसाहावलम्बी पल्लव-गुच्छओ। ओदंसेहि णं। (न तावद्भर्ता। एषोऽशोकशाखावलम्वी पल्लवगुच्छः। अवतंसयैनम्।)

[मालविका विषादं नाटयति।]

विदूषकः—सुदं भवदा। (श्रुतं भवता।)

इरावती—देख सखी! मालविका को इतना सम्मान इस बकुलावलिका ने ही दिलाया है।

निपुणिका—स्वामिनी। इसे जैसा सिखाया गया होगा, वैसा ही तो कर रही है।

इरावती—मुझे जो खटका था वह सब सच ही निकला। सब बातों का ठीक-ठीक ब्यौरा लेकर मैं इसका उपाय सोचूँगी।

बकुलावलिका—लो, तुम्हारा दूसरा पैर भी रँग गया। लाओ इसमें भी बिछुए पहना दूँ। [दोनों बिछुए पहनाने का नाट्य करती है।] अब उठो सखी! महारानी ने अशोक के फूलने के लिये जो काम तुम्हें सौंपा है, वह पूरा कर डालो [दोनों उठ खड़ी होती हैं।]

इरावती—तुमने महारानी का काम सुन लिया न! अच्छा इसे हो जाने दो।

बकुलावलिका—लो, यह राग-रंग भरा और आनन्द लूटने-योग्य तुम्हारे आगे ही तो है।

मालविका—[प्रसन्न होकर] कौन महाराज?

बकुलावलिका—[मुसकुराकर] अरे महाराज नहीं! यह अशोक की शाखा में लटकने वाले पत्तों का गुच्छा! लो इसे कानों पर सजा लो।

[मालविका दुखी होती है।]

विदूषक—सुना आपने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—सखे। पर्याप्तमेतावता कामिनाम्—

अनातुरोत्कण्ठितयोः प्रसिद्ध्यता समागमेनापि रतिर्न मां प्रति।
परस्परप्राप्तिनिराशयोर्वरं शरीरनाशोऽपि समानुरागयोः।। 15।।

[मालविका रचितपल्लवावतंसा पादमशोकाय प्रहिणोति।]

राजा—वयस्य।

आदाय कर्णकिसलयमस्मादियमत्र चरणमर्पयति।
उभयोः सदृशविनिमयादात्मानं वञ्चितं मन्ये।। 16।।

बकुलावलिका—हला! णत्थिदे देसो। णिग्गुणो अअं असोओ जइ कुसुमोब्भेद-मन्थरो भवे जो दे चलणसक्कारं लम्भिअ। (सखि नास्ति ते दोषः। निर्गुणोऽयमशोको यदि कुसुमोद्भेदमन्थरो भवेत् यस्तेचरणसत्कारं लम्भितः।)

राजा—

अनेन तनुमध्यया मुखरनूपुराराविणा
नवाम्बुरुहकोमलेन चरणेन संभावितः।
अशोक यदि सद्य एव मुकुलैर्न संपत्स्यसे
वृथा वहसि दोहदं ललितकामिसाधारणाम्।। 17।।

सखे! वचनानुसरणपूर्वकं प्रवेष्टुमिच्छामि।

राजा—मित्र! प्रेमियों के लिये इतना भी बहुत है। देखो! जहाँ एक मिलन के लिये व्याकुल हो और दूसरा मिलना ही न चाहता हो, वहाँ उनका मिलना न मिलना बराबर है। पर जहाँ दोनों अधीर हों और दोनों एक दूसरे से मिलने के लिए व्याकुल हों वहाँ प्राण भी दे देना पड़े तो बुरा नहीं है।।15।।

[मालविका पत्तों का गुच्छा कान पर लटकाकर अशोक पर लात जमाती है।]

राजा—मित्र! देखो इसने अपने कानों पर सजाने के लिये जो अशोक से पत्ते लिए तो उसके बदले में इसने अपना पत्तों जैसा चरण भी उसे भेंट कर दिया। इन दोनों ने एक जैसी वस्तु का अदला-बदला करके मुझे तो सचमुच कहीं का न छोड़ा, क्योंकि अब मैं इससे इस प्रकार प्रेम की वस्तुओं की अदला-बदली कैसे कर पाऊँगा।।16।।

बकुलावलिका—सखी! यदि तुम्हारे चरणों की पूजा पाकर भी यह अशोक न फूले तो इसमें तुम्हें दोष नहीं लगेगा, वरन अशोक ही निकम्मा समझा जायगा।

राजा—इस पतली कमर वाली सुन्दरी का जो नये कमल के समान कोमल चरण के बिछुओं की झंकार गूँज रही है, उससे आदर पाकर भी यदि तुम में कलियाँ न फूट आईं तो मैं यही समझूँगा कि सुन्दरी की लात से फूल उठने की जो चाह मस्त प्रेमियों के मन में होती है वह तुम्हारे मन में व्यर्थ ही उत्पन्न हुई।।17।। मित्र! हम लोगों की कोई बात चले तो हम भी आगे बढ़ चलें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—एहि। णं परिहासइस्सं। (एहि एनां परिहासयिष्यामि।)

[उभौ प्रवेशं कुरुतः]

निपुणिका—भट्टिणि भट्टिणि। भट्टा एत्थ पविसदि। (भट्टिनि भट्टिनि! भर्ताऽत्र प्रविशति।)

इरावती—इदं मम पढमं चिन्तिदं हिमएण। (एतन्मम प्रथमं चिन्तितं हृदयेन)

विदूषकः—[उपेत्य] भोदि। जुत्तं णाम अत्तभोदि पिअवअस्सो अअं असोओ णं वामपादेण ताडिदुं। (भवति। युक्तं नाम अत्रभवति प्रियवयस्योऽयमशोको ननु वामपादेन ताडयितुम्।)

उभे—[ससंभ्रमम्] अम्हो भट्टा। (अहो भर्ता।)

विदूषक—बउलावलिए। गहीदत्थाए तुइ अत्तहोदी ईरिसं अविणअं करन्ती कीस णं णिवारिदा। (बकुलावलिके! गृहीतार्थया त्वयात्रभवतीदृशमविनयं कुर्वन्ती कस्मान्न निवारिता।)

[मालविका भयं रूपयति।]

निपुणिका—भट्टिणि पेक्ख। किं पउत्तं अज्जगोदमेण। (भट्टिनि! पश्य। किं प्रवृत्तमार्य गौतमेन।)

इरावती—कहं क्खु बह्मबन्धू अण्णहा जीविस्सदि। (कथं खलु ब्रह्मबन्धुरन्यथा जीविष्यति।)

बकुलावलिका—अज्ज! एसा देवीए णिओअं अणुचिट्ठिदि। एदस्सिं अदिक्कमे परवदी इअं। पसीददु भट्टा। (आर्य! एषा देव्या नियोगमनुतिष्ठति। एतस्मिन्नतिक्रमे परवतीयम्। प्रसीदतु भर्ता।) [इत्यात्मना सहैनां प्रणिपातयति।]

विदूषक—आइए। मैं इसे जरा छेड़ता हूँ।

[दोनों आगे बढ़ते हैं।]

निपुणिका—स्वामिनी! स्वामिनी! महाराज आ रहे हैं।

इरावती—यह तो मैं पहले ही ताड़ गई थी।

विदूषक—[पास जाकर] कहिए देवी! क्या हमारे प्यारे मित्र अशोक पर अपनी बाईं लात जमाकर आपने कोई अच्छा काम किया है?

दोनों—[घबराकर] अरे! महाराज!

विदूषक—क्यों बकुलावलिका! सब कुछ जान-बूझकर भी तुमने इन्हें ऐसी ढिठाई करने से रोका क्यों नहीं?

[मालविका डरने का नाट्य करती है।]

निपुणिका—स्वामिनी! आपने आर्य गौतम की चाल देखी?

इरावती—ऐसा न करे तो इस बँभनौटे का पेट कैसे पले।

बकुलावलिका—आर्य! यह महारानी की आज्ञा का पालन ही हो रहा है। इसीलिये यह ऐसी डिठाई करने में परवश थी। महाराज क्षमा करें।

[अपने साथ मालविका को भी उनके पैर में झुकाती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—यद्येवमनपराधासि। उत्तिष्ठ भद्रे। [हस्तेन गृहीत्वैनामुत्थापयति।]

विदूषकः—जुज्जइ देवी एत्थमाणइदव्या। (युज्यते देव्यत्र मानयितव्या।)

राजा—[विहस्य]

किसलयमृदोर्विलासिनि कठिने निहतस्य पादपस्कन्धे।
चरणस्य न ते बाधा संप्रति वामोरु वामस्य।। 18।।

[मालविका लज्जां नाटयति।]

इरावती—अहो णवणीदकप्पहिअओ अज्जउत्तो। (अहो नवनीतकल्पहृदय आर्यपुत्रः।)

मालविका—बउलावलिए। एहि। अणुट्ठिदं अत्तणो णिओअं देवीए णिवेदेम्ह। (बकुलावलिके! एहि। अनुष्ठितमात्मनो नियोगं देव्यै निवेदयावः।)

बकुलावलिका—विण्णवेहि भट्टारं विसज्जेहि त्ति। (विज्ञापय भर्तारं विसर्जयेति।)

राजा—भद्रे यास्यसि। मम तावदुत्पन्नावसरमर्थित्वं श्रूयताम्।

बकुलावलिका—अवहिदा सुणाहि। आणवेदु भट्टा। (अवहिता शृणु। आज्ञापयतु भर्ता।)

राजा—

धृतिपुष्पमयमपि जनो बध्नाति न तादृशं चिरात्प्रभृति।
स्पर्शामृतेन पूरय दोहदमस्याप्यनन्यरुचेः।। 19।।

राजा—अच्छा, यह बात है तो कोई दोष नहीं। उठो भद्रे [हाथ से पकड़कर मालविका को उठाता है।]

विदूषक—ठीक है, महारानी की बात तो माननी ही चाहिए थी।

राजा—[देखकर] क्यों विलासिनी! तुम्हारा यह पत्तों के समान कोमल बाँयाँ पैर अशोक पर लगने से कहीं दुखने तो नहीं लगा है?।।18।।

[मालविका लजाने का नाट्य करती है।]

इरावती—वाह, इस समय आर्यपुत्र का हृदय मक्खन के समान कोमल बन गया है।

मालविका—आओ बकुलावलिका! महारानी को सूचना दे आयें कि आपकी आज्ञा पूरी कर दी गई है।

बकुलावलिका—पहले महाराज से तो यह प्रार्थना करो कि वे तुम्हें छोड़ दें।

राजा—तुम जा सकती हो भद्रे! पर एक बात मेरी सुनती जाओ।

बकुलावलिका—देखो, ध्यान देकर सुनो। हाँ महाराज! आज्ञा कीजिए।

राजा—देखो सुन्दरी! बहुत दिनों से इसी अशोक के समान ही मुझमें भी धीरज के फूल नहीं आ रहे हैं। इसलिये तुम्हें छोड़कर और किसी से प्रेम न करने वाले मुझ सेवक के मन की साध भी अपने स्पर्श का अमृत पिलाकर आज तुम पूरी कर दो।। 19।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इरावती—[सहसोपसृत्य] **पूरेहि पूरेहि। असोओ कुसुमं ण दंसेदि। अअं उण पुप्फदि एव्व।** (पूरय पूरय। अशोकः कुसुमं न दर्शयति। अयं पुनः पुष्पत्येव।)

[सर्वे इरावतीं दृष्टवा संभ्रान्ताः।]

राजा—[अपवार्य] **वयस्य।** का प्रतिपत्तिरत्र।

विदूषकः—**किं अण्णं। जङ्घाबलं एव्व।** (किमन्यत्। जङ्घाबलमेव।)

इरावती—**बउलावलिए। तुए साहू उवक्कन्तं। दाणिं सफलब्भत्थणं करेहि अज्जउत्तं।** (बकुलावलिके! त्वया साधूपक्रान्तम् इदानीं सफलाभ्यर्थिनं कुर्वार्यपुत्रम्।)

उभे—**पसीददु भट्टिणी। काओ अम्हे भत्तुणो पणअपरिग्गहस्स।** (प्रसीदतु भट्टिनी। के आवां भर्तुः प्रणयपरिग्रहस्य।) [इति निष्क्रान्ते।]

इरावती—**अविस्ससणीआ पुरिसा। अत्तणो वञ्चणवअणं पमाणीकरिअ आक्खिताए वाहजणगीदगहीदचित्ताए विअ हरिणीए एदं ण विण्णादं मए।** (अविश्वसनीयाः पुरुषाः। आत्मनो वञ्चनावचनं प्रमाणीकृत्याक्षिप्तया व्याधजनगीतगृहीत-चित्तयैव हरिण्यैतन्न विज्ञातं मया।)

विदूषकः—[जनान्तिकम्] **भो पडिपज्जेहि किंपि उत्तरम्। कम्मग्गहीदेण वि कुम्भीलएण संधिच्छेदे सिक्खि ओम्मि त्ति वत्तव्वं होदि।** (भो प्रतिपद्यस्व किमप्युत्तरम्। कर्मगृहीतेनापि कुम्भीलकेन संधिच्छेदे शिक्षिताऽस्मीति वक्तव्यं भवति।)

राजा—सुन्दरि! न मे मालविकया कश्चिदर्थः। मया त्वं चिरयसीति यथाकथंचिदात्मा विनोदितः।

इरावती—[सहसा आगे बढ़कर] हाँ हाँ पूरी करो, पूरी करो। अशोक में अभी फूल नहीं आए हैं, पर ये तो अभी से फूले जा रहे हैं।

[इरावती को देखकर सब घबरा जाते हैं।]

राजा—[अलग] कहो मित्र! अब क्या किया जाये।

विदूषक—और क्या किया जायेगा! चलिए पैरों का सहारा लिया जाये (भाग चला जाये)

इरावती—क्यों री बकुलावलिका! यह तूने अच्छा काम लिया है? जा, अब कर न आर्यपुत्र की साध पूरी।

दोनों—क्रोध न कीजिए महारानी! भला हम कौन होती हैं महाराज की साध पूरी करने वाली?

[दोनों चली जाती हैं।]

इरावती—सचमुच पुरुषों का कोई विश्वास नहीं है। मैं क्या जानती थी कि जैसे व्याधों के गीत सुनकर हिरणी सब सुध-बुध खोकर जाल में फँस जाती है, वैसे ही मैं भी इनकी चिकनी-चुपड़ी बातों पर विश्वास करके इनके फन्दे में फँस जाऊँगी।

विदूषक—[अलग] अजी, कुछ तो बात बताइए। चोरी करते हुए पकड़ा हुआ चोर भी यह कह देता है कि मैं चोरी करने के लिये सेंध नहीं लगा रहा था, वरन् यह देखना चाहता था कि मैंने भीत फोड़ने की विद्या ठीक-ठीक सीखी है या नहीं।

राजा—सुन्दरी! मालविका से हमें क्या लेना-देना है। तुम्हारे आने में देर हो रही थी इसलिये थोड़ा बहुत जी बहला रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इरावती—विस्ससणीओसि। ण मए विण्णादं ईरिसं विणोदवुत्तन्तं अज्जउत्तेण उवलद्ध त्ति। अण्णहा दुक्खभाइणीए एव्वं ण करीअदि। (विश्वसनीयोऽसि। न मया विज्ञातम् ईदृशो विनोदवृत्तान्त आर्यपुत्रेणोपलब्ध इति। अन्यथा दुःखभागिन्यैवं न क्रियते।)

विदूषकः—मा दाव अत्तभोदो दक्खिण्णस्स उवरोहं करेहि। समावदिट्टेण देवीए परिचारिआइत्थिआजणेन संकहावि जइ वारीअदि एत्थ तुमं एव्व पमाणं। (मा तावदत्रभवतो दाक्षिण्यस्योपरोधं कुरु। समीपदृष्टेन देव्याः परिचारिकास्त्रीजनेन संकथापि यदि वार्यते अत्र त्वमेव प्रमाणम्।

इरावती—णं संकहा णाम होदु। किंति अत्ताणं आआसइस्सं। (ननु संकथा नाम भवतु। किमित्यात्मानमायासयिष्यामि [इति रुषा प्रस्थिता।]

राजा—[अनुसरन्।] प्रसीदतु भवती।

[इरावती रशनासंधारितचरणा व्रजत्येव।]

राजा—सुन्दरि! न शोभते प्रणयिनि जने निरपेक्षता।

इरावती—सठ। अविस्ससणीअहिअओसि। (शठ। अविश्वसनीयहृदयोऽसि।)

राजा—

शठ इति मयि तावदस्तु ते परिचयवत्यवधीरणा प्रिये।
चरणपतितया न चण्डि! तां विसृजसि मेखलयापि याचिता।। 20।।

इरावती—इअं पि हदासा तुमं एव्व अणुसरदि। (इयमपि हताशा त्वामेवानुसरति।)

[इति रशनामादाय राजानं ताडयितुमिच्छति।]

इरावती—जी हाँ! बड़े सच्चे हैं आप! मैं नहीं जानती थी कि आर्यपुत्र को मन बहलाने के लिये यही वस्तु मिली है, नहीं तो मैं अभागिन बीच में पड़ती ही क्यों?

विदूषक—देखिए, आप महाराज को साधारण शिष्टाचार दिखाने से मत रोकिए। यदि आप यह चाहती हैं कि पास आई हुई महारानी की दासियों से भी महाराज बातचीत न करें तो ठीक है, वही सही।

इरावती—अच्छा तो होने दीजिए बातचीत, मैं क्यों अपना जी दुखाऊँ! [क्रोध में भरी हुई चली जाती है।]

राजा—[पीछे-पीछे जाते हुए] अरे मान जाओ देवी।

[इरावती पैर में फँसी हुई मेखला को घसीटते हुई चलने को तत्पर होती है।]

राजा—सुन्दरी! अपने प्यारे से रूठना तुम्हें शोभा नहीं देता।

इरावती—अरे शठ! तेरा मुझे तनिक भी विश्वास नहीं है।

राजा—तुमने शठ कहकर जो मेरा निरादर किया है, यह तो कोई नई बात नहीं है; पर हे चंडी! जब तुम्हारी मेखला भी तुम्हारे पैरों पर पड़कर क्षमा माँग रही है तब भी क्या तुम अपना क्रोध न छोड़ोगी।।20।।

इरावती—लो, यह निगोड़ी भी तुम्हारे ही पीछे जा रही है।

[मेखला लेकर राजा को मारना चाहती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—वयस्य। इयमिरावती—

बाष्पासारा हेमकाञ्चीगुणेन श्रोणीबिम्बादप्युपेक्षाच्युतेन।
चण्डी चण्डं हन्तुमभ्युद्यता यां विद्युद्दाम्ना मेघराजीव विन्ध्यम्।। 21।।

इरावती—किं मं एव्व भूओ वि अवरद्धं करेसि। (किं मामेव भूयोऽप्यपराद्धां करोषि।)

राजा—[सरशनं हस्तमवलम्बयति।]

अपराधिनि मयि दण्डं संहरसि किमुद्यतं कुटिलकेशि।
वर्धयसि विलसितं त्वं दासजनायाद्य कुप्यसि च।। 22।।

नूनमिदमनुज्ञातम्। [इति पादयोः पतति।]

इरावती—ण क्खु इमे मालविआचलणा जा दे हरिसदोहलं पूरयिस्सन्ति। (न खल्विमौ मालविकाचरणौ यौ ते हर्षदोहदं पूरयिष्यतः।)

[इति निष्क्रान्ता सह चेट्या।]

विदूषकः—उट्ठेहि अकिदप्पसादोऽसि। (उत्तिष्ठ। अकृतप्रसादोऽसि।)

राजा—[उत्थायेरावतीमपश्यन्।] तत्कथं गतैव प्रिया।

विदूषकः—वअस्स। दिट्ठिआ इमस्स अविणअस्स अप्पसण्णा गदा एसा। ता वअं सिग्घं अवक्कमाम जाव अङ्गारओ रासिं विअं अणुवङ्कं परिगमणं ण करेदि। (वयस्य! दिष्ट्यानेनाविनयेनाप्रसन्ना गतैषा तद्वयं शीघ्रमपक्रामामः यावदङ्गारको राशिमिवानुवक्रं प्रतिगमनं न करोति।)

राजा—मित्र! आँखों में आँसू भरे, क्रोध से लाल और अपने नितम्बों पर से अनादर के कारण छूटी हुई करधनी की डोरी से मुझको मारती हुई यह इरावती, इस समय ऐसी लग रही है, मानो घनी बदली विन्ध्याचल पर बिजली गिराकर उसे फाड़ने पर उतारू हो गई हो।।21।।

इरावती—अच्छा! तो तुम मुझपर ही दोष लगाने चले हो?

राजा—[मेखला सहित हाथ पकड़ लेता है।] हे घुँघराले बालों वाली! तुम मुझ अपराध करने वाले को दंड देते-देते रुक क्यों गई? इस समय मुझ दास पर जो तुम क्रोध कर रही हो इससे तुम्हारी शोभा और भी बढ़ गई है।।22।। तो आपने मेरी बात मान ली है। [पैरों पर गिरता है।]

इरावती—ये मालविका के पैर नहीं हैं, जो तुम्हारे मन की साध पूरी कर देंगे। [दासी के साथ चली जाती है।]

विदूषक—उठिए! आप तो ठन-ठन गोपाल ही रह गए।

राजा—[उठकर इरावती को न देखकर।] तो क्या प्यारी चली ही गई?

विदूषक—मित्र! अपना बड़ा भाग्य ही समझो कि वे आपकी ढिठाई पर बिगड़कर चल दी। चलो हम लोग भी यहाँ से नौ-दो ग्यारह हो जायँ कहीं वे मंगलग्रह के समान उल्टी चाल-चलकर फिर इसी राशि पर न लौट आयें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—अहो मदनस्य वैषम्यम्।

मन्ये प्रियाहृतमनास्तस्याः प्रणिपातलङ्घनं सेवाम्।
एवं हि प्रणयवती सा शक्यमुपेक्षितुं कुपिता।। 23।।

[इति निष्क्रान्तः सह वयस्येन]

इति तृतीयोऽङ्कः

राजा—आह! प्रेम भी कैसा कठोर होता है। ऐसे समय जब कि मालविका मेरा मन हर ले गई हो, उस समय मेरे हाथ-पैर जोड़ने पर भी उसका रूठकर चला जाना अच्छा ही हुआ; क्योंकि अब तो यह मुझसे रूठ ही बैठी है, इसलिये थोड़े दिनों तक तो इस प्रेमिका से अलग रहा ही जा सकता है।।23।।

[अपने मित्र विदूषक के साथ चला जाता है।]

।। तीसरा अंक समाप्त।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थोऽङ्कः

[ततः प्रविशति पर्युत्सुको राजा प्रतीहारी च।]

राजा—[आत्मगतम्]

तामाश्रित्य श्रुतिपथगतामाशया बद्धमूलः
संप्राप्तायां नयनविषयं रूढरागप्रवालः।
हस्तस्पर्शैर्मुकुलित इव व्यक्तरोमोद्गमत्वात्कुर्यातकान्तं
मनसिजतरुर्मां रसज्ञं फलस्य।।1।।

[प्रकाशम्] सखे गौतम!

प्रतीहारी—जेदु जेदु भट्टा असंणिहिदो गोदमो। (जयतु जयतु भर्ता। असंनिहितो गौतमः।)

राजा—[आत्मसगतम्] आः मालविकावृत्तान्तज्ञानाय मया प्रेषितः।

विदूषकः—[प्रविश्य] बड्ढदु भवं। (वर्धतां भवान्।)

राजा—जयसेने। जानीहि तावत्क्व देवीधारिणी सरुजचरणत्वाद्विनोद्यत इति।

प्रतीहारी—जं देव आणिवेदि। (यद्देव आज्ञापयति।) [इति निष्क्रान्ता।]

चौथा अङ्क

[अनमने से राजा आते हैं और साथ में प्रतीहारी आती है।]

राजा—[मन ही मन] अपनी प्यारी के सम्बन्ध की बातों से बढ़ी हुई आशा ही जिसकी जड़ है, प्यारी को देखने से जगा हुआ प्रेम ही जिसके पत्ते हैं और प्यारी के हाथ के स्पर्श से शरीर में उठे हुए रोंगटे ही जिसके फूल हैं, वह प्रेम का वृक्ष ही मुझे उसका मीठा फल भी चखाये।।1।।

[प्रकट] मित्र गौतम!

प्रतिहारी—जय हो, महाराज की जय हो। गौतम जी यहाँ नहीं हैं।

राजा—[मन ही मन] हाँ, ठीक है। मैंने ही तो उन्हें मालविका की खबर लेने के लिये भेजा है।

विदूषक—[आकर] बधाई है आपको।

राजा—जयसेना! जाओ देखो तो, देवी धारिणी अपना चोट लगा हुआ पैर लिए कहाँ जी बहला रही हैं।

प्रतीहारी—जैसी देवी की आज्ञा। [चली जाती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—गौतम! को वृत्तान्तस्तत्रभवत्यास्ते सख्याः?

विदूषकः—जो बिडलगहीदाए परहुदिआए। (यो, बिड़ालगृहीतायाः परभृतिकायाः।)

राजा—[सविषादम्] कथमिव।

विदूषकः—सा क्खु तवस्सिणी तए ण पिङ्गलच्छीए सारभाण्डभूघरए गुहाए विअ णिक्खित्ता। (सा खलु तपस्विनी तया पिङ्गलाक्ष्या सारभाण्डभूगृहे गुहायामिव निक्षिप्ता।)

राजा—ननु मत्संपर्कमुपलभ्य।

विदूषकः—अह इं। (अथ किम्।)

राजा—क एवं विमुखोऽस्माकम् येन चण्डीकृता देवी।

विदूषकः—सुणादु भवं परिव्वाजिआए मे कहिदं। हिओ किल तत्तहोदी इरावदी रुअक्कन्तचलणं देविं सुहपुच्छिआ आअदा। (शृणोतु भवान् परिव्राजिकया मे कथितम्। ह्यः किल तत्रभवतीरावती रुजाक्रान्तचरणां देवीं सुखपृच्छिकागता।)

राजा—ततस्ततः।

विदूषकः—तदो सा देवीए पुच्छिदा। किं णु ओलोइदो वल्लहजणो त्ति। ताए उत्तं। मन्दो वो उपआरो जं परिजणे संक्रन्तं वल्लहत्तणं ण जाणीअदि। (ततः सा देव्या पृष्टा। किन्ववलोकितो वल्लभजन इति। तयोक्तम्। मन्दो व उपचारः यत्परिजने संक्रान्तं वल्लभत्वं न ज्ञायते।)

राजा—अहो निर्भेदादृतेऽपि मालविकायामयमुपन्यासः शङ्कयति।

राजा—कहो, गौतम! तुम्हारी सखी मालविका के क्या समाचार हैं?

विदूषक—वही, जो बिल्ली के पंजे में पड़ी हुई कोयल के होते हैं।

राजा—[दुखी होकर] कैसे?

विदूषक—बेचारी तपस्विनी को उस पीली आँख वाली ने नीचे के भंडार वाली कोठरी में बन्द कर रखा है।

राजा—मेरे प्रेम की बात जानने के कारण ही उसे बन्द किया होगा।

विदूषक—और क्या?

राजा—ऐसा कौन हमारा बैरी है, जिसने देवी को इतना भड़का दिया है।

विदूषक—सुनिए! मुझसे परिव्राजिका जी कह रही थीं कि कल पैर में चोट खाई हुई देवी धारिणी से कुशल-मंगल पूछने इरावती वहाँ पहुँची थी।

राजा—तब उसके बाद।

विदूषक—तब उनसे महारानी ने पूछा—कहो, प्रियतम से इधर भेंट हुई थी? इस पर वे बोलीं—अब उन्हें प्रियतम न कहिए! क्या आप नहीं जानतीं कि वे अब दासियों से प्रेम करने लगे हैं?

राजा—यद्यपि बात खोलकर नहीं कहीं गई, फिर भी जान पड़ता है कि उन्होंने मालविका को लक्ष्य करके ही यह बात कही होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—तदो ताए अणुबन्धिज्जमाणा सा भवदो अविणअं अन्तरेण परिगदत्था किदा देवी। (ततस्तयानुबन्ध्यमाना सा भवतोऽविनयमन्तरेण परिगतार्था कृता देवी।)

राजा—अहो दीर्घरोषता तत्रभवत्याः, अतः परं कथय।

विदूषकः—किं अवरं। मालविआ बउलावलिआ अ पादालवासं णिगलपदीओ अदिट्ठसुज्जपादं णागकण्णआओ विअ अणुहोन्ति। (किमपरम्। मालविका बकुलावलिका च पातालवासं निगडपद्यावदृष्टसूर्यपादं नागकन्यके इवानुभवतः।)

राजा—कष्टं कष्टम्—

मधुरस्वरा परभृता भ्रमरी च विबुद्धचूतसङ्गिन्यौ।
कोटरमकालवृष्ट्या प्रबलपुरोवातया गमिते।। 2।।

अप्यत्र कस्यचिदुपक्रमस्य गतिः स्यात्।

विदूषकः—कहं भवस्सदि। जं सारभाण्डघरव्वावारिदा माहविआ देवीए संदिट्ठा। मह अंगुलीअअमुद्दिअं अदेक्खिअ ण मोत्तव्वा तुए हदासा मालविआ बउलावलिआ अ त्ति। (कथं भविष्यति। यत्सारभाण्डगृहव्यापारिता माधविका देव्या संदिष्टा। ममांगुलीयकमुद्रि- कामदृष्टवा न मोक्तव्या त्वया हताशा मालविका बकुलावलिका चेति।

राजा—[निःश्वस्य सपरामर्शम्।] सखे। किमत्र कर्तव्यम्]

विदूषकः—[विचिन्त्य] अत्थि एत्थ उवाओ। [अस्त्यत्रोपायः।)

राजा—क इव।

विदूषक—इस पर जब उन्होंने बहुत हठ किया, तो इरावती ने महारानी के आगे आपका पूरा कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया।

राजा—जान पड़ता है इरावती बहुत कुपित हो गई हैं। अच्छा, फिर क्या हुआ?

विदूषक—और क्या होना था? मालविका और बकुलावलिका के पैर में बेड़ी डालकर उन्हें नागकन्याओं के समान ऐसे पाताल में ले जाकर रख दिया गया है, जहाँ सूर्य की किरणें भी नहीं पहुँच सकतीं।

राजा—यह तो बड़ा कष्ट हुआ कि बौरे हुए आम के साथ रहने वाली मिठ बोली कोयल और भौंरी दोनों को, प्रचंड पुरवाई और असमय की वर्षा ने पेड़ के खोखले में बन्द कर दिया।।2।। कहो, अब उन्हें छुड़ाने का कोई उपाय हो सकता है या नहीं?

विदूषक—उपाय क्या होगा? उस निचले भंडार की रखवाली माधविका को देवी ने यह कह दिया है कि इन अभागिन मालविका और बकुलावलिका को बिना मेरी अँगूठी देखे कभी न छोड़ना।

राजा—[लंबी साँस लेते हुए कुछ सोचकर] क्यों मित्र! अब क्या किया जाये।

विदूषक—[सोचकर] एक उपाय है।

राजा—क्या?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—[सदृष्टिक्षेपम्] को वि अदिट्ठो सुणिस्सदि। कण्णे दे कहेमि। [इत्युपश्लिष्य कर्णे] एव्वं विअ। (कोप्यदृष्टः श्रोष्यति। कर्णो ते कथयामि एवमिव।) [इत्यावेदयति।]

राजा—[सहर्षम्] सुष्ठु। प्रयुज्यतां सिद्धये।

[प्रविश्य]

प्रतीहारी—देव! पवादसअणे देवी णिसण्णा रत्तचन्दणधारिणा परिअणहत्थगदेण चलणेण भअवदीए कहाहिं विणोदिज्जमाणा चिट्ठदि। (देव! प्रवातशयने देवी निषण्णा रक्तचन्दनधारिणा परिजनहस्तगतेन चरणेन भगवत्या कथाभिर्विनोद्यमाना तिष्ठति।)

राजा—तस्मादस्मत्प्रवेशयोग्योऽयमवसरः।

विदूषकः—भो। गच्छदु भवं। अहं वि देविं पेक्खिदुं अरित्तपाणी भविस्सं। (भो गच्छतु भवान्। अहमपि देवीं द्रष्टुमरिक्तापार्भविष्यामि।)

राजा—जयसेनायास्तावदस्मद्रहस्यं विदितं कुरु।

विदूषकः—तह। [इति कर्णे] एव्वं विअ होदि। (तथा। एवमिव भवति।) [इत्यावेद्य निष्क्रान्तः।]

राजा—जयसेने! प्रवातशयनमार्गमादेशय।

प्रतीहारी—इदो इदो देवो। (इत इतो देवः।)

[ततः प्रविशति शयनस्था देवी परिव्राजिका विभवतश्च परिवारः।]

धारिणी—भअवदि! रमणिज्जं कहावत्थु। तदो तदो। (भगवति! रमणीयं कथावस्तु। ततस्ततः।)

विदूषक—[इधर-उधर देखकर] कोई छिपकर सुन न रहा हो? आइए, कान में कहूँ। [पास सटकर कान में] यह हो सकता है। [कान में कह देता है।]

राजा—[प्रसन्न होकर] बहुत बढ़िया। बस कर ही डालो।

प्रतीहारी—[आकर] देव! इस समय महारानी बयार वाले भवन में पलँग पर बैठी हुई हैं, उनके पैर में लाल चन्दन लगा हुआ है, दासियाँ पैर को सँभाले हुए हैं और परिव्राजिका जी कथा सुनाकर उनका जी बहला रही हैं।

राजा—तो हमारे लिये वहाँ जाने का अच्छा अवसर है।

विदूषक—अच्छा आप चलिए। मैं भी हाथ में कुछ भेंट लेकर महारानी को देखने आ रहा हूँ।

राजा—जयसेना को भी अपनी सब बातें समझा दो।

विदूषक—अच्छा। [जयसेना के कान में] देखो! ऐसे करना होगा।

[सब बताकर चला जाता है।]

राजा—जयसेना! बयार वाले भवन तक ले तो चलो।

प्रतीहारी—इधर से आइए देव! इधर से।

[पलँग पर बैठी हुई देवी दिखाई देती हैं। पास में परिव्राजिका और बहुत सी दासियाँ बैठी हैं।]

धारिणी—यह तो बड़ी सुन्दर कथा कही आपने। हाँ भगवती, तो आगे क्या हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिव्राजिका—[सदृष्टिक्षेपम्] देवी। अतःपरं पुनः कथयिष्यामि। अत्र भवान्विदिशेश्वरः संप्राप्तः।

धारिणी—अम्हो भट्टा (अहो भर्ता।) [अहो इत्युत्थातुमिच्छति।]

राजा—अलमलमुपचारयन्त्रणया—

अनुचितनूपुरविरहं नार्हसि तपनीयपीठिकालम्बि।
चरणं रुजापरीतं कलभाषिणि! मां च पीडयितुम्।।3।।

धारिणी—**जेदु जेदु अज्जउत्तो।** (जयतु जयत्वार्यपुत्रः।)

परिव्राजिका—विजयतां देवः।

राजा—[परिव्राजिकां प्रणम्योपविश्य।] देवि! अपि सह्या वेदना।

धारिणी—**अज्ज अत्थि मे विसेसो।** (अद्यास्ति मे विशेषः।)

[ततः प्रविशति यज्ञोपवीतबद्धांगुष्ठः संभ्रान्तो विदूषकः।]

विदूषकः—**परित्ताअदु परित्ताअदु भवं। सप्पेणम्हि दट्ठो।** (परित्रायतां परित्रायतां भवान्। सर्पेणास्मि दष्टः।)

[सर्वे विषण्णाः।]

राजा—कष्टं कष्टम्। क्व भवान्परिभ्रान्तः।

विदूषकः—**देविं देक्खिस्सं त्ति आआरपुप्फग्गहणकारणादो पमदवणं गदोम्हि।** (देवीं द्रक्ष्यामीत्याचारपुष्पग्रहणकारणात्प्रमदवनं गतोऽस्मि।)

परिव्राजिका—[आँख घुमाकर] देवी! अब इससे आगे फिर कभी कहूँगी। लीजिए, विदिशा के महाराज आ रहे हैं।

धारिणी—अरे! स्वामी! [उठना चाहती हैं।]

राजा—बस, बस शिष्टाचार दिखाने का कष्ट न करो। सोने की चौकी पर रखे हुए अपने उस चोट वाले पैर को कष्ट देकर मुझे कष्ट न पहुँचाओ, जो बिना कारण ही बिछुओं का बिछोह सह रहा है।।3।।

धारिणी—जय हो, आर्यपुत्र की जय हो।

परिव्राजिका—आपकी विजय हो देव!

राजा—[परिव्राजिका को प्रणाम करके बैठते हुए।] कहो देवी! कुछ पीड़ा कम हुई।

धारिणी—हाँ, आज तो बहुत कम है।

[अपने हाथ के अँगूठे को जनेऊ से बाँधे हुए घबराया हुआ विदूषक आता है।]

विदूषक—अरे बचाइए महाराज! बचाइए! मुझे साँप ने काट लिया है।

राजा—यह तो बड़ा बुरा हुआ। कहाँ घूम रहे थे?

विदूषक—मैं देवी को देखने आने लगा, तो सोचा कि भेंट के लिये दो-चार फूल ही लेता चलूँ। उसके लिये मैं प्रमदवन चला गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारिणी—**हद्धी हद्धी। अहं एव्व बम्हणस्स जीविदसंसअणिमित्तं जादम्हि।** (हा धिक् हा धिक्। अहमेव ब्राह्मणस्य जीवितसंशयनिमित्तं जातास्मि।

विदूषकः—**तहिं असेअत्थवअकालणादो पसारिदो दक्खिणहत्थो। तदो कोडरणिग्गदेण सप्परूवेण कालेण दट्ठोम्हि। णं एदाणि दुवे दंसणपदाणि।** (तस्मिन्नशोकस्तबककारणात्प्रसारितो दक्षिणहस्तः। ततः कोटरनिर्गतेन सर्परूपेण कालेन दष्टोऽस्मि। नन्वेते द्वे दंशनपदे।) [इति दंशे दर्शयति]

परिव्राजिका—तेन हि दंशच्छेदः पूर्वकर्मेति श्रूयते। स तावदस्य क्रियताम्—

छेदो दंशस्य दाहो वा क्षतेर्वा रक्तमोक्षणम्।
एतानि दष्टमात्राणामायुष्याः प्रतिपत्तयः।। 4।।

राजा—संप्रति विषवैद्यानां कर्म। जयसेने! ध्रुवसिद्धिः क्षिप्रमानीयताम्।

प्रतीहारी—**जं देवो आवेणदि।** (यद्देव आज्ञापयति।)

विदूषकः—**अहो! पावेण मिच्चुणा गहीदोम्हि।** (अहो! पापेन मृत्युना गृहीतोऽस्मि।)

राजा—मा कातरो भूः। अविषोऽपि कदाचिद्दंशों भवेत्।

विदूषकः—**कहं ण भाइस्सं। सिमसिमा अन्ति मे अङ्गाइँ।** (कथं न भेष्यामि। सिमसिमायन्ति मेऽङ्गानि।) [इति विषवेगं रूपयति।]

धारिणी—**हा दंसिदं असुहं विआरेण अवलम्बथ बम्हणं।** (हा दर्शितमशुभं विकारेण अवलम्बध्वं ब्राह्मणम्)

धारिणी—हाय! हाय!! मेरे ही कारण बेचारे ब्राह्मण के प्राण संकट में पड़े हैं।

विदूषक—वहाँ ज्यों ही मैंने अशोक के फूलों का गुच्छा तोड़ने के लिये दाहिना हाथ फैलाया, त्यों ही उसके खोखले में से निकलकर साँप बने हुए उस काल ने आकर काट लिया। यह देखिए उसके दाँतों के चिह्न। [चिह्न दिखाता है।]

परिव्राजिका—साँप के डसने पर जो पहला काम किया जाता है, वह कर डालो, जहाँ साँप ने काटा हो, उस अंग को काट दिया जाये या जला दिया जाय या घाव में से लहू निकाल दिया गया तो साँप से डसे हुए मनुष्य के प्राण बच सकते हैं।।4।।

राजा—अब तो विष उतारने वाले वैद्य आयें, तभी काम चल सकता है। जयसेना! जाओ झटपट ध्रुवसिद्धि को तो बुला लाओ।

प्रतीहारी—जैसे देव की आज्ञा!

विदूषक—हाय रे! यह पापी मौत मुझे आकर पकड़ बैठी है।

राजा—घबराओ मत। कौन जाने साँप विषैला न भी हो।

विदूषक—क्यों न घबराऊँ, मेरे अंग-अंग जकड़े जा रहे हैं।

[विष चढ़ने का नाट्य करता है।]

धारिणी—हाय! हाय!! इसकी दशा तो बिगड़ती जा रही है! कोई सँभालो इस ब्राह्मण को।

[परिव्राजिका घबराकर सँभालती हैं।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[परिव्राजिका ससंभ्रममवलम्बते।]

विदूषकः—[राजानं विलोक्य] भो। भवदो बाल्लादो वि पिअवअस्सोम्हि। तं विआरिअ अपुत्ताए मे जणणीए जोगक्खनं वहेहि। (भोः। भवतो बाल्यादपि प्रियवयस्योऽस्मि। तं विचार्यापुत्राया मे जनन्या योगक्षेमं वह।)

राजा—मा भैषीर्गौतम। स्थिरो भव। अचिरात्त्वां वैद्यश्चिकित्सिष्यति।

[प्रविश्य]

जयसेना—देव! आणाविदो धुवसिद्धीविण्णावेदि इह एव्व आणीअदु सो गोदमो त्ति। (देव! आज्ञापितो ध्रुवसिद्धिर्विज्ञापयति—इहैवानीयतां स गौतम इति।

राजा—तेन हि प्रतिग्रहीतमेनं तत्रभवतः सकाशं प्रापय।

जयसेना—तहा। (तथा।)

विदूषकः—[देवीं विलोक्य] भोदि। जीवेअं वा ण वा। जं मए अत्तभवन्तं सेवमाणेण ते अवरद्धं तं मरिसेहि। (भवति। जीवेयं वा न वा। यन्मयात्रभवन्तं सेवामानेन तेऽपराद्धं तन्मृष्यस्व।]

धारिणी—दीहाऊ होहि। (दीर्घायुर्भव।)

[निष्क्रान्तो विदूषकः प्रतीहारी च।]

राजा—प्रकृतिभीरुस्तपस्वी ध्रुवसिद्धिमपि यथार्थनामानं सिद्धिमन्तं न मन्यते।

[प्रविश्य]

जयसेना—जेदु जेदु भट्टा। ध्रुवसिद्धीविण्णावेदि—उदकुम्भविहाणेण सप्पमुद्दिअं किंपि कप्पिदवं। तं अण्णेसीअदुत्ति। (जयतु जयतु भर्ता। ध्रुवसिद्धिर्विज्ञापयति—उदकुम्भविधानेन सर्पमुद्रितं किमपि कल्पयितव्यम्। तदन्विष्यतामिति।)

विदूषक—[राजा की ओर देखकर] देखिए! मैं बचपन से आपका मित्र रहा हूँ, इस नाते मेरी निपूती माँ की देखभाल करते रहिएगा।

राजा—डरो मत गौतम। धीरज धरो। अभी वैद्य तुम्हें अच्छा कर देंगे।

जयसेना—[जाकर] देव! मैंने ध्रुवसिद्धि को आपकी आज्ञा सुनादी। उन्होंने कहा है कि यहीं ले आया जाये।

राजा—तो इन्हें सँभालकर उनके पास ले चलो।

जयसेना—अच्छा।

विदूषक—[महारानी को देखकर] देवी! कौन जाने मैं जीऊँ या न जीऊँ। महाराज की सेवा करते हुए मुझसे जो कुछ भूल-चूक हुई हो वह क्षमा कीजिएगा।

धारिणी—भगवान करे तुम बहुत दिन जीओ।

[विदूषक और प्रतीहारी चले जाते हैं।]

राजा—यह बेचारा स्वभाव से ही इतना डरपोक है कि जैसा नाम वैसे गुण वाले ध्रुवसिद्धि पर भी इसे भरोसा नहीं होता।

जयसेना—[आकर] जय हो, स्वामी की जय हो। ध्रुवसिद्धि ने कहा है कि पानी के घड़े के सहारे किसी ऐसी वस्तु से विष उतारा जायेगा, जिसमें नागमुद्रा जड़ी हुई हो इसलिये कोई ऐसी वस्तु ढूँढ़कर लाओ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारिणी—इवं सप्पमुद्दिअं। अंगुलीअअं। पच्छा मम हत्थे देहि णं। (इदं सर्पमुद्रितमङ्गुलीयकम्। पश्चान्मम हस्ते देह्येतत्।) [इत्यंगुलीयकं ददाति।]

[प्रतीहारी गृहीत्वा प्रस्थिता।]

राजा—जयसेने। कर्मसिद्धावाशु प्रतिपत्तिमानय।

प्रतीहारी—जं देवो आणवेदि। (यद्देव आज्ञापयति।)

परिव्राजिक—यथा मे हृदयमाचष्टे तथा निर्विषो गौतमः।

राजा—भूयादेवम्।

[प्रविश्य]

जयसेना—जेदु देवो भट्टा। णिवुत्तविसवेगो गोदमो मुहुत्तेण पकिदित्थो संवुत्तो। (जयतु देवो भर्ता। निवृत्तविषयवेगो गौतमो मुहूर्तेन प्रकृतिस्थः संवृतः।)

धारिणी—दिट्ठिआ वअणीआदो मुत्तम्हि। (दिष्ट्या वचनीयान्मुक्तास्मि।)

प्रतीहारी—एसो उण वाहतओ अमच्चो विण्णवेदि—राअकज्जं बंहु मन्तिदव्वं दंसणेण अणुग्गहं इच्छामि त्ति। (एष पुनर्वाहतकोऽमात्यो विज्ञापयति—राजकार्यं बहु मन्त्रयितव्यम् दर्शनेनानुग्रहमिच्छामीति।)

धारिणी—गच्छदु अज्जउत्तो कज्जसिद्धीए! (गच्छत्वार्यपुत्रः कार्यसिद्धये।)

राजा—देवि। आतपाक्रान्तोऽयमुद्देशः शीतक्रिया चास्या रुजः प्रशस्ता। तदन्यत्र नीयतां शयनम्।

देवी—बालिगाओ। अज्जउत्तवअणं अणुचिट्ठह। (बालिकाः! आर्यपुत्रवचनमनुतिष्ठत।)

धारिणी—लो लो। मेरी अँगूठी नागमुद्रा जड़ी हुई है। काम हो जाने पर मुझे ही लौटा देना।

[अँगूठी निकालकर देती है। प्रतिहारी लेकर चलती है।]

राजा—जयसेना! काम हो जाने पर शीघ्र ही समाचार देना।

प्रतीहारी—जैसी देव की आज्ञा। [चली जाती है।]

परिव्राजिका—मेरा मन तो कह रहा है कि गौतम का विष उतर गया।

राजा—आपकी ही बात सच्ची हो।

जयसेना—[आकर] देव की जय हो। गौतम का विष थोड़ी ही देर में उतर गया और अब वे भले-चंगे हो गए हैं!

धारिणी—बड़ी बात हुई कि मैं कलंक से बच गई।

प्रतिहारी—मंत्री वाहतक ने कहलवाया है कि राज-काज की बहुत-सी बातों पर विचार करना है, इसलिये दर्शन की कृपा चाहता हूँ।

धारिणी—जाइए आर्यपुत्र! राज-काज देखिए।

राजा—देवी! यहाँ तो धूप आ गई है। ऐसे रोगों में ठंड ही अच्छी होती है। इसलिये अपना पलँग दूसरी ओर उठवा लीजिए।

देवी—लड़कियों! आर्य पुत्र जो कह रहे वैसा ही करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिजनः—तह। (तथा)

[निष्क्रान्ता देवी परिव्राजिका परिजनश्च।]

राजा—जयसेने! मां गूढ़ेन पथा प्रमदवनं प्रापय।

जयसेना—इदो इदो देवो। (इत इतो देवः।)

राजा—जयसेने। ननु समाप्तकाम्यो गौतमः।

जयसेना—अह इं। (अथ किम्।)

राजा—

इष्टाधिगमनिमित्तं प्रयोगमेकान्तसाध्यमपि मत्वा।
संदिग्धमेव सिद्धौ कातरमाशङ्कते हृदयम्।।5।।

[प्रविश्य]

विदूषकः—वड्ढदु भवं। सिद्धाणि दे मङ्गलकम्माणि। (वर्धतां भवान्। सिद्धानि ते मङ्गलकर्माणि।)

राजा—जयसेने! त्वमपि स्वं नियोगमशून्यं कुरु।

जयसेना—जं देवो आणवेदि। (यद्देव आज्ञापयति।) [इति निष्क्रान्ता।]

राजा—गौतम! क्षुद्रा माधविका। न खलु किंचिद्विचारितमनया।

विदूषकः—देवीए अंगुलीअअमुद्दिअं देक्खिअ कहं विआरेदि। (देव्या अङ्गुलीयकमुद्रां दृष्ट्वा कथं विचारयति।)

दासियाँ—अच्छा।

[महारानी, परिव्राजिका और दासियाँ, सब चली जाती हैं।]

राजा—जयसेना! मुझे गुप्त-मार्ग से प्रमदवन की ओर ले चलो।

जयसेना—इधर से आइए देव, इधर से।

राजा—जयसेना! गौतम ने अपना काम पूरा कर लिया होगा न?

जयसेना—जी हाँ।

राजा—अपनी प्यारी को पाने के लिये हमने जो उपाय रचा है, उसे पक्का समझते हुए भी मेरा हृदय ऐसा सन्देही और अधीर है कि उसे अभी तक काम पूरा होने में खटका बना ही हुआ है।।5।।

विदूषक—[आकर] बधाई है आपको। आपके सब काम सध गए।

राजा—जयसेना! जाओ तुम भी अपना काम देखो।

जयसेना—जैसी देव की आज्ञा। [चली जाती है।]

राजा—कहो गौतम! माधविका तो बड़ी चालाक है। उसने कुछ आगा-पीछा तो नहीं किया?

विदूषक—देवी की अँगूठी देख लेने पर वह क्या आगा-पीछा करती?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—न खलु मुद्रामधिकृत्य ब्रवीमि। एतयोर्द्वयोः किंनिमित्तो मोक्षः किं वा देव्याः परिजनमतिक्रम्य भवान्संदिष्ट इत्येवमनया प्रष्टव्यम्।

विदूषकः—**णं पुच्छिदोम्हि! पुणो मन्दस्स मे तस्सिं पच्चुप्पण्णा मदी।** (ननु पृष्टोऽस्मि। पुनर्मन्दस्य मे तस्मिन्प्रत्युत्पन्ना मतिः।)

राजा—कथ्यताम्।

विदूषकः—**भणिदं मए। देव्वचिन्तएहिं विण्णवाविदो राआ—सोवसग्गं वो णक्खत्तं। ता अवस्सं सव्वबन्धमोक्खो करीअदु त्ति।** (भणितं मया। दैवचिन्तकैर्विज्ञापितो राजा—सोपसर्गं वो नक्षत्रम्। तदवश्यं सर्वबन्धमोक्षः क्रियतामिति।)

राजा—[सहर्षम्] ततस्ततः।

विदूषकः—**तं सुणिम देवीए इरावदीए चित्तं रक्खन्तीए राआ किल मोएदि त्ति अहं संविद्वो त्ति। तदो जुज्जदि त्ति ताए एव्वं संपादिदो अत्थो।** (तच्छु त्वा देव्या इरावत्याश्चित्तं रक्षन्त्या राजा किल मोचयतीत्यहँ संदिष्ट इति। ततो युज्यत इति तयैवं सम्पादितोऽर्थः।)

राजा—[विदूषकं परिष्वज्य] सखे! प्रियोऽहं खलु तव—

नहि बुद्धिगुणेनैव सुहृदामर्थदर्शनम्।
कार्यसिद्धिपथः सूक्ष्मःस्नेहेनाप्युलभ्यते।।6।।

राजा—मैं अँगूठी की बात नहीं पूछ रहा हूँ। उन दोनों को तुमने छुड़ाया क्या कहकर? उसने यह तो पूछा ही होगा कि इतने सेवकों के रहते हुए भी देवी ने आपको ही क्यों भेजा?

विदूषक—हाँ, यह तो पूछा था। पर उसी समय मुझ मूर्ख की बुद्धि चेत गई और मेरे मुँह से अचानक एक अच्छी बात निकल पड़ी।

राजा—क्या?

विदूषक—मैंने कहा कि ज्योतिषयों ने महाराज से कहा है कि आपके ग्रह बिगड़े हुए हैं, इसलिये इस समय सब बन्दियों को छुड़वा दीजिए।

राजा—[प्रसन्न होकर] तब उसके बाद।

विदूषक—जब देवी ने ज्योतिषियों की यह बात सुनी, तब उन्होंने सोचा कि यदि हम अपने सेवकों को छुड़ाने के लिये किसी और को भेजेंगे तो इरावती बुरा मान जायँगी। इसलिये उनका मन रखने के लिये उन्होंने मुझे ही बुलाकर यह काम सौंप दिया, जिससे इरावती यह समझें कि राजा ही बन्दियों को छुड़ा रहे हैं, मैं नहीं छुड़ा रही हूँ। माधविका इसे सच मान बैठी और उन्हें छोड़ दिया।

राजा—[विदूषक को गले लगाकर] मित्र! सचमुच तुम मेरे बड़े प्यारे हो। क्योंकि केवल बुद्धि बल से ही कोई अपने मित्रों का काम नहीं कर देता। अपने सिर कोई काम लेकर उसे अन्त तक निभा देना सचमुच ऐसा टेढ़ा होता है कि वह तभी पूरा हो पाता है जब काम करने वाला अपने मित्र से पक्का स्नेह भी करता हो।।6।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—तुवरदु भवं। समुद्दघरए सहीसहिदं मालविअं ठाविअ भवन्तं पच्चुग्गदोम्हि। (त्वरतां भवान्। समुद्रगृहे सखीसहितां मालविकां स्थापयित्वा भवन्तं प्रत्युद्गतोऽस्मि।)

राजा—अहमेनां संभावयामि। गच्छाग्रतः।

विदूषकः—एदु भवं। [परिक्रम्य] एदं समुद्दघरं। (एतु भवान्। इदं समुद्रगृहम्।)

राजा—[साशङ्कम्] वयस्य! एषा कुसुमावचयव्यग्रहस्ता सख्यास्ते परिचारिका चन्द्रिका संनिकृष्टमागच्छति। इतस्तावदावां भित्तिगूढौ भवावः।

विदूषकः—अहो। कुम्भीलएहिं कामुएहिं च परिहरणीआ क्खु चन्दिआ। (अहो कुम्भीरकैः कामुकैश्च परिहरणीया खलु चन्द्रिका।)

[उभौ यथोक्तं कुरुतः।]

राजा—गौतम! कथं नु ते सखी मां प्रतिपालयति। एहि। एनां गवाक्षमाश्रित्य विलोकयावः।

विदूषकः—तह। (तथा।)

[उभौ विलोकयन्तौ तिष्ठतः।]

[ततः प्रविशति मालविका बकुलावलिका च।]

बकुलावलिका—सहि! पणम भट्टारं। (सखि! प्रणाम भर्तारम्।)

मालविका—णमो दे। (नमस्ते।)

राजा—शङ्के मे प्रतिकृतिं निर्दिशति।

मालविका—[सहर्षं, द्वारमवलोक्य सविषादम्] हला! मं विप्पलम्भेसि। (सखि। मां विप्रलम्भयसि।)

विदूषक—अच्छा, अब आप झटपट चलिए; क्योंकि मैं समुद्र घर में बकुलावलिका और मालविका को बैठाकर आपके पास आया था।

राजा—चलो, मैं अभी उसे चलकर मना लेता हूँ। चलो आगे-आगे।

विदूषक—आइए आप [घूमकर] यह रहा समुद्रघर।

राजा—[डरते हुए] देखो मित्र! तुम्हारी सखी इरावती की दासी चन्द्रिका फूल चुनती हुई इधर ही चली आ रही है। चलो इस भीत के पीछे छिप जाया जाये।

विदूषक—हाँ, चोरों और जारों को चन्द्रिका से बचते ही रहना चाहिए।

[दोनों भीत के पीछे छिप जाते हैं।]

राजा—आओ गौतम! इस खिड़की में से देखा जाये कि तुम्हारी सखी मालविका मेरे लिये कैसे प्रतीक्षा कर रही है।

विदूषक—अच्छा। [दोनों खिड़की में से झाँकते हैं।]

[मालविका और बकुलावलिका दिखाई पड़ती हैं।]

बकुलावलिका—सखी! स्वामी को प्रणाम करो।

मालविका—आपको प्रणाम है।

राजा—जान पड़ता है यह मेरा चित्र दिखा रही है।

मालविका—[प्रसन्नता के साथ द्वार खोलती है, फिर दुखी होकर] अच्छा सखी! तुम मुझे मूर्ख बना रही हो?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—हर्षविषादाभ्यामत्रभवत्याः प्रीतोऽस्मि।

सूर्योदये भवति या सूर्यास्तमये च पुण्डरीकस्य।
वदनेन सुवदनायास्ते समवस्थे क्षणादूढे।।7।।

बकुलावलिका—णं एसो चित्तगदो भट्टा। (नन्वेष चित्रगतो भर्ता।)

उभे—(प्रणिपत्य।) जेदु भट्टा। (जयतु भर्ता।)

मालविका—हला! तदा संभमदिट्ठे भट्टिणो रूवे जहा ण वितिण्हम्हि तहा अज्जवि मए भाविदो अवितिण्हदंसणो भट्टा। (सखि! तदा संभ्रमदृष्टे भर्तु रूपे यथा न वितृष्णास्मि तथाद्यापि मया भावितोऽवितृष्णदर्शनो भर्ता।)

विदूषकः—सुदं भवदा। तत्तहोदि—चित्ते जहा दिट्ठो ण तहा दिट्ठो भवं त्ति मन्तेदि। मुहा दाणिं मञ्जूसा विअ रअणभण्डअं जोव्वणगव्वं वहेसि। (श्रुतं भवता। तत्रभवती—चित्रे यथा दृष्टो न तथा दृष्टो भवानिति मन्त्रयति। मुधेदानीं मञ्जूषेव रत्नभाण्डं यौवनगर्वं वहसि।

राजा—सखे! कुतूहलवानपि निसर्गशालीनः स्त्रीजनः। पश्य—

कात्स्न्येन निर्वर्णयितुं च रूपमिच्छन्ति तत्पूर्वसमागमानाम्।
न च प्रियेष्वायतलोचनानां समग्रवृत्तीनि विलोचनानि।।8।।

मालविका—हला! का एसा पासपरिउत्तमुहेण भट्टिणा सिणिद्धाए दिट्ठीए णिज्झाईअदि। (सखि! कैषा पार्श्वपरिवृत्तमुखेन भर्त्रा मे स्निग्धया दृष्ट्या निध्यायते।)

राजा—इस समय इनका प्रसन्न होना और दुखी होना दोनों मुझे बड़े प्यारे लगते हैं। सूर्य के निकलते और छिपते समय कमल जैसे-जैसे खिलता और मुरझाता है, ठीक वैसी-वैसी ही झलक झण भर में इस सुन्दरी के मुँह पर दिखाई पड़ गई है।।7।।

बकुलावलिका—पर चित्र में भी तो स्वामी ही हैं।

दोनों—[प्रणाम करती हुई] स्वामी की जय हो।

मालविका—सखी! उस दिन हड़बड़ी में महाराज को मैं जितना नहीं देख पाई उतना आज इस चित्र में जी भरकर महाराज का रूप देखकर भी मैं अघा नहीं रही हूँ।

विदूषक—आप कुछ समझे? उनके कहने का अर्थ यह है कि जैसे सुन्दर आप चित्र में दिखाई दे रहे हैं, वैसे आप सचमुच नहीं दिखाई दिए थे। इसलिये जैसे रत्न की छूँछी पिटारी भी अपने को रत्नों की कहकर झूठे ही ऐंठती है, वैसे ही आप में भी कुछ है नहीं, आप झूठे ही अपने यौवन की डींग हाँगते हैं।

राजा—मित्र! अपने प्यारों से मिलने के लिये उतावली होती हुई स्त्रियाँ स्वभाव से ही बड़ी लजीली होती हैं। देखो—स्त्रियाँ जिस पुरुष से पहले-पहल मिलती हैं, उसे वे जी भरकर देख तो लेना चाहती हैं, पर उन बड़ी-बड़ी आँखों वाली सुन्दरियों की आँखें अपने प्यारे की ओर ठीक से उठ ही नहीं पातीं।।8।।

मालविका—क्यों सखी? ये कौन देवी हैं, जिनकी ओर महाराज मुँह घुमाकर बड़ी प्रेमभरी चितवन से देख रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुलावलिका—णं इअं पासगदा इरावदी। (नन्वियं पार्श्वगतेरावती।)

मालविका—सहि! अदक्खिणो विअ भट्टा मे पडिभादि जो सव्वं देवीजणं उज्झिअ एक्काए मुहे बद्धलक्खो। (सखि! अदक्षिण इव भर्ता मे प्रतिभाति यः सर्वं देवीजनमुज्झित्वैकस्या मुखे बद्धलक्ष्यः।)

बकुलवालिका—[आत्मगतम्] चित्तगदं भट्टारअं परमात्थदो संकप्पिअ असूअदि। होदु। कीडिस्सं दाव एदाए। [प्रकाशम्] हला भट्टिणो वल्लहा एसा। (चित्रगतं भर्तारं परमार्थतः संकल्पयासूयति। भवतु। क्रीडिष्यामि तावदेतया। सखि! भतुर्वल्लभैषा।)

मालविका—तदो किं दाणिं अत्ताणं आआसइस्सं। (ततः किमिदनीमात्मानमायासयिष्यामि।) [इति सायूसं परावर्तते।]

राजा—सखे! पश्य—

भ्रूभङ्गभिन्नतिलकं स्फुरिताधरोष्ठं सासूयमाननमितः परिवर्तन्त्या।
कान्तापराधकुपितेष्वनया विनेतुः संदर्शितेव ललिताभिनयस्य शिक्षा।। 9।।

विदूषकः—अणुणअसज्जो दाणिं होहि। (अनुनयसज्ज इदानीं भव।)

मालविका—अज्जगोदमो एत्थ एव संसेवदि णं। (आर्यगौतमोऽत्रैव संसेवत एनाम्।)

[पुनः स्थानान्तराभिमुखी भवितुमिच्छति।]

बकुलावलिका—[मालविकां रुद्ध्वा।] ण क्खु कुविदा दाणिं तुमं। (न खलु कुपितेदानीं त्वम्।)

बकुलावलिका—ये महाराज के पास इरावती जी बैठी हुई हैं।

मालविका—क्यों सखी! महाराज का प्रेम सब पर एक-सा नहीं दिखाई पड़ता, क्योंकि वे सब रानियों को छोड़कर बस एक का ही मुँह देखे जा रहे हैं।

बकुलावलिका—[मन ही मन] यह भोली, चित्र में बने हुए महाराज को सचमुच महाराज समझकर उन पर रूठी जा रही है। अच्छी बात है। मैं भी इसके साथ विनोद करती हूँ। [प्रकट] सखी! ये तो महाराज की प्यारी है।

मालविका—तब मैं क्यों तिल-तिल अपनी देह जलाऊँ। [डाह से मुँह फेर लेती है।]

राजा—देखो मित्र! इसने डाह से अपना मुख घुमा लिया है। भौंहों के चढ़ाने से हटी हुई इसके माथे की बिन्दी और इसके फड़कते हुए निचले ओठ को देखने से ऐसा जान पड़ता है, मानो स्वामी के अपराध पर रूठने की जो शिक्षा इसने अपने गुरु से ली, वही अभिनय करके दिखला रही हो।।9।।

विदूषक—तो चलिए। अब मनाने के लिय तैयार हो जाइए।

मालविका—आर्य गौतम भी तो यहाँ बैठे इनकी सेवा कर रहे हैं।

[वहाँ से फिर कहीं और हट जाना चाहती है।]

बकुलावलिका—[मालविका को रोककर] अरे तुम रूठकर तो नहीं जा रही हो?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालविका—जइ चिरं कुविदं एव्व मं मण्णेसि एसो पच्चाणीअदि कोवो। (यदि चिरं कुपितामेव मां मन्यसे एव प्रत्यानीयते कोपः।)

राजा—[उपेत्य]

कुप्यसि कुवलयनयने चित्रार्पितचेष्टया किमेतन्मे।
ननु तव साक्षादयमहमनन्यसाधारणो दासः।। 10।।

बकुलाविका—जेदु जेदु भट्टा। (जयतु जयतु भर्ता।)

मालविका—[आत्मगतम्] कहं चित्तगदो भट्टा मए असूइदो। (कथं चित्रगतो भर्ता मयासूयितः।) [प्रकाशं सव्रीडवदनमञ्जलिं करोति।]

[राजा मदनकातर्यं रूपयति।]

विदूषकः—किं भवं उदासीणो विअ दीसइ। (किं भवानुदासीन इव दृश्यते।)

राजा—अविश्वसनीयत्वात्सख्यास्तव।

विदूषकः—अत्तहोदीए अअं कहं तुइ अविस्सासो। (अत्रभवत्यामयं कथं तवाविश्वासः।)

राजा—श्रूयताम्—

पथि नयनयोः स्थित्वा स्थित्वा तिरोभवति क्षणात्
सरति सहसा बाह्वोर्मध्यं गतापि सखी तव।
मनसिजरुजा क्लिष्टस्यैवं समागममायया
कथमिव सखे विस्रब्धं स्यादिमां प्रति मे मनः।। 11।।

मालविका—यदि तुम समझती हो कि मैं बहुत रूठी ही रहती हूँ, तो लो मैं रूठ ही जाती हूँ।

राजा—[पास पहुँचकर] हे कमलनयनी! चित्र में बने हुए मेरे भाव को ही देखकर तुम मुझसे क्यों रूठी जा रही हो? तुम्हारा यह अनन्य दास तो तुम्हारे सामने ही खड़ा है!।10।।

बकुलावलिका—जय हो, स्वामी की जय हो।

मालविका—[मन ही मन] तो क्या मैं सचमुच चित्र में बने हुए स्वामी से रूठी हुई थी।

[लजाती हुई हाथ जोड़ती है। राजा प्रेम में व्याकुल होने का नाट्य करते हैं।]

विदूषक—आप चुपचाप क्यों खड़े हो गए हैं?

राजा—भाई! तुम्हारी सखी पर भरोसा नहीं हो रहा है?

विदूषक—क्यों, इन पर भरोसा क्यों नहीं हो रहा है?

राजा—सुनो! ये मेरी आँखों में बैठी-बैठी देखते-देखते ओझल हो जाती हैं और मेरी बाँहों में आकर भी अचानक निकल जाती हैं। इस मिलन की माया में फँसे हुए मेरे प्रेम के रोगी मन को इन पर कैसे भरोसा हो।।11।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुलावलिका—सहि! बहुसो क्खु भट्टा विप्पलद्धो। ता तुए अत्ता विस्सणिज्जो करीअदु। (सखि! बहुशः किल भर्ता विप्रलब्धः। तत्वयात्मा विश्वसनीयः क्रियताम्।)

मालविका—सहि! मह उण मन्दभग्गाए सिविणसमाअमो वि भट्टिणो दुल्लहो आसि। (सखि! मम पुनर्मन्दभाग्यायाः स्वप्नसमागमोऽपि भर्तुर्दुर्लभ आसीत्।)

बकुलावलिका—भट्टा। कहेदु से उत्तरं। (भर्ता कथयत्वस्या उत्तरम्।)

राजा—

उत्तरेण किमात्मैव पञ्चवाणाग्निसाक्षिकम्।
तव सख्यै मया दत्तो न सेव्यः सेविता रहः।। 12।।

बकुलाविलका—अणुगहीदम्हि। (अनुगृहीतास्मि।)

विदूषकः—[परिक्रम्य ससंभ्रमम्] बउलावलिए! एसो बालासोअरुक्खस्स पल्लवाइँ लङ्घेदि हरिणे। एहि णिवारेम णं। (बकुलावलिके! एष बालाशोकवृक्षस्य पल्लवानि लङ्घयति हरिणः। एहि, निवारयाम एनम्।)

बकुलाविका—तह। (तथा।) [इति प्रस्थिता।]

राजा—वयस्य! एवमेवास्मिन्रक्षणक्षणेऽवहितेन त्वया भवितव्यम्।

विदूषकः—एव्वं वि गोदमो सन्दिसेअदि। (एवमपि गौतमः सन्दिष्यते।)

बकुलावलिका—[परिक्रम्य] अज्ज गोदम! अहं अप्पआसे चिट्ठामि। तुमं दुवाररक्खओ होहि। (आर्य गौतम! अहमप्रकाशे तिष्ठामि। त्वं द्वाररक्षको भव।)

बकुलावलिका—सखी! तुमने महाराज को बहुत छकाया है। अब कुछ ऐसा तो करो कि वे तुम पर भरोसा करने लगे।

मालविका—सखी! मुझ अभागिनी की तो स्वप्न में भी महाराज से भेंट नहीं हुई।

बकुलावलिका—महाराज! इसका तो आप ही उत्तर दे सकते हैं।

राजा—उत्तर क्या, मैं तुम्हारी सखी से सेवा नहीं कराना चाहता। मैं तो प्रेम की अग्नि को साक्षी बनाकर अकेले में ही उनकी सेवा करने के लिए अपने को ही इनके हाथ सौंप देता हूँ।।12।।

बकुलावलिका—बड़ी कृपा हुई मुझपर।

विदूषक—[घूमकर घबराहट के साथ] अरी बकुलावलिका! देख-देख, इन नन्हें-नन्हें अशोक के पत्तों को हिरण चरे जा रहा है। चल, इसे भगा तो दें।

बकुलावलिका—चलिए। [जाना चाहती है।]

राजा—देखो मित्र! तुम इसी प्रकार सावधानी से हमारी देखभाल करते रहना।

विदूषक—क्या यह बात भी गौतम को समझानी होगी?

बकुलावलिका—[घूमकर] आर्य गौतम! मैं इधर छिपकर बैठती हूँ। तुम जाकर द्वार पर चौकसी करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—जुज्ज। (युज्यते।)

[निष्क्रान्ता बकुलावलिका।]

विदूषकः—इमं दाव फलिहक्खम्भं अस्सिदो होमि। [इति तथा कृत्वा] अहो सुहप्फरिसदा सिलाविसेसस्स। (इमं तावत्स्फटिकस्तम्भमाश्रितो भवामि। अहो सुखस्पर्शता शिलाविशेषस्य।) [इति निद्रायते।]

[मालविका ससाध्वसा तिष्ठति।]

राजा—

विसृज सुन्दरि संगमसाध्वसं तव चिरात्प्रभृति प्रणयोन्मुखे।
परिगृहाण गते सहकारतां त्वमतिमुक्तलताचरितं मयि।। 13।।

मालविका—देवीए भएण अत्तणो वि पिअं कादुं ण पारेमि। (देव्या भयेनात्मनोऽपि प्रियं कर्तुं न पारयामि।)

राजा—अयि! न भेतव्यम्।

मालविका—[सोपालम्भम्] जो ण भाअदि सो मए भट्टिणीदंसणे विट्ठसामत्थो भट्ठा (यो न बिभेति स मया भट्टिनीदर्शने दृष्टसामर्थ्यो भर्ता।)

राजा—

दाक्षिण्यं नाम बिम्बोष्ठि नायकानां कुलव्रतम्।
तन्मे दीर्घाक्षि! ये प्राणास्ते त्वदाशानिबन्धनाः।। 14।।

विदूषक—अच्छी बात है।

[बकुलावलिका चली जाती है।]

विदूषक—तब तक इस स्फटिक के खंभे के सहारे चलकर बैठता हूँ। [बैठता है।] वाह! कैसी ठंडी और चिकनी शिला है।

[ऊँघने लगता है।]

[मालविका डरी-सी खड़ी रहती है।]

राजा—हे सुन्दरी! मेरे गले लगने से डरो मत। न जाने कितने दिनों से मैं तुमसे मिलने को अधीर हो रहा था। देखो! जैसे माधवी लता आम से लिपट जाती है, वैसे ही आओ, तुम भी तुझसे लिपट जाओ।।13।।

मालविका—मुझे महारानी से बड़ा डर लगता है, इसलिये चाहते हुए भी ऐसा नहीं कर सक रही हूँ।

राजा—अजी! डरने की क्या बात है?

मालविका—[उलहना देते हुए] जी हाँ, आज जो नहीं डर रहे हैं, महाराज का साहस, उस दिन देवी इरावतीजी के आने पर मैं भली-भाँति देख चुकी हूँ।

राजा—हे बिंबा के समान लाल-लाल ओठोंवाली! प्रेमी लोग यों दिखाने के लिये सभी से प्रेम करते हैं, पर हे बड़ी-बड़ी आँखोंवाली! मेरे प्राण तो तुम्हें ही पाने की आशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदनुगृह्यतां चिरानुरक्तोऽयं जनः। [इति संश्लेषमुपजनयति।]

[मालविका नाट्येन परिहरति।]

राजा—[आत्मगतम्] रमणीयः खलु नवाङ्गनानां मदनविषयावतारः। तथा हि इयम्—

हस्तं कम्पयते रुणद्धि रशनाव्यापारलोलाङ्गुलीः
स्वौ हस्तौ नयति स्तनावरणतामलिङ्ग्यमाना बलात्।
पातुं पक्ष्मलनेत्रमुन्नमयतः साचीकरोत्याननं
व्याजेनाप्यभिलाषपूरणसुख निर्वर्तयत्येव मे।। 15।।

[ततः प्रविशतीरावती निपुणिका च।]

इरावती—हञ्जे णिउणिए। सच्चं तुमं परिगदत्था चन्दिआए। समुद्दघरअलिन्द-सइदो एआई अज्जगोदमो दिट्ठो त्ति। (हञ्जे निपुणिके! सत्यं त्वं परिगतार्था चन्द्रिकया। समुद्रगृहालिन्दशयित एकाकी आर्यगौतमी दृष्ट इति।)

निपुणिका—अण्णहा कहं भट्टिणीए विण्णावेमि। (अन्यथा कथं भट्टिन्यै विज्ञापयामि।)

इरावती—तेण हि तहिं एव्व गच्छम्ह संसआदो मुत्तं पिअवस्सं पुच्छिदुं अ। (तेन हि तत्रैव गच्छामः संशयान्मुक्तं प्रियवयस्यं प्रष्टुं च।)

निपुणिका—सावसेसं विअ भट्टिणीए वअणं। (सावशेषमिव भट्टिन्या वचनम्।)

इरावती—अण्णं अ चित्तगदं अज्जउत्तं पसादेदुं। (अन्यच्च चित्रगतमार्यपुत्रं प्रसादयितुम्।)

में लटके हुए हैं।।14।। इसलिये तुम्हारे प्रेम में इतने दिनों से डूबे हुए इस दास पर अब तो कृपा करो। [गले लगने को बढ़ते हैं, मालविका नाट्य से अपने को छुड़ाती है।]

राजा—[मन ही मन] नई नवेलियों की प्रेमभरी चटकमटक भी कितनी सुन्दर होती है। क्योंकि इनके हाथ काँप रहे हैं, अपनी खुली हुई मेखला को ये अपनी चंचल अँगुलियों से थामे जा रही हैं। जब मैं बलपूर्वक गले लगाने चलता हूँ, तो दोनों हाथों से अपने स्तन ढक लेती हैं और जब मैं इनके सुन्दर पलकों की आँखोंवाला मुँह चूमने को बढ़ता हूँ तो ये अपना मुँह फेर लेती हैं। इस हाथापाई में मेरे हाथ कुछ भी नहीं लग रहा है, फिर भी मुझे वैसा ही सुख मिल रहा है मानो मेरी सब इच्छाएँ पूरी होती जा रही हों।।15।।

[इरावती और निपुणिका आती हैं।]

इरावती—क्यों री निपुणिका! क्या चन्द्रिका ने सचमुच तुझसे कहा था कि आर्य गौतम, समुद्र-घर के बाहर अकेले सोए हैं।

निपुणिका—मैं स्वामिनी से झूठ थोड़े ही बोलती!

इरावती—तो चलो वहीं चलकर मित्र विदूषक से पूछ लिया जाये कि अब वे ठीक हो गए हैं या नहीं और...

निपुणिका—स्वामिनी! आप कुछ और कहना चाहती थीं।

इरावती—हाँ, यही कि वहाँ चलकर चित्र में बने हुए आर्यपुत्र को भी मना लिया जाये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निपुणिका—अह दाणिं कहं णु भट्टा एव्वं अणुणीअदि। (अथेदानीं कथं नु भर्तैवमनुनीयते।)

इरवती—मुद्धे! जारिसो चित्तगदो णं तारिसो एव्व अण्णसंकन्तहिअओ अज्जउत्तो। केवलं उवआरादिक्कमं पमज्जिदुं अअं आरम्भो। (मुग्धे! यादृशश्चित्रगतो ननु तादृश एवान्यसंक्रान्तहृदय आर्यपुत्रः। केवलमुपचारातिक्रमं प्रमार्जितुमयमारम्भः।)

निपुणिका—इदो इदो भट्टिणी (इत इतो भट्टिनी।)

[उभे परिक्रामतः।]

[प्रविश्य]

चेटी—जेदु जेदु भट्टिणी भट्टिणि! देवी भणादि—ण मे मच्छरस्स एसो कालो। तेण क्खु बहुमाण वड्ढेदुं वअस्साए सह णिअलबन्धण किदा मालविआ। जइ अणुमण्णसि अज्जउत्तस्स पिअं कादुं तहा करेमि। जं तुह इच्छिअं तं मे भणाहि त्ति। (जयतु जयतु भट्टिनी। भट्टिनी! देवी भणति—न मे मत्सरस्यैष कालः। तेन खलु बहुमानं वर्धयितुं वयस्यया सह निगडबन्धने कृता मालविका। यद्यनुमन्यसे आर्यपुत्रस्य प्रियं कर्तुं तथा करोमि। यत्तवेष्टं तन्मे भणेति।)

इरावती—णाअरिए। विण्णावेहि देवीं—का वअं भट्टिणी णिओजेदुं परिअणणिग्गहेण दंसिदो मइ अणुग्गहो। कस्स वा पसादेण अअं जणो वड्ढदि त्ति। (नागरिके! विज्ञापय देवीम्—का वयं भट्टिनीं नियोजयितमुम्। परिजननिग्रहेण दर्शितो मय्यनुग्रहः कस्य वा प्रसादेनायं जनो वर्धत इति।)

चेटी—तह। (तथा।) [इति निष्क्रान्ता।]

निपुणिका—तो आप चलकर महाराज को ही क्यों नहीं मना लेतीं।

इरावती—अरी पगली! दूसरों से प्रेम करनेवाले आर्यपुत्र हमारे लिये वैसे ही हैं जैसे उनका मित्र। उस दिन मैंने उनके मनाने पर भी जो उनकी बात न मानने की ढिठाई कर दी है, उसी को धोने के लिये मैं यह सब कर रही हूँ।

निपुणिका—इधर से आइए स्वामिनी, इधर से।

[दोनों घूमती हैं।]

चेटी—[आकर] जय हो, स्वामिनी की जय हो। महारानी ने कहलाया है कि अब हम लोगों को महाराज से रूठे नहीं रहना चाहिए। मैंने तुम्हारी बात रखने के लिये ही मालविका और उसकी सखी को बाँध रखा है। यदि आर्यपुत्र को मनाने की बात तुम्हें भी जँचती हो, तो मैं उसका उपाय करूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो वह मुझे कहला देना।

इरावती—देखो नागरिका! महारानी से जाकर कह देना कि उनसे काम करानेवाली हम कौन होती हैं? अपनी दासियों को बाँधकर उन्होंने मुझपर कृपा दिखाई है। उनकी कृपा न हो तो हम लोगों का इतना मान कैसे हो?

चेटी—अच्छा। [चली जाती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निपुणिका–[परिक्रम्यावलोक्य च] **भट्टिणि। एसो दुवारुद्देसे समुद्दघरअस्स विपणिगदो विअ बलीवद्दो अज्जगोदमो आसीणो एव्व णिद्दाअदि।** (भट्टिनी! एष द्वारोद्देशे समुद्रगृहस्य विपणिगत इव बलीवर्द आर्यगौतम आसीन एव निद्रायते।)

इरावती–**अच्चाहिदं। ण क्खु सावसेसो विसविआरो हवे।** (अत्याहितम्। न खलु सावशेषो विषविकारो भवेत्।)

निपुणिका–**पसण्णमुहवण्णो दीसइ। अवि अ धुवसिद्धिणा चिइच्छदो। त से असङ्कणिज्जं पावं।** (प्रसन्नमुखवर्णो दृश्यते। अपि च ध्रुवसिद्धिना चिकित्सितः। तदस्याशङ्कनीयं पापम्।)

विदूषकः–[उत्स्वप्नायते] **भोदि मालविए।** (भवति मालविके!)

निपुणिका–**सुदं भट्टिणीए। कस्स एसो अत्तणिओअसंपादणे विस्ससणिज्जो हदासो। सव्वकालं इदो एव्व सोत्थिवाअणमोदएहिं कुक्खि पूरिअ संपदं मालविअं सिविणावेदि।** (श्रुतं भट्टिन्या। कस्यैष आत्मनियोगसम्पादने विश्वसनीयो हताशः सर्वकालमित एव स्वस्तिवाचनमोदकैः कुक्षिं पूरयित्वा साम्प्रतं मालविकां स्वप्नायते।)

विदूषकः–**इरावदीं अदिक्कमन्ती होहि।** (इरावतीमतिक्रामन्ती भव।)

निपुणिका–**एदं अच्चाहिदं। इमं भुअङ्गभीरुअं ब्रह्मबन्धुं इमिणा भुअंगकुडिलेण दण्डकट्ठेण खम्भन्तरिदा भाअइस्सं।** (एतदत्याहितम्। इमं भुजंगभीरुं ब्रह्मबन्धुमनेन भुजङ्गकुटिलेन दण्डकाष्ठेन स्तम्भान्तरिता भीषयिष्यामि।)

इरावती–**अरिहदि एव्व किदग्घो उवद्दवस्स।** (अर्हत्येव कृतघ्न उपद्रवस्य।)

[निपुणिका विदूषकस्योपरि दण्डकाष्ठं पातयति।]

निपुणिका–[घूमकर और देखकर] यह देखिए स्वामिनी! जैसे हाट में लेटा हुआ साँड़ नींद लेता है, वैसे ही आर्य गौतम भी समुद्रघर के द्वार पर बैठे सो रहे हैं।

इरावती–यह तो बड़ा बुरा हुआ। कहीं विष का विकार अभी बचा न रह गया हो।

निपुणिका–पर इनका मुँह तो बड़ा प्रसन्न दिखाई दे रहा है और फिर स्वयं ध्रुवसिद्धि ने इनका विष उतारा है। इसलिये घबराने की कोई बात नहीं है।

विदूषक–[स्वप्न में बड़बड़ाता हुआ] हे देवी मालविका!

निपुणिका–सुना स्वामिनी? अपना काम कराने के लिये इस अभागे का कौन विश्वास करेगा। सदा तो यह आपके दिए हुए पूजा के लड्डुओं से पेट भरा करता है और आज स्वप्न में इसे मालविका सूझ रही है।

विदूषक–तुम इरावती से भी आगे बढ़ जाओ।

निपुणिका–यह तो बड़ी बुरी बात है। साँप से डरनेवाले इस बाँभन को अब इसी साँप जैसी टेढ़ी लकड़ी से ओट में खड़ी होकर डराती हूँ।

इरावती–ऐसे कृतघ्न के साथ ऐसी ही कुचाल करनी चाहिए।

[निपुणिका विदूषक के ऊपर लकड़ी गिरा देती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—[सहसा प्रबुध्य] **अविहा अविहा। भो वअस्स। सप्पो मे उवरि पडिदो।** (अविधा अविधा। भो वयस्य। सर्पो मे उपरि पतितः।)

राजा—[सहसोपसृत्य] सखे न भेतव्यं न भेतव्यम्।

मालविका—[अनुसृत्य] **भट्टा। मा दाव सहसा णिक्कम। सप्पो त्ति भणीअदि।** (भर्तः! मा तावत्सहसा निष्क्राम। सर्प इति भण्यते।)

इरावती—**हद्धी हद्धी। भट्टा इदो एव्व धावदि।** (हा धिक्! हा धिक्! भर्ता इत एव धावति।)

विदूषकः—[सप्रहासम्] **कहं दण्डकट्ठं एदं। अहं उण जाणे जं मए केदईकण्टएहिं डंसं करिअ सप्पस्स उवरि अअसो किदं तं मे फलिदं त्ति।** (कथं दण्डकाष्ठमेतत्। अहं पुनर्जाने यन्मया केतकीकण्टकैर्दशं कृत्वा सर्पस्योपर्ययशः कृतं तन्मे फलितमिति।)

[प्रविश्य पटाक्षेपेण।]

बकुलावलिका—**मा दाव भट्टा पविसदु। इह कुडिलगई सप्पो विअ दीसदि।** (मा तावद्भर्ता प्रविशतु। इह कुटिलगतिः सर्प इव दृश्यते।)

इरावती—[स्तम्भान्तरिता राजानं सहसोपेत्य] **अवि णिव्विग्घमणोरहो दिवासंकेदो मिहुणस्स।** (अपि निर्विघ्नमनोरथो दिवासङ्केतो मिथुनस्य।)

[सर्वे इरावतीं दृष्ट्वा संभ्रान्ताः।]

राजा—प्रिये! अपूर्वोऽयमुपचारः।

इरावती—**वउलावलिए। दिट्ठिआ दुच्चाहिआरविसआ संपुण्णा दे पइण्णा।** (बकुलावलिके! दिष्ट्या दूत्याभिसारविषया संपूर्णा ते प्रतिज्ञा।)

विदूषक—[सहसा जागकर] हाय, हाय। अरे मित्र! मुझपर साँप आ गिरा है।

राजा—[सहसा आगे बढ़कर] डरो मत मित्र! डरो मत।

मालविका—[पीछे-पीछे] स्वामी! ऐसे न जाइए। वह कह रहा है कि साँप है।

इरावती—हाय, हाय! स्वामी इधर ही दौड़े आ रहे हैं।

विदूषक—[हँसकर] अरे! यह तो लकड़ी है। मैं तो समझा था कि मैंने केतकी के काँटे से साँप के दाँतों का चिह्न बनाकर जो साँप पर कलंक लगाया था, उसी का मुझे फल मिल रहा है।

बकुलावलिका—[पर्दा हटाते हुए आकर] स्वामी! उधर न जाइए। वहाँ टेढ़ा चलता हुआ कुछ साँप जैसा दिखाई दे रहा है।

इरावती—[खंभे के पीछे छिपी हुई राजा के पास आकर] कहिए! दिन में मिलने का संकेत करनेवाले जोड़े के मन की साध पूरी हो गई।

[सब इरावती को देखकर घबरा जाते हैं।]

राजा—प्यारी! यह तुम कैसी अनोखी बात कर रही हो?

इरावती—बकुलावलिका! तुझे बधाई है कि इन दोनों को मिलाने की जो तूने प्रतिज्ञा की थी, वह आज पूरी हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बकुलावलिका—पसीददु भट्टिणी! किं मए किदं त्ति देवो पुच्छिदव्वो। दद्दुरा वाहरन्ति त्ति किं देवो पुहवीएँ वरिसिदुं विरमदि। (प्रसीदतु भट्टिनि! किं मया कृतमिति देवः प्रष्टव्यः। दर्दुरा व्याहरन्तीति किं देवः पृथिव्यां वर्षितुं विरमति।)

विदूषकः—मा दाव। भोदीए दंसणमत्तेण अत्तभवं पणिवादलङ्घणं विसुमरिदो। तुमं उण अज्जवि पसादं ण गेण्हसि। (मा तावत्। भवत्याः दर्शनमात्रेणात्रभवान्प्रणिपात-लङ्घनं विस्मृतः। त्वं पुनरद्यापि प्रसादं न गृह्णासि।

इरावती—कुविदा दाणिं अहं किं करिस्सं।। (कुपितेदानीमहं किं करिष्यामि।)

राजा—एवमेतदस्थाने कोप इत्यनुपपन्नं त्वयि। तथा हि।

कदा मुखं वरतनु कारणादृते तवागतं क्षणमपि कोपपात्रताम्।
अपर्वणि ग्रहकलुषेन्दुमण्डला विभावरी कथय कथं भविष्यति।। 16।।

इरावती—अट्ठाणे त्ति सुट्ठु वाहरिदं अज्जउत्तेण। अण्णसंकन्तेसु अम्हाणं भाअहेएसु जइ उण कुप्पेअं तदो णं अहं हस्सा भवेअं। (अस्थान इति सुष्ठु व्याहृतमार्यपुत्रेण। अन्यसंक्रान्तेष्वस्माकं भागधेयेषु यदि पुनः कुप्येयम् ततो नन्वहं हास्या भवेयम्।)

राजा—त्वमन्यथा कल्पयसि। अहं पुनः सत्यमेव कोपस्थानं न पश्यामि। कुतः—

नार्हति कृतापराधोऽप्युत्सवदिवसेषु परिजनो बन्धुम्।
इति मोचिते मयैते प्रणिपतितुं मामुपगते च।। 17।।

बकुलावलिका—क्रोध न करें स्वामिनी! मैंने क्या किया है? देव से ही पूछ लीजिए। कहीं भला पृथ्वी पर पानी बरसाने के लिये देव मेंढकों की टर्र-टर्र की प्रतीक्षा थोड़े ही करते हैं।

विदूषक—अजी! ऐसा न कहिए। उस दिन महाराज आपके पैरों पड़े, हाथ जोड़े, पर आप टस से मस न हुईं, रूठकर चल दीं और इधर महाराज की भलमनसाहत देखिए कि आपको देखते ही उन्होंने पिछली सब बातें भुलाकर एक ओर रख दीं, फिर भी आप अभी तक खिंची हुई हैं।

इरावती—खिंची होकर भी मैं इनका क्या कर लूँगी?

राजा—पर बिना बात के रूठना भी तो तुम्हें शोभा नहीं देता। क्योंकि सुन्दरी! बताओ तो इससे पहले क्या कभी तुम्हारा मुँह बिना कारण के क्षण भर के लिये भी लाल हुआ है? भला बताओ बिना ग्रहण की रात आए क्या कभी चन्द्र-ग्रहण लग सकता है।।16।।

इरावती—यह तो आर्यपुत्र ने ठीक कहा कि मैं बिना कारण के रूठ रही हूँ। हमारे स्वामी कहीं और मन लगायें और उसपर हम रूठने लगें, यह तो सचमुच जग हँसाई की बात है।

राजा—तुम तो सब बातें उल्टी ही समझती हो। मुझे तो सचमुच इसमें रूठने की कोई बात दिखाई ही नहीं देती है। क्योंकि मैंने तो इन दोनों को इसीलिये छोड़ दिया कि अपने सेवकों को उत्सव के दिन अपराध करने पर भी बाँधकर नहीं रखना चाहिए। वहाँ से छूटने पर ये दोनों मुझे प्रणाम करने के लिये ही यहाँ चली आई थीं।।17।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इरावती—णिउणिए! गच्छ। देवीं विण्णावेहि—दिट्ठोभवदीए पक्खवादो णं अज्ज त्ति। (निपुणिके! गच्छ। देवीं विज्ञापय—दृष्टो भवत्याः पक्षपातो नन्वद्येति।)

निपुणिका—तह। (तथा।) [इति निष्क्रान्ता।]

विदूषकः—[आत्मगतम्] अहो अणत्थो संपडिदो। बन्धणब्भट्टो गिहकवोदो बिडालिआए आलोए पडिदो। (अहो अनर्थः संपतितः वन्धनभ्रष्टो गृहकपोतो बिडालिकाया आलोके पतितः।)

निपुणिका—[प्रविश्यापवार्य] भट्टिणि! जदिच्छादिट्ठाए माहविआए आचक्खिदं एव्वं क्खु एदं णिव्वुत्तं त्ति। (भट्टिनि! यदृच्छादृष्ट्या माधविकयाख्यातम्—एवं खल्वेतन्निर्वृत्तमिति।) [इति कर्णे कथयति।]

इरावती—[आत्मगतम्] उववण्णं। सच्च अअं एत्थ ब्रह्मबन्धुणा किदो पओआ। [विदूषकं विलोक्य प्रकाशम्] इअं इमस्स कामतन्तसचिवस्स णीदी। (उपपन्नम्। सत्यमयमत्र ब्रह्मबन्धुना कृतः प्रयोगः। इयमस्य कामतन्त्रसचिवस्य नीतिः।)

विदूषकः—भोदि! जदि णीदिगदं एक्कं वि अक्खरं पढेअं ण मए अत्तभवं पासिंदो हवे! (भवति! यदि नीतिगतमेकमप्यक्षरं पठेयं ननुमयात्रभवान्पाषितो भवेत्।)

राजा—[आत्मगतम्] कथं नु खल्वस्मात्सङ्कटादात्मानं मोचयिष्यामि।

[प्रविश्य]

जयसेना—देव! कुमारी वसुलच्छी कन्दुअं अणुधावन्दी पिङ्गलवाणरेण बलीअं तासिदा अङ्कणिसण्णा देवीए पवादकिसलअं विअ वेवमाणा ण किंवि पकिदिं पडिवज्जइ। (देव! कुमारी वसुलक्ष्मीः कन्दुकमनुधावन्ती पिङ्गलवानरेण बलवत्त्रासिताङ्क-निषण्णा देव्याः प्रवातकिसलयमिव वेपमाना न किंचित्प्रकृतिं प्रतिपद्यते।

इरावती—निपुणिका! जाओ तो, महारानी से कह आओ कि आप जैसा मानती हैं, वह आज हमने देख लिया।

निपुणिका—जी अच्छा। [चली जाती है।]

विदूषक—[मन ही मन] अरे यह तो सब गड़बड़ घोटाला हो गया। पिंजड़े से छूटा हुआ कबूतर बिल्ली के सामने आ पड़ा है।

निपुणिका—[अलग आकर] स्वामिनी! अभी माधविका मुझे मिली थी, उसने बताया कि यह सब ऐसे हुआ है। [कान में कहती है।]

इरावती—[मन ही मन] समझ गई, यह सब इसी बाँभन की करतूत है। [विदूषक को देखकर प्रकट] यह सब इसी प्रेम-नीति के मंत्री की चाल है।

विदूषक—देवि! यदि मैं नीति का एक अक्षर भी पढ़ा होता तो क्या महाराज को मैं कभी ऐसे फँसने देता।

राजा—[मन ही मन] अब इस संकट से कैसे छुटकारा पाया जाये।

जयसेना—[आकर] देव! कुमारी वसुलक्ष्मी गेंद के पीछे दौड़ रही थीं कि इतने में ही एक पीला बन्दर वहाँ आ पहुँचा। उसे देखकर कुमारी बहुत डर गई है और देवी की गोद में पड़ी हुई, आँधी से हिलते हुए पत्ते के समान थर-थर काँप रही हैं। अभी तक उन्हें चेत नहीं हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—कष्टं कष्टम्। कातरो बालभावः।

इरावती—[सावेगम्] **तुवरदु अज्जउत्तो णं समासासिदुं। मा से संतासजणिदो विआरो वड्ढदु।** (त्वरतामार्यपुत्र एनां समाश्वासयितुम्। मास्याः सत्रासजनितो विकारो वर्धताम्।)

राजा—अयमेनामहं संज्ञापयामि। [इति सत्वरं परिक्रामति।]

विदूषकः—**साहु रे पिङ्गलबाणर साहु। परित्तादो तुए सपक्खो।** (साधु रे! पिङ्गलवानर साधु। परित्रातस्त्वया स्वपक्षः।)

[निष्क्रान्तो राजा विदूषकश्च इरावती निपुणिका प्रतीहारी च।]

मालविका—**हला देविं चिन्तिअ वेवदि मे हिअअं। ण जाणे अदो वरं किं वा अणुहविदव्वं हविस्सदि त्ति।** (सखि। देवीं चिन्तयित्वा वेपते से हृदयम्। न जानेऽतः परं किं वानुभवितव्यं भविष्यतीति।)

[नेपथ्ये]

अच्चरिअं अच्चरिअं अपुण्णे एव्व पंचरत्ते दोहलस्स मुउलेहिं संणद्धो तवणीआसोओ जाव देवीए णिवेदेमि। (आश्चर्यमाश्चर्यम्। अपूर्ण एव पञ्चरात्रे दोहदस्य मुकुलैः संनद्धस्तपनीयाशोकः यावद्देव्यै निवेदयामि।)

[उभौ श्रुत्वा प्रहृष्टे।]

बकुलावलिका—**आस्ससिदु सही। सच्चप्पइण्णा देवी।** (आश्वसितु सखी! सत्यप्रतिज्ञा देवी।)

राजा—बड़ा बुरा हुआ, बड़ा बुरा हुआ। बच्चों का तो डरने का स्वभाव ही होता है।

इरावती—[घबराकर] चलिए आर्यपुत्र! झटपट चलकर उसे सँभालिए। कहीं इस घबराहट उसे और कुछ न हो जाये।

राजा—मैं चलकर अभी उसे चेत में लाता हूँ। [झटपट घूमते हैं।]

विदूषक—वाह रे पीले बन्दर! वाह, आज तो तुमने हमारे महाराज को सचमुच बचा लिया।

[राजा, विदूषक, इरावती, निपुणिका, प्रतीहारी सब चले जाते हैं।]

मालविका—सखी! जब महारानी का ध्यान आता है, तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं अब न जाने क्या-क्या दंड भोगना पड़ेगा?

[नेपथ्य में]

वड़ा आश्चर्य है! बड़ा आश्चर्य है। अभी इस सुनहरे अशोक के दोहद [चाह] पूरे हुए, पाँच रातें भी नहीं बीत पाईं कि उसमें कलियाँ फूट आई हैं। चलूँ, महारानी को इसकी सूचना देती हूँ।

[दोनों सुनकर प्रसन्न होती हैं]

बकुलावलिका—लो सखी! धीरज धरो। देवी जो एक बार कह देती हैं उससे पीछे नहीं हटतीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालविका—तेण ही पमदवणपालिआए पिट्ठदो होमि। (ते हि प्रमदवनपालिकायाः पृष्ठतो भवामि।)

बकुलावलिका—तह। (तथा।)

[इति निष्क्रान्ते]

।। इति चतुर्थोऽङ्कः।।

मालविका—तो चलो, हम लोग भी प्रमदवन की मालिन के पीछे-पीछे वहीं चली चलें।

बकुलावलिका—चलो।

[दोनों चली जाती हैं।]

चौथा अङ्क समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चमोऽङ्कः

[ततः प्रविशत्युद्यानपालिका ।]

उद्यानपालिका—उवक्खितो मए किदसक्कारविहिणो तवणीआसोअस्स वेदिआबन्धो जाव अणुट्ठिदणिओअं अत्ताणं देवीए णिवेदेमि। [परिक्रम्य] अहो दैवस्स अणुकम्पणीआ मालविआ। तस्सिं तह चण्डिआ देवी इमिणा असोअकुसुमवुत्तन्तेण पसादसुमुही हविस्सदि कहिं णु क्खु देवी हवे। [विलोक्य] अम्हो एसो देवीए परिअणब्भन्तरो किंवि जदुमुद्दालंछिदं मंजूसं गेण्हिअ चदुस्सालादो कुज्जो सारसिओ णिक्कामदि। पुच्छिसंदावणं। [ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टहस्तः कुब्जः।] सारसिअ कहिं पत्थिदोसि। (उपक्षिप्तो मया कृतसत्कारविधिस्तपनीयाशोकस्य वेदिकाबन्धः। यावदनुष्ठितनियोगमात्मानं देव्यै निवेदयामि। अहो दैवस्यानुकम्पनीया मालविका! तस्यां तथा चण्डी देव्यनेनाशोककुसुमवृत्तान्तेन प्रसादसुमुखी भविष्यति। कुत्र नु खलु देवी भवेत्। अहो एष देव्याः परिजनाभ्यन्तरः किमपि जतुमुद्रालाञ्छितां मञ्जूषां गृहीत्वा चतुशालातः कुब्जः सारसिको निष्क्रामति। पृच्छामि तावदेनम्। सारसिक! कुत्र प्रस्थितोऽसि।)

सारसिकः—महुअरिए विज्जाभरिआणं ब्रह्मणाणं णिच्चदक्खिणं मासिईं पुरोहिदस्स हत्थं पावइस्सं। (मधुकरिके। विद्याभरितानां ब्राह्मणानां नित्यदक्षिणां मासिकीं पुरोहितस्य हस्तं प्रापयिष्यामि।)

मधुकरिका—अह किंणिमित्तं। (अथ किंनिमित्तम्?)

पाँचवाँ अङ्क

[मालिन आती है।]

मालिन—मैंने सब घास-पात निकालकर इस सुनहरे अशोक की मेंड़ ठीक ढंग से बाँध दी है। अब यहाँ का काम ठीक हो गया है। चलूँ देवी को बता आऊँ [घूमकर] भगवान ने बेचारी मालविका की लाज रख ली। उसपर बिगड़ी बैठी हुई महारानी को, जब अशोक के फूलने का समाचार मिलेगा तो वे खिल उठेंगी। पर इस समय महारानी होंगी कहाँ? [देखकर] अरे! यह महारानी के रनिवास का कुबड़ा सेवक सारसिक लाख से बन्द की हुई पिटारा लिए हुए, रनिवास से निकला चला आ रहा है। चलूँ, इसी से पूछ लूँ। [हाथ में पिटारी लिए हुए कुबड़ा दिखाई देता है।] कहो सारसिक! किधर चले?

सारसिक—मधुकरिका! विद्वान् ब्राह्मणों को सदा महीने-महीने पर जो दक्षिणा दी जाती है वही सब बाँटने के लिये पुरोहितजी को सौंपने जा रहा हूँ।

मधुरिका—यह दक्षिणा क्यों बाँटी जा रही है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारसिकः—जदप्पहुदि सेणावदी जण्णतुरंगरक्खणे णिउत्तो भट्टदारओ वसुमित्तो तदप्पहुदि तस्स आउसणिमित्तं णिक्कसदसुवण्णपरिमाणं दक्खिणं देवी दक्खिणीएहिं परिग्गाहेदि। (यतःप्रभृति सेनापतिर्यज्ञतुरंगरक्षणे नियुक्तो भर्तृदारको वसुमित्रस्ततः प्रभृति तस्यायुर्निमित्तं निष्कशतसुवर्णपरिमाणां दक्षिणां देवी दक्षिणीयैः परिग्राहयति।)

मधुरिका—अह कहिं देवी। किं वा अणुचिट्ठदि। (अथ कुत्र देवी। किं वानुतिष्ठति।)

सारसिकः—मंगलघरे आसणत्था भविअ विदम्भविसआदो भादुणा वीरसेणेण पेसिदं लेहं लेहकरेहिं वाइअमाणं सुणादि। (मङ्गलगृहे आसनस्था भूत्वा विदर्भविषयाद्भ्रात्रा वीरसेनेन प्रेषितं लेखं लेखकरैर्वाच्यमानं शृणोति।)

मधुकरिका—को उण विदब्भराअवुत्तन्तो सुणीअदि। (कःपुनर्विदर्भराजवृत्तान्तः श्रूयते।)

सारसिकः—वसीकिदो क्खु वीरसेणप्पमुहेहिं भत्तुओ विजअदंडेहिं विदब्भणाहो। मोइदो से दाआदो माहवसेणो दूदो अ तेण महासाराणि रअणाणि वाहणाणि सिप्पआरिआभूइट्ठं परिअणं उवाअणीकरिअ भट्टिणो सआसं पेसिदो त्ति। (वशीकृतः किल वीरसेनप्रमुखैर्भर्तुर्विजयदण्डैर्विदर्भनाथः। मोचितोऽस्य दायादो माधवसेनः। दूतश्च तेन महासाराणि रत्नानि वाहनानि शिल्पकारिकाभूयिष्ठं परिजनमुपायनीकृत्य भर्तुः सकाशं प्रेषित इति।)

मधुकरिका—गच्छ अणुचिट्ठ अत्तणो णिओअं। अहं वि देविं पेक्खिस्सं। (गच्छानुतिष्ठात्मनो नियोगम्। अहमपि देवीं प्रेक्षिष्ये।)

[इति निष्क्रान्तौ।]

।। प्रवेशकः ।।

सारसिक—जबसे अश्वमेध यज्ञ के घोड़ों की रक्षा के लिये राजकुमार वसुमित्र सेनापति बनाए गए हैं, तभी से उनके चिरंजीवी होने के लिये योग्य ब्राह्मणों को चार सौ स्वर्ण-मुद्राओं के बराबर धन दक्षिणा में दिया जाता है।

मधुरिका—अच्छा यह तो बताओ कि महारानी हैं कहाँ और क्या कर रही हैं?

सारसिक—महारानी जी के भाई वीरसेन ने विदर्भ से जो चिट्ठी भेजी है, उसी को वे मंगलघर में बैठी हुई अपने लेखक से बँचवाकर सुन रही हैं।

मधुकरिका—विदर्भ के राजा का क्या समाचार मिला?

सारसिक—महाराज की विजयिनी सेना लेकर वीरसेन ने विदर्भ के राजा को जीत लिया है और उनके चचेरे भाई माधवसेन को छुड़ा लिया है। साथ ही उन्होंने एक दूत के साथ बहुत-से अनमोल रत्न, हाथी, घोड़े और बहुत अच्छे-अच्छे कलाकार सेवक, महाराज के पास भेंट में भेजे हैं।

मधुरिका—अच्छा, जाओ, तुम भी अपना काम कर आओ मैं भी अभी महारानी के दर्शन को जाती हूँ। [दोनों जाते हैं।]

।। प्रवेशक ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[ततः प्रविशति प्रतिहारी ।]

प्रतीहारी–आणत्तम्हि असोअसक्कारवावुदाए देवीए–विण्णावेहि अज्जउत्तम्। इच्छम्मि अज्जउत्तेण सह असोअरुक्खस्स पसूणलच्छि पच्चक्खीकादुं त्ति। ता जाव धम्मासणा गदं देवं पडिवालेमि। (आज्ञाप्तास्म्यशोकसत्कारव्यापृतया देव्या–विज्ञापयार्यपुत्रम्। इच्छाम्यार्यपुत्रेण सहाशोकवृक्षस्य प्रसूनलक्ष्मीं प्रत्यक्षीकर्तुमिति। तद्यावद्धर्मासनगतं देवं प्रतिपालयामि।)

[इति परिक्रामति।]

[नेपथ्ये वैतालिकौ]

प्रथमः–विजयतां विजयतां देवः। दिष्ट्या दण्डैरेव रिपुशिरःसु वर्तते देवः। परभृतकलव्याहरेषु त्वमात्तरतिर्मधु नयसि विदिशातीरोद्यानेष्वनङ्ग इवाङ्गवान्। विजयकरिणामालानत्वं गतैः प्रबलस्य ते वरद वरदारोधोवृक्षैः सहावनतो रिपुः।। 1।।

द्वितीयः–

विरचितपदं वीरप्रीत्या सुरोपमसूरिभि-
श्चरितमुभयोर्मध्येकृत्य स्थितं क्रथकैशिकान्।
तव हृतवतो दण्डानीकैर्विदर्भपतेः श्रियं
परिघगुरुर्भिर्दोर्भिर्विष्णोः प्रसह्य च रुक्मिणीम्।। 2।।

[प्रतीहारी आती है।]

प्रतीहारी–अशोक की पूजा की धूम-धाम में लगी हुई महारानी ने आज्ञा दी है कि जाओ महाराज से कह दो कि मैं चाहती हूँ कि आर्यपुत्र के साथ ही चलकर फूले हुए अशोक की शोभा देखूँ। तो चलूँ न्यायासन पर बैठे हुए महाराज के पास पहुँचूँ। [घूमती है।]

[नेपथ्य में दो वैतालिक]

पहला–जय हो, देव की जय हो। बधाई है महाराज को कि आपने अपनी शक्ति से अपने शत्रुओं को पैरों तले रौंद दिया। हे मनचाहा वर देनेवाले राजा! आप तो इधर साक्षात् कामदेव के समान, कोयल की सुन्दर कूक सुनते हुए विदिशा के तीर पर फैले हुए उपवनों में अपना वसन्त बिता रहे हैं उधर आपका बलवान् शत्रु वरदा के तीर पर खड़े हुए उन वृक्षों के साथ-साथ झुका दिया गया है, जो अब आपकी सेना के विजयी हाथियों के बाँधने के खूँटे बने खड़े हैं।। 1।।

दूसरा–हे देवताओं के समान राजा! विदर्भ में दो ही तो बड़ी-बड़ी घटनाएँ हुई हैं। एक तो आपका अपनी सेना भेजकर विदर्भ के राजा को हराना, दूसरी, भगवान् श्रीकृष्णजी द्वारा उनकी अर्गला के समान बड़ी-बड़ी भुजाओं से रुक्मिणीजी का हरा जाना। वीरों से प्रेम रखनेवाले कवि लोग अब इन दोनों घटनाओं के गीत बना-बनाकर गा रहे हैं।।2।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीहारी—एसो जअसद्दसूइदप्पत्थाणो भट्टा इदो एव्व आअच्छदि। अहं वि दाव इमस्स पमुहादो लोआदो ओसरिअ खम्भन्तरिदा होमि। (एष जयशब्दसूचित-प्रस्थानो भर्तेत एवागच्छति। अहमपि तावदस्य प्रमुखाल्लोकादपसृत्य स्तम्भान्तरिता भवामि। [इत्येकांते स्थिता।]

[प्रविश्य सवयस्यो राजा]

राजा—

कान्तां विचिन्त्य सुलभेतरसंप्रयोगां श्रुत्वा विदर्भपतिमानमितं बलैश्च।
धाराभिरातप इवाभिहतं सरोजं दुःखायते मम मनः सुखमश्नुते च।।3।।

विदूषकः—जह अहं पेक्खिामि तह एक्कन्तसुहिदो भवं हविस्सदि। (यथाहं प्रेक्ष्ये तथा एकान्तसुखितो भवान्भविष्यति।

राजा—कथमिव।

विदूषकः—अज्ज किल देवीए अव्वं पंडितकोसिई भणिदा—भअवदि! जं तुमं पसाहणगव्वं वहसि तं दंसेहि मालविआए सरीरे विवाहणेवत्थं त्ति। ताए सविसेसालंकिदा मालविआ। तत्तहोदी कदावि पूरए भवदोवि मणोरहं। (अद्य किल देव्यैवं पण्डितकौशिकी भणिता—भगवति! यत्त्वं प्रसाधनगर्वं वहसि तद्दर्शय मालविकायाः शरीरे विवाहनेपत्थ्यमिति। तया सविशेलेषालंकृता मालविका। तत्रभवती कदाचित्पूरयेद्भवतोऽपि मनोरथम्।)

राजा—सखे! मदपेक्षामनुप्राप्य अनया धारिण्या पूवाचरितैः संभाव्यत एवैतत्।

प्रतीहारी—इस जयजयकार से जान पड़ता है कि महाराज वहाँ से उठकर इधर ही चले आ रहे हैं। मैं भी उनके आगे-आगे चलती हुई भीड़ से बचकर खंभे के पीछे खड़ी हो जाती हूँ।

[एक ओर खड़ी हो जाती है।]

[विदूषक के साथ राजा आते हैं।]

राजा—एक ओर जब मैं उस दुर्लभ प्यारी की बात सोचता हूँ और दूसरी ओर जब मैं सुनता हूँ कि मेरी सेना ने विदर्भ के राजा को हरा दिया है, तो मेरा मन उस कमल के समान एक साथ दुखी और सुखी होता है जिसपर कड़ी धूप भी पड़ रही हो और साथ-साथ पानी भी बरस रही हो।।3।।

विदूषक—मैं तो समझता हूँ कि अब आपको पूरा सुख ही सुख मिलेगा।

राजा—कैसे?

विदूषक—आज पंडिता कौशिकी से महारानी ने कहा था कि भगवती आपको शृंगार करने की विद्या का जो घमंड है, वह आप मालविका को विवाह के शृंगार से सजाकर दिखाइए। इसपर उन्होंने मालविका को बड़े सुहावने ढंग से सजा दिया है। कौन जाने वे ही आपकी साध पूरी कर दें।

राजा—हाँ मित्र! महारानी धारिणी ने पहले भी मेरे मन की बहुत-सी बातें पूरी की हैं, इसलिये यह भी कर दें तो कोई आश्चर्य नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीहारी–[उपगम्य] जेदु जेदु भट्टा। देवी विण्णावेदि–तवणीआसोअस्स कुसुमसह-दंसणेण मह आरम्भो सफलो करीअदु त्ति। (जयतु जयतु भर्ता। देवी विज्ञापयति –तपनीयाशोकस्य कुसुमसहदर्शनेन ममारम्भः सफलः क्रियतामिति।)

राजा–ननु तत्रैव देवी तिष्ठति।

प्रतीहारी–अह इं। जहरिहसंमाणसुहिअं अन्तेउरं विसज्जिअ मालविआपुरोएण अत्तणो परिअणेण सह देवं पडिवालेदि। (अथ किम्। यथार्हसम्मानसुखितमन्तःपुरं विसृज्य मालविकापुरोगेणात्मनः परिजनेन सह देवं प्रतिपालयति।)

राजा–[सहर्षं विदूषकं विलोक्य] जयसेने। गच्छाग्रतः।

प्रतीहारी–एदु एदु देवो। (एत्वेतु देवः।) [इति परिक्रामति।]

विदूषकः–[विलोक्य] भो वअस्स। किंवि परिवुत्तजोव्वणो विअ वसन्तो पमदवणे लक्खीअदि। (भो वयस्य! किंचित्परिवृत्तयौवन इव वसन्तः प्रमदवने लक्ष्यते।)

राजा–यथाह भवान्–

अग्रे विकीर्णकुरबकफलजालकभिद्यमानसहकारम्।
परिणामाभिमुखमृतोरुत्सुकयति यौवनं चेतः।। 44।।

विदूषकः–[परिक्रम्य] अहो। अअं सो दिण्णणेवत्थो विअ कुसुमत्थवएहिं तवणीआसोओ। ओलोअदु भवं। (अहो। अयं स दत्तनेपथ्य इव कुसुमस्तनकैस्तपनीयशोकः। अवलोकतां भवान्।)

प्रतीहारी–[पास जाकर] जय हो, स्वामी की जय हो! देवी ने कहलवाया है कि मेरे साथ चलकर उस फूले हुए सुनहरे अशोक को देखकर मेरा सब उत्सव सफल कर दीजिए।

राजा–क्या देवी वहीं पर है?

प्रतीहारी–जी हाँ? रनिवास की सब रानियों का यथायोग्य आदर करके वे मालविका और दासियों के साथ बैठी महाराज की प्रतीक्षा कर रही हैं।

राजा–[प्रसन्न होकर विदूषक की ओर देखकर] जयसेना! चलो आगे-आगे।

प्रतीहारी–आइए देव! चले आइए। [घूमती है।]

विदूषक–देखो मित्र! जान पड़ता है कि प्रमदवन में वसन्त की जवानी फिर लौट आई है।

राजा–ठीक कहते हो तुम। इस बीतते हुए वसन्त में भी बिखरे हुए कुरबक के फूल, मन में जवानी की लहरें उठाने लगे हैं।।4।।

विदूषक–[घूमकर] फूलों के गुच्छों से लदा हुआ यह सुनहरा अशोक ऐसा जान पड़ता है, मानो इसका भी किसी ने श्रृंगार कर दिया हो। आप भी देखिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—स्थाने खलु प्रसवमन्थरोऽयमभूत्। यदिदानीमनन्यसाधारणीं शोभामुद्वहति। पश्य—

सर्वाशोकतरूणां प्रथमं सूचितवसन्तविभवानाम्।
निर्वृत्तदोहदेऽस्मिन्संक्रान्तानीव कुसुमानि।। 5।।

विदूषकः—तह। भो वीसद्धो होहि। अम्हेसु संणिहिदेसुवि धारिणी पासपरिवट्टिणीं मालविअं अणुमण्णेदि। (तथा। भोः विस्रब्धो भव। अस्मासु संनिहितेष्वपि धारिणी पार्श्वपरिवर्तिनीं मालविकामनुमन्यते।)

राजा—[सहर्षम्] सखे। पश्य—

मामियमभ्युत्तिष्ठति देवी विनयादनूत्थिता प्रियया।
विस्तृतहस्तकमलया नरेन्द्रलक्ष्मया वसुमतीव।। 6।।

[ततः प्रविशति धारिणी मालविका परिव्राजिका विभवतश्च परिवारः।]

मालविका—[आत्मगतम्] **जाणामि णिमित्तं कोदुआलंकारस्स। तह वि मे हिअअं बिसिणीपत्तगदं विअ सलिलं वेवदि। अवि अ दक्खिणेदरं वि मे णअणं बहुसो फुरदि।** (जानामि निमित्त कौतुकालंकारस्य। तथापि मे हृदयं विसिनीपत्रगतमिव सलिलं वेपते। अपि च दक्षिणेतरमपि मे नयनं बहुशः स्फुरति।)

विदूषकः—**भो वअस्स! विवाहणेवत्थेण सविसेसं क्खु सोहदि मालविआ।** (भो वयस्स। विवाहनेपथ्येन सविशेषं खलु शोभते मालविका।)

राजा—इसका देर से फूलना अच्छा हो, क्योंकि अब इसके आगे सब वृक्षों की शोभा फीकी लगने लगी है। देखो! ऐसा जान पड़ता है कि जिन अशोक के वृक्षों ने पहले फूलकर वसन्त के आने की सूचना दी थी, उन सबने अपने-अपने फूल उस अशोक के वृक्ष को दे दिए हैं, जिसके फूलने का उपाय अभी थोड़े दिन हुए किया गया था।।5।।

विदूषक—हाँ लीजिए, अब आपका काम बन गया, क्योंकि हम लोगों के आ पहुँचने पर भी महारानी धारिणी, मालविका को अपने पास ही बैठने के लिए कह रही हैं।

राजा—[प्रसन्न होकर] देखो मित्र! मेरा आदर करने के लिये उठी हुई महारानी के पीछे, अपने कमल जैसे दोनों हाथ खोले खड़ी हुई मेरी प्यारी मालविका, ऐसी लग रही है मानो पृथ्वी के पीछे राजलक्ष्मी खड़ी हुई हो।।6।।

[धारिणी, मालविका, परिव्राजिका और उनकी दासियाँ दिखाई देती हैं।]

मालविका—[मन ही मन] मैं इस बनाव-शृंगार का अर्थ तो समझ रही हूँ, फिर भी न जाने क्यों मेरा हृदय कमलिनी के पत्ते पर पड़ी हुई जल की बूँद के समान अभी तक काँप रहा है। पर मेरी बाईं आँख भी आज बहुत फड़क रही है।

विदूषक—कहो मित्र! विवाह के शृंगारों से सजी हुई मालविका कितनी सुन्दर लगने लगी है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—पश्याम्येनाम्। यैषा—

अनतिलम्बिदुकूलनिवासिनी बहुभिराभरणैः प्रतिभाति मे।
उडुगणैरुदयोन्मुखचन्द्रिका हतहिमैरिव चैत्रविभावरी।।7।।

धारिणी—[उपेत्य] जेदु जेदु अज्जउत्तो। (जयतु जयत्वार्यपुत्रः।)

विदूषकः—वड्ढदु भोदी। (वर्धतां भवती।)

परिव्राजिका—विजयतां देवः।

राजा—भगवति! अभिवादये।

परिव्राजिका—अभिप्रेतसिद्धिरस्तु।

धारिणी—[सस्मितम्] अज्जउत्त! एस ते अम्हेहिं तरुणीजणसहाअस्स असोओ संकेदघरो कप्पिदो। (आर्यपुत्र! एष तेस्माभिस्तरुणीजनसहायस्याशोकः संकेतगृहं कल्पितः।)

विदूषकः—भो आराहिओसि। (भोः आराधितोऽसि।)

राजा—[सव्रीडमशोकमभितः परिक्रामन्।]

नायं देव्या भाजनत्वं न नेयः सत्काराणाधामीदृशानामशोकः।
यः सावज्ञो माधवश्रीनियोगे पुष्पैः शंसत्यादरं त्वत्प्रयत्ने।।8।।

विदूषकः—भो वीसद्धे भविअ तुमं जोव्वणवदिं इमं पेक्ख। (भो विस्रब्धो भूत्वा त्वं यौवनवतीमिमां पश्य।)

राजा—हाँ, देख तो रहा हूँ कि सिर पर एक छोटी-सी ओढ़नी ओढ़े हुए और नीचे से ऊपर तक अनेक प्रकार के शृंगारों से संजी हुई यह चैत्र की उस रात के समान दिखाई पड़ती है, जिसमें कोहरा हट जाने से तारे खिल आए हों और चाँदनी भी बस निकलने ही वाली हो।।7।।

धारिणी—[पास पहुँचकर] जय हो, आर्यपुत्र की जय हो।

विदूषक—आपको बधाई है।

परिव्राजिका—देवकी जय हो।

राजा—प्रणाम करता हूँ भगवती।

परिव्राजिका—आपके मन की साध पूरी हो।

धारिणी—[मुस्कराकर] आर्यपुत्र! लीजिए यह आपके लिये अशोक का ऐसा प्रेममिलन का घर बना दिया गया है, जहाँ आप युवतियों से अकेले में मिल सकते हैं।

विदूषक—लीजिए महाराज! देवी ने तो आपकी मनचाही कर दी।

राजा—[लजाते हुए अशोक के चारों ओर घूमते हैं] देवी के हाथों इस अशोक का ऐसा आदर होना ही चाहिए, क्योंकि यह भी वसन्त की लक्ष्मी का कहना न मानकर और वसन्त में न फूलकर देवी के प्रयत्न करने पर फूल उठा है।।8।।

विदूषक—अब आप सम्हलकर इस यौवनवाली को देखिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारिणी—कं। (काम्।)

विदूषकः—**भौदि तवणीआसोअस्स कुसुमसोहम्।** [भवति। तपनीयाशोकस्य कुसुमशोभाम्।]

[सर्व उपविशन्ति।]

राजा—[मालविकां विलोक्य आत्मगतम्] कष्टः खलु संनिधिवियोगः—

अहं रथाङ्गनामेव प्रिया सहचरीव मे।
अननुज्ञातसंपर्का धारिणी रजनीव नौ।।9।।

[प्रविश्य]

कञ्चुकी—विजयतां देवः! अमात्यो विज्ञापयति—विदर्भविषयोपायने द्वे शिल्पकारिके मार्गपरिश्रमादलघुशरीरे इति पूर्वं न प्रवेशिते। संप्रति देवोपस्थानयोग्ये संवृत्ते। तदाज्ञां देवो दातुमर्हतीति।

राजा—प्रवेशय ते।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः। [इति निष्क्रम्य ताभ्यां सह प्रविश्य।] इत इतो भवत्यौ।

प्रथमा—[जनान्तिकम्] **हला मदणिए। अपुव्वं इमं राअउलं पविसन्तीए पसीददि मे हिअअं।** (सखि मदनिके। अपूर्वमिदं राजकुलं प्रविशन्त्याः प्रसीदति मे हृदयम्।)

धारिणी—किसे?

विदूषक—देवी! इस सुनहरे अशोक के फूलों की शोभा को।

[सब बैठ जाते हैं।]

राजा—[मालविका को देखकर मन ही मन] इतने पास में रहते हुए भी अलग बैठना बड़ा कष्टकर है। चकवा और चकवी की भाँति इतने पास बैठे हुए भी हम दोनों को, ये रात्रि बनी हुई धारिणी मिलने नहीं दे रही हैं।।9।।

कञ्चुकी [आकर]—देव की जय हो। मंत्री ने कहलाया है कि विदर्भ से जो कला जाननेवाली दो स्त्रियाँ भेंट के रूप में आई थीं, वे उस समय थकी होने के कारण महाराज के पास नहीं लाई जा सकी थीं। अब वे महाराज के सामने लाई जा सकती हैं। उसके लिये देवकी आज्ञा चाहिए।

राजा—ले आओ।

कञ्चुकी—जैसी देव की आज्ञा। [बाहर जाकर उन दोनों के साथ आता है।] इधर से आइए, आप इधर से।

पहली—[अलग] सखी मदनिका! हम पहले कभी इस राज-कुल में नहीं आई हैं, फिर भी न जाने क्यों यहाँ आते ही हमारा जी प्रसन्न हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीया—जोसिणीए! अत्थि क्खु लोअप्पवादो आआमि सुहं दुक्खं वा हिअअसमवत्था कहेदि त्ति। (ज्योत्स्निके! अस्ति खलु लोकप्रवादः आगामि सुखं दुःखं वा हृदयसमवस्था कथयतीति।)

प्रथमा—सो सच्चो दाणिं होदु। (स सत्य इदानीं भवतु।)

कञ्चुकी—एष देव्या सह देवस्तिष्ठति। उपसर्पतां भवत्यौ।

[उभे उपसर्पतः]

[मालविका परिव्राजिका च चेट्यौ विलोक्य परस्परमवलोकयतः।]

उभे—[प्रणिपत्य] जेदु जेदु भट्टा। जेदु जेदु भट्टिणी। (जयतु जयतु भर्ता। जयतु जयतु भट्टिनी।)

[उभे राजाज्ञया उपविष्टे।]

राजा—कस्यां कलायामभिविनीते भवत्यौ।

उभे—भट्टा। संगीदए अब्भन्तरेम्ह। (भर्तः! संगीतकेऽभ्यन्तरे स्वः)

राजा—देवि! गृह्यतामनयोरन्यतरा।

धारिणी—मालविए। इदो पेक्ख। कदरा दे संगीदसहआरिणी रुच्चदि। (मालविके! इतः पश्य। कतरा ते संगीतसहकारिणी रोचते।)

उभे—[मालविकां दृष्ट्वा] अम्हो भट्टदारिआ। जेदु जेदु भट्टदारिआ। (अहो भर्तृदारिका। जयतु जयतु भर्तृदारिका।) [इति प्रणम्य तया तह वाष्पं विसृजतः।)

[सर्वे सविस्मयं विलोकयन्ति।)

दूसरी—ज्योत्स्निका! कहा जाता है कि अपना मन, आगे आनेवाले सुख या दुःख सभी को बता देता है।

पहली—भगवान करें, वह कहावत आज सच हो जाये।

कञ्चुकी—देखिए, यह महारानी के साथ महाराज बैठे हुए हैं। आप दोनों आगे बढ़ जाइए।

[दोनों बढ़ जाती हैं।]

[मालविका और परिव्राजिका इन दोनों दासियों को देखकर
एक दूसरे की ओर देखती हैं।]

दोनों—[प्रणाम करके] जय हो, स्वामी की जय हो। जय हो, स्वामिनी की जय हो।

[राजा के कहने से दोनों बैठ जाती हैं।]

राजा—आप लोगों को कौन-सी कला आती है?

दोनों—स्वामी! हम लोगों ने संगीत सीखा है।

राजा—लो देवी, इनमें से जिसे चाहो उसे अपने लिये चुन लो।

धारिणी—मालविका! इधर देखो, संगीत में तुम्हारा साथ देने के लिये इनमें से तुम्हें कौन-सी अच्छी लगती है।

दोनों—[मालविका को देखकर] अरे, राजकुमारी! जय हो राजकुमारी, जय हो। [प्रणाम करके उससे गले मिलकर रोने लगती हैं।]

[सब आश्चर्य से देखते हैं।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—के भवत्यौ? का वेयम्?

उभे—भट्टा! एसा अम्हाणं भट्टारिआ। (भर्तः। एषास्माकं भर्तृदारिका।)

राजा—कथमिव।

उभे—सुणादु भट्टा। जो सो भट्टिणा विजअदण्डेहिं विदब्भणाहं वसीकरिअ बन्धणादो मोइओ कुमारो माहवसेणो णाम तस्स इअं कणीअसी भइणी मालविआ णाम। (श्रुणोतु भर्ता! यः स भर्त्रा विजयदण्डैर्विदर्भनाथं वशीकृत्य बन्धनान्मोचितः कुमारो माधवसेनो नाम तस्येयं कनीयसी भगिनी मालविका नाम।)

धारिणी—कहं राअदारिआ इअं। चन्दणं क्खु मए पादुओवओएण दूसिदं। (कथम् राजदारिकेयम्। चन्दनं खलु मया पादुकोपयोगेन दूषितम्।)

राजा—अथात्रभवती कथमित्थंभूता।

मालविका—[निःश्वस्यात्मगतम्।] विहिणिओएण। (विधिनियोगेन।)

द्वितीया—सुणादु भट्टा। दाआदवसंगदे भट्टदारए माहवसेणे तस्स अमच्चेण अज्जसुमदिणा अम्हारिसं परिअणं उज्झिअ गूढं आणीदा एसा। (शृणोतु भर्ता! दायाद-वशंगते भर्तृदारके माधवसेने तस्यामात्येनार्यसुमतिनास्मादृशं परिजनमुज्झित्वा गूढमानीतैषा।)

राजा—श्रुतपूर्वं मयैतत्। ततस्ततः।

द्वितीया—भट्टा। अदो वरं ण आणामि। (भर्तः! अतः परं न जानामि।)

परिव्राजिका—ततः परं मन्दभागिनी कथयिष्यामि।

उभे—भट्टदारिए। अज्जकोसिईए विअ सरसंजोओ। णं सा एव्व। (भर्तृदारिके। आर्यकौशिक्या इव स्वरसंयोगः। ननु सैव।)

राजा—आप लोग कौन हैं? और ये कौन हैं?

दोनों—स्वामी! ये हमारी राजकुमारी हैं।

राजा—कैसे?

दोनों—सुनिए स्वामी! आपकी विजयी सेना ने विदर्भ के राजा को जीतकर जिन कुमार माधवसेन को बन्धन से छुड़ाया है, उन्हीं की ये छोटी बहिन मालविका जी हैं।

धारिणी—अरे! तो क्या ये राजकुमारी हैं? मैंने सचमुच चन्दन से खड़ाऊँ का काम लेकर बड़ा पाप किया है।

राजा—तो वे इस रूप में यहाँ कैसे आ गईं?

मालविका—[लंबी साँस लेकर मन ही मन] भाग्य के फेर से।

दूसरी—सुनिए महाराज! जब राजकुमार माधवसेन को उनके चचेरे भाई ने पकड़ लिया था, तब उनके मंत्री आर्य सुमतिजी इन्हें, हम लोगों से हटाकर, यहाँ छिपाकर ले आए।

राजा—यह तो मैं पहले सुन चुका हूँ। तब क्या हुआ?

दूसरी—इसके पीछे की बात मैं कुछ नहीं जानती हूँ स्वामी।

परिव्राजिका—इसके पीछे की कथा मैं अभागिन बताती हूँ।

दोनों—राजकुमारी! यह तो आर्या कौशिकी जैसी बोली लग रही है। वे ही हैं क्या?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालविका—अह इम्। (अथ किम्।)

उभे—जदिवेसधारिणी अज्जकोसिई दुक्खेण विभावीअदि। भअवदि! णमो दे। (यतिवेषधारिण्यार्यकौशिकी दुःखेन विभाव्यते। भगवति! नमस्ते।)

परिव्राजिका—स्वस्ति भवतीभ्याम्।

राजा—कथम्। आप्तवर्गोऽयं भगवत्याः।

परिव्राजिका—एवमेतत्।

विदूषकः—तेण हि कहेदु भअवदी अत्तहोदीए वुत्तन्तं दाव असेसं। (तेन हि कथयतु भगवत्यत्रभवत्या वृत्तान्तं तावदशेषम्।)

परिव्राजिका—[सवैक्लव्यम्] तावच्छ्रूयताम्। माधवसेनसचिवं ममाग्रजं सुमतिमवगच्छ।

राजा—उपलक्षितः। ततस्ततः।

परिव्राजिका—स इमां तथागतभ्रातृकां मया सार्धमपवाह्य भवत्सम्बन्धापेक्षया पथिकसार्थं विदिशागामिनमनुप्रविष्टः।

राजा—ततस्तः।

परिव्राजिका—स चाटव्यन्तरे निविष्टो गताध्वा वणिग्गणः।

राजा—ततस्ततः।

परिव्राजिका—ततः किंचान्यत्।

मालविका—और क्या?

दोनों—संन्यासिनी का वेश बना लेने से कौशिकी जी बड़ी कठिनाई से पहचान में आती हैं। आपको प्रणाम है भगवती।

परिव्राजिक—तुम दोनों का कल्याण हो।

राजा—क्यों, क्या ये भी आपकी ही चेलियाँ हैं?

परिव्राजिका—जी हाँ, हैं तो।

विदूषक—तब आप ही इनकी पूरी कथा सुना डालिए।

परिव्राजिका—[दुखी होकर] तो सुनिए! माधवसेन के मंत्री सुमति मेरे बड़े भाई थे।

राजा—अच्छा समझ गए। हाँ, तब।

परिव्राजिका—माधवसेन के पकड़े जाने पर मेरे बड़े भाई सुमति आपके साथ इनका विवाह करने के विचार से इसे और मुझे साथ लेकर विदिशा की ओर आते हुए एक व्यापारी दल के साथ हो लिए।

राजा—तब उसके वाद?

परिव्राजिका—थोड़ी दूर तक खुली सड़क पर चल चुकने पर उन्हें जंगल से होकर जाना पड़ा।

राजा—तब क्या हुआ?

परिव्राजिका—फिर क्या? अचानक कन्धों पर तूणीर कसे हुए, पीठ पर लंबे-लंबे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तूणीरपट्टपरिणद्धभुजान्तरालमापार्ष्णिलम्बिशिखिबर्हकलापधारि।
कोदण्डपाणि विनदत्प्रतिरोधकानामापातदुष्प्रसहमाविरभूदनीकम्।। 10।।

[मालविका भयं रूपयति।]

विदूषकः—भोदि। मा भआहि। अदिक्कन्तं क्खु तत्तहोदी कहेदि। (भवति। मा बिभेहि। अतिक्रान्तं खलु तत्रभवती कथयति।)

राजा—ततस्ततः।

परिव्राजिका—ततो मुहूर्तं बद्धायुधास्ते पराङ्मुखीभूताः सार्थवाहयोद्धारस्तस्करैः।

राजा—हन्त! इतः परं कष्टतरं श्रोतव्यम्।

परिव्राजिका—ततः स मत्सोदर्यः—

इमां परीप्सुर्दुर्जाते पराभिभवकातराम्।
भर्तृप्रियः प्रियैर्भर्तुरानृण्यमसुभिर्गतः।। 11।।

प्रथमा—हा हदो सुमदी। (अहो हतः सुमतिः।)

द्वितीया—तदो क्खु इअं भट्टदारिआए समवत्था संवुत्ता। (ततः खल्वियं भर्तृदारिकायाः समवस्था संवृत्ता।)

[परिव्राजिका बाष्पं विसृजति।]

राजा—भगवति! तनुत्यजामीदृशी लोकयात्रा। न शोच्यस्तत्रभवान्सफलीकृतभर्त्तृपिण्डः। ततस्ततः।

पंख बाँधे हुए और हाथ में धनुष-बाण लिए हुए कुछ डाकू ऐसे ललकारते हुए हमपर टूट पड़े कि उनसे लड़कर जीतना बड़ा कठिन हो गया।।10।।

[मालविका डरने का नाट्य करती है।]

विदूषक—डरिए मत देवी! यह तो बीती हुई बातें आपको सुना रही हैं।

राजा—तब, उसके बाद....?

परिव्राजिका—तब थोड़ी ही देर में, व्यापारियों के साथ चलनेवाले सब लड़ाकों को डाकुओं ने मार भगाया।

राजा—हाय! हाय! क्या इससे भी बढ़कर दुःखदायी बात सुनानेवाली हैं?

परिव्राजिका—तब मेरे भाई ने उस विपत्ति में शत्रु के आक्रमण से घबराई हुई इस मालविका को बचाने के लिये अपने प्राण देकर अपने स्वामी का भार चुका दिया।।11।।

पहली—अरे! तो क्या सुमति जी मारे गए?

दूसरी—इसी से हमारी राजकुमारी बेचारी की ऐसी दुर्दशा हुई।

[परिव्राजिका रोने लगती है।]

राजा—भगवति! सभी नाशवान् प्राणियों को यह संसार इसी प्रकार छोड़ना पड़ता है, फिर उन्होंने तो अपने स्वामी का अन्न सुफल कर दिया है, इसलिये उनके लिये रोना नहीं चाहिए। हाँ, फिर क्या हुआ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिव्राजिका—ततोऽहं मोहमुपगता यावत्संज्ञां लभे तावदियं दुर्लभदर्शना संवृत्ता।

राजा—महत्खलु कृच्छ्रमनुभूतं भगवत्या।

परिव्राजिका—ततो भ्रातुः शरीरमाग्निसात्कृत्वा पुनर्नवीकृतवैधव्यदुःखया मया त्वदीयं देशमवतीर्य इमे काषाये गृहीते।

राजा—युक्तः सज्जनस्यैष पन्थाः। ततस्ततः।

परिव्राजिका—सेयमाटविकेभ्यो वीरसेनं वीरसेनाच्च देवीं गता। देवीगृहे लब्धप्रवेशया मया चानन्तरं दृष्टेत्येतदवसानं कथायाः।

मालविका—[आत्मगतम्] किं णु क्खु संपदं भट्टा भणादि। (किं नु खलु संप्रतं भर्ता भणति।)

राजा—अहो परिभवोपहारिणो विनिपाताः। कुतः—

प्रेष्यभावेन नामेयं देवीशब्दक्षमा सती।
स्नानीयवस्त्रक्रियया पत्रोर्णं वोपयुज्यते।। 12।।

धारिणी—भअवदि! तुए अभिजणबदिं मालविअं अणचक्खन्तीए असंपदं किदम्। (भगवति! त्वयाभिजतनवतीं मालविकामनाचक्षाणयाऽसांप्रतं कृतम्।)

परिव्राजिका—शान्तं पापम्। केनचित्कारणेन खलु मया नैर्घृण्यमवलम्बितम्।

धारिणी—किं वअ तं कारणम्। (किमिव तत्कारणम्।)

परिव्राजिका—यह देखकर मैं तो मूर्छित हो गई और जब मुझे चेतना आई तो देखती क्या हूँ कि मालविका का कहीं पता नहीं है।

राजा—बड़ा कष्ट आपको भोगना पड़ा।

परिव्राजिका—तब अपने भाई के शरीर का अन्तिम संस्कार करके अपने विधवापन के दुःख को फिर हरा करके मैंने आपके देश में आकर गेरुआ वस्त्र धारण कर लिया।

राजा—सज्जनों को यही चाहिए भी। फिर क्या हुआ?

परिव्राजिका—फिर वीरसेन ने मालविका को उन डाकुओं से छीनकर यहाँ देवी के पास पहुँचा दिया। यहाँ देवी के पास आने पर ही मैंने इन्हें देखा। इतनी-सी ही मेरी कथा है।

मालविका—[मन ही मन] देखें, महाराज इस पर क्या कहते हैं?

राजा—देखिए! विपत्ति आने पर कितना अनादर हो जाता है, क्योंकि जो सती कहलाने योग्य रानी थी, उससे दासी का काम लिया जा रहा था। यह बात ठीक ऐसी ही हुई है जैसे कोई ऊन के कपड़े से देह पोंछने का काम ले।।12।।

धारिणी—भगवती! यह बात छिपाकर आपने अच्छा नहीं किया कि मालविका इतने ऊँचे घराने की हैं।

परिव्राजिका—नहीं, ऐसा न कहिए। मैंने बहुत समझ-बूझकर ही ऐसी निठुराई की थी।

धारिणी—वह क्या बात थी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिव्राजिका—इयं पितरि जीवति केनापि देवयात्रागतेन सिद्धादेशकेन साधुना मत्समक्षं समादिष्टा—आसंवत्सरमात्रमियं प्रेष्यभावमनुभूय ततः सदृशभर्तृगामिनी भविष्यतीति। तदेवंभाविनमादेशमस्यास्त्वत्पादशुश्रूषया परिणमन्तमवेक्ष्य कालप्रतीक्षया मया साधु कृतमिति पश्यामि।

राजा—युक्ता प्रतीक्षा।

कञ्चुकी—देव! कथान्तरेणान्तरितम्। अमात्यो विज्ञापयति—विदर्भगतमनुष्ठेयमनुष्ठितमभूत्। देवस्य तावदभिप्रायं श्रोतुमिच्छामीति।

राजा—मौद्गल्य! तत्रभवतोर्यज्ञसेनमाधवसेनयोर्द्वैराज्यमिदानीमवस्थापयितुकामोऽस्मि।

तौ पृथग्वरदाकूले शिष्टानुत्तरदक्षिणे।
नक्तंदिवं विभज्योभौ शीतोष्णकिरणाविव।। 13।।

कञ्चुकी—देव! एवममात्यपरिषदे निवेदयामि।

[राजाङ्गुल्यानुमन्यते।]

[निष्क्रान्तः कञ्चुकी।]

प्रथमा—[जनान्तिकम्] भट्टदारिए! दिट्ठिआ भट्टिदारओ अद्धरज्जे पडिट्ठं गमइस्सदि। (भर्तृदारिके! दिष्ट्या भर्ता भर्तुदारकोऽर्धराज्ये प्रतिष्ठां गमयिष्यते।)

मालविका—एदं दाव बहु मणिदव्वं जं जीविदसंसआदो मुत्तो। (एतत्तावद्बहुमन्तव्यम् यज्जीवितसंशयान्मुक्तः।)

परिव्राजिका—जिन दिनों इनके पिता जीवित थे, उन दिनों देवयात्रा में एक ऐसा साधु आ गया जो आगे की बात बताया करता था। उसने मेरे आगे ही कहा कि—इसे एक वर्ष तक तो दासी होकर रहना पड़ेगा, पर उसके पीछे बड़े योग्य पति से इसका विवाह हो जायगा। जब मैंने देखा कि वह भविष्यवाणी आपके चरणों की सेवा करते हुए पूरी हो रही है, तो मैं चुप्पी लगा गई, इसीलिये मैं समझती हूँ कि मैंने अच्छा ही किया।

राजा—यह चुप रहना अच्छा ही हुआ।

कञ्चुकी—देव! इस कथा के बीच में एक बात छूट गई। मन्त्री जी ने कहलाया है कि विदर्भ के लिये जो प्रबन्ध करना था, वह सब कर दिया गया है, पर मैं महाराज की इच्छा भी जान लेना चाहता हूँ।

राजा—मौद्गल्य! मैं चाहता हूँ कि यज्ञसेन और माधवसेन दोनों, वरदा नदी के उत्तर और दक्षिण दोनों तटों पर अपने-अपने अलग-अलग राज बनाकर वैसे ही सुख से राज करें, जैसे सूर्य और चन्द्रमा रात और दिन को आपस में बाँटकर अलग-अलग चमकते हैं।।13।।

कञ्चुकी—मैं अमात्य-परिषद् से यही बात कह आता हूँ देव!

[राजा उँगली से स्वीकृति दे देते हैं, कञ्चुकी चला जाता है।]

पहली—[अलग] राजकुमारी! यह बड़ी अच्छी बात हुई कि राजकुमार को महाराज आधे राज पर बैठा रहे हैं।

मालविका—अरे इतना ही बहुत समझो कि उनके प्राण बच गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[प्रविश्य]

कञ्चुकी–विजयतां देवः। देव अमात्यो विज्ञापयति–कल्याणी देवस्य बुद्धिः। मन्त्रिपरिषदोऽप्येतदेव दर्शनम्। कुलः–

द्विधा विभक्तां श्रियमुद्वहन्तौ धुरं रथाश्वाविव संग्रहीतुः।
तौ स्थास्यतस्ते नृपतेर्निदेशे परस्परोपग्रहनिर्विकारौ।। 14।।

राजा–तेन हि मन्त्रिपरिषदं ब्रूहि–सेनान्ये वीरसेनाय लेख्यतामेवं क्रियतामिति।

कञ्चुकी–यदाज्ञापयति देवः। [इति निष्क्रम्य सप्राभृतकं लेखं गृहीत्वा पुनः प्रविष्टः।] अनुष्ठिता प्रभोराज्ञा। अयं देवस्य सेनापतेः पुष्यमित्रस्य सकाशात्सोत्तरीय-प्राभृतको लेखः प्राप्तः। प्रत्यक्षीकरोत्वेनं देवः।

[राजोत्थाय सप्राभृतकं लेखं सोपचार गृहीत्वा परिजनायार्पयति।]

[परिजनो लेखं नाट्येनोद्घाटयति।]

धारिणी–[आत्मगतम्] **अम्हो। तदोगुहं एव्व णो हिअअं। सुणस्सं दाव गुरुअणस्स कुसलाणन्तरं वसुमित्तस्स वुत्तन्तं। अदिघोरे क्खु पुत्तओ सेनावदिणा णिउत्तो।** (अहो! ततोमुखमेव नो हृदयम्। श्रोष्यामि तावद्गुरुजनस्य कुशलानन्तरं वसुमित्रस्य वृत्तान्तम्। अतिघोरे खलु पुत्रकः सेनापतिना नियुक्तः।)

राजा–[उपविश्य लेखं सोपचारं गृहीत्वा वाचयति।] स्वस्ति यज्ञशरणात्सेनापतिः पुष्यमित्रो वैदिशःस्थं पुत्रमायुष्मन्तमग्निमित्रं स्नेहात्परिष्वज्येदमनुदर्शयति। विदितमस्तु।

कञ्चुकी–[आकर] देव की जय हो। देव! अमात्य ने कहलाया है कि महाराज ने बहुत ठीक सोचा है और अमात्य-परिषद् की भी यही सम्मति है, क्योंकि जैसे रथ में चलनेवाले दो घोड़े सारथी के हाथ में ठीक से चलते हैं, वैसे ही महाराज की देख-रेख में ये दोनों भाई भी आपस का बैर छोड़कर दो भागों में बँटे हुए,अपने राज्य के धुरे को बड़े सुख से सँभाल सकेंगे।।14।।

राजा–तो जाकर अमात्य-परिषद् से कह दो कि सेनापति वीरसेन को लिख भेजें कि वे ऐसा ही प्रवन्ध कर दें!

कञ्चुकी–जैसी देव की आज्ञा। [बाहर जाता है और भेंट के साथ पत्र लिए हुए फिर आता है।] आपकी आज्ञा कह सुनाई। श्रीमान् सेनापति पुष्यमित्र के पास से उत्तरीय आदि भेंट की सामग्रियों के साथ-साथ पत्र भी आया है। इसे महाराज देखने की कृपा करें।

[राजा उठकर बड़े आदर के साथ भेंट की सामग्री और पत्र लेकर अपने सेवक को दे देते हैं। वह उस पत्र को खोलने का नाट्य करता है।]

धारिणी–[मन ही मन] अरे! मेरा जी भी इसे सुनने को छटपटा रहा है! बड़ों का कुशल समाचार सुनकर फिर वसुमित्र का समाचार सुनूँगी। सेनापति ने मेरे बच्चे को बड़े संकट का काम सौंप दिया है।

राजा–[बैठकर बड़े आदर से पत्र लेकर पड़ते हैं।] आपका कल्याण हो। विदिशा में आए हुए चिरंजीवी पुत्र अग्निमित्र को स्नेह से गले भेंट कर अश्वमेघ यज्ञ की दीक्षा लिए हुए सेनापति पुष्यमित्र लिख रहे हैं–हम यह बताना चाहते हैं कि अश्मरोघ की दीक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योऽसौ राजयज्ञदीक्षितेन मया राजपुत्रशतपरिवृतं वसुमित्रं गोप्तारमादिश्य वत्सरोपात्तनियमो निरर्गलस्तुरङ्गो विसृष्टः स सिन्धोर्दक्षिणरोधसि चरन्नश्वानीकेन यवनेन प्रार्थितः। ततः उभयोः सेनयोर्महानासीत्संमर्दः।

[देवी विषादं नाटयति।]

राजा—कथमीदृशं संवृत्तम्। [शेष पुनर्वाचयति।]

ततः परान्पराजित्य वसुमित्रेण धन्विना।
प्रसह्य ह्रियमाणो मे वाजिराजो निर्वितः।। 15।।

धारिणी—इमिणा आससिदं मे हिअअं। (अनेनाश्वस्तं मे हृदयम्।)

राजा—[शेषं पुनर्वाचयति।] सोऽहमिदानीमंशुमता सगरपुत्रेणेव प्रत्याहृताश्वो यक्ष्ये। तदिदानीमकालहीनं विगतरोषचेतसा भवता वधूजनेन सह यज्ञसेवनायागन्तव्यमिति।

राजा—अनुगृहीतोऽस्मि।

परिव्राजिका—दिष्ट्या पुत्रविजयेन दम्पती वर्धेते।

भर्त्रासि वीरपत्नीनां श्लाघ्यानां स्थापिता धुरि।
वीरसूरिति शब्दोऽयं तनयात्त्वामुपस्थितः। 16।।

धारिणी—भअवदि! परितुट्ठम्हि जं पितरं अणुजादो मे वच्छओ। (भगवति! परितुष्टास्मि यत्पितरमनुजातो मे वत्सकः।)

लेकर मैंने एक वर्ष की अवधि बाँधकर जो खुला घोड़ा छोड़ा था और जिसकी रक्षा के लिये सैकड़ों राजकुमारों के साथ वसुमित्र को भेजा था, वह घोड़ा जब सिंधु नदी के दक्षिण तट पर विचरण कर रहा था तो घुड़सवार सेना के एक यवन ने उसे पकड़ लिया। इसपर दोनों सेनाओं में बड़ी घनघोर लड़ाई हुई।

[देखी दुखी होने का नाट्य करती हैं।]

राजा—अरे! क्या यहाँ तक बढ़ गई? [बचा हुआ फिर बाँधता है।] तब धनुषधारी वसुमित्र ने बड़ी वीरता से शत्रुओं को मार भगाया और छिने हुए घोड़े को फिर लौटा लिया।।15।।

धारिणी—अब, मेरे जी में जी आया।

राजा—[बचा हुआ फिर पढ़ता है।] इसलिये जैसे अंशुमान द्वारा घोड़ा छुड़ा लाने पर सगर ने यज्ञ किया था, वैसे ही मैं भी यज्ञ कर रहा हूँ। इसलिये अब तुम तत्काल शान्तचित्त होकर बहुओं को साथ लेकर यज्ञ देखने के लिये चले आओ। बस इतना ही।

राजा—बड़ी कृपा हुई मुझपर।

परिव्राजिका—पुत्र की विजय के लिये आप दोनों को बधाई है। अब तक आप संसार की सब प्रशंसनीय वीर पत्नियों की सिरमौर थीं, पर आपके पुत्र ने आपके नाम के साथ वीरमाता की पदवी भी जोड़ दी है।

धारिणी—भगवती! मुझे तो यही सुख है कि मेरा बच्चा पिता के समान ही पराक्रमी निकला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—मौद्गल्य। ननु कलभेन यूथपतेरनुकृतम्।

कञ्चुकी—देव। अयं कुमारः—

नैतावता वीरविजृम्भितेन चित्तस्य नो विस्मयमादधाति।
यस्याप्रधृष्यः प्रभवस्त्वमुच्चैरग्नेरपां दग्धुरिवोरुजन्मा।। 17।।

राजा—मौद्गल्य। यज्ञसेनश्यालमुरीकृत्य मोच्यन्तां सर्वे बन्धनस्थाः।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः।)

धारिणी—जयसेणे! गच्छ। इरावदीपमुहाणं अन्तेवुराणं पुत्तस्स वुत्तन्तं णिवेदेहि। (जयसेने! गच्छ। इरावतीप्रमुखेभ्योऽन्त पुरभ्यः वृत्तान्तं निवेदय।)

[प्रताहारी प्रस्थिता।]

धारिणी—एहि दाव। (एहि तावत्।)

प्रतीहारी—[प्रतिनिवृत्य।] इअ म्हि। (इयमस्मि।)

धारिणी—[जनन्तिकम्] जं मए असोअदोहलणिओए मालविआए पइण्णादं तं से अभिजणं च णिवेदिअ मह बअणेण इरावदिं अणुणेहि—तुए अहं सच्चादो ण विब्भंसिदव्वे त्ति। (यन्मयाशोकदोहदनियोगे मालविकायै प्रतिज्ञातम् तदस्या अभिजनं च निवेद्य मम वचनेनेरावतीमनुनय—त्वया अहं सत्यान्न विभ्रंशयितव्येति।)

प्रतीहारी—जं देवी आणवेदि। [इति निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य] भट्टिणि! पुत्तविजअ-

---

राजा—मौद्गल्य! सचमुच इस हाथी के बच्चे ने तो हाथियों के नायक का काम कर डाला।

कञ्चुकी—देव! कुमार की इस वीरता से मुझे कोई बड़ा आश्चर्य नहीं हो रहा है, क्योंकि जैसे समुद्र को जला डालनेवाले बडवानल का जन्म उरुजन्मा (और्व) ऋषि से हुआ है, वैसे ही इनका भी जन्म आपसे हुआ है, जो आज तक किसी से नहीं हारे हैं।।17।।

राजा—मौद्गल्य! जाओ, यज्ञसेन के साले के साथ-साथ और भी जितने भी बन्दी हों सबको छोड़ दो।

कञ्चुकी—देव की जैसी आज्ञा। [चला जाता है]

धारिणी—जाओ, जयसेना। इरावती आदि रनिवास की सब रानियों से हमारे पुत्र के विजय की बात कह आओ। [प्रतीहारी जाना चाहती है।]

धारिणी—और सुनो!

प्रतीहारी—[लौटकर] जी कहिए।

धारिणी—[अलग] देखो! अशोक के फूलने के लिये मैंने मालविका से जो प्रतिज्ञा की थी, वह बात और इसके ऊँचे घराने की बात कहकर मेरी ओर से इरावती से विनय करना कि देखो! अब आप कोई ऐसी बात न कर बैठें कि मुझे अपने वचन हटना पड़े।

प्रतीहारी—जैसी देवी की आज्ञा। [बाहर जाकर फिर आ जाती है।] स्वामिनी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णिमित्तेण परितोसेण अन्तेउराणं आहरणाणं मंजूसम्हि संवुत्ता। (यद्देव्याज्ञापयति। भट्टिनि! पुत्रविजयनिमित्तेन परितोषेणान्तःपुराणामाभरणानां मञ्जूषास्मि संवृत्ता।)

धारिणी—एदं किं अच्चरिअं। साहारणो क्खु ताणं मह अअअं अब्भुदओ। (एतत्किमाश्चर्यम्। साधारणः खलु तासां मम चायमभ्युदयः।)

प्रतीहारी—[जनान्तिकम्] भट्टिणी! इरावदी उण विण्णवेदि—सरिसं देवीए पहवन्तीए। तुह वअणं संकपिप्दं ण जुज्जदि अण्णहा कादुं त्ति। (भट्टिनि! इरावती पुनर्विज्ञापयति—सदृशं देव्याः प्रभवन्त्याः। तव वचनं संकल्पितं न युज्यतेऽन्यथा- कर्तुमिति।)

धारिणी—भअवदि! तुए अणुमदा इच्छामि अज्जसुमदिणा पढमसंकप्पिदं मालविअं अज्जउत्तस्स पडिवादेदुं। (भगवति! त्वयानुमतेच्छाम्यार्यसुमतिना प्रथमसं- कल्पितां मालविकामार्यपुत्राय प्रतिपादयितुम्।

परिव्राजिका—इदानीमपि त्वमेवास्यः प्रभवसि।

धारिणी—[मालविकां हस्ते गृहीत्वा।] इदं अज्जउत्तो पिअणिवेदणाणुरूवं पारितोसिअं पडिच्छदु त्ति। (इदमार्यपुत्र प्रियनिवेदनानुरूपं पारितोषिकं प्रतीच्छत्विति।)

[राजा व्रीडां नाटयति।]

धारिणी—[सस्मितम्] किं अवधीरेदि अज्जउत्तो। (किमवधीरयत्यार्यपुत्रः।)

विदूषकः—भोदि। एसो लोअव्ववहारो। सव्वो णववरो लज्जादुरो होदि त्ति। (भवति! एष लोकव्यवहारः। सर्वो नववरो लज्जातुरो भवतीति।)

[राजा विदूषकमवेक्षते।]

आपके पुत्रविजय की बात सुनकर मुझपर पुरस्कारों की इतनी बौछार हुई कि मैं रनिवास के गहनों की पिटारी ही बन गई हूँ।

धारिणी—इसमें अचरज की क्या बात है? इसमें तो उनका और मेरा दोनों का समान ही गौरव है।

प्रतीहारी—[अलग] स्वामिनी! इरावती ने यह भी कहलाया है कि आपने अपने गौरव के अनुकूल ही बात सोची है। जो कुछ आप कह चुकी हैं उसे पूरा कीजिए।

धारिणी—भगवति! आर्य सुमति ने आर्यपुत्र से मालविका का विवाह कराने का जो पहले विचार कर रखा था, उसे मैं आपकी सम्मति से पूरा कर देना चाहती हूँ।

परिव्राजिका—अब भी तो आप ही इनकी सब कुछ हैं।

धारिणी—[मालविका का हाथ पकड़कर] आर्यपुत्र! कुमार की विजय का प्यारा समाचार सुनाने का यह प्यारा पारितोषिक तो लीजिए।

[राजा लज्जित हो जाते हैं।]

धारिणी—[मुसकराकर] क्या आर्यपुत्र मेरी भेंट नहीं स्वीकार करना चाहते?

विदूषक—देवी! यह तो लोक व्यवहार दिखा रहे हैं। सभी नये दूल्हे ऐसे समय लजाया ही करते हैं।

[राजा विदूषक की ओर देखते हैं।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः–अह देवीए एव्व किदप्पणअविसेसं दिण्णदेवीसद्दं मालविअं अत्तभवं पडिग्गहीदुं इच्छदि। (अथ देव्यैव कृतप्रणयविशेषां दत्तदेवीशब्दां मालविकामत्रभवान्प्रतिग्रहीतुमिच्छति।)

धारिणी–एदाए राअदारिआए अहिजणेण एव्व दिण्णो देवीसद्दो किं पुणरुत्तेण। (एतस्या राजदारिकाया अभिजनेनैव दत्तो देवीशब्दः किं पुनरुक्तेन।)

परिव्राजिका–मा मैवम्।

अप्याकरसमुत्पन्नो रत्नजातिपुरस्कृतः।
जातरूपेण कल्याणि! मणिः संयोगमर्हति।। 18।।

धारिणी–[स्मृत्वा] मरिसेदु भअवदी। अब्भुदअकहाए उइदं ण लक्खिदं जअसेणे। गच्छ दाव। कोसेअपत्तोण्णजुअलं उवणेहि। (मर्षयतु भगवति! अभ्युदयकथयोचितं न लक्षितम्। जयसेने! गच्छ तावत्। कौशेयपत्रोर्णयुगलमुपनय।)

प्रतीहारी–जं देवी अणवेदि। [इति निष्क्रम्य पत्रोर्णं गृहीत्वा पुनः प्रविश्य] देवी! एदम् (यद्देव्याज्ञापयति। देवि! एतत्।)

धारिणी–[मालविकामवगुण्ठनवतीं कृत्वा] अज्जउत्तो। दाणिं इमं पडिच्छदु। (आर्यपुत्र! इदानीमिमां प्रतीच्छतु।)

राजा–त्वच्छासनात्प्रवृत्ता एव वयम्। [अपवार्य] हन्त प्रतिगृहीता।

विदूषकः–अहो देवी अणुऊलदा। (अहो, देव्या अनुकूलता।)

[देवी परिजनमवलोकयति।]

विदूषक–जिन मालविका को महारानी ने ही इतने प्रेम से देवी बना दिया है, उन्हें महाराज क्यों न स्वीकार कर लेंगे?

धारिणी–इन राजकुमारी के ऊँचे घराने ने ही इन्हें रानी बना दिया है। उसे दुहराने की क्या बात है?

परिव्राजिका–नहीं ऐसी बात नहीं है। खान से निकले हुए सबसे अच्छे मणि को भी सोने में जड़ने की आवश्यकता तो पड़ती ही है।।18।।

धारिणी–[कुछ स्मरण करके] क्षमा कीजिए भगवति! कुमार की इस विजय के हुलास में एक बड़ी आवश्यक बात तो मैं भूल ही गई। जयसेना! जा, ऊनी रेशमी जोड़ा तो ले आ।

प्रतीहारी–जैसी देवी की आज्ञा! [जाती है और वस्त्र लेकर फिर आती है] यह लीजिए देवी!

धारिणी–[मालविका के सिर पर उढ़ाकर] आर्यपुत्र! अब इसे स्वीकार कीजिए।

राजा–आप जो कहेंगी, वह तो मानना ही पड़ेगा। [अलग] अजी मैं तो इसे पहले ही स्वीकार कर चुका हूँ।

विदूषक–वाह! महारानी भी कैसी अच्छी हैं।

[रानी दासियों की ओर देखती हैं।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीहारी—[मालविकामुपेत्य।] जेदु भट्टिणी। (जयतु भट्टिनी।)
[देवी परिव्राजिकां निरीक्षते।]

परिव्राजिका—नैतच्चित्रं त्वयि।

प्रतिपक्षेणापि पतिं सेवन्ते भर्तृवत्सलाः साध्व्यः।
अन्यसरितामपि जलं समुद्रगाः प्रापयन्त्युदधिम्।। 19।।

[प्रविश्य]

निपुणिका—जेदु भट्टा। इरावदी विण्णवेदि—जं उवआरातिक्कमेण तदा भट्टिणो अवरद्धा तं सअं एव्व भत्तुणो अणुऊलं णाम मए आअरिदं। संपदं पुण्णमणोरहेण भत्तुणा पसादमत्तेण संभावइदव्वेत्ति। (जयतु भर्ता। इरावती विज्ञापयति—यदुपचारातिक्रमेण तदा भर्त्रे अपराद्धा तत्स्वयमेव भर्तुरनुकूलं नाम मयाचरितम्। सांप्रतं पूर्णमनोरथेन भर्त्रा प्रसादमात्रेण संभावयितव्येति।)

धारिणी—णिउणिए। अवस्सं से सेविदं अज्जउत्तो जाणिस्सदि। (निपुणिके! अवश्य-मस्याः सेवितमार्यपुत्रो ज्ञास्यति।)

निपुणिका—अणुग्गहीदम्हि। (अनुगृहीतास्मि।)

परिव्राजिका—देव। अमुना युक्तसंबन्धेन चरितार्थं माधवसेनं सभाजयितुं गच्छामः।

धारिणी—भअवदीए ण जुत्तं अम्हे परिच्चयिदुं। (भगवत्या न युक्तमस्मान्प-रित्यक्तुम्।)

राजा—भगवति। मदीयेष्वेव लेखेषु तत्रभवतस्त्वामुद्दिश्य सभाजनाक्षराणि पातयिष्यामः।

प्रतीहारी—[मालविका के पास जाकर] स्वामिनी की जय हो।

[महारानी परिव्राजिका की ओर देखती हैं।]

परिव्राजिका—आपकी यह उदारता देखकर मुझे तनिक भी अचरज नहीं हुआ। क्योंकि पति को प्यार करनेवाली स्त्रियाँ अपने लिये सौत लाकर भी पति का मन रखा करती है। देखिए, समुद्र में जानेवाली नदियाँ अपने साथ-साथ दूसरी नदियों का पानी भी समुद्र में पहुँचा देती हैं।।19।।

निपुणिका—[आकर] स्वामी की जय हो। इरावती जी ने कहलाया है कि मैंने महाराजा की बात न मानकर जो अपराध किया था, वह सब जान-बूझकर महाराज का काम बनाने के लिये ही रूपक रचा था। अब तो महाराज के मन की साध पूरी हो गई है। इसलिये आशा है आप मुझे अवश्य क्षमा कर देंगे।

धारिणी—अरी निपुणिका! उन्होंने आर्यपुत्र की जो सेवा की है, उसका ध्यान रखेंगे।

निपुणिका—बड़ी कृपा है।

परिव्राजिका—देव! इस सुन्दर विवाह-सम्बन्धी वार्ता को सुनकर माधवसेन तो फूले न समायेंगे। इसीलिये मैं उन्हें बधाई देने के लिये जाना चाहती हूँ।

धारिणी—हमें छोड़कर आपका जाना ठीक नहीं है।

राजा—भगवती! हम अपने ही पत्र में आपकी ओर से बधाई लिखवाकर भिजवा देंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिव्राजिका—युवयोः स्नेहात्परवानयं जनः।

धारिणी—अज्जउत्त! किं ते भूओ वि पिअं उवहरामि।

(आर्यपुत्र! किं ते भूयोऽपि प्रियमुपहरामि।)

राजा—

त्वं मे प्रसादसुमुखी! भव देवि नित्यमेतावतेव हृदये प्रतिपालनीयम्।

तथापीदमस्तु—

(भरतवाक्यम्)

आशास्यमीतिविगमप्रभृति प्रजानां संपत्स्यते न खलु गोप्तरि नाग्निमित्रे।। 20।।

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे।]

।। इति पञ्चमोऽङ्कः।।

।। समाप्तमिदं श्रीकालिदासकृतौ मालविकाग्निमित्रं नाम नाटकम्।।

परिव्राजिका—मैं तो आप दोनों के स्नेह में बँधी हुई हूँ।

धारिणी—आर्यपुत्र! क्या मैं आपकी कुछ और मनचाही बात पूर्ण कर सकती हूँ?

राजा—देवि! मैं तो बस इतना ही चाहता हूँ कि तुम सदा मुझपर प्रसन्न रहो। फिर भी इतना और हो जाय कि—

[भरतवाक्य]

जब तक अग्निमित्र राज्य करें तब तक उनकी प्रजा में किसी प्रकार के उपद्रव आदि न हों।।20।।

[सब चले जाते हैं।]

।। पाँचवाँ अङ्क समाप्त हुआ।।

।। महाकवि श्रीकालिदास-विरचित मालविकाग्निमित्रम् नाम का नाटक पूरा हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक्रमोर्वशीयम्

पात्र-परिचय :

पुरुषाः

सूत्रधारः—नाटकस्य प्रबन्धकर्त्ता।

पारिपार्श्विकः—सूत्रधारस्यसहचरः।

पुरुरवा—प्रतिष्ठानदेशस्य राजा, नाटकस्य नायकः।

माणवकः—विदूषकः

आयुः—पुरुरवा का पुत्र।

नारदः—देवर्षिः।

चित्ररथः—गन्धर्वेश्वरः।

कंचुकी—राजपरिचारकः (अन्तःपुराध्यक्षः)

पल्लवः
गालवश्च } भरतमुनेः शिष्यौ

स्त्रियः

उर्वशी—एका अप्सरा। नाटकस्य नायिका।

चित्रलेखा—द्वितीया अप्सरा। उर्वश्याः सखी।

सहजन्या,
रम्भा,
मेनका, } अप्सरसः।

देवी—राज्ञी। काशिराजस्य कन्या।

निपुणिका—राज्ञ्याः परिचारिका।

तापसी—तपस्विनी।

परिजनः—राज्ञ्याः परिचारिकाः।

यवनीः—राज्ञः परिचारिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथमोऽङ्कः

वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी
यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः।
अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते
स स्थाणुः स्थिरभक्ति योगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः ।। 1 ।।

[नान्द्यन्ते]

सूत्रधारः—अलमतिविस्तरेण। [नेपथ्याभिमुखमवलोक्य।] मारिष, इतस्तावत्।

[प्रविश्य]

पारिपार्श्विकः—भाव! अयमस्मि।

सूत्रधारः—मारिष! परिषदेषा पूर्वेषां कवीनां दृष्टरसप्रवन्धा। अहमस्यां कालिदासग्रथितवस्तुना नवेन विक्रमोर्वशीनामधेयेन त्रोटकेनोपस्थास्ये। तदुच्यतां पात्रवर्गः स्वेषु पाठेष्ववहितैर्भवितव्यमिति।

पारिपार्श्विकः—यथाज्ञापयति भावः। [इति निष्क्रान्तः।]

प्रथम अङ्क

वेदान्ती लोग जिन्हें ऐसा अकेला पुरुष बताते हैं, जो पृथ्वी और आकाश में रमा हुआ होने पर ही सबसे अलग रहता है, जिनका ईश्वर नाम ऐसा सटीक और सच्चा है कि और किसी को भी इस नाम से नहीं पुकारा जा सकता और मोक्ष पाने की इच्छा करनेवाले लोग जिन्हें प्राणायाम साधकर अपने हृदय के भीतर खोजते हैं, वे सच्ची भक्ति से मिलनेवाले शिवजी आप सब लोगों का कल्याण करें।।1।।

[नान्दी हो चुकने पर]

सूत्रधार—अच्छा अब देर नहीं करनी चाहिए। [नेपथ्य की ओर देखकर] अरे भाई मारिष! इधर तो आओ।

[पारिपार्श्विक आता है।]

पारिपार्श्विक—लीजिए, आ गया, आर्य!

सूत्रधार—देखो मारिष! इस सभा ने पुराने कवियों के तो बहुत से नाटक देखे हैं। आज मैं इन्हें श्रीकालिदास का बनाया हुआ विक्रमोर्वशीय नाम का एक नया त्रोटक दिखाना चाहता हूँ। इसलिये सब अभिनेताओं को जाकर समझा दो कि अपने-अपने पाठ का अभिनय बड़ी सावधानी से करें।

पारिपार्श्विक—जैसी आपकी आज्ञा। [चला जाता है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूत्रधारः—यावदिदानीमार्यविदग्धमिश्रान्विज्ञापयामि। [प्रणिपत्य]

प्रणयिषु वा दाक्षिण्यादथवा सद्वस्तुपुरुषबहुमानात्।
श्रृणुत जना अवधानात्क्रियामिमां कालिदासस्य।।2।।

[नेपथ्ये]

अज्जा परित्ताअध परित्ताअध। जो सुरपक्खवादी जस्स वा अम्बरअले गई अत्थि। (आर्याः परित्रायध्वं परित्रायध्द्म्। यः सुरपक्षपाती यस्य वाम्बरतले गतिरस्ति।)

सूत्रधारः—[कर्णं दत्वा] अये किं नु खलु मद्विज्ञापनानन्तरमार्तानां कुररीणामिवाकाशे शब्दः श्रूयते—

मत्तानां कुसुमरसेन षट्पदानां शब्दोऽयं परभृतनाद एष धीरः।
आकाशे सुरगणसेविते समन्तात्किं नार्यः कलमधुराक्षरं प्रगीताः।।3।।

[विचिन्त्य] भवतु। ज्ञातम्।

उरूद्भवा नरसखस्य मुनेः सुरस्त्री कैलासनाथमनुसृत्य निवर्तमाना।
वन्दीकृता विबुधशत्रुभिरर्धमार्गे क्रन्दत्यतः करुणमप्सरसां गणोऽयम्।।4।।

[इति निष्क्रान्तः]

।।इति प्रस्तावना।।

सूत्रधार—तब तक मैं अपने विद्वान् दर्शकों से कुछ निवेदन कर लूँ। [सिर झुकाकर] सज्जनो! आप लोगों से प्रार्थना है कि हम नम्र सेवकों पर कृपा करके या इस नाटक के नायक का आदर करके, आप लोग कालिदास की इस रचना को सावधान होकर सुनें।।2।।

[नेपथ्य में]

आर्यो! बचाओ! बचाओ!! जो भी कोई देवताओं का हित चाहनेवाला हो और जो आकाश में भी आ-जा सकता हो, वह आकर हमें बचाये।

सूत्रधार—[सुनकर] अरे! यह क्या? मेरी प्रार्थना समाप्त होते ही आकाश में यह कैसा कुररी के रोने जैसा शब्द सुनाई देने लगा—[सोचकर] क्या यह फूलों का रस पीकर मतवाले बने हुए भौंरों की गुंजार है? या कहीं कोयल की मस्तानी कूक तो नहीं है? या कहीं आकाश में देवताओं के साथ आई हुई अप्सराएँ मीठी तान तो नहीं छेड़ रही हैं?।।3।। [सोचकर] ठीक है। समझ गया।

नर के मित्र नारायण की जाँघ से उर्वशी नाम की जो अप्सरा उत्पन्न हुई थी, वह जब कुबेर की सेवा करके लौट रही थी, तब राक्षस उसे बीच से ही पकड़ ले गए हैं, उसी पर ये अप्सराएँ इतनी विलाप कर रही हैं।।4।। [चला जाता है।]

।।प्रस्तावना समाप्त हुई।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[ततः प्रविशन्त्यप्सरसः।]

अप्सरसः—अज्ज परित्ताअध परित्ताअध। जो सुरपक्खावादी जस्स वा अम्बरअले गई अत्थि। (आर्याः परित्रायध्वं परित्रायध्वम्। यःसुरपक्षपाती यस्य वाम्बरतले गतिरस्ति।)

[ततः प्रविशत्यपटीक्षेपेण राजा पुरुरवा रथेन सूतश्च।]

राजा—अलमाक्रन्दितेन। सूर्योपस्थाननिवृत्तं पुरुरवसं मामेत्य कथ्यतां कुतो भवत्यः परित्रातव्या इति।

रम्भा—असुरावलेबादो। (असुरावलेपात्।)

राजा—किं पुनरसुरावलेपेन भवतीनामपराद्धम्।

रम्भा—सुणादु महाराओ। जा तवोविसेससङ्किदस्स सुउमारं पहरणं महिन्दस्स पच्चादेसो रूवगव्विदाए सिरिगोरिए अलंकारो सग्गस्स, सा णो पिअसही उव्वसी कुबेरभवणादो णिवत्तमाणा केणाबि दाणवेण चित्तलेहादुदीआ अद्धपथं ज्जेव बन्दिग्गाहं गिहीदा। (श्रृणोतु महाराजः। या तपोविशेषशङ्कितस्य सुकुमारं प्रहरणं महेन्द्रस्य प्रत्यादेशो रूपगर्वितायाः श्रीगौर्याः अलंकारः सर्गस्य सा नः प्रियसख्युर्वशी कुबेरभवनान्निवर्तमाना केनापि दानवेन चित्रलेखा द्वितीया अर्धपथ एव एव बन्दिग्राहं गृहीता।

राजा—अपि ज्ञायते कतमेन दिग्विभागेन गतः स जाल्मः।

सहजन्या—ईसाणीए दिसाए। (ऐशान्या दिशा।)

[अप्सराएँ प्रवेश करती हैं।]

अप्सराएँ—आर्यो! बचाओ, बचाओ! जो भी कोई देवताओं का हित चाहने वाला हो और जो आकाश में भी आ-जा सकता हो, वह आकर हमें बचाये।

[रथ पर चढ़े हुए राजा पुरुरवा और सारथी का प्रवेश]

राजा—बस बस, रोओ मत! मैं पुरुरवा हूँ और अभी भगवान् सूर्य की उपासना करके आ रहा हूँ। आप लोग यहाँ मेरे पास आकर बताइए कि आप लोगों को किससे बचाना होगा।

रम्भा—राक्षसों के अत्याचार से।

राजा—राक्षसों ने आप लोगों पर क्या अत्याचार किया है?

रम्भा—सुनिए महाराज! किसी की बड़ी तपस्या से डरकर उसका तप डिगाने के लिये जिसे अपना सुकुमार शस्त्र बनाकर इन्द्र भेजते हैं, जिसके सुन्दर रूप के आगे अत्यन्त रूपवाली लक्ष्मी लज्जित हो जाती हैं और जो स्वर्ग की शोभा है, वही हमारी प्यारी सखी उर्वशी जब कुबेर के भवन से लौट रही थी, तो बीच में ही कोई राक्षस उसे और चित्रलेखा को पकड़ ले गया।

राजा—क्या आप लोग बता सकती हैं कि वह दुष्ट दैत्य किस ओर गया है?

सहजन्या—ईशान (पूर्व-उत्तर के कोने) की ओर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—तेन हि मुच्यतां विषादः। यतिष्ये वः सखीप्रत्यानयनाय।

अप्सरसः—सरिसं एदं सोमवंससंभवस्स (सदृशमेतत्सोमवंशसंभवस्य।)

राजा—क्व पुनर्मां भवत्यः प्रतिपालयिष्यन्ति।

अप्सरसः—एदस्सिं हेमकूडसिहरे। (एतस्मिन्हेमकूटशिखरे।)

राजा—सूत! ऐशानीं दिशं प्रति चोदयाश्वानाशुगमनाय।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (इति यथोक्तं करोति।)

राजा—[रथवेगं रूपयित्वा।] साधु साधु। अनेन रथवेगेन पूर्वप्रस्थितं वैनतेयमप्यासादयेयम। किं पुनस्तमपकारिणं मघोनः। मम—

अग्रे यान्ति रथस्य रेणुपदवीं चूर्णीभवन्तो घना-
श्चक्रभ्रान्तिररान्तरेषु वितनोत्यन्यामिवारावलीम्।
चित्रारम्भविनिश्चलं हरिशिरस्यायामवच्चामरं
यन्मध्ये समवस्थितो ध्वजपटः प्रान्ते च वेगानिलात्।। 5।।

[निष्क्रान्तो रथेन राजा सूतश्च]

सहजन्या—हला! गदो राएसी। ता अम्हे वि जधासंदिट्ठं पदेसं गच्छम्ह। (हला! गतो राजर्षिः। तद्वयमपि यथासंदिष्टं प्रदेशं गच्छामः।)

राजा—तो आप लोग चिन्ता न कीजिए। मैं आपकी प्यारी सखी को लौटा लाने का अभी प्रयत्न करता हूँ।

रम्भा—आप चन्द्रवंशी हैं, आप सब कुछ कर सकते हैं।

राजा—आप लोग कहाँ मेरी बाट देखेंगी?

अप्सराएँ—इसी हेमकूट की चोटी पर।

राजा—सारथी! ईशान (उत्तर-पूर्व की) दिशा की ओर रास मोड़ कर घोड़ों को हाँको वेग से।

सारथी—जैसी आपकी आज्ञा [वैसा ही करता है।]

राजा—[रथ की चाल देखकर] वाह! वाह! जब चलते ही रथ इतने वेग से दौड़ रहा है, तब तो मैं गरुड़ को भी पछाड़ सकता हूँ, फिर इन्द्र के शत्रु राक्षस किस गिनती में हैं! मेरा रथ इतने तीव्र वेग से दौड़ रहा है कि उसकी रगड़ से घने बादल पिस-पिसकर धूल जैसे बन गए हैं। इसके पहिए भी इतने वेग से घूम रहे हैं कि ऐसा लगता है मानो पहियों के अरों के बीच में और बहुत से अरे बनते चले जा रहे हों घोड़ों के सिरों पर चौरियाँ ऐसी खड़ी हो गई हैं कि जान पड़ता है मानो ये चित्र खिंची हुई हों और वेग से चलने के कारण जो पवन उठता है, उससे झंडी का कपड़ा ध्वजा के डंडे के और अपने बाहरी छोर के बीच में सीधा फैल गया है, तनिक भी हिलता-डुलता नहीं।।5।।

[राजा तथा सारथी निकल जाते हैं।]

सहजन्या—सखियो! राजर्षि तो चले गए। चलो, हम लोग भी उधर चली चले जहाँ उनसे मिलने के लिये अभी कह चुकी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेनका—सहि एव्वं करेम्ह (सखि! एवं कुर्मः।)

[इति हेमकूटशिखरे नाट्येनाधिरोहन्ति।]

रम्भा—अवि णाम सो राएसी उद्धरदि णो हिअअसल्लम्। (अपि नाम स राजर्षिरुद्धरति नो हृदयशल्यम्।)

मेनका—सहि! मा दे संसओ भोदु। (सखि! मा ते संशयो भवतु।)

रम्भा—णं दुज्जआ दाणवा। (ननु दुर्जया दानवाः।)

मेनका—उवट्ठिदसंपराओ महिन्दो वि मज्झमलोआदो सबहुमाणं आणाविअ तं एव्व विबुधविजआअ सेणामुहे णिओजेदि। (उपस्थितसंपरायो महेन्द्रोऽपि मध्यलोकात्सबहुमा- नमानाय्या तमेव विबुधविजयाय सेनामुखे नियुङ्क्ते।)

रम्भा—सव्वहा विजई भोदु। (सर्वथा विजयी भवतु।)

मेनका—(क्षणमात्रं स्थित्वा) हला समस्समध समस्समध। एस उल्लसिदहरिणकेदणो तस्स राएसिणो सोमदत्तो रहो दीसदि। ण एसो अकिदत्थो पडिणिउत्तिस्सदि त्ति तक्केमि। (सख्यः समाश्वसित समाश्वसित। एष उल्लसितहरिणकेतनस्तस्य राजर्षेः सोमदत्तो रथो दृश्यते। नैषोऽकृतार्थः प्रतिनिवर्तिष्यति इति तर्कयामि।)

[निमित्तं सूचयित्वावलोकन्त्यः स्थिताः।]

[ततः प्रविशति रथारूढो राजा सूतश्च। भयनिमीलिताक्षी चित्रलेखा दक्षिणहस्तावलम्बिता उर्वशी च।]

चित्रलेखा—सहि समस्सस समस्सस। (सखि समाश्वसिहि समाश्विसिहि।)

राजा—सुन्दरि! समाश्वसिहि।

मेनका—हाँ सखी चलो।

[सब हेमकूट पर्वत पर चढ़ने का नाट्य करती हैं।]

रम्भा—क्या वे राजर्षि सचमुच हम लोगों के मन की कसक दूर कर सकेंगे?

मेनका—इसमें सन्देह न करो सखी।

रम्भा—उन दैत्यों को कोई जीत थोड़े ही सकता है।

मेनका—जानती हो, जब देवताओं को विजय के लिये युद्ध करना होता है, उस समय इन्द्र इन्हीं को मध्यलोक से बड़े सम्मान के साथ बुलाकर अपना सेनापति बनाते हैं। समझी?

रम्भा—अच्छा मैं तो मनाती हूँ कि सब प्रकार उनकी जीत हो।

मेनका—[थोड़ी देर ठहरकर] सखियो! चुप हो जाओ, धीरज रखो! वह देखो, राजर्षि के सोमदत्त रथ की वह झंडी हिलती दिखाई दे रही है जिसपर हिरण बना हुआ है। मैं समझती हूँ कि काम पूरा किए बिना वे नहीं लौटे होंगे।

[सब सखियाँ उतावली होकर उधर देखती हैं।]

[रथ पर बैठे हुए राजा और सारथी का प्रवेश।]

[उसी रथ पर चित्रलेखा के दाहिने हाथ का सहारा लेकर डर से आँख बन्द करके पड़ी हुई उर्वशी दिखाई देती है।]

चित्रलेखा—सखी! धीरज धरो, धीरज धरो।

राजा—सुन्दरी! धीरज धरो। अब राक्षसों का डर नहीं रहा, क्योंकि इन्द्र का बल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतं भयं भीरु सुरारिसंभवं त्रिलोकरक्षी महिमा हि वज्रिणः।
तदेतदुन्मीलय चक्षुरायतं निशावसाने नलिनीव पङ्कजम्।।6।।

चित्रलेखा–अम्महे कहं उस्ससिदमेत्तसंभाविदजीविदा अज्ज वि एसा सण्णं ण पडिवज्जदि। (अहो कथमुच्छवसितमात्रसंभावितजीविता अद्याप्येषा संज्ञा न प्रतिपद्यते।)

राजा–बलवदत्र भवती परित्रस्ता। तथाहि।

मन्दारकुसुमदाम्ना गुरुरस्याः सूच्यते हृदयकम्पः।
मुहुरुच्छूवसता मध्ये परिणाहवतोः पयोधरयोः।।7।।

चित्रलेखा–[सकरुणम्] हला उव्वसि! पज्जवत्थावेहि अत्ताणम्। अणच्छरा विअ पडिभासि। [सखि उर्वशि! पर्यवस्थापयात्मानम्। अनप्सरेव प्रतिभासि।)

राजा–

मुञ्चति न तावदस्या भयकम्पः कुसुमकोमलं हृदयम्।
सिचयान्तेन कथंचित्स्तनमध्योच्छूवासिना कथितः।।8।।

(उर्वशी प्रत्यागच्छति।)

राजा–[सहर्षम्] चित्रलेखे दिष्ट्या वर्धसे। प्रकृतिमापन्ना ते प्रियसखी। पश्य–

आविर्भूते शशिनि तमसा मुच्यमानेव रात्रि-
नैशस्यार्चिर्हुतभुज इव च्छिन्नभूयिष्ठधूमा।
मोहेनान्तर्वरतनुरियं लक्ष्यते मुक्तकल्पा
गङ्गारोधःपतनकलुषा गच्छतीव प्रसादम्।।9।।

तो तीनों लोगों की रक्षा कर सकता है, इसलिये तुम अपनी बड़ी-बड़ी आँखें उसी प्रकार खोल दो, जैसे प्रातःकाल होने पर कमलिनी अपना मुख खोल देती है।।6।।

चित्रलेखा–यह बड़े अचरज की बात है कि जिसकी चलती हुई साँस को देखकर ही विश्वास होता है कि यह जी रही है, अभी तक अपनी आँखें नहीं खोल रही है।

राजा–भद्रे! तुम्हारी सखी बहुत ही डर गई है। क्योंकि इसके बड़े-बड़े स्तनों के बीच में जो मन्दार की माला पड़ी हुई है उसके बराबर हिलने से ही यह जान पड़ रहा है कि इसका हृदय डर के मारे अभी तक बड़ा काँप रहा है।।7।।

चित्रलेखा–[दुखी होकर] सखी उर्वशी! धीरज धरो। ऐसा करती हुई, तुम अप्सरा नहीं जान पड़ती।

राजा–इनके स्तनों के ऊपर हिलनेवाले वस्त्र से ही जान पड़ रहा है कि डर से जो कँपकँपी छुटी थी वह अभी तक इनके फूल जैसे कोमल हृदय को छोड़ नहीं रही है।।8।।

[उर्वशी आँखें खोलती है।]

राजा–[प्रसन्न होकर] बधाई है चित्रलेखाजी! आपकी सखी ने आँखें खोल दी हैं। देखो–मूर्छा दूर होने पर आपकी सखी ऐसी लगती हैं, जैसे चन्द्रमा के निकल आने पर अँधेरे से छुटी हुई रात हो, या रात के समय बिना धुएँवाली अग्नि की लपट हो, या गंगाजी की वह धारा हो जो कगार के गिरने से गँदली होकर फिर स्वच्छ हो गई हो।।9।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा—सहि उव्वसि! वीसद्धा भव। आवण्णाणुकम्पिणा महाराएण पडिहदा क्खु दे तिदसपरिपन्थिणो हदासा दाणवा। (सखि उर्वशि! विस्रब्धा भव। आपन्नानुकम्पिना महाराजेन प्रतिहताः खलु ते त्रिदशपरिपन्थिनो हताशदानवाः।)

उर्वशी—[चक्षुषी उन्मील्य।] किं पहावदंसिणा महिन्देण अब्भुवाहृण्म्हि। (किं प्रभावदर्शिना महेन्द्रेणाभ्युपपन्नास्मि।)

चित्रलेखा—ण महिन्देण। महिन्दसरिसाणुभावेण राएसिणा पुरुरवसेण। (न महेन्द्रेण। महेन्द्रसदृशानुभावेन राजर्षिणा पुरुरवसा।)

उर्वशी—[राजानमवलोक्य। आत्मगतम्।) उवकिदं क्खु दाणवेन्दसंरम्भेण। (उपकृतं खलु दानवेन्द्रसंरम्भेण।)

राजा—[उर्वशीं विलोक्य। आत्मगतम्।] स्थाने खलु नारायणमृर्षिं विलोभयन्त्यस्तदूरुसंभवामिमां विलोक्य व्रीडिताः सर्वा अप्सरस इति। अथवा नेयं तपस्विनः सृष्टिरित्यवैमि। कुतः—

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः।
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः।। 10।।

उर्वशी—हला! चित्तलेहे सहीअणो कहि क्खु भवे। (सखि चित्रलेखे! सखीजनः कुत्र खलु भवेत्।)

चित्रलेखा—सखी उर्वशी! विश्वास करो, दुखियों पर कृपा करनेवाले महाराज ने देवताओं के शत्रु दुष्ट राक्षसों को मार भगाया है।

उर्वशी—[आँखें खोलकर] क्या बलशाली इन्द्र ने मुझे बचाया है?

चित्रलेखा—महेन्द्र ने नहीं, इन्द्र के ही समान वीर राजर्षि ने।

उर्वशी—[राजा को देखकर मन में] तो राक्षसों के उपद्रव ने उपकार ही किया है।

राजा—[उर्वशी को देखकर मन ही मन] नारायण ऋषि को लुभाने के लिये जो अप्सराएँ गई थीं, उन्होंने जब ऋषि की जंघा से उत्पन्न होनेवाली इस उर्वशी के रूप को देखा तो वे सब झेंप गई। यह ठीक ही था, क्योंकि ऐसा सुन्दर रूप कोई तपस्वी तो उत्पन्न कर नहीं सकता। इसे बनाने के लिये या तो चाँदनी देनेवाले चन्द्रमा ही स्वयं ब्रह्मा बने होंगे या शृंगाररस के देवता स्वयं कामदेव ने इसे बनाया होगा, या फिर बसन्त ने ही इसे रचा होगा। नहीं तो बताइए, भला वेद पढ़-पढ़कर पथराए हुए और भोग-विलास से दूर रहने वाले वे बूढ़े ऋषि ऐसा सुन्दर रूप कैसे उत्पन्न कर सकते हैं।।10।।

उर्वशी—सखी चित्रलेखा! हमारी सब सखियाँ कहाँ होंगी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा–सहि! अभअप्पदाई महाराओ जाणादि। (सखि! अभयप्रदायी महाराजो जानाति।)

राजा–[उर्वशीं विलोक्य।] महति विषादे वर्तते सखीजनः। पश्यतु भवती।

यदृच्छया त्वं सकृदप्यवन्ध्ययोः पथि स्थिता सुंदरि यस्य नेत्रयोः।
त्वया विना सोऽपि समुत्सुको भवेत्सखीजनस्ते किमुदार्द्रसौहृदः।। 11।।

उर्वशी–[आत्मगतम्।] अमिअं क्खु दे वअणम्। अहवा चन्दादो अमिअं त्ति किं अच्चरिअम्। [प्रकाशम्] अदो एव्व मे पेक्खिदुं तुवरदि हिअअम्। (अमृतं खलु ते वचनम्। अथवा चन्द्रादमृतमिति किमाश्चर्यम्। अत एव मे प्रेक्षितुँ त्वरते हृदयम्।)

राजा–[हस्तेन-दर्शयन्]

एताः सुतनु मुखं ते सख्यः पश्यन्ति हेमकूटगताः।
उत्सुकनयना लोकाश्चन्द्रमिवोपप्लवान्मुक्तम्।। 12।।

[उर्वशी साभिलाषं पश्यति।]

चित्रलेखा–हला! किं पेक्खसि। (सखि! किं प्रेक्षसे।)

उर्वशी–णं समदुक्खगदो पिवीअदि लोअणेहिं। (ननु समदुःखगतः पीयते लोचनाभ्याम्)

चित्रलेखा–[सस्मितम्] अइ को। (अयि कः)

उर्वशी–णं पणइअणो। (ननु प्रणयिजनः।)

चित्रलेखा–हमें बचानेवाले महाराज ही जानते होंगे।

[उर्वशी को देखकर]

राजा–आपकी सखियाँ बड़ी ही दुखी दिखाई दे रही हैं। देखिए, यदि आपको कोई एक बार भी दैवयोग से देख ले, तो वह भी आपके वियोग में विकल हो उठे, फिर, आपके प्रेम में पगी हुई सखियों की तो बात ही क्या?।।11।।

उर्वशी–[मन ही मन] आपके वचन तो अमृत हैं। पर चन्द्रमा से यदि अमृत बरसे तो आश्चर्य ही क्या। [प्रकट] इसीलिये तो मेरा हृदय उन्हें देखने के लिये इतनी उतावली कर रहा है।

राजा–[हाथ से दिखाता हुआ] यह देखिए, आपकी सखियाँ हेमकूट पर बैठी हुई आपकी ओर वैसी ही उत्सुकता से देख रही हैं जैसी उत्सुकता से लोग ग्रहण से छूटे हुए चन्द्रमा को देखा करते हैं।।12।।

[उर्वशी राजा को चाह के साथ देखती है।]

चित्रलेखा–इतने ध्यान से क्या देख रही हो सखी?

उर्वशी–जो अपने दुःख में काम आयें वह आँखों से पीया जा रहा है।

चित्रलेखा–[हँसकर] अरी कौन?

उर्वशी–अपने प्रियजन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रम्भा–[सहर्षमवलोक्य] हला! चित्तलेहादुदीअं पिअसहीं उव्वसीं गेण्हिअ विसाहासहिदो विअ भअवं सोमो समुवट्ठिदो राएसी। (सखि! चित्रलेखाद्वितीयां प्रियसखीमुर्वशीं गृहीत्वा विशाखासहित इव भगवान्सोमः समुपस्थितो राजर्षिः।)

मेनका–[निर्वर्ण्य] हला दुवे वि णो एत्थ प्पिआ उवणदा। इअं पच्चाणीदा पिअसही। अअं च अपरिक्खदसरीरो राएसी। (सखि! द्वे अपि नोऽत्र प्रिये उपनते। इयं प्रत्यानीता प्रियसखी। अयं चापरिक्षतशरीरो राजर्षिः।)

सहजन्या–सहि जुत्तं भणासि दुज्जओ दाणओ त्ति। (सखि! युक्तं भणसि दुर्जयो दानव इति।)

राजा–सूत इदं तच्छैलशिखरम्। अवतारय रथम्।

सूतः–यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। [इति तथा करोति।]

[उर्वशी रथावतारक्षोभं नाटयन्ती सत्रासं राजानमवलम्बते।]

राजा–[स्वगतम्।] हन्त सफलो मे विषयावतारः।

यदिदं रथसंक्षोभादङ्गेनाङ्गं ममायतेक्षणया।
स्पृष्टं सरोमकण्टकमङ्कुरितं मनसिजेनेव।। 13।।

उर्वशी–हलां किं वि परदो ओसर। (सखि किमपि परतोऽपसर।)

चित्रलेखा–णाहं सक्केमि। (नाहं शक्नोमि।)

रम्भा–[हर्ष से देखकर] चित्रलेखा और प्यारी सखी उर्वशी को साथ लेकर यह राजर्षि उसी प्रकार इधर चले आ रहे हैं, जैसे विशाखा के दो तारों के साथ चन्द्रमा चले आ रहे हों।

मेनका–[विचारकर] सखी, ये दोनों बातें अच्छी ही हुईं कि हमारी सखी भी लौटकर आ गई और राजा को भी किसी प्रकार चोट नहीं आई।

सहजन्या–तुम ठीक कह रही हो सखी! नहीं तो भला इन राक्षसों को क्या कोई कभी जीत पाता है?

राजा–सारथी! यही है वह पर्वत की चोटी। रथ यहीं उतार लो।

सारथी–जैसी आयुष्मान् की आज्ञा।

[रथ उतारता है।]

[रथ के उतरने के झटके का नाट्य करती हुई उर्वशी राजा के शरीर से लग जाती है।]

राजा–[मन ही मन] इस ऊबड़-खाबड़ भूमि पर रथ का उतरना मेरे लिये अच्छा ही हुआ, क्योंकि रथ के हिलने-डुलने से इस बड़ी-बड़ी आँखोंवाली सुन्दरी के शरीर से मेरे शरीर के बार-बार छूने पर शरीर में जो रोमांच हो आया है, वह ऐसा जान पड़ता है मानो प्रेम के अंकुर फूट आए हों।।13।।

उर्वशी–सखी! थोड़ा उधर को हट जाओ।

चित्रलेखा–मुझसे तो नहीं हटा जाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रम्भा—एत्थ पिअआरिणं संभावेम्ह राएसिम्। (अत्र प्रियकारिणं संभावयामो राजर्षिम्।)

[सर्वा उपसर्पन्ति।]

राजा—सूत! उपश्लेपय रथम्—

यावत्पुनरियं सुभ्रूरुत्सुकाभिः समुत्सुका।
सखीभिर्याति संपर्कं लताभिः श्रीरिवार्तवी।। 14।।

[सूतो रथं स्थापयति।]

अप्सरसः—दिट्ठिआ महाराओ विजएण वड्ढदि। (दिष्ट्या महाराजो विजयेन वर्धते।)

राजा—भवत्यश्च सखीसमागमेन।

उर्वशी—[चित्रलेखादत्तहस्तावलम्ब्या रथादवतीर्य] हला अधिअं परिस्सजह। ण क्खु मे आसी आसासो जहा पुणो वि सहीअणं पेक्खिस्सं त्ति। (सख्यः अधिकं परिष्वजथ न खलु मे आसीदाश्वासो यथा पुनरपि सखीजनं प्रेक्षिष्य इति।)

[सख्यः परिष्वजन्ते।]

मेनका—[साशंसम्] सव्वहा कप्पसदं महाराओ पुहविं पालअन्तो होदु (सर्वथा कल्पशतं महाराजः पृथिवीं पालयन्भवन्तु।)

सूतः—आयुष्मन्! पूर्वस्यां दिशि महता रथवेगेनोपदर्शितः शब्दः।

अयं च गगनात्कोऽपि तप्तचामीकराङ्गदः।
अधिरोहति शैलाग्रं तडित्वानिव तोयदः।। 15।।

रम्भा—चलो, अपना भला करनेवाले इस राजर्षि का हम लोग आगे बढ़कर स्वागत तो करें।

[सब आगे बढ़ती हैं।]

राजा—सारथी! रथ को इनके पास तक तो बढ़ा ले चलो, जिससे ये अधीर सुन्दरी अपनी घबराई हुई सखियों से उसी प्रकार मिल ले जैसे वसन्त की शोभा लताओं से जा मिलती है।।14।।

[सारथी रथ खड़ा कर लेता है।]

अप्सराएँ—इस विजय पर महाराज को बधाई है।

राजा—आप सबको भी अपनी प्यारी सखी से मिलने की बधाई है।

उर्वशी—[चित्रलेखा के हाथ के सहारे उतरकर] सखियो! मुझसे कसकर गले मिल लो। मैं तो तुम सबसे मिलने की आशा ही छोड़ बैठी थी।

[सखियाँ गले मिलती हैं।]

मेनका—[प्रशंसा करते हुए] महाराज सैकड़ों कल्पों तक पृथ्वी का पालन करते रहें।

सारथी—महाराज! पूर्वदिशा की ओर से किसी वेग से आते हुए रथ की घरघराहट सुनाई दे रही है। देखिए, तपे हुए सोने का भुजबन्ध पहने हुए कोई इसी पर्वत के शिखर पर आकाश में उसी प्रकार उतर रहा है जैसे कोई बिजलीवाला बादल हो।।15।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्सरसः—[पश्यन्त्यः] अम्मो चित्तरहो। (अहो चित्ररथः।)

[ततःप्रविशति चित्ररथः।]

चित्ररथः—[राजानं दृष्टा सवहुमानम्।] दिष्ट्या महेन्द्रोपकारपर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धते भवान्।

राजा—अये गन्धर्वराजः। [रथादवतीर्य।] स्वागतं प्रियसुहृदे।

(परस्परं हस्तौ स्पृशतः।)

चित्ररथः—वयस्य! केशिना हृतामुर्वशीं नारदादुपश्रुत्य प्रत्याहरणार्थमस्याः शतक्रतुना गन्धर्वसेना समादिष्टा। ततो वयमन्तरा चारणेभ्यस्त्वदीयं जयोदाहरणं श्रुत्वा त्वामिहस्थमुपागताः। स भवानिमां पुरस्कृत्य सहास्माभिर्मघवन्तं द्रष्टुमर्हति। महत्खलु तत्रभवतो मघोनः प्रियमनुष्ठितं भवता। पश्य—

पुरा नारायणेनेयमतिसृष्टा मरुत्वते।
दैत्यहस्तादपाच्छिद्य सुहृदा संप्रति त्वया।। 16।।

राजा—सखे मैवम्—

ननु वज्रिण एव वीर्यमेतद्विजयन्ते द्विषतो यदस्य पक्ष्याः।
वसुधाधरकंदराविसर्पी प्रतिशव्दो हि हरेर्हिनस्ति नागान्।। 17।।

चित्ररथः—युक्तमेतत्। अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः।

अप्सराएँ—[देखती हुई] अरे! ये तो चित्ररथ हैं।

[चित्ररथ का प्रवेश]

चित्ररथ—[राजा को देखकर आदर से] इन्द्र का उपकार करने की शक्ति रखनेवाले महाराज! आपको बधाई है।

राजा—अरे आप! गन्धर्वराज! [रथ से उतरकर] स्वागत करता हूँ मित्र! [दोनों आपस में हाथ मिलाते हैं।]

चित्ररथ—वयस्य! नारदजी ने इन्द्र को अभी-अभी बताया है कि उर्वशी को केशी हर ले गया है। यह सुनकर इन्द्र ने गन्धर्वों को आज्ञा दी कि उसे जाकर छुड़ा लाओ। इसी बीच में हमने मार्ग में देखा कि चारण लोग आपकी विजय के गीत गाते चले आ रहे हैं। बस उसे सुनकर हम लोग इधर चले आए। अब आप उर्वशी को लेकर स्वयं हमारे साथ भगवान् इन्द्र से चलकर मिलिए, आपने सचमुच इन्द्र पर बड़ा भारी उपकार किया है। देखिए—जैसे पहले तपस्वी नारायण ने उसे उत्पन्न करके इन्द्र को सौंप दिया था, वैसे ही अब दैत्यों के हाथ से छुड़ाकर आप मित्र के नाते इसे इन्द्र को भेंट कर दीजिए।।16।।

राजा—नहीं नहीं ऐसा न कहो! यह सब इन्द्र भगवान के ही पराक्रम का तो फल है कि उनके मित्र अपने शत्रुओं को उसी प्रकार मार भगाते हैं, जैसे पर्वत की गुफा से टकराकर गूँजती हुई सिंह की दहाड़ हाथियों को डराकर भगा देती है।।17।।

चित्ररथ—ठीक है। जो पराक्रमी होते हैं, उन्हें विनय की शोभा देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—सखे नायमवसरो मम शतक्रतुं द्रष्टुम्। अतस्त्वमेवात्रभवतीं प्रभोरन्तिकं प्रापय।

चित्ररथः—यथा भवान्मन्यते। इत इतो भवत्यः।

[सर्वाः प्रस्थिताः।]

उर्वशी—[जनान्तिकम्] हला चित्तलेहे, उवआरिणं राएसिं ण सक्कणोमि आमन्तेदुम्। ता तुमं एव्व मे मुहं होहि। (सखि चित्रलेखे! उपकारिणं राजर्षिं न शक्नोम्यामान्त्रयितुम्। तत्त्वमेव मे मुखं भव।)

चित्रलेखा—[राजानमुपेत्य।] महाराअ उव्वसी विण्णवेदि—महाराएणा अब्भणुण्णादा इच्छामि पिअसहिं विअ महाराअस्स कित्तिं सुरलोअं णेदुं। (महाराज! उर्वशी विज्ञापयति—महाराजेनाभ्यनुज्ञातेच्छामि प्रियसखीमिव महाराजस्य कीर्तिं सुरलोकं नेतुम्।)

राजा—गम्यतां पुनर्दर्शनाय।

[सर्वाः सगन्धर्वा आकाशोत्पतनं रूपयन्ति।]

उर्वशी—[उत्पतनभङ्गं रूपयित्वा।] अम्मो लदाविडवे एसा एआवली वैआ- अन्तिआ मे लग्गा। [सव्याजमुपसृत्य राजानं पश्यन्ती।] सहि चित्तलेहे मोआवेहि दाव णं। (अहो लताविटपे! एषैकावली वैजयन्तिका मे लग्ना। सखि चित्रलेखे! मोचय तावदेनाम्।)

चित्रलेखा—[विलोक्य विहस्य च।] आं दिढं क्खु लग्गा सा। असक्का मोआविदुं। (आम् दृढं खलु लग्ना सा। अशक्यं मोचयितुम्।)

उर्वशी—अलं पडिहासेन। मोआवेहि दाव णं। (अलं परिहासेन। मोचय तावदेनाम्।)

राजा—मित्र! इस समय तो मैं भगवान् इन्द्र का दर्शन कर नहीं सकूँगा, इसलिये आप ही इस समय इन्हें स्वामी के पास पहुँचा आइए।

चित्ररथ—जैसी आपकी इच्छा। इधर से आइए देवियो! इधर से।

[सब चली जाती हैं।]

उर्वशी—[अलग] सखी चित्रलेखा! अपने ऊपर इतना उपकार करनेवाले राजर्षि से चलते हुए विदा लेने में मुझे तो लाज लग रही है, इसलिये तुम्हीं मेरी ओर से विदा माँग लो।

चित्रलेखा—[राजा के पास पहुँचकर] महाराज! उर्वशी कह रही है कि यदि महाराज की आज्ञा हो तो महाराज की कीर्ति को अपनी सखी बनाकर मैं इन्द्रलोक में ले जाऊँ।

राजा—जाइए, पर फिर दर्शन अवश्य दीजिएगा।

[सब अप्सराएँ गन्धर्व के साथ आकाश में उड़ने का नाट्य करती हैं।]

उर्वशी—[उड़ने में बाधा पड़ने का नाट्य करती हुई।] अरे लो! इस लता की शाखा में मेरी इकहरी बैजयन्ती की माला ही फँस गई! [घूमकर राजा को देखती है।] सखी चित्रलेखा! इसे छुड़ाओ तो आकर।

चित्रलेखा—[देखकर हँसते हुए] हाँ, यह तो बड़ी बुरी फँस गई है। क्या छुड़ाए छूटती है?

उर्वशी—अच्छा ठिठोली रहने दो, पहले छुड़ाओ तो इसे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा—आं दुम्मोआ विअ मे पडिहादि। तहा वि मोआकस्सं दाव। (आम् दुर्मोच्येव मे प्रतिभाति। तथापि मोचयिष्ये तावत्।)

उर्वशी—[स्मितं कृत्वा] पिअसहि सुमरेहि क्खु एदं अत्तणो वअणम्। (प्रियसखि! स्मरस्व खल्वेतदात्मनो वचनम्।)

राजा—[स्वगतम्]

प्रियमाचरितं लते त्वया मे गमनेऽस्याः क्षणविघ्नमाचरन्त्या।
यदियं पुनरप्यपाङ्गनेत्रा परिवृत्तार्धमुखी मया हि दृष्टा।। 18।।

[चित्रलेखा मोचयति। उर्वषी राजानमालोकयन्ती सनिःश्वासं सखीजनमुत्पतन्तं पश्यन्ति।]

सूतः—आयुष्मन्!

अदः सुरेन्द्रस्य कृतापराधान्प्रक्षिप्य दैत्याँल्लवणाम्बुराशौ।
वायव्यमस्त्रं शरधिं पुनस्ते महोरगः श्वभ्रमिव प्रविष्टम्।। 19।।

राजा—तेन ह्युपश्लेषय रथम्। यावदारोहामि। [सूतस्तथा करोति। राजा नाट्येन रथमारोहति।]

उर्वशी—[सस्पृहं राजानमवलोकयन्ती।] **अवि णाम पुणो वि उअआरिणं एदं पेक्खिस्सं** (अपि नाम पुनरप्युपकारिणमेनं प्रेक्षिष्ये।)

[इति सगन्धर्वा सह सखीभिर्निष्क्रान्ता।]

चित्रलेखा—अरे यह छूटती तो नहीं दिखाई देती, फिर भी देखती हूँ छुड़ाकर।

उर्वशी—[हँसती हुई] प्यारी सखी! देख, अपने ये शब्द स्मरण रखना, भूलना मत।

राजा—[मन ही मन] हे लता! तुमने इसे रोककर मुझपर बड़ी ही कृपा की है कि इधर को आधा मुँह फेरकर देखती हुई इस बड़े-बड़े नेत्रवाली को मैंने इसी बहाने आँख भर देख तो लिया।।18।।

[चित्रलेखा माला छुड़ा देती है। उर्वशी राजा को देखकर लम्बी साँसें लेकर ऊपर उड़ती हुई सखियों को देखती है।]

सूत—आयुष्मान्! शत्रु राक्षसों को खारे समुद्र में झोंककर आपका वायव्य बाण आपके तूणीर में उसी प्रकार आकर बैठ गया, जैसे कोई साँप अपने बिल में आकर बैठ जाय।।18।।

राजा—रथ को थोड़ा पास तो बढ़ा लाओ, जिससे मैं चढ़ सकूँ।

[सारथी रथ को पास ले आता है और राजा रथ पर चढ़ने का नाट्य करता है।]

उर्वशी—[बड़ी चाह के साथ राजा को देखती हुई] क्या मैं अपने ऊपर उपकार करनेवाले इन राजर्षि को फिर कभी देख पाऊँगी?

[गन्धर्व और सखियों के साथ उर्वशी चली जाती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—[उर्वशीवर्त्मोन्मुखः।] अहो दुर्लभाभिलाषी मदनः—

एषा मनो मे प्रसभं शरीरात्पितुः पदं मध्यममुत्पतन्ती।
सुराङ्गना कर्षति खण्डिताग्रात्सूत्रं मृणालादिव राजहंसी।। 20।।

[इति निष्क्रान्तौ।]

।। इति प्रथमोऽङ्कः।।

राजा—[जिधर उर्वशी गई, उधर को देखते हुए] ओह! कामदेव भी उसी की ओर खींच ले जाता है, जिसका मिलना बड़ा कठिन होता है। यह अप्सरा आकाश में उड़कर जाती हुई मेरे मन को शरीर से उसी प्रकार बलपूर्वक खींचे लिए जा रही हैं, जैसे कोई राज-हंसी टूटे हुएकमल की डंठल से उसका तंतु खींचे लिए चली जा रही हो।।20।।

[चले जाते हैं।]

।। पहला अंक समाप्त।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीयोऽङ्कः

[ततः प्रविशति विदूषकः ।]

विदूषकः—ही ही भो णिमन्तणिओ परमण्णेण विअ राअरहस्सेण फुट्टमाणो ण सक्कणोमि जणाइण्णे अइण्णणेण अत्तणो जीहं धारिदुम् । ता जाव सो राआ धम्मासणगदो इदो आअच्छइ दाव इमस्सिं विरलजणसंवादे देवच्छन्दअप्पासादे आरुहिअ चिट्ठिस्सम् । [परिक्रम्योपविश्य पाणिभ्यां मुखं पिधाय स्थितः ।] ही ही भोः निमन्त्रणिकः परमान्नेनेव राजरहस्येन स्फुटन्न शक्नोमि जनाकीर्णेऽकीर्तनेनात्मनो जिह्वां धारयितुम् । तद्यावत्स राजा धर्मासनगत इत आयाति तावदेतस्मिन्विरलजनसंपाते देवच्छन्दकप्रसाद आरुह्य स्थास्ये ।)

[ततः प्रविशति चेटी]

चेटी—आणत्तम्हि देवीए कासिराअदुहिदाए जधा—हञ्जे णिउणिए जदो पहुदि भअअदो सुज्जस्स उअत्थाणं कटुअ पडिणिउत्तो महराओ तदो पहुदि सुण्णहिअओ विअ लक्खीअदि । ता तुमं वि दाव अज्जमाणवआदो जाणाहि से उक्कण्ठकालणं त्ति । ता कहं सोह बम्हबन्धु अदिसंधादव्वो । अहवा तणग्गलग्गं विअ अवस्साअसलिलं ण तस्सिं राअरहस्सं चिरं चिट्ठदि त्ति तक्केमि । ता जा णं अण्णेसामि । [परिक्रम्यावलोक्य च ।] अम्मो आलेक्खवाणरो विअ किंपि मन्तअन्तो णिहदो अज्जमाणअवो चिट्ठदि । ता जाव णं उवसप्पामि । [उपसृत्य ।] अज्ज

द्वितीय अङ्क

[विदूषक प्रवेश]

विदूषक—हँः हँः हँः हँः! न्यौता जीमनेवाले पेटू ब्राह्मण का पेट जैसे फटा जाता है, वैसे ही राजा के प्रेम की बात कहने को मेरा भी जी ऐसा फटा जा रहा है कि मैं अपनी जीभ को इतने लोगों के बीच में बोलने से रोक नहीं पा रहा हूँ। जब तक मेरे माननीय मित्र महाराज, राजसभा से लौटें, तब तक मैं इस देवच्छन्दक नाम के भवन में ही चलकर बैठूँ, जहाँ लोगों की पहुँच भी बहुत कम होती है। (हाथ से मुख बन्द कर बैठता है।)

[इतने में चेटी आती है।]

चेटी—काशी-नरेश की कन्या ने मुझे आज्ञा दी है कि—हे निपुणिका! भगवान् सूर्य की उपासना करके जब से महाराज लौटे हैं, तभी से वे कुछ अनमने से दिखाई देते हैं। इसलिये तू जाकर उनके प्यारे मित्र माणवक से उनकी उदासी का कारण पूछ आ। अब मैं उस मूर्ख को कैसे फोड़ूँ? पर मैं समझती हूँ कि जैसे घास पर पड़ी हुई ओस की बूँद बहुत देर तक नहीं ठहर पाती, वैसे ही उसके पेट में राजा की गुप्त बातें बहुत देर तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वन्दामि। (आज्ञप्तास्मि देव्या काशिराजदुहित्रा यथा—हञ्जे निपुणिके यतः प्रभृति भगवतः सूर्यस्योपस्थानं कृत्वा प्रतिनिवृत्तो महाराजस्ततः प्रभृति शून्यहृदय इव लक्ष्यते। तत्त्वमपि तावदार्यमाणवकाज्जानीह्यस्योत्कण्ठाकारणमिति। तत्कथं स ब्रह्मबन्धुरतिसंधातव्यः? अथवा तृणाग्रलग्नमिवावश्यायसलिलं न तस्मिन्राजरहस्यं चिरं तिष्ठतीति तर्कयामि। तद्यावदेनमन्वेषयामि। अहो आलेख्यवानर इव किमपि मन्त्रयन्निभृत आर्यमाणवकस्तिष्ठति। तद्यावदेनमुपसर्पामि। आर्य! वन्दे।)

विदूषकः—सत्थि भोदीए। [आत्मगतम्] **एवं दुठुचेडिअं पेक्खिअं तं राअरहस्सं हिअअं भिन्दिअ णिक्कमदि विअ** [किंचिन्मुखं संवृत्य। प्रकाशम्।] **भोदि णिउणिए संगीदवावारं उज्झिअ कहिं पत्थिदासि।** (स्वस्ति भवत्यै। एतां दुष्टचेटिकाँ प्रेक्ष्य तद्राजररहस्यँ हृदयं भित्त्वा निष्क्रामतीव। भवति निपुणिके! संगीतव्यापारमुज्झित्वा कुत्र प्रस्थितासि।)

चेटी—देवीए वअणेण अज्जं एव्व पेक्खिदुम्। (देव्या वचनेनार्यमेव प्रेक्षितुम्।)

विदूषकः—किं तत्तभोदी आणवेदि। (कि तत्रभवत्याज्ञापयति।)

चेटी—देवी भणादि जधा—अज्जस्स मम उअरि अदक्खिण्णम्। ण मं अणुइदवेअणं दुक्खिदं अवलोअदि त्ति। (देवी भणति यथा—आर्यस्य ममोपरि- अदाक्षिण्यम्। न मामनुचितवेदनां दुःखितामवलोकयतीति।)

विदूषकः—णिउणिए किं वा पिअवअस्सेण तत्तभोदीए पडिऊलं किंवि समाचरिदम्। (निपुणिके! किं वा प्रियवयस्येन तत्रभवत्याः प्रतिकूलं किमपि समाचरितम्।)

चेटी—जं णिमित्तं उण भट्टा उक्कण्ठिदो ताए इत्थिआए णामेण भट्टिणा देवी आलविदा। (यन्निमित्तं पुनर्भर्ता उत्कण्ठितः तस्याः स्त्रिया नाम्ना भर्त्रा देवी आलपिता।)

नहीं पच सकेंगी। इसीलिए चलूँ, उसको खोजकर देखूँ। [घूमकर और देखकर] अरे, आर्य माणवक तो यहाँ चित्र में वने हुए बन्दर के समान कुछ सोचते हुए चुपचाप से वैठे हुए हैं। तो चलूँ इनके पास। [पास जाकर] आर्य! प्रणाम करती हूँ।

विदूषक—कल्याण हो आपका। [मन ही मन] इस दुष्ट दासी को देखकर तो राजा के प्रेम की गुप्त बातें हृदय फोड़कर निकलना चाहती हैं। [प्रकट] कहो निपुणिकाजी! अपना गाना-बजाना छोड़कर किधर चली हो?

चेटी—देवी की आज्ञा से आपके ही दर्शन के लिये तो आ रही थी।

विदूषक—कहो कहो, महारानी जी ने क्या कहलवाया है?

चेटी—देवी ने कहलाया है कि आजकल आप हमपर कृपा नहीं कर रहे हैं और अकारण इतनी बड़ी चिन्ता में जलती हुई को देखने भी नहीं आते।

विदूषक—निपुणिका! क्या इधर महाराज ने कोई देवी के मन के विरुद्ध काम कर डाला है?

चेटी—हाँ! आजकल महाराज किसे प्यार करते हैं, उसी का नाम लेकर उन्होंने देवी को पुकार दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—[स्वगतम्] कहं सअं एव्व तत्तभोदा वअस्सेण रहस्यभेदो किदो। किं दाणिं अहं बम्हणे जीहं रक्खिदुं समत्थोम्हि। [प्रकाशम्।] किं तत्तभोदा उब्बसींणामधेएण आमन्तिदा। (कथं स्वयमेव तत्रभवता वयस्येन रहस्यभेदः कृतः। किमिदानीमहं ब्राह्मणो जिह्वां रक्षितुं समर्थोस्मि। किं तत्रभवता उर्वशीनामधेयेनामन्त्रिता।)

चेटी—अज्ज का सा उव्वसी? (आर्य! का सा उर्वशी?)

विदूषकः—अत्थि उव्वसि त्ति अच्छरा। ताए दंसणेण उम्मादिदो ण केवलं तं आओसेदि मं वि बम्हणं असिदव्यविमुहं दिढं पीडेदि। (अस्त्युर्वशीत्यप्सराः। तस्या दर्शनेनोन्मादितो न केवलं तामायासयति मामपि ब्राह्मणमशितव्यविमुखं दृढं पीडयति।)

चेटी—[स्वगतम्।] उव्वादिदो मए भेओ भट्टिणो रहस्सदुग्गस्स। ता गदुअ देवीए एदं णिवेदेमि। (उत्पादितो मया भेदो भर्तुः रहस्यदुर्गस्य। तद्गत्वा देव्यै एतन्निवेदयामि।)

[इति प्रस्थिता।]

विदूषकः—णिउणिए! विण्णा वेहि मम वअणेण कासिराअदुहिदरम्—परिस्सन्तम्हि इमाए मिअतिण्हिआए। वअस्सं णिअत्तावेदुम्। जइ भोदीए मुहकमलं पेक्खिस्सदि तदो णिअत्तिस्सदित्ति। (निपुणिके! विज्ञापय मम वचनेन काशिराजदुहितरम्—परिश्रान्तोऽस्येतस्या मृगतृष्णिकाया वयस्यं निवर्तयितुम्। यदि भवत्या मुखकमलं प्रेक्षिष्यते ततो निवर्तिष्यत इति।)

चेटी—जं अज्जो आणवेदि। (यदार्य आज्ञापयति) [इति निष्क्रान्ता]

[नेपथ्ये वैतालिकः]

जयतु जयतु देवः।

विदूषक—[मन में] अरे! तो क्या स्वयं महाराज ने ही सब भंडा फोड़ दिया। तब मैं ब्राह्मण होकर अपनी जीभ कैसे बाँधकर रख सकता हूँ। [प्रकट] क्या महाराज ने उर्वशी कहकर पुकारा था?

चेटी—क्यों आर्य! यह उर्वशी कौन है?

विदूषक—अरे यह उर्वशी एक अप्सरा है। उसे देखकर महाराज ऐसी सुध-बुध खो बैठे हैं कि उन्होंने केवल देवी का ही जी नहीं दुखा रखा है, वरन् भोजन-पानी छोड़े हुए इस ब्राह्मण को भी साँसत दे रखी है।

चेटी—[मन में] स्वामी के भेद का दुर्ग तो मैंने फोड़ लिया। अब मैं जाकर देवी को यही सब बता देती हूँ। [चल देती है]

विदूषक—सुनो सुनो निपुणिका! देखो, मेरी ओर से काशिराज की पुत्री से कहना कि मैं तो अपने मित्र को इस मृगतृष्णा से बचाने की बात समझाते-समझाते थक गया। हाँ, यदि वे आपका मुख-कमल देख लें, तो उनका मन उर्वशी से अवश्य फिर जायगा। समझी?

चेटी—जैसी आर्य की आज्ञा। [चली जाती है।]

(नेपथ्य में वैतालिक)

महाराज की जय हो, जय हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ लोकान्तात्प्रतिहततमोवृत्तिरासां प्रजानां
तुल्योद्योगस्तव च सवितुश्चाधिकारो मतो नः।
तिष्ठत्येकः क्षणमधिपतिर्ज्योतिषां व्योममध्ये
षष्ठे काले त्वमपि लभसे देव विश्रान्तिमह्नः।। 1 ।।

विदूषकः–[कर्णं दत्वा] एसो उण पिअवअस्सो धम्मासणसमुत्थिदो इदो एव आअच्छदि। ता जाव पासपडिवत्ती होमि। [इति निष्क्रान्तः] (एष पुनः प्रियवयस्यो धर्मासनसमुत्थित इत एवागच्छति। तद्यावत्पार्श्वपरिवर्ती भवामि।)

।। इति प्रवेशकः ।।

[ततः प्रविशत्युत्कण्ठितो राजा विदूषकश्च।]

राजा–

आ दर्शनात्प्रविष्टा सा मे सुरलोकसुन्दरी हृदयम्।
बाणेन मकरकेतोः कृतमार्गमवन्ध्यपातेन।। 2 ।।

विदुषकः–सपीडा क्खु जादा तत्तभोदी कासिराअदुहिदा। (सपीडा खलु जाता तत्रभवती काशिराजदुहिता।)

राजा–[निरीक्ष्य] अपि रक्ष्यते भवता रहस्यनिक्षेपः।

विदूषकः–[आत्मगतम्] वञ्चिदोम्हि दुट्ठ दासीए णिउणिआए। अण्णधा कधं एव्वं पुच्छदि वअस्सो। (हा धिक् हा धिक्! वञ्चितोऽस्मि दुष्ट दास्या निपुणिकया। अन्यथा कथमेवं पृच्छति वयस्यः।)

हम समझते हैं कि आप और सूर्य दोनों अपना नित्य का काम ठीक एक जैसा ही करते हैं, क्योंकि सूर्य भी संसार का अँधेरा मिटाते हैं और आप भी अपनी प्रजा का कष्ट दूर करते हैं। नक्षत्रों के अकेले राजा सूर्य भी जिस प्रकार अपने काम से छुट्टी पाकर ही आकाश में विश्राम लेते हैं, वैसे ही आप भी अपने राज-काज से छुट्टी पाकर तीसरे प्रहर विश्राम करते हैं।।1 ।।

विदूषक–[सुनते हुए] लो, न्यायासन से उठे हुए मेरे प्रिय इधर ही चले आ रहे हैं। तो चलूँ, मैं भी उनकी सेवा के लिये पहुँचूँ।

।। प्रवेशक पूर्ण हुआ।।

[अनमने से राजा आते हैं, साथ में विदूषक भी है]

राजा–मेरे जिस हृदय में कामदेव ने अपने बाण मारकर उस स्वर्गलोक की सुन्दरी के आने के लिये द्वार बना दिया था, उसमें वह केवल देखने भर से ही समा गई है।।2।।

विदूषक–[मन ही मन] सचमुच काशी-नरेश की पुत्री के तो भाग फूट गए।

राजा–[देखकर] कहो, तुमने मेरी बात किसी को बताई तो नहीं।

विदूषक–[मन ही मन] हाय हाय! उस दुष्ट दासी निपुणिका ने तो मुझे बड़ा धोखा दिया, नहीं तो मित्र मुझसे इस प्रकार पूछते ही क्यों?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—किं भवाँस्तूष्णीमास्ते।

विदूषकः—भो एव्वं मए जीहा संजन्तिदा जेण भवदो वि णत्थि पदिवअणम्। (भोः एवं मया जिह्वा संयन्त्रिता येन भवतोऽपि नास्ति प्रतिवचनम्।)

राजा—युक्तम्। अथ केनेदानीमात्मानं विनोदयामि।

विदूषकः—भो महाणसं गच्छम्ह। (भो महानसं गच्छावः)

राजा—किं तत्र।

विदूषकः—तहिं पंजविहस्स अव्भवहारस्स उवणदसंभारस्स जोअणां पेक्खमाणेहिं सक्कं उक्कण्ठां विणोदेदुम्। (तत्र पञ्चविधस्याभ्यवहारस्योपनतसंभारस्य योजनां प्रेक्षमाणाभ्यां शक्यमुत्कण्ठां विनोदयितुम्।)

राजा—[सस्मितम्] तत्रेप्सितसंनिधानाद्भवान् रंस्यते। मया खलु दुर्लभप्रार्थनाः कथमात्मा विनोदयितव्यः।

विदूषकः—रणं भवं वि तत्तभोदीए उव्वसीए दंसणपहं गदो। (ननु भवानपि तत्रभवत्या उर्वश्या दर्शनपथं गतः।)

राजा—ततः किम्।

विदूषकः—ण क्खु दे दुल्लह त्ति तक्केमि। (न खलु ते दुर्लभेति तर्कयामि।)

राजा—पक्षपातोऽपि तस्यां सद्रूपस्यालौकिक एव।

विदूषकः—एव्वं मन्तअन्तेण मे वड्ढिदं कोदूहलम्। किं तत्तभोदी उव्वसी

राजा—क्यों चुप क्यों हो गए?

विदूषक—देखिए, मैंने अपनी जीभ को ऐसा बाँध लिया है कि आपकी बात का भी एकाएक उत्तर नहीं निकल पाया।

राजा—ठीक है। पर यह तो बताओ कि अपना मन मैं कैसे बहलाऊँ?

विदूषक—चलिए रसोई में चला जाये!

राजा—वहाँ क्या धरा है?

विदूषक—वहाँ पाँच ढंग के पकवानों की सामग्री देखने भर से ही लोगों की उदासी जाती रहेगी।

राजा—[हँसकर] जी हाँ, वहाँ आपको तो अपने मन बहलाने की सारी सामग्री मिल जायगी, पर बड़ी कठिनाई से हाथ लगने वाली वस्तु के लिये तड़पने वाले मुझको वहाँ मन-बहलाव के लिये क्या हाथ लगेगा?

विदूषक—पर आपको भी तो उर्वशी जी ने देखा होगा न?

राजा—उससे क्या?

विदूषक—तब तो मैं समझता हूँ कि उसका मिलना कठिन नहीं होगा।

राजा—अरे! वह इतनी अधिक सुन्दरी है कि उसे बड़ी सुन्दरी कहना भी एक अनोखी सी बात लगती है।

विदूषक—आपकी इन बातों से तो मेरा क़ुतूहल और भी अधिक बढ़ रहा है। क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद्दुदीआ रूवेण अहं विअ विरूवदाए। (एवं मन्त्रयता मम वर्धितं कौतूहलम्। किं तत्रभवत्युर्वश्यद्वितीया रूपेण अहमिव विरूपतया।)

राजा—माणवक! प्रत्यवयवमशक्यवर्णनां तामवेहि। तेन हि समासतः श्रूयताम्।

विदूषकः—भो! अवहिदोम्मि। (भोः! अवहितोऽस्मि।)

राजा—

आभरणस्याभरणं प्रसाधनविधेः प्रसाधनविशेषः।
उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमानं वपुस्तस्याः।।3।।

विदूषकः—अदो दाव तुए दिव्वरसाहिलासिणा चादअव्वदं गहीदम्। ता दाव तुमं कहिं पत्थिदो। (अतस्तावत्त्वया दिव्यरसाभिलाषिणा चातकव्रतं गृहीतम्। तत्तावत्त्वं कुत्र प्रस्थितः।)

राजा—विविक्तादृते नान्यदुत्सुकस्य शरणमस्ति। तद्भवान्प्रमदवनमार्गमादेशयतु।

विदूषकः—[आत्मगतम्] का गदी। [प्रकाशम्] इदो इदो भव। (का गतिः। इत इतो भवान्।)

(इति परिक्रामतः।)

विदूषकः—एसो पमदवणपरिसरो। आणमिअ पच्चुवगदो भवं आअन्तुओ दक्खिणमारुदेण। (एष प्रमदवनपरिसरः। आनम्य प्रत्युपगतो भगवानागन्तुको दक्षिणमारुतेन।)

राजा—(विलोक्य) [उपपन्नं विशेषणमस्य वायोः। अयं हि—

निषिञ्चन्माधवीं लक्ष्मीं लतां कौन्दीं च लासयन्।
स्नेहदाक्षिण्ययोर्योगात्कामीव प्रतिभाति मे।।4।।

उर्वशी जी सुन्दरता में उतनी ही वढ़ी चढ़ी हैं जितना मैं कुरूपता में हूँ?

राजा—मित्र माणवक! बस यह समझ लो कि उसके अंग-अंग का वर्णन तो कोई कर ही नहीं सकता, इसलिये थोड़े में ही जो वताता हूँ उसे सुनो।

विदूषक—हाँ! मैं सुन रहा हूँ ध्यान से।

राजा—उसका शरीर आभूषणों का भी आभूषण है, शृंगार की समाग्रियों का भी शृंगार है और उपमा की वस्तुओं की भी उपमा उससे दी जा सकती है।।3।

विदूषक—हूँ! इसीलिये आप उस स्वर्गीय जल के लिये प्यासे चातक बन बैठे हैं? अच्छा आप अभी जा किधर रहे हैं?

राजा—प्रेमी लोग एकान्त छोड़कर और जा ही कहाँ सकते हैं? चलो, मुझे प्रमदवन की ओर ले चलो।

विदूषक—[मन ही मन] जहाँ कहिए ले चलूँ। [प्रकट] इधर से आइए महाराज, इधर से। [दोनों घूमते हैं।]

विदूषक—लीजिए पहुँच गए हम प्रमदवन के पास। आपके आते ही उद्यान की ओर से आता हुआ दक्षिणी पवन बड़ी नम्रता से आपकी आवभगत कर रहा है।

राजा—[देखकर] इस वायु का दक्षिण कहलाना ठीक ही है; क्योंकि माधवी लता को सींचता हुआ और कुन्दलता को नचाता हुआ, यह पवन मुझे ऐसा जान पड़ता है, मानो सवसे प्रेम करने वाला और सवको एक साथ प्रसन्न रखने वाला यह कोई कामी हो।।4।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—सरिसो एव्व से अहिणिवेसो। [इति परिक्रामन्] एवं पमदवणम्। पविसदु भवम्। (सदृश एवास्याभिनिवेशः। एतत्प्रमदवनम्। प्रविशतु भवान्।)

राजा—वयस्य! प्रविशाग्रतः।

[उभौ प्रवेशं नाटयतः]

राजा—[त्रासं रूपयित्वा।] वयस्य! साधु मनसा समर्थित आपत्प्रतीकारः किल ममोद्यानप्रवेशः तच्चान्यथैवोपपन्नम्।

विविक्षोर्यदिदं नूनमुद्यानं तापशान्तये।
स्रोतसेवोह्यमानस्य प्रतीपतरणं महत्।।5।।

विदूषकः—कहं विअ। (कथमिव।)

राजा—

इदमसुलभवस्तुप्रार्थनादुर्निवारं प्रथममपि मनो मे पञ्चवाणः क्षिणोति।
किमुत मलयवातोन्मूलिताऽऽ पाण्डुपत्रैः उपवनसहकारैर्दर्शितेष्वङ्कुरेषु।।6।।

विदूषकः—अलं परिदेबिदेण। अइरेण दे इट्ठसंपादणेण अणंगो एव्व दे सहाओ भविस्सदि। (अलं परिदेवितेन। अचिरेण तवेष्टसम्पादनेनानङ्ग एव ते सहायो भविष्यति।)

राजा—प्रतिगृहीतं ब्राह्मणवचनम्।

[इति परिक्रामतः]

विदूषकः—पेक्खदु भवं वसंतावदार सूअअं अहिरामत्तणं पमदवणस्स। (प्रेक्षतां भवान्वसन्तावतारसूचकमभिरामत्वं प्रमदवनस्य।)

विदूषक—यह भी आपके ही समान प्रेम करता है। [घूमता हुआ] लीजिए, यह आ गया प्रमदवन! चलिए भीतर चले चलिए।

राजा—चलो वयस्य! आगे-आगे तुम्हीं चलो [दोनों प्रवेश करने का नाट्य करते हैं।]

राजा—[डरने का नाट्य करते हुए] वयस्य! मैं तो यहाँ उद्यान में यह भलाई सोचकर आया था कि यहाँ जी हल्का हो जायगा, पर उसका तो यहाँ उलटा फल हो रहा है। अपने मन की पीड़ा मिटाने के लिये इस उद्यान में मेरा आना वैसा ही हुआ, जैसे बहाव के साथ तैरने वाले को अचानक चढ़ाव की ओर तैरना पड़ जाय।।5।।

विदूषक—यह कैसै?

राजा—बड़ी कठिनाई से हाथ आने वाली वस्तु के लिये जो मेरा मन मचल पड़ा है, इसे एक तो कामदेव ने पहले ही छलनी कर दिया था, उस पर यहाँ देख रहे हैं कि उद्यान के उन आम के पेड़ों में कोंपलें भी फूट आई हैं, जिनके पीले पत्ते मलय-पवन ने झाड़कर गिरा दिए हैं। फिर बताओ हमारे मन को शान्ति कहाँ से मिलेगी?।।6।।

विदूषक—चिन्ता न कीजिए। आपकी प्रियतमा से शीघ्र ही आपको मिलाकर यही कामदेव आपका सहायक बन जायगा।

राजा—ब्राह्मण का आशीर्वाद सिर माथे। [दोनों घूमते हैं]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विदूषक—इस प्रमदवन की शोभा को तो देखिए जो बता दे रही है कि वसन्त आ गया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—ननु प्रदिपादपमेवावलोकयामि। अत्र हि—

अग्रे स्त्रीनखपाटलं कुरबकं श्यामं द्वयोर्भागयोः
रक्ताशोकमुपोढरागसुभगं भेदोन्मुखं तिष्ठति।
ईषद्बद्धरजःकणाग्रकपिशा चूते नवा मञ्जरी
मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सखे मध्ये मधुश्री स्थिता।। 7।।

विदूषकः—भो एसो क्खु मणिसिलापट्टअसणाहो अदिमुत्तलदामंडवो भमरसंघट्ट-पडिदेहिं कुसुमेहिं सअं विअ किदोवआरो भवंतं पडिच्छदि। ताअणुगेण्हिअदु दाव एसो। (भोः एष खलु मणिशिलापट्टकसनाथोऽतिमुक्तलतामण्डपो भ्रमरसङ्घट्टपतितैः कुसुमैः स्वयमिव कृतोपचारो भवन्तं (प्रतीच्छति। तदनुगृह्यतां तावदेषः।)

राजा—यथा भवते रोचते।

[परिक्रम्योपविशतः]

विदूषकः—दाणिं इह सुहासीणोभवं ललिदलदाविलोहीअमाणणअणो उव्वसीगदं उक्कंठं विणोदेदु। (इदानीमिह सुखासीनो भवाँल्ललितलताविलोभ्यमाननयन उर्वशीगतामुत्कण्ठां विनोदयतु।)

राजा—[निःश्वस्य]

मम कुसुमितास्वपि सखे नोपवनलतासुनम्रविटपासु।
चक्षुर्वध्नाति धृतिं तद्रूपालोकदुर्ललितम्।। 8।।

तदुपायश्चिन्त्यतां यथा सफलप्रार्थनो भवेयम्।

राजा—मैं एक-एक पेड़ को देख रहा हूँ। यह है कुरबक का फूल, जिसका सिरा स्त्री के नख के समान लाल है और जिसके दोनों छोर साँवले रंग के हैं। अपनी ललाई से सुन्दर लगने वाला यह लाल अशोक का फूल, ऐसा लगता है कि बस अब खिलने ही वाला है। आम के पेड़ में कुछ-कुछ दिखाई देने वाले पराग के कारण पीला-सा लगने वाला नया बौर फूटने लगा है। मित्र! इस प्रकार यह वसन्त की शोभा ऐसी लगती है, मानो वह अपने बचपन और जवानी के बीच में खड़ी हुई हो।।7।।

विदूषक—देखिए यहाँ अतिमुक्त लता के मंडप की रत्नजड़ित पत्थर की चौकी पर भौंरों के उड़ने से जो फूल गिर-गिरकर बिखरे पड़े हैं, वे ऐसे लगते हैं मानो यह मंडप, सब सजावट करके बड़े आदर से आपका स्वागत कर रहा हो। चलिए इसका भी मन रख लीजिए।

राजा—जैसा तुम्हें अच्छा लगे। [दोनों घूमकर बैठते हैं।]

विदूषक—अब आप यहाँ सुख से बैठकर सुन्दर लताओं में अपने नयन उलझाकर उर्वशी की चिन्ता ही मिटा डालिए।

राजा—[साँस भरकर] उसकी सुन्दरता ने मेरी आँखों पर कुछ ऐसा जादू फेर दिया है कि उन्हें उपवन की फूली हुई लताएँ और कोमल पौधे भाते ही नहीं है।।8।। इसलिये कोई ऐसा उपाय सोचो कि मेरे मन की साध पूरी हो सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—[विहस्य] **भो अहल्लाकामुअस्स महिंदस्स वेज्जो सचिवो उव्वसीपज्जुच्छुअस्स अ भवदो अहं दुवेवि एत्थ उम्मत्तआ।** (भोः अहल्याकामुकस्य महेन्द्रस्य वैद्यः सचिवः उर्वशीपर्युत्सुकस्य च भवतोऽहं द्वावप्यत्रोन्मत्तौ।)

राजा—मा मैवम्। अतिस्नेहः खलु कार्यदर्शी। तदुपायश्चिन्त्यताम्।

विदूषकः—**एसो चिंतेमि। मा उण परिदेविदेण मन समाधिं भिंधि।** (एष चिन्तयामि। मा पुनः परिदेवितेन ममसमाधिं-भिन्धि।) [इति चिन्तां नाटयति।]

राजा—[निमित्तं सूचयित्वा। स्वगतम्।]

न सुलभा सकलेन्दुमुखी च सा किमपि चेदमनङ्गविचेष्टितम्।
अभिमुखीष्विव काङ्क्षितसिद्धिषु व्रजति निर्वृतिमेकपदे मनः।। 9।।

[इति जाताशस्तिष्ठिति]

[ततः प्रविशत्याकाशयानेनोर्वशी चित्रलेखा च।]

चित्रलेखा—**हला कहिं दाणिं अणिदिट्ठकालणं गच्छीअदि।** (हला क्वेदानीमनिर्दिष्टकारणं गम्यते।)

उर्वशी—[मदनवेदनामभिनीय सलज्जम्] **सहि! तदा हेमऊडसिहरे लदाविडवेण खणविग्घिदआआसगमणं मं ओहसिअ किं दाणिं पुच्छसि कहिं गच्छीअदि त्ति।** (सखि! तदा हेमकूटशिखरे लताविटपेन क्षणविघ्निताकाशगमनां मामुपहस्य किमिदानीं पृच्छसि क्व गम्यते इति।)

विदूषक—[हँसकर] देखिए, जैसे अहल्या को पाने की इच्छा करने वाले इन्द्र की सहायता करते समय चन्द्रमा की बुद्धि मारी गई थी, वैसे ही प्रेम में पड़े हुए आपका सहायक होकर मैं भी अपनी सब बुद्धि खो बैठा हूँ।

राजा—ऐसा न कहो। जो अधिक स्नेह करता है, वही तो ठीक उपाय सुझा सकता है। इसलिये कोई उपाय सोच ही डालो।

विदूषक—अच्छा मैं सोचने तो बैठता हूँ, पर आप बीच में ही बोलकर मेरा ध्यान मत तोड़ देना।

[सोचने का नाट्य करता है।]

राजा—[अच्छे शकुन की सूचना देता हुआ मन ही मन] पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाली उस सुन्दरी के मिलने की कोई आशा तो नहीं है, पर न जाने क्यों कामदेव मुझे बड़े अच्छे सगुन दिखा रहा है। मेरा मन अचानक ऐसा खिल उठा है, मानो मेरा काम बस बनने ही वाला हो।।9।।

[बड़ी आशा लगाकर बैठता है।]

[विमान पर चढ़ी हुई उर्वशी और चित्रलेखा दिखाई देती हैं।]

चित्रलेखा—[क्यों सखी! बिना सोचे-समझे किधर चली जा रही हो?]

उर्वशी—[काम-पीड़ा का नाट्य करती हुई लज्जा के साथ] सखी! जब हेमकूट पर्वत की चोटी पर, लता की शाखा में मेरी माला उलझ गई थी और मेरा उड़ना थोड़ी देर के लिये रुक गया था, उस समय मुझसे ठिठोली करके भी अब तुम पूछ रही हो कि मैं कहाँ जा रही हूँ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा—किं णु क्खु तस्स राएसिणो पुरुरवस्स सआसं पत्थिदासि। (किं नु खलु तस्य राजर्षेः पुरुरवसः सकाशं-प्रस्थितासि।)

उर्वशी—अह इं। अअं मे अवहत्थिदलज्जो ववसाओ। (अथ किम्। अयं मेऽपहस्तितलज्जो व्यवसायः।)

चित्रलेखा—को उण सहीए तहिं पुढमं पेसिदो। (कः पुनः सख्या तत्र पुरतः प्रेषितः।)

उर्वशी—णं हिअअं। (ननु हृदयम्।)

चित्रलेखा—तधा वि सअं एव्व साहु संपधारिअदु दाव। (तथापि स्वयमेव साधु सम्प्रधार्यतां तावत्।)

उर्वशी—सहि मअणो क्खु मं णिओएदि। किं एत्थ संपधारीअदि। (सखि मदनः खलु मां नियोजयति। किमत्र सम्प्रधार्यते।)

चित्रलेखा—अदोवरं णत्थि मे वअणम्। (अतः परं नास्ति मे वचनम्।)

उर्वशी—तेण हि आदिसीअदु मग्गोजेणं तहिं गच्छन्तीणं अंतराओ ण भवे। (तेन ह्यादिश्यतां मार्गो येन तत्र गच्छन्त्योरन्तरायो न भवेत्।)

चित्रलेखा—सहि! विस्सद्धा होहि। णं भअवदा देवगुरुणा अवराइदं णाम सिहाबंधणविज्जं उवदिसंतेण तिदसपडिवक्खस्स अलंघणिज्जा कदम्ह। (सखि विस्रब्धा भव। ननु भगवता देवगुरुणा अपराजितां नाम शिखाबन्धनविद्यामुपदिशता त्रिदशप्रतिपक्ष-स्यालङ्घनीये कृते स्वः।)

उर्वशी—[सलज्जम्] अहो विसुमरिदं मे हिअअं। (अहो! विस्मृतं मे हृदयम्।)

[उसे भ्रमणं रूपयतः]

चित्रलेखा—तो क्या तुम उस राजर्षि पुरुरवा के पास जा रही हो?

उर्वशी—और क्या? आज मैंने सब लाज छोड़कर यही जी में ठान लिया है।

चित्रलेखा—तो वहाँ तुम्हारे जाने का सन्देश कौन ले गया है?

उर्वशी—क्यों? मेरा हृदय।

चित्रलेखा—फिर भी इसका भला-बुरा भली प्रकार सोच-विचार लो।

उर्वशी—सखी! मुझे तो कामदेव ने ही इस कार्य में झोंक दिया है, फिर इसमें सोच-विचार ही कैसा?

चित्रलेखा—तुमने तो ऐसी बात कह दी कि मेरा मुँह ही बन्द हो गया।

उर्वशी—तो अब मुझे कोई ऐसा उपाय बताओ कि मैं वहाँ बेरोकटोक पहुँच जाऊँ।

चित्रलेखा—चिन्ता न करो सखी! देवगुरु बृहस्पति ने अपराजिता नाम की, चोटी बाँधने की विद्या सिखाते समय हमें ऐसी शक्ति दे दी है कि देवों के शत्रु भी हम लोगों का बाल बाँका नहीं कर सकते।

उर्वशी—[लजाती हुई] अरी! यह बात तो मेरे ध्यान से ही उतर गई थी। [दोनों घूमती हैं।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा—सहि पेक्ख पेक्ख। एदं भअवदीए भाईरहीए जमुणासंगमविसेस-पावणेसु सलिलेसु अत्ताणअं ओलोअंतस्स विअ पइट्ठाणस्य सिहाभरणभूदं तस्स राएसिणो भवणं उवट्ठिदम्ह। (सखि प्रेक्षस्व। एतद्भगवत्याः भागीरथ्याः यमुनासङ्गमविशेष पावनेषु सलिलेष्वात्मानमवलोकयत इव प्रतिष्ठानस्य शिखाभरणभूतं तस्य राजर्षेर्भवनमुपस्थिते स्वः।)

उर्वशी—[सस्पृहमवलोक्य] णं वक्तव्यं ठाणंतरगदो सग्गो त्ति। [विमृश्य] सहि कहिं णु क्खु सो आवण्णाणुकंपी भवे। (ननु वक्तव्यं स्थानान्तरगतः स्वर्ग इति। सखि क्व नु खलु स आपन्नानुकम्पी भवेत्।)

चित्रलेखा—हला एदस्सिं णंदणवणेक्कदेसे विअ पदमवण ओदरिअ जाणिस्सामो। (हलाएतस्मिन्नन्दनवनैकदेश इव प्रमदवने अवतीर्य ज्ञास्यावः।)

[उभे अवतरतः]

चित्रलेखा—[राजानं दृष्ट्वा सहर्षम्] सहि! एसो क्खु पढमोदिदो विअ चंदो कोमुदिं विअ तुमं पडिच्छदि। (सखि! एष खलु प्रथमोदित इव चन्द्रः कौमुदीमिव त्वां प्रतीच्छति।)

उर्वशी—[विलोक्य] हला दाणिं पढमदंसणादो सविसेसं पिअदंसणो महाराओ पडिहादि।

(हला! इदानीं प्रथमदर्शनात्सविशेषं प्रियदर्शनो महाराजः प्रतिभाति।)

चित्रलेखा—जुज्जदि। ता एहि उवसप्पम्ह। (युज्यते। तदेहि उपसर्पावः)

उर्वशी—ण दाव उवसप्पिस्सं। तिरक्खरिणीपडिच्छण्णा पासगदा से भविअ सुणिस्सं दाव पासवत्तिणा वअस्सेण सह विअणे कि मंतअंतो चिठ्ठदि त्ति। (न तावदुपसर्पिष्ये। तिरस्करिणीप्रतिच्छन्ना पार्श्वगतास्य भूत्वा श्रोष्यामि तावत् पाश्ववर्तिना वयस्येन सह विजने किं मन्त्रयमाणस्तिष्ठतीति।)

चित्रलेखा—अरी, देख सखी! हम लोग राजर्षि के उस भवन पर पहुँच गई हैं, जिसकी जोड़का दूसरा कोई भवन प्रतिष्ठानपुरी में नहीं है और जो ऐसा दिखाई पड़ रहा है मानो यमुना जी के संगम के कारण और भी अधिक पवित्र बने हुए गंगा जी के जल में अपना मुँह देख रहा हो।

उर्वशी—[चाव से देखती हुई] यह क्यों नहीं कहती कि स्वर्ग ही यहाँ उठकर चला आया है। [विचारकर] अच्छा सखी! दुखियों पर दया करने वाले वे राजा इस समय कहाँ होंगे?

चित्रलेखा—चलो सखी! नन्दनवन के समान सुहावने इस प्रमदवन में उतरकर उनकी खोज करें [दोनों उतरती हैं।]

चित्रलेखा—[राजा को देखकर प्रसन्नता से] सखी! जैसे नया-नया निकला हुआ चन्द्रमा चाँदनी के आने की बाट देखता है, वैसे ही ये भी यहाँ बैठे हुए तेरे आने की बाट देख रहे हैं।

उर्वशी—[देखकर] सखी! आज तो महाराज उस दिन से भी अधिक सुन्दर लग रहे हैं।

चित्रलेखा—ठीक कहती हो! तो आओ चलें उनके पास।

उर्वशी—नहीं नहीं, मैं उनके पास नहीं जाऊँगी। मैं तो माया की ओढ़नी में छिपी हुई, इनके पास खड़ी होकर सुनती हूँ कि ये अपने पास बैठे हुए मित्र से अकेले में क्या बातें कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा—जं दे रोअहि। (यत्ते रोचते।)

[उभे यथोक्तमनुतिष्ठतः]

विदूषकः—भो चिंतिदो मए दुल्लहप्पणइणीसमाअमोवाओ। (भोः चिंतितो मयादुर्लभप्रणयिनीसमागमोपायः।)

[राजा तूष्णीमास्ते।]

उर्वशी—[सेर्ष्यम्] का णु क्खु धण्णा इत्थिआ जा इमिणा पत्थिअमाणा अत्ताणअं किदित्थेइ। (का नु खलु धन्या स्त्री या अनेन प्रार्थ्यमानात्मानं कृतार्थयति।)

चित्रलेखा—किं उण माणुस्सअं विडंबीअदि। (किं पुनर्मानुष्यं विडम्ब्यते।)

उर्वशी—सहि भीआमि सहसा पभावादो विण्णादुं। (सखि विभेमि सहसा प्रभावाद्विज्ञातुम्।)

विदूषकः—भो णं भणामि चिंतिदो बए उवाओ त्ति। (भोः ननु भणामि चिन्तितो मया उपाय इति।)

राजा—तेन हि कथ्यताम्।

विदूषकः—सिविणअसमाअमआरिणिं णिद्दं सेवदु भवं। अहवा तत्तभोदीए उब्बसीए पडिकिदि चित्तफलए आलिहिम ओलोअंदो चिट्ठदु। (स्वप्नसमागमकारिणीं निद्रां सेवतां भवान्। अथवा तत्रभवत्या उर्वश्याः प्रतिकृतिं चित्रफलक आलिख्यावलोकयंस्तिष्ठतु।)

उर्वशी—[सहर्षमात्मगतम] हीणसत्त हिंअअ समस्सस। (हीनसत्व हृदय! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।)

चित्रलेखा—जो तुम्हें अच्छा लगे!

[दोनों वैसा ही करती हैं।]

विदूषक—सुनिए! अपनी जिस प्यारी का मिलन आप कठिन समझे बैठे हैं, उससे मिलने का उपाय मैंने सोच निकाला है।

[राजा चुप रह जाते हैं।]

उर्वशी—[ईर्ष्या से] ऐसी और कौन-सी बड़भागिनी सुन्दरी निकल आई है, जो इनकी चहेती बनकर अपना भाग्य सराहती है।

चित्रलेखा—तुम फिर क्या मानुषी स्त्रियों जैसी बातें करने लगी हो?

उर्वशी—सखी! मैं अपनी दैवीशक्ति से सब बातें एक साथ जान लेने में थोड़ा डरती हूँ।

विदूषक—अरे सुनिए! मैं कह रहा हूँ कि मैंने उपाय सोच निकाला है।

राजा—तो फिर बताओ न।

विदूषक—या तो आप ऐसी गहरी नींद में जाकर सोए रहिए कि सपने में उससे भेंट हो जाय, या फिर चित्र-फलक पर उर्वशी जी का चित्र बनाकर उसे एकटक देखते रहिए।

उर्वशी—[हर्ष से मन ही मन] अरे पापी हृदय! धीरज धर, धीरज धर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—उभयमप्यनुपपन्नम्। पश्य।

हृदयमिषुभिः कामस्यान्तः सशल्यमिदं सदा
कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागमकारिणीम्।
न च सुवदनामालेख्येऽपि प्रियामसमाप्य तां
मम नयनयोरुद्बाष्पत्वं सखे न भविष्यति।। 10।।

चित्रलेखा—सुदं तुए अवणं। (श्रुतं त्वया वचनम्।)

उर्वशी—सहि सुदं। ण उण पज्जत्तं हिअअस्स। (सखि श्रुतं। न पुनः पर्याप्तं हृदयस्य।)

विदूषकः—एत्तिओ एव्व मे महिविहओ। (एतावानेव मे मतिविभवः।)

राजा—[निःश्वस्य]

नितान्तकठिनां रुजं मम न वेद सा मानसीं
प्रभावविदितानुरागमवमन्यते वापि माम्।
अलब्धफलनीरसं मम विधाय तस्मिञ्जने
समागममनोरथं भवतु पञ्चवाणः कृती।। 11।।

चित्रलेखा—सहि सुदं तुए। (सखि श्रुतं त्वया।)

उर्वशी—हद्धी हद्धी। मं एव्वं अवगच्छदि। [सखीमवलोक्य] सहि असमत्थम्हि अग्गदो भविअ से पडिवअणस्स। ता पहावणिम्मिदेण भुज्जवत्तेण संपादिदउत्तरा होदुं इच्छामि। (हा धिक् हा धिक्। मामेवमवगच्छति। सखि! असमर्थास्म्यग्रतो भूत्वास्य प्रतिवचनस्य। तत्प्रभावनिर्मितेन भूर्जपत्रेण संपादितोत्तरां भवितुमिच्छामि।)

राजा—दोनों ही बातें नहीं हो सकती। देखो! कामदेव, मेरे हृदय को दिन-रात अपने बाणों से बींधता रहता है। इसलिये मुझे ऐसी नींद भला कहाँ आ पायेगी कि प्यारी से भेंट हो जाये और फिर चित्र भी नहीं बन सकता; क्योंकि बीच में आँखें डबडबा आने से वह अधूरा ही रह जायेगा।।10।।

चित्रलेखा—अब तो तुमने सब सुन लिया न।

उर्वशी—हाँ सखी, सुन तो लिया, पर अभी तक मेरे जी को पूरा-पूरा भरोसा नहीं हो पाया है।

विदूषक—मेरी बुद्धि की पहुँच तो यहीं तक थी।

राजा—[लम्बी साँस लेकर] मैं समझता हूँ कि या तो वह मेरे मन की इस बेबसी को जानती ही न होगी, या फिर उसे अपने अप्सरा होने का ऐसा घमंड है कि वह जान बूझकर मेरे प्रेम को ठुकरा रही है। जान पड़ता है कि मेरे मन में उस सुन्दरी से मिलने की जो चाह है, उसे चूर-चूर करके और मेरे जीवन को बेकाम बना लेने पर ही कामदेव का जी भरेगा।।11।।

चित्रलेखा—तुमने सुना सखी!

उर्वशी—हाय, हाय! ये मुझे ऐसा नीच समझ रहे हैं। [सखी को देखकर] सखी! इनके आगे पहुँचकर तो मुझसे उत्तर देते बनेगा नहीं, इसलिये मैं अपनी दैवीशक्ति से एक भोजपत्र उत्पन्न करके उसी पर उत्तर लिख देना चाहती हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा—हला अणुमद मे। (हला अनुमत मे।)

[उर्वशी नाट्येन ससंभ्रममभिलिख्यान्तरा क्षिपति।]

विदूषकः—[दृष्ट्वा ससंभ्रमम्] अवहि। भो किं णु क्खु एवं भुअंगणिम्मोअं मं खादिदुं णिवडिदो। [अविधा अविधा। भोः किंनु खलु एतत् भुजङ्गनिर्मोकः किं मां खादितुं निपतितः।)

राजा—[विभाव्य विहस्य च।] वयस्य! नायं भुजङ्गनिर्मोकः भूर्जपत्रगतोऽयमक्षर-विन्यासः।

विदूषकः—णं अदिट्ठाए उव्वसीए भवदो परिदेविदं सुणिअ समाणनुराअसूअआइं अक्खराइँ विसज्जिआइँ होन्ति। (ननु अदृष्टयोर्वश्या भवतः परिदेवितं श्रुत्वा समानानुरागसूचकान्यक्षराणि विसृष्टानि स्युः)

राजा—नास्त्यगतिर्मनोरथानाम्। [गृहीत्वानुवाच्य च सहर्षम्] सखे प्रसन्नस्ते तर्कः।

विदूषकः—ही ही भो। किं बम्हणवअणाणि अण्णधा होन्ति। दाणिं पसीददु भवं। जं एत्थ लिहिदं तं सुणिदुं इच्छामि। (ही ही भोः। किं ब्राह्मणवचनान्यन्यथा भवन्ति। तदिदानीं प्रसीदतु भवान्। यदत्र लिखितं तच्छ्रोतुमिच्छामि।)

उर्वशी—साहु। अज्ज णाअरोओसि। (साधु। आर्य नागरिकोऽसि।)

राजा—वयस्य श्रूयताम्।

विदूषकः—अवहिदो म्हि। (अवहितोऽस्मि।)

चित्रलेखा—हाँ सखी! मैं भी यही ठीक समझती हूँ।

[उर्वशी बड़े हाव-भाव से भोजपत्र पर लिखने का नाट्य करती है और उसे फिर राजा के आगे फेंक देती है।]

विदूषक—[देखकर घबराता हुआ] हाय! हाय! मुझे निगलने के लिये यह साँप की केंचुली कहाँ से आ टपकी?

राजा—[देखकर और हँसकर] मित्र! यह साँप की केंचुली नहीं है, यह तो लिखा हुआ भोजपत्र है।

विदूषक—मैं समझता हूँ कि उर्वशी ने ही छिपे-छिपे तुम्हारा रोना-धोना सुनकर अपना प्रेम जताने के लिये यह पत्र लिखकर यहाँ डाल दिया होगा।

राजा—मन की दौड़ भी कितनी दूर तक पहुँचती है। [पत्र को उठाकर और पढ़कर] मित्र! तुम्हारी ही बात ठीक निकली।

विदूषक—हः हः! ब्राह्मण की बात भी क्या कभी झूठ होती है? अब आप खिल उठिए। अच्छा, मैं तो सुनूँ, इसमें क्या लिखा है।

उर्वशी—धन्य हो, तुम सचमुच अच्छे नागरिक हो।

राजा—सुनो मित्र!

विदूषक—हाँ, सुन रहा हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—श्रूयताम् [वाचयति]

सामिअ संभाविआ जह अहं तुए अणुमिआ
तह अणुरत्तस्स जइ णाम तुह उवरि।
किं मे ललिअपारिजाअसणिज्ञयम्मि होन्ति
णंदणवणवादा वि अच्चुणहआ सरीरए।। 12।।

(स्वामिन्संभाविता यथाहं त्वयाऽज्ञाता तथानुरक्तस्य यदि नाम तवोपरि।
किं मे ललितपारिजातशयनीये भवन्ति नन्दननवनवाता अप्यत्युष्णकाः शरीर के।)

उर्वशी—किं णु क्खु संपदं भणिस्सदि। (किं नु खलु साम्प्रतं भणिष्यति।)

चित्रलेखा--णं भणिवं एव्व मिलाणकमलणाला अमाणेहिं अंगेहिं। (ननु भणितमेवम्लानकमलनालायमानैरङ्गैः।)

विदूषकः—दिट्ठिआ मए बुभुक्खिदेण सोत्थिवाअणं विअ उवलद्धं भवदा उक्कंठिदेण समासासणं। (दिष्ट्याः मया बुभुक्षितेन स्वस्तिवाचन मिवोपलब्धं भवतोत्कण्ठितेन समाश्वासनम्।)

राजा—समाश्वासनिमति किमुच्यते—

तुल्यानुरागपिशुनं ललितार्थवन्धं पत्रे निवेशितमुदाहरणं प्रियायाः।
उत्पक्ष्मणा मम सखे मदिरेक्षणायाः तस्याः समागतमिवाननमाननेन।। 13।।

उर्वशी—एत्थ णो समविभाआ पीदी। (अत्रावयोः समविभागा प्रीतिः)

राजा—वयस्य अंगुलिस्वेदेन दूष्येरन्नक्षराणि। धार्यतामयं मम प्रियायाः स्वहस्तः।

राजा—सुनो! [बाँचता है।]

"महाराज! आप मेरे मन की बात क्या जानें? यदि आप मुझसे इतना प्रेम करने पर भी मुझे वैसी ही समझते हैं, जैसी आप अभी बता रहे थे, तब यह तो बताइए कि जब मैं कोमल पारिजात के फूलों की सेज पर जाकर लेटती हूँ, उस समय नन्दनवन का शीतल पवन मेरे शरीर को जलाने क्यों लगता है।।12।।

उर्वशी—देखें, इस पर ये क्या कहते हैं?

चित्रलेखा—उनके मुरझाए हुए कमल-नाल के समान अंगों ने ही सब कुछ कह डाला है।

विदूषक—यह बड़े भाग्य की बात है कि आपकी बेबसी मिटाने को वैसा ही सहारा मिल गया, जैसे भूख लगने पर मुझे कहीं से भोग लगाया हुआ भोजन मिल जाता है।

राजा—इसे केवल आहार बताते हो? मैं तो जब उस मदभरे नयनों वाली के मन की बातें, इन सुन्दर अर्थों से भरे हुए और उसके मन में भी मेरे मन के ही जैसा प्रेम जतलाने वाले प्रेम-पत्र को पढ़ता हूँ, तब मुझे ऐसा लगता है मानो हम दोनों आमने-सामने खड़े होकर एक दूसरे से बातें कर रहे हों।।13।।

उर्वशी—हम दोनों का प्रेम अब जाकर बराबर-बराबर बैठा है।

राजा—मित्र! मेरी प्रिया की यह प्रेम पाती तुम्हीं लिए रहो, कहीं मेरी उँगलियों के पसीने से इसके अक्षर मिट न जायँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—[गृहीत्वा] किं दाणिं तत्तभोदी उव्वसी भवदो मणोरहाणं कुसुमं दंसिअ फले विसंवददि। (किमिदानीं तत्रभवत्युर्वशी भवतो मनोरथानां कुसुमं दर्शयित्वा फले विसंवदति।)

उर्वशी—सहि! जाव उवगमणकादरं हिअअं पज्जवत्थावेमि दाव तुमं से अत्ताणं दंसिअ जं मे खमं तं भणहि। (सखि! यावदुपगमनकातरं हृदयं पर्यवस्थापयामि तावत्त्वमस्यात्मानं दर्शयित्वायन्मम क्षमं तद्भण।)

चित्रलेखा—तह। (तथा) [तिरस्करिणीमपनीय राजानमुपेत्य] जेदु जेदु महाराओ। (जयतु जयतु महाराजः।)

राजा—[दृष्ट्वा सहर्ष] स्वागतं भवत्यै [पार्श्वमवलोक्य] भद्रे!

न तथा नन्दयसि मां सख्या विरहिता तया।
सङ्गमे दृष्टपूर्वेव यमुना गङ्गया विना।। 14।।

चित्रलेखा—णं पढमं मेहराई दीसदि पच्छा विज्जुलदा। (ननु प्रथमं मेघराजिर्दृश्यते प्रश्चाद्विद्युल्लता।)

विदूषकः—[अपवार्य] कहं ण एसा उव्वसी। ताए तत्तहोदीए अहिमदा सहअरी। (कथं नैषोर्वशी। तस्यास्तत्रभवत्या अभिमता सहचरी।)

राजा—एतदासनमास्यताम्।

चित्रलेखा—उव्वसी! महाराअं सिरसा पणमिअ विण्णवेदि। (उर्वशी महाराजं शिरसा प्रणम्य विज्ञापयति।)

विदूषक—[पत्र लेकर] जिन उर्वशी जी ने यह पत्र भेजकर आपके मनोरथ में फूल लगा दिए हैं, वे क्या आपकी समझ में फल देने में टालमटोल करेंगी?

उर्वशी—सखी! अभी मेरा हृदय उनके पास जाने में झिझक रहा है। इसलिये जब तक मैं अपना जी सँभालूँ, तब तक तुम इनके पास जाकर मेरी ओर से जो कुछ कहना ठीक समझो, कह डालो।

चित्रलेखा—अच्छा। [माया की ओढ़नी हटाकर और राजा के पास पहुँचकर।] महाराज की जय हो।

राजा—[देखकर प्रसन्नता से] आइए! स्वागत है आपका। [इधर-उधर देखकर] क्यों भद्रे? जैसे प्रयाग संगम देखने वाले को, गंगा के बिना अकेली यमुना नहीं भातीं, वैसे ही अपनी सखी के बिना तुम भी मुझे नहीं भाती हो।।14।।

चित्रलेखा—पर महाराज! पहले तो बदली दिखाई देती है, पीछे बिजली चमकती है।

विदूषक—[अलग] अरे! तो क्या ये उनकी प्यारी सखी हैं, उर्वशी नहीं है।

राजा—आइए इस आसन पर बैठ जाइए।

चित्रलेखा—उर्वशी ने महाराज को सिर नवाकर प्रणाम करते हुए कहलाया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—किमाज्ञापयति।

चित्रलेखा—तस्मि सुरारिसंभवे दुज्जादे महराओ एव्व सरणं आसि। सा अहं संपदं तुह दंसणसमुत्थेण मअणेण बलिअं बाहीअमाणा भूओवि महाराएण अणुकंपणीअति।

(तस्मिन्सुरारिसम्भवे दुर्जाते महाराज एव मम शरणमासीत्। साहं साम्प्रतं तव दर्शनसमुत्थेन मदनेन बलवद्बाध्यमाना भूयोऽपि महाराजस्यानुकम्पनीया भवामि इति।)

राजा—अयि भद्रमुखि!

पर्युत्सुकां कथयसि प्रियदर्शनां ताम्
आर्तं न पश्यसि पुरुरवसं तदर्थे।
साधारणोऽयमुभयोः प्रणयः स्मरस्य
तप्तेन तप्तमयसा घटनाय योग्यम्।। 15।।

चित्रलेखा—[उर्वशीमुपेत्य] सहि एहि। तुवत्तोवि णिद्दअदरं मअणं पेक्खिअ पिअअमस्स वे दूदिम्हि संवुत्ता। (सखि एहि। त्वत्तोऽपि निर्दयतरं मदनं प्रेक्ष्य प्रियतमस्य ते दूत्यस्मि संवृत्ता।)

उर्वशी—[तिरस्करिणीमपनीय] अम्महे लहुअं तुए अणवेक्खिदं उज्झिदम्हि। (अहो लघु त्वयानवेक्षितमुज्झितास्मि।)

चित्रलेखा—[सस्मितम्] सहि! इदो मुहुत्तादो जाणिस्सं का कं उज्झिस्सदि। आआरं दाव पडिवज्ज। (सखि! इतो मुहूर्तादिव ज्ञास्यामि का कामुज्झिष्यतीति। आचारं तावत्प्रतिपद्यस्व।)

राजा—हाँ, क्या आज्ञा दी है?

चित्रलेखा—यही कि उस बार जब दैत्य मुझे पकड़ ले गये थे, उस समय महाराज ने ही मेरी रक्षा की थी। अब आपको देख लेने पर मेरे मन में प्रेम की बड़ी पीड़ा उठ खड़ी हुई है, इसलिये चाहती हूँ कि इस बार भी मुझपर आपकी कृपा हो जाये।

राजा—अरी सुन्दरी! अपनी सखी को तो तुम इतना प्रेम में व्याकुल बता रही हो, पर यह नहीं देख रही हो कि यह पुरुरवा भी उसके प्रेम में पागल हुआ बैठा है। हम दोनों का प्रेम, दोनों ओर एक जैसा ही बढ़ा हुआ है, इसलिये एक तपे हुए लोहे को दूसरे तपे हुए लोहे से जोड़ देना ही अब ठीक होगा।।15।।

चित्रलेखा—[उर्वशी के पास आकर] आओ, आओ सखी! कामदेव ने तुमसे भी अधिक इनको सता रखा है। इसलिये अब मैं तुम्हारे प्रियतम की ही दूती बनकर तुम्हारे पास आई हूँ।

उर्वशी—[माया की ओढ़नी हटाकर] वाह! क्या झट से तू मुझे छोड़कर उधर चली गई?

चित्रलेखा—[मुसकराकर] सखी, अभी थोड़ी ही देर में देखती हूँ कि कौन किसे छोड़कर जाती है। अच्छा, पहले महाराज को प्रणाम तो कर लो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी–[ससाध्वसं राजानमुपेत्य प्रणाम्य च सव्रीडम्] जेदु जेदु महराओ। (जयतु-जयतु महाराजः।)

राजा–[सहर्षम्] सुन्दरि!

मया नाम जितं यस्य त्वयायं समुदीर्यते।
जयशब्दः सहस्राक्षादगतः पुरुषान्तरम्।। 16।।

[हस्ते गृहीत्वैनामुपवेशयति।]

विदूषकः–भोदि! रण्णो पिअवअस्सो वम्हणो किं ण वन्दीअदि। (भवति! राज्ञः प्रियवयस्यो ब्राह्मणः किं न वन्द्यते।

[उर्वशी सस्मितं प्रणमति।]

विदूषकः–सत्थि भोदीए। (स्वस्ति भवत्यै।)

[नेपथ्ये देवदूतः]

चित्रलेखे! त्वरय त्वरयोर्वशीम्–

मुनिना भरतेन यः प्रयोगो भवतीष्वष्टरसाश्रयो नियुक्तः।
ललिताभिनयं तमद्य भर्ता मरुतां द्रष्टुमनाः सलोकपालः।। 17।।

[सर्वे कर्णं ददति। उर्वशी विषादं रूपयति]

चित्रलेखा–सुदं पिअसहीए देवदूदस्स वअणं। ता अणुमाणीअदु महाराओ (श्रुतं प्रियसख्या देवदूतस्य वचनम्। तदनुमान्यतां महाराजः।)

उर्वशी–णत्थि मे वाआ। (नास्ति मे वाचा।)

उर्वशी–[हड़बड़ी में राजा के पास पहुँचकर लजाती हुई प्रणाम करके।] महाराज की जय हो।

राजा–[प्रसन्न होकर] सुन्दरी! जो 'जय' शब्द तुमने सहस्र आँख वाले इन्द्र को छोड़कर आज तक किसी दूसरे पुरुष के लिये नहीं कहा था, वह आज तुमने मेरे लिये कह दिया, इसलिये आज सचमुच मुझे जय मिल गई।।16।।

[हाथ पकड़कर बैठाते हैं।]

विदूषक–देवी जी! क्या महाराज के प्रिय मित्र ब्राह्मण को प्रणाम नहीं कीजिएगा?

[उर्वशी मुस्कराती हुई प्रणाम करती है।]

विदूषक–आपका कल्याण हो।

[नेपथ्य में देवदूत कहता है।]

चित्रलेखा! उर्वशी को झटपट ले आओ। भरत मुनि ने तुम लोगों को, जो आठों रसों से भरा हुआ नाटक सिखा रखा है, उसी का सुन्दर अभिनय, भगवान् इन्द्र और लोकपाल देखना चाहते हैं।।17।।

[सब सुनते हैं उर्वशी दुखी होने का नाट्य करती है]

चित्रलेखा–प्यारी सखी! तुमने देवदूत के वचन सुने? तो अब महाराज से विदा लो।

उर्वशी–मुझसे तो बोला नहीं जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा—महाराअ! उव्वसी विण्णवेदि—परवसो अअं जणो। ता महाराएण अब्भणुण्णादा इच्छामि देवेसु अणवरद्धं अत्ताणअं कादुं त्ति। (महाराज! उर्वशी विज्ञापयति—परवशोऽयं जनः। तन्महाराजेनाभ्यनुज्ञाता इच्छामि देवेष्वनपराद्धमात्मानं कर्तुम्—इति।)

राजा—[कथं कथमपि वाचं व्यवस्थाप्य।]। नास्मि भवत्योरीश्वरनियोगप्रत्यर्थी। स्मर्तव्यस्त्वयं जनः। [उर्वशी वियोगदुःखं रूपयित्वा राजानं पश्यन्ती सह सख्या निष्क्राता।)

राजा—[निःश्वस्य] सखे! वैयर्थ्यमिव मे चक्षुषोः संप्रति।

विदूषकः—[पत्रं दर्शयितु कामः] णं एदं। [इति अर्धोक्ते सविषादमात्मगतम्।] ... ..हद्धी हद्धी उव्वसीदंसणविम्हिवेण मए तं भुज्जावत्तअं पब्भट्टं वि हत्थादो पमादेण ण विण्णादं।

(ननु एतत्.....हा धिक् हा धिक्! उर्वशीदर्शनविस्मितेन मया तद्भूर्जपत्रं प्रभ्रष्टमपि हस्तात्प्रमादेन न विज्ञातम्।)

राजा—भद्र! किमसि वक्तुकाम इव।

विदूषकः—एव्वं वत्तुकामोम्हि—मा भवं अंगाइँ मुंचदु। दिढं क्खु तुइ बद्धभावा उव्वसी ण सा इदोगदं सिढिलेदि त्ति। (एवं वक्तुकामोऽस्मि-मा भवानङ्गानि मुञ्चतु दृढं खलु त्वयि बद्धभावा उर्वशी न सा इतोगतमनुरागं शिथिलयति—इति।)

राजा—ममाप्येतदाशंसि मनः। तया खलु प्रस्थाने।

अनीशया शरीरस्य स्ववशं हृदय मयि।
स्तनकम्पक्रियालक्ष्यैर्न्यस्तं निःश्वसितैरिव।। 18।।

चित्रलेखा—महाराज! उर्वशी प्रार्थना करती है कि मैं तो पराधीन हूँ, इसलिये महाराज की आज्ञा हो तो चली जाऊँ और देवताओं का अपराध करने से बच जाऊँ।

राजा—[बड़ी कठिनाई से बोलते हुए।] मैं आपके स्वामी की आज्ञा का भला कैसे विरोध कर सकता हूँ? पर मुझे भूलिएगा मत!

[उर्वशी, वियोग का भाव प्रकट करती हुई और राजा की ओर देखती हुई सखी के साथ चली जाती है।]

राजा—[लम्बी साँस लेकर] मित्र! अब तो मेरी आँखों का होना न होना बराबर हो रहा है।

विदूषक—[पत्र दिखाने की इच्छा से] पर यह....[इतना ही कहकर रुक जाता है। दुःख के साथ मन ही मन] हाय हाय! उस उर्वशी को देखने में मैं ऐसा बेसुध हो गया कि मुझे यह भी ध्यान न रहा कि मेरे हाथ से भोजपत्र कब निकलकर गिर पड़ा।

राजा—क्या कह रहे थे मित्र?

विदूषक—मैं यही कह रहा था कि आप निराश न हों, क्योंकि उर्वशी आपसे इतना गहरा प्रेम करती है कि अब उसके प्रेम में ढिलाई आ नहीं सकती।

राजा—मेरा मन भी यही कहता है। अपने शरीर पर उसका वश था ही नहीं, इसलिये अपने जिस हृदय पर उसका अधिकार था, उसे तो चलते समय वह अपनी उन उसाँसों के साथ मुझे सौंप गई, जो उसके स्तनों के कम्पन से भली प्रकार प्रकट हो रही थीं।।18।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—[स्वगतम्] वेवदि मे हिअअं इमं वेलं अत्तभवदा तस्स भुज्जवत्तस्स णाम गेण्हिदव्वं त्ति। (वेपते मे हृदयमिमां वेलामत्रभवता तस्य भूर्जपत्रस्य नाम ग्रहीतव्यमिति।)

राजा—वयस्य केनेदानीं दृष्टिं विलोभयामि। [स्मृत्वा] आः उपनयतु भवान्भूर्जपत्रम्।

विदूषकः—[सर्वतो दृष्ट्वा विषादं नाटयति] हंत ण दिस्सदि। भो दिव्वं क्खु तं भुज्जवत्तं गदं उव्वसीए मग्गेण। (हन्त न दृश्यते। भोः दिव्यं खलु तद्भूर्जपत्रं गतमुर्वश्या मार्गेण।)

राजा—[सासूयम्] अहो सर्वत्र प्रमादी वैधेयः। ननु विचिनोतु भवान्।

विदूषकः—[उत्थाय] णं इदो भवे। इह वा भवे। इह वा भवे। (ननु इतो भवेत्। इह वा भवेत्।) [इति विचेतव्यं नाटयति]

[ततः प्रविशति सपरिवारा काशिराजपुत्री देवी चेटी च]

देवी—हंजे णिउणिए! सच्चं तुए भणिदं इमं लदागेहं पविसंतो अज्जमाणवअ-सहाओ अज्जउत्तो दिट्ठो त्ति। (हञ्जे निपुणिके! सत्यं त्वया भणितमिदं लतागृहं प्रविशन्नार्यमाणवकसहाय आर्यपुत्रो दृष्ट इति।)

निपुणिका—किं अण्णहा भट्टिणी मए कदावि विण्णविदपुव्वा। (किमन्यथा भट्टिनी मया कदापि विज्ञापितपूर्वा।)

देवी—तेण हि लदाविडवंतरिदा सुणिस्सं दाव से विस्सद्धा मंत्तिदाणि जं तुए कहिदं तं सच्चं ण वत्ति। (तेन हि लताविटपान्तरिता श्रोष्यामि तावदस्य विश्रब्धा मन्त्रितानि यत्त्वया कथितं तत्सत्यं न वेति।)

विदूषक—[मन ही मन] मुझे यही डर हो रहा है कि महाराज भोजपत्र न माँग बैठें।

राजा—मित्र! बताओ अब मैं कैसे अपनी आँखें ठंडी करूँ। [स्मरण करके] अरे हाँ! वह भोजपत्र तो लाओ।

विदूषक—[चारों ओर ढूँढता हुआ, दुखी होने का नाट्य करता है] हाय, हाय! वह तो कहीं मिलता ही नहीं। मित्र! वह भोजपत्र तो स्वर्ग का था न इसलिये वह भी उर्वशी के साथ ही उड़ गया होगा।

राजा—[क्रोध से] मूर्ख! तुम सदा ऐसे ही बेसुध रहते हो। जाओ, ढूँढो उसे।

विदूषक—[उठकर] बस-बस यहाँ होगा, या यहाँ होगा, या यहाँ होगा। [इस प्रकार खोजने का नाट्य करता है]

[इसी बीच काशी-नरेश की पुत्री महारानी अपनी दासियों के साथ आती हैं]

देवी—सखी निपुणिका! तूने सच कहा था कि आर्य माणवक के साथ आर्यपुत्र लता मंडप में गए हैं।

निपुणिका—मैंने क्या आज तक कभी आपसे झूठ बोला है?

देवी—अच्छा तो मैं इन लता-वृक्षों की ओट में खड़ी होकर इनकी गुप-चुप बातें सुनकर देखती हूँ कि तूने जो कुछ कहा है वह सच है या नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निपुणिका—जं भट्टिणीए रच्चदि। (यद्भट्टिन्यै रोचते।)

देवी—[परिक्रम्य पुरस्तादवलोक्य च] हंजे णिउणिए किं णु क्खु एवं जिण्णचीअरं विअ इदोमुहं दक्खिण-मारुदेण आणीअदि। (हज्जे निपुणिके! किं नु खल्वेतज्जीर्णचीवर-मिवेतो मुखं दक्षिणमारुतेनानीयते।)

निपुणिका—[विभाव्य] भट्टिणी! पडिवत्तणविभाविदक्खरं भुज्जवतं क्खु एदं। हंत भट्टिणीएण एव्व णेउरकोडीए लग्गं। [गृहीत्वा] णं वाईअदु एदम्। (भट्टिनि! परिवर्त्तन-विभाविताक्षरं भूर्जपत्रं खल्वेतत्। हन्त! भट्टिन्या एव नूपुरकोट्या लग्नम्। ननु वाच्यतामेतत्।)

देवी—अणुवाएहि दाव एदं। जदि अविरुद्धं तदो सुणिस्सं। (अनुवाचय तावदेतत्। यद्यविरुद्धं ततः श्रोष्यामि।)

निपुणिका—[तथा कृत्वा] भट्टिणी! तं एव्व कोलीणं विअ पडिहादि भट्टारअं उद्दिसिअ उव्वसीए कव्वबंधो त्ति तक्केमि। अज्जमाणवअप्पमादेण च अम्हाणं हत्थं आगदो त्ति।

(भट्टिनि! तदेव कौलीनमिव प्रतिभाति। भट्टारकमुद्दिश्योर्वश्याः काव्यबन्ध इति तर्कयामि। आर्य माणवक प्रमादेन चावयोर्हस्तमागत इति।)

देवी—तेण हि से गहीदत्था होमि। (तेन ह्यस्य गृहीतार्था भवासि।)

[निपुणिका वाचयति]

देवी—[श्रुत्वा] इत्थ इमिण एव्व उवाअणेण दं अच्छराकामुअं पेक्खामि। (अत्रानेनैवोपायनेन तमप्सरः कामुकां प्रेक्षे।)

निपुणिका—तह। (तथा।)

[इति परिजनसहिते लतागृहं परिक्रमातः।]

निपुणिका—जैसा भट्टिनी ठीक समझें।

देवी—[घूमकर सामने देखकर] सखी निपुणिका! देखो तो यह दक्खिनी पवन के साथ फटे कपड़े जैसा क्या इधर उड़ा चला आ रहा है।

निुपणिका—[देखकर] भर्ट्टिनी! यह तो भोजपत्र है और उलटा-पुलटा उड़ा आता हुआ ऐसा लगता है कि इस पर कुछ लिखा हुआ हो। लीजिए, यह तो भट्टिनी के बिछुए में ही आकर अटक गया। [उठाकर] लीजिए बाँचिए तो।

देवी—तुम्हीं बाँच लो। यदि कोई मेरे मन की बात हो तो सुना देना।

निपुणिका—[बाँचकर] यह तो वही प्रेमवाली बात जान पड़ती है, जिसका चारों ओर इतना हल्ला हो रहा है। मैं समझती हूँ कि उर्वशी ने स्वामी को यह कविता लिखकर भेजी होगी और आर्य माणक की असावधानी से यह हम लोगों के हाथ लग गई है।

देवी—अच्छा पढ़ो तो इसमें क्या लिखा है?

[निपुणिका बाँचती है।]

देवी—[सुनकर] तो चलो यही भेंट लेकर हम उस अप्सरा के प्रेमी से चलकर मिलें।

निपुणिका—चलिए।

[दासियों के साथ लता-मण्डप की ओर घूम जाती हैं।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—[विलोक्य] भो वअस्स! किं एवं पवणवसगामि पमदवणसमीवगदकीला-पव्वदपज्जं ते दीसदि। (भो वयस्य! किमेतत्पवनवशगामि प्रमदवनसमीपगतक्रीडापर्वतपर्यन्ते दृश्यते।)

राजा—[उत्थाय] भगवन्वसन्तप्रियदक्षिणवायो!

वासार्थं हर संभृतं सुरभिणा पौष्पं रजो वीरुधां
किं कार्यं भवतो हृतेन दयितास्नेहस्वहस्तेन मे।
जानीते हि मनोविनोदनशतैरेवंविधैर्धारितं
कामार्तं जनमज्जनां प्रति भवानालक्षितप्रार्थनः।। 19।।

निपुणिका—भट्टिणि! पेक्ख पेक्ख। एदस्स एव्व अण्णेसणा वट्टदि। (भट्टिनी! प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व। एतस्यैवान्वेषणा वर्तते।)

देवी—णं पेक्खामि दाव। तुण्हि चिट्ठ। (ननु पश्यामि तावत्। तूष्णीं तिष्ठ।)

विदूषकः—[सविषादम्] हद्धी हद्धी भो मिलाअमाणकेसरच्छविणा मोरपिच्छेण विप्प लद्धो म्हि। [हा धिक् हा धिक्! भोः म्लायमानकेशरच्छविना मयूरपिच्छेन विप्रलब्धोऽस्मि।]

राजा—सर्वथा हतोऽस्मि।

देवी—[सहसोपसृत्य।] अज्जउत्त अलं आवेएण। एवं तं भुज्जवतं। (आर्यपुत्र! अलमावेगेन। एतत्तद्भूर्जपत्रम्।)

राजा—[ससभ्रंमम्] अये देवी! स्वागतं देव्यै।

विदूषकः—[अपवार्य] दुरागदं दाणिं संवुत्तं। [दुरागतमिदानीं संवृत्तम्]

विदूषक—[देखकर] क्यों मित्र! यह प्रमदवन के पास वाले क्रीड़ा-पर्वत पर पवन के झोंके में हिलता-सा क्या दिखाई दे रहा है।

राजा—[उठकर] हे वसन्त के प्यारे मित्र दक्षिण पवन! तुम्हें अपना शरीर सुगन्धित करना हो तो तुम लताओं पर खिले हुए और वसन्त के हाथों से इकट्ठे किए हुए फूलों का पराग उठाकर क्यों नहीं ले जाते? मेरी प्यारी के हाथ का लिखा हुआ पत्र भला तुम्हारे किस काम आयेगा। तुम तो स्वयं अञ्जना से प्रेम कर चुके हो, इसलिये जानते ही होगे कि ऐसी ही मन बहलाने वाली वस्तुओं को देखकर ही तो प्रेमी लोग जिया करते हैं।।19।।

निपुणिका—देखिए, भट्टिनी! ये लोग इसी पत्र को खोज रहे हैं।

देवी—चुप चुप! देखें तो सही, ये क्या-क्या करते हैं।

विदूषक—[दुःख के साथ] हाय, हाय! इस मोर-पंख को देखकर मुझे मुरझाए हुए केशर के फूल का धोखा हो गया, क्योंकि दोनों एक जैसे ही लगते थे।

राजा—मैं तो सब प्रकार से लुट गया।

देवी—[एकाएक आगे बढ़कर] घबराइए मत आर्यपुत्र! यह रहा वह भोजपत्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

राजा—[घबराकर] अरे आप हैं देवी! आइए, आइए, आइए! आ गईं आप।

विदूषक—[अलग] बड़ी भारी विपत्ति आई इस समय।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—[जनान्तिकम्] वयस्य! किमत्र प्रतिविधेयम्।

विदूषकः—(अपवार्य) **लोत्थेणे गहीदस्स कुँभीलअस्स अत्थि वा पडिवअणं।** (लोत्रेण गृहीतस्य कुंभीलकस्यास्ति वा प्रतिवचनम्।)

राजा—[जनान्तिकम्] मूढ नायं परिहासकालः। [प्रकाशम्] देवि! नेदं मया मृग्यते। अयं खलु परान्वेषणार्थमारम्भः।

देवी—जुज्जदि अग्गो सोहग्गं पच्छदेदुं। (युज्यते आत्मनः सौभाग्यं प्रच्छादयितुम्।)

विदूषकः—भोदि! तुवरेहि से भोअणं जं पित्तोवसमणसमत्थं होदि। (भवति त्वरयास्य भोजनं यत्पित्तोपशमनसमर्थ भवति।)

देवी—णिउणिए सोहणं क्खु बम्हणेण आसासिदो वअस्सो। (निपुणिके! शोभनं खलु ब्राह्मणेनाश्वसितो वयस्यः)

विदूषकः—भोदि णं पेक्ख आवेसिदो पिसाचोवि भोअणेण। (भवति ननु पश्य आश्वासितः पिशाचोऽपि भोजनेन।)

राजा—मूर्ख! बलादपराधिनं मां प्रतिपादयसि।

देवी—णत्थि क्खु भवदो अवराहो। अहं एव्व एत्थ अवरद्धा जा पडिऊलदंसणा भविअ अग्गदो दे चिट्ठामि। इदो अहं गमिस्सं। णिउणिए, एहि गच्छम्ह। (नास्ति खलु भवतोऽपराधः। अहमेवात्रापराद्धा या प्रतिकूलदर्शना भूत्वाग्रतस्ते तिष्ठामि। इतोऽहं गमिष्यामि। निपुणिके! एहि गच्छामः।) [इति कोपं नाटयित्वा प्रस्थिता।]

राजा—[अपसृत्य]

अपराधी नामाहं प्रसीद रंभोरु विरम संरम्भात्।
सेव्यो जनश्च कुपितः कथं नु दासो निरपराधः।। 20।। [इति पादयोः पतति।]

राजा—[अलग] क्यों मित्र! अब क्या होगा?

विदूषक—[अलग] चोरी के माल के साथ पकड़ा हुआ चोर अब कह ही क्या सकता है?

राजा—[अलग] अरे मूर्ख! यह हँसी का समय नहीं है। [प्रकट] मैं इसे नहीं खोज रहा था देवी! मैं तो कुछ और ही खोजने में लगा हुआ था।

देवी—हाँ, हाँ आपको तो अपने सुख की बात छिपानी ही चाहिए।

विदूषक—देवी! जाकर महाराज के भोजन का प्रबन्ध कीजिए, जिससे इनका पित्त तो शांत हो।

देवी—निपुणिका! इस ब्राह्मण ने अपने मित्र को बचा लिया।

विदूषक—देखिए, देवी! भोजन देखकर तो भूत-पिशाच तक शान्त कर दिए जाते हैं।

राजा—क्यों रे मूर्ख! तू बिना बात के ही अपराधी बनाने पर क्यों तुला हुआ है?

देवी—यह आपका नहीं मेरा ही अपराध है कि मैं ऐसे बेढंगे समय में आपके काम में बाधा डालने आ पहुँची। लीजिए, मैं चली जाती हूँ। चलो निपुणिका चलें।

[क्रोध का नाट्य करके चली जाती है।]

राजा—[पीछे-पीछे जाता हुआ] सुनिए तो देवी, मैं ही अपराधी हूँ। अरे मान जाओ सुन्दरी! इतना मत बिगड़ो। जब स्वामिनी ने क्रोध किया है, तो इस सेवक ने कुछ न कुछ अपराध अवश्य ही किया होगा।।20।। [पैरों पर गिरते हैं।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी—[स्वागतम्] मा क्खु लहुहिअआ अहं अणुणअं बहु मण्णे। किं दु अदक्खिण्णकिदस्स पच्छादावस्स भाएमि। (मा खलु लघुहृदयाहमनुनयं बहु मन्ये। किंत्वदाक्षिण्यकृतात्पश्चात्तापाद्बिभेमि।)

[इति राजानमपहाय सपरिवारा निष्क्रांता।]

विदूषकः—पाउसणदी विअ अप्पसण्णा गदा देवी। त उट्ठेहि। (प्रावृण्नदीवाप्रसन्ना गता देवी। तदुत्तिष्ठ उत्तिष्ठ।

राजा—[उत्थाय] वयस्य, नेदमनुपपन्नम्। पश्य—

प्रियवचनकृतोऽपि योषितां दयितजनानुनयो रसादृते।
प्रविशति हृदयं न तद्विदां मणिरिव कृत्रिमरागयोजितः।।21।।

विदूषकः—अणुऊलं एव्व एत्थभवदो एवं। ण क्खु अक्खिदुक्खिदो अहिमुवे दीवसिहं सहेदि।

(अनुकूलमेवात्रभवत एतत्। न खल्वक्षिदुःखितोऽभिमुखे दीपशिखा सहते।)

राजा—मा मैवम्! उर्वशीगतमनसोऽपि मे स एव देव्यां बहुमानः। किन्तु प्रणिपातलङ्घनादहमस्यां धैर्यमवलम्बयिष्ये।

विदूषकः—भो चिट्ठदु दाव भवदो धीरदा। बुभुक्खिदस्स बम्हणस्स जीविदं अवलंबदु भवं। समओ क्खु ण्हाणभोअणं सेविदुं (भो तिष्ठतु तावद्भवतो धीरता। बुभक्षितस्य ब्राह्मणस्य जीवितमवलम्बतां भवान् समयः खलु स्नानभोजनं सेवितुं।)

देवी—[मन ही मन] मुझे ऐसी भोली न समझ बैठिएगा कि मैं आपकी इन चिकनी-चुपड़ी वातों में आ जाऊँगी। पर मैं तो यही डरती हूँ कि यदि मैं आपसे कुछ कड़ा वर्ताव भी करूँ तो पीछे मुझे ही पछतावा होगा।

[राजा को छोड़कर अपनी दासियों के साथ चली जाती हैं।]

विदूषक—वर्षा की नदी के समान अप्रसन्न मनवाली देवी चली गई। अब उठिए, उठिए।

राजा—[उठकर] मित्र! इसमें उनका कोई दोष नहीं है। देखो,—यदि कोई पति ऊपरी मन से केवल चिकनी-चुपड़ी बातें करके ही अपनी प्यारी को मनाने लगता है, तो उसकी बातें स्त्रियों के हृदय में उसी प्रकार नहीं बैठतीं, जैसे बनावटी रंग से रँगा हुआ मणि, सच्चे पारखी को नहीं जँचता।।21।।

विदूषक—पर आप तो यह चाहते ही थे। जिसकी आँखें आ गईं हो उसे सामने रखे हुए दीये को लौ थोड़े ही भाती है।

राजा—नहीं, नहीं, ऐसा न कहो। उर्वशी से प्रेम करने पर भी मैं इन देवी को पहले ही जैसा प्यार करता हूँ, पर मेरे इतने हाथ-पैर जोड़ने पर भी मुझे ठुकराकर चल दीं इसलिये अव मैं भी कुछ देर के लिए निष्ठुर बन जाता हूँ।

विदूषक—निष्ठुर वनिएगा पीछे। पहले इस भूखे ब्राह्मण के प्राण तो बचाइए। चलिए, स्नान भोजन का समय हो गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—[ऊर्ध्वमवलौक्य] गतमर्धं दिवासस्य। अतः खलु—

उष्णालुः शिशिरे निषीदति तरोर्मूलालवाले शिखी
निर्भिद्योपरि कर्णिकारमुकुलान्यालीयते षट्पदः।
तप्तं वारि विहाय तीरनलिनीं कारण्डवः सेवते
क्रीडावेश्मनि चैष पञ्जरशुकः क्लान्तो जलं याचते।। 22।।

[इति निष्क्रान्तौ।]

।। इति द्वितीयोऽङ्कः।।

राजा—[ऊपर देखकर] अरे, यह तो आधा दिन चढ़ आया! इसीलिये—यह मोर गर्मी से घबराकर पेड़ की जड़ के ठंडे थाँवले में आ बैठा है, यह भौंरा कनेर की कली का मुँह खोलकर उसमें छिपने का उपाय कर रहा है, यह जल-कुक्कुट, ताल का गरम पानी छोड़कर तट पर खिली हुई कमलिनी की छाया में जा बैठा है और मनबहलाव वाले भवन के पिजड़े में पड़ा हुआ यह प्यासा तोता भी पानी माँग रहा है।।22।।

[दोनों चले जाते हैं।]

।। दूसरा अंक समाप्त ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीयोऽङ्कः

[ततः प्रविशतो भरतशिष्यौ]

गालवः—सखे पेलव! महेन्द्रभवनं गच्छता भगवतोपाध्यायेन त्वमासनं प्रतिग्राहितः। अग्निशरणसंरक्षणाय स्थापितोऽहस्। अतः खलु पृच्छामि—अपि गुरोः प्रयोगेण दिव्या परिषदाराधिता।

पेलवः—गालव! ण जाणे आराहिदा ण वत्ति। तस्सिं उण सरस्सईकिदकव्वंधे लच्छीसअंवरे तेसु तेसु रसंतरेसु तम्मई आसि। किंतु— (गालव। न जाने आराधिता न वा इति। तस्मिन्पुनः सरस्वतीकृतकाव्यबन्धे लक्ष्मीस्वयंवरे तेषु तेषु रसान्तरेषु तन्मयी आसीत्। किन्तुः⋯)

गालवः—सदोषावकाश इव ते वाक्यशेषः।

पेलवः—आम् तस्सिं उव्वसीए वअणं पमादक्खलिदं आसि। (आम् तस्मिन्नुर्वश्या वचनं प्रमादस्खलितामासीत्।)

गालवः—कथमिव।

पेलवः—लच्छीभूमिआए वट्टमाणा उव्वसी वारुणीभूमिआए वट्टमाणाए मेणआए पुच्छिदा सहि समागदा एवे तेलोक्कसुपुरिसा सकेसवा अ लोअवाला। कदमस्सिं दे भावाहिणिवेसोत्ति।

(लक्ष्मीभूमिकायां वर्त्तमानोर्वशी वारुणीभूमिकायां वर्त्तमानया मेनकया पृष्टा—सखि! समागता एते त्रैलोक्यसुपुरुषाः सकेशवाश्च लोकपालाः कतमस्मिंस्ते भावाभिनिवेश इति।)

तीसरा अङ्क

[भरत मुनिके दो शिष्य प्रवेश करते हैं]

गालव—मित्र पेलव! इन्द्र-भवन को जाते समय गुरुजी ने अपना आसन साथ ले चलने के लिये तुम्हें तो अपने साथ ले लिया था और मुझे यहाँ अग्निहोत्र का काम सौंप दिया था। इसीलिये मैं पूछता हूँ कि गुरुजी के नाटक से देवताओं की सभा प्रसन्न तो हुई?

पेलव—गालव! यह तो मैं नहीं जानता कि देवसभा प्रसन्न हुई या नहीं, पर वहाँ जो लक्ष्मी-स्वयंवर नाम का नाटक हुआ था और जिसके गीत स्वयं सरस्वती जी ने बनाए थे, उसमें जो-जो रस जब-जब दिखाए जाते थे, तब-तब उन-उन रसों में पूरी की पूरी सभा मगन हो उठती थी। पर...

गालव—जान पड़ता है तुम कुछ कहते-कहते रुक गए।

पेलव—हाँ, यही कि उस नाटक में उर्वशी ने बोलने में कुछ भूल कर दी।

गालव—क्या भूल कर दी?

पेलव—उस नाटक में वारुणी बनी हुई मेनका ने, लक्ष्मी बनी हुई उर्वशी से पूछा—सखी! यहाँ तीनों लोकों से एक से एक सुन्दर पुरुष, लोकपाल और स्वयं विष्णु भगवान् आए हुए हैं, इनमें तुम्हे कौन सबसे अधिक भाता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गालवः—ततस्ततः।

पेलवः—तदो ताए पुरुसत्तमे ति भणिदव्वे पुरुवसि ति ताए निग्गदा वाणी। (ततस्तया पुरुषोत्तमे इति भणितव्ये पुरूरवसीति तस्या निर्गता वाणी)

गालवः—भवितव्यतानुविधायीनि इन्द्रियाणि। न खलु तामभिक्रुद्धो गुरुः।

पेलवः—सा क्खु सत्ता उवज्झाएण। महिंदेण उण अणुगहीदा। [सा खलु शप्तोपाध्यायेन। महेन्द्रेण पुनरनुगृहीता।]

गालवः—कथमिव।

पेलवः—जेण मम उवदेसो तुए लंघिदो तेण ण दे दिव्वं ठाणं हविस्सदि त्ति उवज्झाअस्स सावो। महिंदेण उण पेक्खणावसाणे लज्जावणदमुही सा एव्वं भणिदा—जस्मि तुमं बद्धभावा सि तस्स मे रणसहाअस्स राएसिणो पिअं एत्थ करणिज्जं। ता दाव तुमं जहाकामं पुरुरवसं उवचिट्ठ जाव सो तुइ दिट्ठसंताणे भोदि त्ति। (येन ममोपदेशस्त्वया लङ्घितस्तेन न ते दिव्यं स्थानं भविष्यति इति उपाध्यायस्य शापः। महेन्द्रेण पुनः प्रेक्षणावसाने लज्जावनतमुखी सा एवं भणिता यस्मिंस्त्वं बद्धभावासि तस्य मे रणसहायस्य राजर्षेः प्रियमत्र करणीयम्। तत्तावत्वं यथाकामं पुरुरवसमुपतिष्ठस्व यावत्स त्वयि दृष्टसन्तानो भवेदिति)

गालवः—सदृशमेतत्पुरुषान्तरविदो महेन्द्रस्य।

गालव—उसके बाद—

पेलव—उस समय उसे कहना तो चाहिए था 'पुरुषोत्तम' पर भूल से उसके मुँह से निकल गया, 'पुरुरवा'।

गालव—भाई! जैसी होनी होती है, वैसे ही मनुष्य के अंग भी काम करने लगते हैं। क्या गुरुजी इस बात पर बिगड़े नहीं?

पेलव—अरे, गुरुजी ने तो उसे शाप ही दे दिया था, पर भगवान् इन्द्र ने उसे जैसे-तैसे बचा लिया।

गालव—कैसे?

पेलव—गुरुजी ने तो यह शाप दे दिया था कि तूने जो मेरे सिखाए पाठ के अनुसार काम नहीं किया, इस पर तुझे यह दंड दिया जाता है कि तू स्वर्ग में नहीं रहने पायेगी। पर ज्यों ही नाटक समाप्त हुआ त्यों ही लज्जा से सिर नीचा किए खड़ी हुई उर्वशी से इन्द्र ने आकर कहा—देखो! रण-क्षेत्र में सदा मेरी सहायता करने वाले जिस राजर्षि से तुम प्रेम करती हो, उनके मन का भी कुछ कर देना चाहिए। इसलिये जब तक वे तुम्हारी संतान का मुँह न देखें तब तक तुम मनचाहे समय तक पुरुरवा के साथ रह सकती हो।

गालव—सबके मन की बात जानने वाले इन्द्र को यही शोभा देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेलवः—[सूर्यमवलोक्य] कधा पसंगेण अम्हेहिं अवरद्धा अहिसेअवेला क्खु उवज्झाअस्स। ता एहि। से पासवत्तिणो होम। (कथाप्रसंगेनास्माभिराद्धभिषेकवेला खलु उपाध्यायस्य। तदेहि। अस्य पार्श्ववर्तिनौ भवाव।)

गालवः—तथा।

[इति निष्क्रान्तौ]

।। इति मिश्रविष्कम्भकः।।

[ततः प्रविशति कञ्चुकी]

कञ्चुकी—[विनिःश्वस्य]

सर्वः कल्ये वयसि यतते लब्धुमर्थान्कुटुम्बी
पश्चात्पुत्रैरपहृतभरः कल्पते विश्रमाय।
अस्माकं तू प्रतिदिनमियं साधयन्ती प्रतिष्ठां
सेवाकारा परिणतिभूत्स्त्रीषु कष्टोऽधिकारः।। 1।।

[परिक्रम्य] आदिष्टोस्मि सनियमया काशिराजपुत्र्या—व्रतसम्पादनार्थं मया मानमुत्सृज्य निपुणिकामुखेन पूर्वं याचितो महाराजः। तदेव त्वं मद्वचनाद्विज्ञापय इति। यावदहमिदानीमवसितसन्ध्याजाप्यं महाराजं पश्वामि। [परिक्रम्यावलोक्य च] रमणीयः खलु दिवसावसानवृत्तान्तो राजवेश्मनः। इह हि।

पेलव—[धूप की ओर देखकर] बातें करते-करते गुरुजी के स्नान का समय भी निकल गया। आओ चलो,उनके पास चले चलें।

गालव—अच्छा चलो। [दोनों चले जाते हैं]

।। मिश्रा विष्काम्भक समाप्त हुआ।।

[कञ्चुकी आता है।]

कञ्चुकी—[लंबी-लंबी साँस लेकर] जो लोग बहुत बड़े कुटुम्ब वाले होते हैं वे युवावस्था में तो धन बटोरने के फेर में पड़े रहते हैं। पर बुढ़ापे में अपना सब भार पुत्रों पर सौंपकर विश्राम करते हैं। किन्तु यहाँ तो ऐसी दशा हो गई है कि रात-दिन इस नौकरी के चक्कर में पड़े-पड़े बूढ़े हो चले हैं। सचमुच स्त्रियों की सेवा करना बड़ा टेढ़ा काम होता है।।1।। [घूमकर] आजकल काशीराज की पुत्री महारानी व्रत कर रही हैं। उन्होंने मुझे आज्ञा दी है कि मैं सब मान छोड़कर निपुणिका से महाराज को कहला चुकी हूँ कि वे आकर मेरा व्रत सफल करें, इसलिये तुम मेरी ओर से जाकर महाराज को बुला लाओ। इस समय महाराज सायंकाल की जप-संख्या करके बैठे होंगे, इसलिये चलूँ वहीं उनके दर्शन करूँ। [घूमकर और देखकर]—संध्या के समय राज-द्वार भी कैसा सुहावना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्कीर्णा इव वासयष्टिषु निशानिद्रालसा बर्हिणो
धूपैर्जालविनिःसृतैर्वलभयः संदिग्धपारावताः।
आचारप्रयतः सपुष्पवलिषु स्थानेषु चार्चिष्मतीः।
सन्ध्यामङ्गलदीपिका विभजते शुद्धान्तवृद्धो जनः।।2।।

[नेपथ्याभिमुखमवलोक्य] अये इत एव प्रस्थितो देवः।

परिजनवनिताकरार्पिताभिः परिवृत एष विभाति दीपिकाभिः।
गिरिव गतिमानपक्षसादाद् अनुतटपुष्पितकर्णिकारयष्टिः।।3।।

यावदेनमवलोकनमार्गे स्थितः प्रतिपालयामि। [परिक्रम्य स्थितः]

[ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो राजा विदूषकश्च।]

राजा—[स्वगतम्] आः।

कार्यान्तरितोत्कण्ठं दिनं मया नीतमनतिकृच्छ्रेण।
अविनोददीर्घयामा कथं नु रात्रिर्गमयितव्या।।4।।

कंचुकी—[उपसृत्य] जयतु जयतु देवः! देवी विज्ञापयति—मणिहर्म्यपृष्ठे सुदर्शनश्चन्द्रः। तत्र संनिहितेन देवेन प्रतिपालयितुमिच्छामि यावद्रोहिणीसंयोग इति।

राजा—आर्य लातव्य! विज्ञाप्यतां देवी यस्ते छंद इति।

लगता है। यहाँ नींद में अलसाए हुए और अपने अड्डों पर बैठे हुए मोर, पत्थर में खुदे हुए से दिखाई पड़ रहे हैं। छतों से बाहर निकली हुई टाँड़ में बैठे हुए कबूतरों और उन टाँड़ों के छेदों से निकलने वाले धुएँ, दोनों में यही नहीं जान पड़ता कि कौन धुआँ है और कौन कबूतर। रनिवास के बूढ़े नौकर नहा-धोकर, फूलों से सजे हुए भवनों में, सन्ध्या के पूजन के लिये जलते हुए दीपक ला-लाकर यथास्थान सजा रहे हैं।।2।। [नेपथ्य की ओर देखकर।] अरे! महाराज तो इधर ही चले आ रहे हैं।—महाराज के चारों ओर हाथ में दीपमाला लिए हुए जो बहुत सी दासियाँ चली आ रही हैं, उनसे महाराज उस पर्वत के समान चमक रहे हैं जो पंख न कटने से चलता आ रहा हो और जिसके दोनों ढालों पर कनैर के फूले हुए पेड़ खड़े हों।।3।। तब तक मैं आगे खड़ा होकर उनके आने की बाट जोहता हूँ। [घूमकर खड़ा हो जाता है।]

[राजा और विदूषक आते हैं]

राजा—[मन ही मन]—ओह! दिन भर काम में लगे रहने से दिन तो बीतता हुआ नहीं जान पड़ा, पर अब मन बहलाव की सामग्री के बिना रात की लम्बी-लम्बी घड़ियाँ कैसे कटेंगी।।4।।

कञ्चुकी—[आगे बढ़कर] जय हो महाराज! आपकी विजय हो। देव! देवी निवेदन करती हैं कि मणिहर्म्य-भवन से चन्द्रमा भली भाँति दिखाई पड़ जायेंगे। इसलिये मेरी इच्छा है कि मैं वहीं पर महाराज के साथ ही चन्द्रमा और रोहिणी का मिलन देखूँ।

राजा—आर्य लातव्य! देवी से कहना कि जो कहेंगी वही करूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंचुकी—यदाज्ञापयति देवः। [इति निष्क्रान्तः]

राजा—वयस्क! किं परमार्थत एव देव्या व्रतनिमित्तोऽयमारम्भः स्यात्।

विदूषकः—भो तक्केमि संजादपच्छादावा तत्तभोदी वदावदेसेण भवदो पणिपादलंघणं पमज्जिदुकाम त्ति। (भोः तर्कयामि सञ्जातपश्चात्तापा तत्रभवती व्रतापदेशेन भवतः प्रणिपातलङ्घनं प्रमार्ष्टुकामेति।)

राजा—उपपन्नं भवानाह।

अवधूतप्रणिपाताः पश्चात्संतप्यमानमनसो हि।
विविधैरनुतप्यन्ते दयितानुनयैर्मनस्विन्यः।।5।।

तदादेशय मणिहर्म्य-पृष्ठमार्गस्।

विदूषकः—इदो इदो भवं। इमिण गंगातरंगसस्सिरीएण फलिअमणिसोवाणेण आरोहदु भवं पदोसावसररमणिज्जं मणिहम्मिअपिट्ठं। (इतो इतो भवान्। एतेन गङ्गातरङ्गसश्रीकेण स्फटिकमणिसोपानेनारोहतु भवान्प्रदोषावसररमणीयं मणिहर्म्यपृष्ठम्।

राजा—आरोहाग्रतः।

[सर्वे सोपानारोहणां नाटयन्ति।]

विदूषकः—[निरूप्य] भो पच्चासण्णेण चंदोदएण होदव्वं जह तिमिररेईआमणं पुव्वदिसामुहं आलोअसुहअं दीसदि। (भोः प्रत्यासन्नेन चन्द्रोदयेन भवितव्यम् यथा तिमिररिच्यमानं पूर्वदिशामुखमालोकसुभगं दृश्यते।)

राजा—सम्यग्भवान्मये।

उदयगूढशशाङ्कमरीचिभिस्तमसि दूरतरं प्रतिसारिते।
अलकसंयमनादिव लोचने हरति मे हरिवाहनदिङ्मुखम्।।6।।

कञ्चुकी—जैसी देवी की आज्ञा। [चला जाता है।]

राजा—वयस्य! क्या देवी ने इतनी धूम-धाम सचमुच व्रत के लिये ही किया है?

विदूषक—मैं तो समझता हूँ कि उस दिन जब आप उनके पैरों पड़े थे और वे ऐंठकर चल दीं थीं, उससे उन्हें पछतावा हुआ होगा। इसीलिये उन्होंने यह व्रत ठाना होगा।

राजा—ठीक कहा आपने। क्योंकि—स्त्रियाँ जब रूठी रहती हैं, तब तो पैरों पड़ने पर भी अपने पति की बात नहीं मानतीं, पर पीछे इस बात पर वे बड़ी पछताती हैं।।5।। तो चलो मुझे मणिहर्म्य-भवन में पहुँचाओ।

विदूषक—इधर से आइए आप, इधर से। गंगा जीं की लहरों के समान उजली स्फटिकमणि की सीढ़ियों से चढ़कर, सन्ध्या को सुहावने लगने वाले इस मणिहर्म्य-भवन पर पहुँच जाइए।

राजा—तुम चढ़ो आगे-आगे [दोनों सीढ़ियों पर चढ़ने का नाट्य करते हैं।]

विदूषक—[देखकर] जान पड़ता है कि बस चन्द्रमा निकलने ही वाले हैं। देखो! अँधेरा मिट जाने से पूर्व दिशा का मुँह कैसा सुहावना लगने लगा है?

राजा—ठीक कह रहे हो। उदयाचल के पीछे छिपे हुए चन्द्रमा की किरणों से जो अंधकार मिटता जा रहा है वह सचमुच मेरे मन को ऐसा लुभा रहा है, मानो जूड़ा बँधा हुआ पूर्व दिंशा का मुँह हो।।6।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—[विलोक्य] ही ही भो एसो क्खु खंडमोदअसस्सिरीओ उदिदो राआ दुआदीणं। (ही ही भोः, एष खलु खण्डमोदकसदृशः उदितो राजा द्विजातीनाम्।)

राजा—[सस्मितम्] सर्वत्रौदरिकस्याभ्यवहार्यमेव विषयः। [प्राञ्जलिः प्रणम्य] भगवान्! क्षपानाथ—

रविमावसते सतां क्रियायै सुधया तर्पयते सुरान्पितॄँश्च।
तमसां निशि मूर्च्छतां निहन्त्रे हरचूडानिहितात्मने नमस्ते।। 7।।

[इति उपतिष्ठते।]

विदूषकः—भो बम्हणसंकामिदक्खरेण दे पिदामहेण अब्भणुण्णादो सि। ता आसणट्ठिदो होहि जाव अहं वि सुहासीणो होमि। (भोः ब्राह्मणसंक्रामिताक्षरेण ते पितामहेनाभ्यनुज्ञातोऽसि। तदासनस्थितो भव यावदहमपि सुखासीनो भवामि।)

राजा—[विदूषकवचनं परिगृह्योपविष्टः परिजनं विलोक्य।] अभिव्यक्तायां चन्द्रिकायां किं दीपिकापौनरुक्त्येन। तद्विश्राम्यन्तु भवत्यः।

परिजनः—जं देवो आणवेदि। (यद्देव आज्ञापयति।) [इति निष्क्रान्तः]

राजा—[चन्द्रमसमवलोक्य विदूषकं प्रति] वयस्क! परं मुहूर्तादागमनं देव्याः। तद्विविक्ते कथयिष्यामि स्वामवस्थाम्।

विदूषकः—णं दीसदि एव्व सा। किंदु तारिसं अणुराअं पेक्खिअ सक्कं क्खु आसाबंधेण अत्ताणं धारेदुं। (ननु दृश्यत एव सा। किन्तु तादृशमनुरागं प्रेक्ष्य शक्यं खल्वाशाबन्धेनात्मानं धारयितुम्।)

विदूषक—हें हें हे! यह ऊपर उठता हुआ द्विजों का राजा चन्द्रमा ऐसा सुन्दर लग रहा है जैसे खाँड़ का लड्डू हो।

राजा—[मुस्कराकर] भोजन-भट्ट को सब स्थानों पर भोजन की सामग्री ही दिखाई पड़ती है। [हाथ जोड़कर] हे भगवान् चन्द्रमा! हे सज्जनों की धार्मिक क्रियाओं में सूर्य के साथ-साथ स्मरण किए जाने वाले, हे अमृत पिलाकर देवता और पितरों को तृप्त करने वाले, हे रात के चारों ओर फैले हुए अँधेरे को हटाने वाले, हे शिवजी के जटा-जूटपर रहने वाले, आपको प्रणाम है!।।7।। [पूजा करता है।]

विदूषक—महाराज! आपके दादा चन्द्रमा मुझ ब्राह्मण के मुँह से आपको यह आज्ञा दे रहे हैं कि आप चलकर बैठिए जिससे मैं भी सुख से बैठूँ।

राजा—[विदूषक के कहने से बैठकर और अपनी सेविकाओं को देखकर।] जब चारों ओर इतनी चाँदनी छिटकी हुई है, तब ये दीपक क्यों जला रखे हैं। जाइए, आप सब विश्राम कीजिए।

परिजन—जैसी देव की आज्ञा। [सब सेविकाएँ चली जाती हैं।]

राजा—[चन्द्रमा को देखकर विदूषक से] वयस्क! अभी देवी के आने में तो बहुत देर है, इसलिये चलो अकेले में बैठकर तुम्हें अपने मन की व्यथा समझाऊँ।

विदूषक—समझाओगे क्या? वह तो दिखाई ही दे रही है। पर उर्वशी ने आप पर अपना जैसा प्रेम जताया है, उसके भरोसे तो आपको अपना मन सँभाले रहना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—एवमेतत्। वलवान्पुनर्मे मनसोऽभितापः—

नद्या इव प्रवाहो विषमशिलासङ्कटस्खलितवेगः।
विघ्नितसमागमसुखो मनसिशयः शतगुणी भवति।।8।।

विदूषकः—भो जहा परिहीअमाणेहिं अंगेहिं अहिअं सोहसि तहा अदूरे, पिआसमागमं दे पेक्खामि। (भोः यथा परिहीयमाणैरङ्गैरधिकं शोभसे तथाऽदूरे प्रियासमागमं ते प्रेक्षे।)

राजा—[निमित्तं सूचयन्।] वयस्य—

वचोभिराशाजननैर्भवानिव गुरुव्यथम्।
अयं मां स्पन्दितैर्बाहुराश्वासयति दक्षिणः।।9।।

विदूषकः—ण क्खु अण्णहा बम्हणस्स वअणं। (न खल्वन्यथा ब्राह्मणस्य वचनम्।)

[राजा सप्रत्याशस्तिष्ठति।]

[ततः प्रविशति आकाशयानेनाभिसारिकावेषा उर्वशी चित्रलेखा च।]

उर्वशी—[आत्मानमवलोक्य] **हला चित्तलेहे! अवि रोअदि दे अअं मम अप्पाभरणभूसिदो णीलंसुअपरिग्गहो अहिसारिआवेसो।** (हला चित्रलेखे! अपि रोचते तेऽयं ममाल्पाभरणभूषितो नीलांशुकपरिग्रहोऽभिसारिकावेषः।)

चित्रलेखा—सहि! णत्थि मे वाआविहवो पसंसिदुं। इदं तू चिंतेमिअवि णाम अहं पुरुरवा भवेअं त्ति। (सखि! नास्ति मे वाग्विभवः प्रशंसितुम्। इदं तु चिन्तयामि अपि नामाहं पुरुरवा भवेयमिति।)

राजा—यह तो है, पर मेरे मन में तो ऐसा ताप भरा हुआ है कि वह सँभाले नहीं सँभलता। जैसे ऊबड़-खाबड़ चट्टानों के बीच में आ जाने से नदी और अधिक वेग से बहने लगती है, वैसे ही जब अपने प्यार से मिलने के सुख में बाधाएँ आ जाती हैं, तो प्रेम की जलन भी सौ गुनी बढ़ जाती है।।8।।

विदूषक—यह जो आप दिन-दिन दुबले होकर निखरते जा रहे हैं, इससे जान पड़ता है कि अब प्यारी के मिलने में देर नहीं है।

राजा—[अच्छे सगुन होने की सूचना देते हुए] वयस्य! आशाभरी बातें कह-कहकर जैसे तुम मुझे प्रेम के घायल को डाढ़स बँधा रहे हो, वैसे ही यह मेरी दाहिनी भुजा भी फड़ककर मुझे आशा बँधा रही है।।9।।

विदूषक—ब्राह्मण का वचन झूठा थोड़े ही होता है।

[राजा बड़ी आशा से बैठता है।]

[इसी बीच विमान में बैठी अभिसारिका के वेश में उर्वशी और चित्रलेखा आती हैं।]

उर्वशी—[अपनी ओर देखकर] क्यों सखी चित्रलेखा! यह थोड़े से आभूषण पहने हुए और नीली रेशमी चादर से शरीर ढके हुए जो मैं अभिसारिका बनकर आई हूँ, यह वेश क्या तुझे अच्छा लगता है?

चित्रलेखा—मेरे पास इतना पांडित्य कहाँ कि प्रशंसा कर सकूँ। मैं तो यही सोचती हूँ कि कहीं मैं ही पुरुरवा हो सकती?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी—सहि! मदणो क्खु तुमं आणवेदि। ता सिग्घं णेहि मं तस्स सुहअस्स वसदिं। (सखि! मदनः खलु त्वामाज्ञापयति। तच्छीघ्रं नय मां तस्य सुभगस्य वसतिम्।)

चित्रलेखा—[विलोक्य] णं एदं परिवत्तिदं विअ केलाससिहरं पिअदमस्स दे भवणं उवगद म्ह। (नन्वेतत्परिवर्तितमिव कैलासशिखरं प्रियतमस्य ते भवनमुपगते स्वः।)

उर्वशी—तेण हि पहावदो जाणीहि दाव कहिं सो मम हिअअचोरो किं वा अणुचिट्ठदित्ति। (तेन हि प्रभावाज्जानीहि तावत्क्व स मम हृदयचौरः किं वानुतिष्ठतीति।)

चित्रलेखा—[ध्यात्वा विहस्यात्मगतम्] भोदु कीलिस्सं दाव एदाए। [प्रकाशम्] हला दिठ्ठो मए एसो मणोअहलद्धपिआसमाअमसुहं अणहवंतो उवहोअक्खमे ओआसे चिट्ठदि त्ति।

(भवतु। क्रीडिष्यामि तावदेतया। हला दृष्टो मया एष मनोरथलब्धप्रियासमागमसुख-मनुभवन्नुपभोगक्षमेऽवकाशे तिष्ठतीति।)

उर्वशी—[विषादं नाटयति। निःश्वस्य] धण्णो सो जणो जो एव्वं भवे। (धन्यः स जनो य एवं भवेत्।)

चित्रलेखा—मुद्धे! का उण चिंता तुए विणा अण्णपिआसमाअमस्स। (मुग्धे! का पुनश्चिन्ता त्वया विनान्यप्रियासमागमस्य।)

उर्वशी—[सोच्छ्वासम्] सहि अदक्खिणं संदेहदि मे हिअअं। (सखि अदक्षिणं संदिग्धं मे हृदयम्।)

चित्रलेखा—[विलोक्य] एसो मणिहम्मिअप्पासादपिट्ठगदो वअस्समेत्तसहाओ राएसी। ता एहि उवसप्पाम णं। (एष मणिहर्म्यप्रासादपृष्ठगतः वयस्यमात्रसहायो राजर्षिः। तदेहि उपसर्पाव एनम्।)

[उभे अवतरतः]

उर्वशी—सखी! मेरा प्रेम तुम्हें आज्ञा दे रहा है कि तुम मुझे शीघ्र ही उस भाग्यवान के भवन में पहुँचाओ।

चित्रलेखा—[देखकर] हम लोग तो तुम्हारे प्रियतम के उस भवन पर पहुँच ही गए, जो ऐसा सुन्दर लगता है मानो कैलास की चोटी उठकर यहाँ चली आई हो।

उर्वशी—तब दैवी शक्ति से ही यह खोजो कि वे मेरे हृदय चोर कहाँ हैं और क्या कर रहे हैं।

चित्रलेखा—[ध्यान करके हँसकर, आप ही आप] इससे थोड़ी ठिठोली की जाय। [प्रकट] मैंने देख लिया। सखी! वे अपनी मनचाही प्यारी से मिलने का सुख लूटते हुए आनन्द के स्थान में बैठे हुए हैं।

उर्वशी—[दुखी होने का नाट्य करती है। लम्बी साँस लेकर] धन्य है वह स्त्री जो ऐसी बड़भागी है।

चित्रलेखा—अरी पगली! तुझे छोड़कर वे और कौन-सी दूसरी प्रेमिका से मिलने की बात सोचेंगे।

उर्वशी—[लंबी साँस लेकर] मेरा भोला-भाला हृदय तो यही सन्देह कर बैठा था।

चित्रलेखा—[देखकर] वह देखो! वे राजर्षि यहाँ मणिहर्म्यभवन की छतपर अपने मित्र के साथ बैठे हुए हैं। आओ, इनके पास बढ़ चला जाय। [दोनों उतरती हैं।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा–वयस्य रजन्या सह विज्रम्भते मदनबाधा।

उर्वशी–अणिब्भिण्णत्थेण इमिण वअणेण आकंपिदं मे हिअअं। ता अंतरिदा एव्व सुणाम से सेरालावं जाव णो संसच्छेदो होदि। (अनिर्भिन्नार्थेनानेन वचनेनाकम्पितं मे हृदयम्। तदन्तर्हितो शृणुवोऽस्य स्वैरालापं यावदावयोः संशयच्छेदो भवति।)

चित्रलेखा–जं दे रोअदि। (यत्ते रोचते।)

विदूषकः–णं इमे अभिअगब्भा सेवीअंदु चंदवादा। (नन्वेतेऽमृतगर्भाः सेव्यन्तां चन्द्रपादाः।)

राजा–वयस्य! एवमादिभिरनुपक्रम्योऽयमातङ्कः। पश्य–

कुसुमशयनं न प्रत्यग्रं न चन्द्रमरीचयो
न च मलयजं सर्वांगीणं न वा मणियष्टयः।
मनसिजरुजं सा वा दिव्या ममालमपोहितुं....

उर्वशी–[उरसि हस्तं दत्वा।] का वा अवरा। (का वा अपरा।)

राजा–.....

रहसि लघयेदारब्धा वा तदाश्रयिणी कथा।। 10।।

उर्वशी–हिअअ! मं उज्झिअ इदो संकंतेण तुए दाणिं फलं उवलद्धं। (हृदय! मामुज्झित्वा इतः संक्रान्तेन त्वयेदानीं फलमुपलब्धम्।)

राजा–वयस्य! ज्यों-ज्यों रात बढ़ती जा रही है, त्यों-त्यों मेरी काम-पीड़ा भी बढ़ती जा रही है।

उर्वशी–इन गोलमोल वचनों को सुनकर तो मेरा जी काँप उठा है। चलो, छिपकर इनकी गुपचुप बातें तो सुनें, जिससे हृदय का सन्देह तो मिट जाये।

चित्रलेखा–जैसी तुम्हारी इच्छा।

विदूषक–लो, अमृत से भरी हुई चन्द्रमा की किरणों में नहाओ।

राजा–वयस्य! इन सब उपायों में यह पीड़ा नहीं जायेगी। देखो! मेरे इस प्रेम के रोग को न तो फूलों की शय्या ही दूर कर सकती है, न चन्द्रमा की किरणें हटा सकती हैं, न सारे शरीर में लेप किया हुआ चन्दन ही मिटा सकता है और न मोतियों की माला ही कम कर सकती है। यदि इस रोग को कोई दूर कर सकता है तो बस वही एक स्वर्ग वाली....।

उर्वशी–[हृदय पर हाथ रखकर] यह दूसरी कौन होगी?

राजा–.......या फिर एकान्त में कही हुई उसके प्रेम की बातें।।10।।

उर्वशी–अरे हृदय! तुम सचमुच बड़भागी हो कि मुझे छोड़कर उनके पास चले गए हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—आम्। हं वि पत्थयंतो जदा मिट्ठहरिणीमंसभोअणं ण लहे तदा णं संकित्तअंतो आसासेमि अत्ताणं। (आम्। अहमपि प्रार्थयमानो यदा मिष्टहरिणीमांस-भोजनं न लभे तदैतत्सङ्कीर्तयन्नाश्वासयाम्यात्मानम्।)

राजा—सम्पद्यते पुनरिदं भवतः।

विदूषकः—भवं वि तं अइरेण पाविस्सदि। (भवानपि तामचिरेण प्राप्स्यसि।)

राजा—सखे! एवं मन्ये.......

चित्रलेखा—सुणु, असंतुट्ठे सुणु (शृणु, असन्तुष्टे शृंणु।)

विदूषकः—कहं विअ। (कथमिव)

राजा—.......

अयं तस्या रथक्षोभादंसेनांसो निपीडितः।
एकः कृती शरीरेऽस्मिन् शेषमङ्गं भुवो भरः।। 11।।

चित्रलेखा—सहि! कि दाणिं विलंबीआदि। (सखि! किमिदानीं विलम्ब्यते।)

उर्वशी—[सहसोपसृत्य] हला! अग्गदो वि मम ट्ठिदाए उदासीणो विअ महाराओ।

(हला! अग्रतोऽपि मम स्थिताया उदासीन इव महाराजः।)

चित्रलेखा—[सस्मितम्] अइ अदितुवरिदे! अणक्खित्ततिरक्खरिणी आसि। (अयि अतित्वरिते! अनाक्षिप्ततिरस्करिणिकासि।)

[नेपथ्ये]

विदूषक—हाँ! मुझे भी जब कभी माँगने पर हिरनी के मीठे माँस का भोजन नहीं मिलता तब मैं उसका नाम लेकर ही अपना पेट भर लेता हूँ।

राजा—पर तुम्हें यह सब मिल तो जाता है।

विदूषक—आप भी बस उसे मिला ही समझिए।

राजा—वयस्य! मैं सोचता हूँ कि...

चित्रलेखा—सुन री पगली!

विदूषक—हाँ, क्या सोचते हो?

राजा—यही कि मेरे शरीर के सब अंगों में यह कन्धा ही धन्य है कि वह रथ के हिलने-डुलने के समय मेरे साथ बैठी हुई उर्वशी के कन्धे को छूता चलता था। शरीर के दूसरे अंगों को तो बस धरती का बोझ ही समझो।।11।।

चित्रलेखा—क्यों सखी! अब देर क्यों करती हो?

उर्वशी—[सहसा आगे बढ़कर] सखी, मैं महाराज के सामने आकर खड़ी भी हो गई हूँ, फिर भी वे मुझसे बोल क्यों नहीं रहे हैं?

चित्रलेखा—[मुस्कराकर] अरी हड़बड़ाने वाली! तूने अभी अपनी माया की ओढ़नी तो उतारी ही नहीं।

[नेपथ्य में]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदो इदो भट्टिणी। (इतो इतो भट्टिनी)

[सर्वे कर्णं ददति। उर्वशी यह सख्या विषण्णा।]

विदूषकः—[सविस्मयम्] अइ भो! उवट्ठिदा देवी। ता वाचंजमो होहि। (अयि भोः। उपस्थिता देवी। तद्वाचंयमो भव।)

राजा—भवानपि संवृताकारमास्ताम्।

उर्वशी—सहि! किं एत्थ करणिज्जं। (सखि! किमत्र करणीयम्।)

चित्रलेखा—अलं आवेएण। अंतरिदा दाणिं वयं। विहिदणिअमवेसा राएसिमहिसी दीसदि। ता ण एसा इह चिरं चिट्ठीस्सदि। (अलमावेगेन। अन्तर्हिते इदानीमावाम्। विहितनियमवेषा राजर्षिमहिषी दृश्यते। तन्नैषेह चिरं स्थास्यति।)

[ततः प्रविशति औपहारिकहस्तपरिजना देवी चेटी च]

देवी—[परिक्रम्य चन्द्रमसवलोक्य च] हंजे णिउणिए! एसो रोहिणीसंजोएण अहिअं सोहदि भअवं मिअलंछणो। (हञ्जे निपुणिके! एष रोहिणोसंयोगेनाधिकं शोभते भगवान् मृगलाञ्छनः।)

चेटी—णं भट्टिणीसहिदो भट्टा विसेसरमणिज्जो। (ननु भट्टिनीसहितो भर्त्ता विशेषरमणीयः।)

[इति परिक्रामतः।]

विदूषकः—[दृष्ट्वा।] भो ण जागणामि सोत्थिवाअणं मे देह त्ति आदु वदव्ववदेसेण मुक्करोसा भवदो पणिपादलंघणं पमज्जिदुकाम त्ति। अज्ज मे अक्खीणं सुहसंदणा देवी।

(भोः न जानामि स्वस्तिवाचनं मे ददातीति अथवा व्रतव्यपदेशेन मुक्तरोषा भवतः प्रणिपातलङ्घनं प्रमार्ष्टुकामेति। अद्य मेऽक्ष्णोः शुभदर्शना देवी।)

इधर से आइए स्वामिनी! इधर से।

[सब सुनते हैं। उर्वशी और उसकी सखी उदास हो जाती है।]

विदूषक—[आश्चर्य से] अरे वयस्य! लो देवी आ पहुँची हैं। अब चुप हो जाओ।

राजा—तुम भी सँभलकर बैठ जाओ।

उर्वशी—अब बताओ सखी! क्या किया जाये?

चित्रलेखा—घबराओ मत। हम दोनों तो छिपे ही हुए हैं। महारानी के वेश से जान पड़ता है कि वे कोई व्रत कर रही हैं, इसलिये वे यहाँ बहुत देर नहीं ठहरेंगी।

[हाथ में पूजा की सामग्री लिए हुए दासियाँ और उनके साथ महारानी आतीं हैं।]

देवी—[चन्द्रमा को देखकर] सखी निपुणिका! देख, रोहिणी के साथ चन्द्रमा कैसे अच्छे लग रहे हैं।

चेटी—ठीक वैसे ही जैसे स्वामिनी के साथ महाराज बड़े सुन्दर दिखाई दे रहे हैं।

विदूषक—[देखकर] वयस्य! यह समझ में नहीं आ रहा है कि ये मुझे पूजा का प्रसाद देने आ रही हैं या व्रत के बहाने मान छोड़कर उस दिन का दोष धोने चली आ रही हैं, जब ये आपके मनाने पर भी रूठ कर चल दी थीं। कुछ भी हो आज तो देवी मेरी आँखों को बड़ी सुन्दर लग रही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—[सस्मितम्] उभयमपि घटते। तथापि भवता यत्पश्चादभिहितं तन्मां प्रति भाति। यदत्रभवती।

सितांशुका मङ्गलमात्रभूषणा पवित्रदूर्वांङ्कुरलाञ्छितालका।
व्रतापदेशोज्झितगर्ववृत्तिना मयि प्रसन्ना वपुषैव लक्ष्यते।। 12।।

देवी—[उपसृत्य] जेदु जेदु अज्जउत्तो। (जयतु जयतु आर्यपुत्रः।)

परिजनः—जेदु जेदु भट्टारओ। (जयतु जयतु भट्टारकः।)

विदूषकः—सत्थि भोदीए। (स्वास्ति भवत्यै।)

राजा—स्वागतं देव्यै। [तां हस्तेन गृहीत्वोपवेशयति।]

उर्वशी—हला ठाणे इअं देवीसद्देण उवअरीअदि। ण किं वि परिहीअदि सचीए ओजस्सिदाए। (हला! स्थाने खलु इयं देवीशब्देनोपर्यते। न किमपि परिहीयते शच्या ओजस्वितया।)

चित्रलेखा—साहु असूआपरम्मुहं मंतिदं तुए। (साधु असूयापराङ्मुखं मन्त्रितं त्वया।)

देवी—अज्जउत्तं पुरोकरिअ को वदविसेसो मए संपादणीओ। ता मुहुत्तं उवरोधो सहीअदु। (आर्यपुत्रं पुरस्कृत्य कोऽपि व्रतविशेषो मया संपादनीयः। तन्मुहूर्तमुपरोधः सह्यताम्।)

राजा—मा मैवम्। अनुग्रहः खलु अयं नोपरोधः।

विदूषकः—ईरिसो सोत्थिवाअणवंतो उवरोहो बहुसो होदु (ईदृशः स्वस्तिवाचनवानुपरोधो बहुशो भवतु।)

राजा—[हँसकर] दोनों ही बातें हो सकती हैं, पर तुमने अन्त में जो बात कही, वही अधिक ठीक जान पड़ती है, क्योंकि उजला रेशमी वस्त्र पहने हुए, शरीर पर केवल सुहाग के गहने पहनकर और पवित्र दूब के अँकुवो से अपनी बाँहें सजाकर आती हुई देवी के रंग-ढंग से ही ऐसा जँचता है कि ये व्रत के बहाने मान छोड़कर मुझपर प्रसन्न हो गई हैं।।12।।

देवी—[आगे बढ़कर] जय हो आर्यपुत्र की, जय हो।

दासी—जय हो भट्टारक की, जय हो।

विदूषक—आपका कल्याण हो।

राजा—देवी का स्वागत है। [देवी का हाथ पकड़कर उन्हें बैठाता है।]

उर्वशी—सखी! इस समय तो देवी शब्द इनके लिये सटीक बैठ गया है, क्योंकि इनका तेज इन्द्राणी से किसी भी प्रकार कम नहीं है।

चित्रलेखा—तुमने ईर्ष्या छोड़कर यह बात सच्ची कही हैं।

देवी—मैं आर्यपुत्र को साथ लेकर एक विशेष व्रत करना चाहती हूँ, इसलिये प्रार्थना है कि मेरे लिये कुछ देर कष्ट सहन करने की कृपा करें।

राजा—नहीं ऐसा न कहो। इसमें कष्ट किस बात का? यह तो आपकी कृपा है।

विदूषक—जिसमें पूजा का बायना मिले, ऐसे कष्ट सदा मिला करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—किं नामधेयमेतद्देव्या व्रतम्।

[देवीं निपुणिकामुखमवेक्षते।]

निपुणिका—भट्टा पिआणुप्पसादणं णाम। (भर्तः प्रियानुप्रसादनं नाम।)

राजा—[देवी विलोक्य] यद्येवम्।

अनेन कल्याणि मृणालकोमलं व्रतेन गात्रं ग्लपयस्यकारणम्।
प्रसादमाकाङ्क्षति यस्तवोत्सुकः सकिं त्वयादासजनः प्रसाद्यते।। 13।।

उर्वशी—महंतो क्खु से इमस्सिं बहुमाणो। (महान्खलु अस्य एतस्यां बहुमानः।)

चित्रलेखा—अइ मुद्धे अण्णसंकंतप्पेमाणो णारिआ भारिआए अहिअं दक्खिणा होन्ति। (अयि मुग्धे! अन्यसंक्रांतप्रेमाणो नागरिका भार्यायामधिकं दक्षिणा भवन्ति।)

देवी—[सस्मितम्] णं इमस्स वदपरिग्गहस्स अअं पहावो जं एत्तिअं मंताविदो अज्जउत्तो। (नन्वेतस्य व्रतपरिग्रहस्यायं प्रभावो यदेतावन्मन्त्रित आर्यपुत्रः।)

विदूषकः—विरमदु भवं। त जुतं सुहासिदं पच्चाचरिदुं। (विरमतु भवान्। न युक्तं सुभाषितं प्रत्याचरितुम्।)

देवी—दारिआओ आणेध ओवहारिअं जाव मणिहम्मिअपिट्ठगदे चंदपादे अच्चेमि। (दारिकाः आनयतौपहारिकं यावन्मणिहर्म्यपृष्ठगताँश्चन्द्रपादानर्चामि।)

परिजनः—जं भट्टिणी आणवेदी। एसो गंधकुसुमादिउवहारो। (यद्भट्टिनी आज्ञापयति। एष गन्धकुसुमाद्युपहारः)

राजा—आप कौन-सा व्रत कर रही हैं?

[देवी निपुणिका का मुँह देखती हैं।]

निपुणिका—महाराज! इसे प्रियको प्रसन्न करने वाला व्रत कहते हैं।

राजा—[देवी को देखकर] हे कल्याणी! यदि इतनी-सी ही बात है, तब तो अपने कमल के समान कोमल शरीर को व्यर्थ ही व्रत करके सुखा रही हो, क्योंकि आपका जो दास, स्वयं आपको प्रसन्न देखने के लिये अधीर हो रहा हो, उसे भी क्या कहीं प्रसन्न करने की आवश्यकता हुआ करती है।।13।।

उर्वशी—इन देवी को तो महाराज बहुत मानते हैं।

चित्रलेखा—अरी पगली! जो चतुर नागरिक किसी दूसरी स्त्री से प्रेम करने लगते हैं, वे अपनी पत्नी का और भी अधिक आदर किया करते हैं।

देवी—[मुस्कराकर] सचमुच यह व्रत का ही प्रभाव है कि आर्यपुत्र ने इतना तो कहा।

विदूषक—अच्छा रहने दीजिए अपनी बातें। व्रत पूजा की बातों में मीन-मेख निकालना ठीक नहीं होता।

देवी—दासियो! पूजा की सामग्री तो ले आओ, जिससे मैं मणिहर्म्य-भवन पर फैली हुई चन्द्रमा की किरणों की पूजा तो कर लूँ।

दासियाँ—जैसी भट्टिनी की आज्ञा। लीजिए, यह है चन्दन-फूल आदि पूजा की सामग्री।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी—उवणेध। [नाट्येन गंधपुष्पादिभिश्चन्द्रपादानभ्यर्च्य।] हंजे णिउणिए! इमे ओरहारिअमोदए अज्जमाणबअं लंभोवेहि। (उपनयत। हञ्जेनिपुणिके! एतानौपहारिकमो-दकानार्यमाणवकं लम्भय।)

निपुणिका—जं भट्टिणी अणवेदी। अज्ज माणवअ एवं दाव दे। (यद्भट्टिन्याज्ञापयति। माणवक इदं तावते।)

विदूषकः—[मोदकशरावं गृहीत्वा।] सोत्थि भोदीए। बहुफलो दे एसो वदो भोदु। (स्वस्ति भवत्यै। बहुफलं तवैतद्व्रतं भवतु।)

देवी—अज्जउत्त इदो दाव। (आर्यपुत्र इतस्तावत्।)

राजा—अयमस्मि।

देवी—[राज्ञः पूजामभिनीय प्राञ्जलिः प्रणम्य।] एसा अहं देवदामिहुणं रोहिणीमिअलंछणं सक्खीकरिअ अज्जउत्तं अणुप्पसादेमि—अज्जाप्पहुदि जं इत्थिअं अज्जउत्तो पत्थेदि जा अज्जउत्तसस्स समाअमप्पणयिणी ताए सह मए पीदिबंधेण वत्तिदव्वं। त्ति। (एषाहं देवतामिथुनं रोहिणीमृगलाञ्छनं साक्षीकृत्यार्यपुत्रमनुप्रसादयामि—अद्यप्रभृति यां स्त्रियमार्यपुत्रः प्रार्थयते या चार्यपुत्रस्य समागमप्रणयिनी तया सह मया प्रीतिबन्धेन वर्तितव्यम् इति।)

उर्वशी—अम्महे ण आणे किंपरं से वअणं त्ति। मम उण विस्सासविसदं हिअअं संवुत्तं। (अहो न जाने किमपरमस्या वचननमिति। ममपुनर्विश्वासविशदं हृदयं संवृत्तम्।)

चित्रलेखा—सहि महाणुहावाए पदिव्वदाए अब्भणुण्णादो अणंतराओ दे पिअसमाअमो हविस्सदि। (सखि! महानुभावया पतिव्रतयाभ्यनुज्ञातः अनन्तरायस्ते प्रियसमागमो भविष्यति।)

देवी—लाओ। [सामग्री लेकर गन्ध-फूल आदि से चन्द्रमा की किरणों की पूजा करने का नाट्य करती है।] सखी निपुणिका! ये पूजा के लड्डू आर्य माणवक को दे डालो।

निपुणिका—जैसी भट्टिनी की आज्ञा लीजिए आर्य माणवक! ये आपके लिये हैं।

विदूषक—[लड्डू का पात्र लेते हुए] आपका कल्याण हो। आपका यह व्रत बहुत फले।

देवी—आर्यपुत्र! इधर तो आइए।

राजा—लीजिए, आ गया।

देवी—[राजा की पूजा का नाट्य करके और हाथ जोड़कर] आज मैं रोहिणी और चन्द्रमा के दैवी जोड़े को साक्षी बनाकर आर्यपुत्र को प्रसन्न कर रही हूँ। आज से जिस किसी स्त्री को भी आर्यपुत्र चाहेंगे और जो भी स्त्री आर्यपुत्र की पत्नी बनना चाहेगी उसके साथ मैं बड़े प्रेम से रहा करूँगी।

उर्वशी—अरी! न जाने ये किस दूसरी स्त्री के लिये कह रही हैं। पर कम से कम इससे मेरे हृदय को भरोसा तो मिला।

चित्रलेखा—सखी! इस उदारहृदय वाली पतिव्रता की बातों से एक बात तो पक्की हो गई कि अब तुम्हें अपने प्यारे से मिलने में कोई बाधा नहीं पड़ेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः–[अपवार्य।] **भिण्णहत्थे मच्छे पलायिदे णिव्विरणो धीवरो भणदि गच्छ धम्मो मे हविस्सदि त्ति।** [प्रकाशम्] **भोदि किं तारिसो दे पिओ तत्तभवं।** (भिन्नहस्ते मत्स्ये पलायिते निर्विण्णो धीवरो भणति गच्छ धर्मो मे भविष्यतीति। भवति! किं तादृशस्ते प्रियस्तत्र-भवान्।)

देवी–**मूढ़! अहं क्खु अत्तणो सुहावसाणेण अज्जउत्तं णिव्वुदसरीरं कादुं इच्छामि। एत्तिएण चिंतेहि दाव पिओ ण वत्ति।** (मूढ! अहं खलु आत्मनः सुखावसाने-नार्यपुत्रं निवृतशरीरं कर्तुमिच्छामि। एतावता चिंतय तावत्प्रियो न वेति।)

राजा–

दातुं वा प्रभवसि मामन्यस्मै कर्तुमेव वा दासम्।
नाहं पुनस्तथा त्वयि यथा हि मां शंकसे भीरु।।14।।

देथी–**होहि वा मा वा। जधाणिद्दिट्ठं संपादिदं मए पिआणुप्पसादणं णाम वदं। दारिआओ एध गच्छाम्ह।** (भव वा मा वा। यथानिर्दिष्टं संपादितं मया प्रियानुप्रसादनं नाम व्रतम्। दारिकाः एत गच्छामः।)

[इति प्रस्थिता]

राजा–प्रिये! न खलु प्रसादितोऽस्मि यदि संप्रति विहाय गम्यते।

देवी–**अज्जउत्त! अलंघिदपुव्वो मए णिममो।** (आर्यपुत्र! अलंधितपूर्वो मया नियमः।)

[इति सपरिवारा निष्क्रांता।]

उर्वशी–सहि! पिअकलत्तो राएसी। ण उण हिअअं णिवत्तेदुंसक्केमि। (सखि! प्रियकलत्रो राजर्षिः। न पुनर्हृदयं निवर्तयितुं शक्नोमि।)

विदूषक–[अलग, राजा से] जब मछली मछुए के हाथ से निकलकर पानी में भाग जाती है, तब वह भी निराश होकर यही कहता है–जा! मुझे पुण्य ही होगा। [प्रकट] देवी! क्या महाराज आपको इतने प्यारे हैं।

देवी–अरे मूर्ख! मैं अपने सुख का बलिदान करके भी आर्यपुत्र को सुखी देखना चाहती हूँ। इसी से समझ ले कि वे मुझे प्यारे हैं या नहीं।

राजा–देवी! चाहो तो तुम मुझे किसी दूसरे को दे डालो या चाहे अपना ही दास बनाकर रख छोड़ो, पर तुम मुझे अपने से जैसा दूर समझ बैठी हो, वैसी बात नहीं है।।14।।

देवी–दूर हों या न हों, पर मैंने तो प्रिय को प्रसन्न करने वाला जो व्रत ठाना था, वह पूरा ही कर लिया। आओ दासियो! चलो चलें। [चलने को प्रस्तुत होती हैं।]

राजा–यदि मुझे छोड़कर चली जाओगी, तो समझ लो कि मैं प्रसन्न नहीं हुआ।

देवी–आर्यपुत्र! मैंने आज तक कभी अपने व्रत का नियम नहीं तोड़ा है।

[दासियों के साथ चली जाती है।]

उर्वशी–सखी! राजा अपनी पत्नी को इतना प्यार करते हैं, तिसपर भी मैं उन पर से अपना मन हटा नहीं पा रही हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा—किं उण तुण णिरासाए णिवत्तीअदि। (किं पुनस्त्वया निराशया निवर्त्यते।)

राजा—[आसनमुपेत्य] वयस्य न खलु दूरं गता देवी।

विदूषकः—भणविस्सद्धं जं सि वत्तुकामो। असज्झो त्ति वेज्जेण आदुरो विअ सेरं मुत्तो भवं तत्तहोदीए। (भण विस्रब्धं यदसि वक्तुकामः। असाध्य इति वैद्येनातुर इव स्वैरं मुक्तो भवास्तत्रभवत्या।)

राजा—अपि नामोर्वशी।

उर्वशी—अज्ज किदत्था भवे। (अद्य कृतार्था भवेत्।)

राजा—

गुढा नूपुरशब्दमात्रमपि मे कान्तं श्रुतौ पातयेत्
पश्चादेत्य शनैः कराम्बुजवृते कुर्वीत वा लोचने।
हर्म्येऽस्मिन्नवतीर्य साध्वसवशान्मन्दायमाना बलात्
आनीयेत पदात्पदं चतुरया सख्या ममोपान्तिकम्।। 15।।

चित्रलेखा—सहि! उव्वसि इमं दाव से मणोरहं संपादेहि। (सखि! उर्वशी इमं तावदस्य मनोरथं सम्पादय।)

उर्वशी—[ससाध्वसम्] भोदु। कीलिस्सं दाव। (भवतु क्रीडिष्यामि तावत्।) [इति तिरस्करणीमपनीय पृष्ठतो गत्वा राज्ञो नयने संवृणोति।]

[चित्रलेखा तिरस्क्रिरिणीयपनीय विदूषकं संज्ञापयति।]

चित्रलेखा—तो क्या तुम अब निराश होकर लौट जाना चाहती हो?

राजा—[अपने आसन पर बैठकर] वयस्य! अभी देवी दूर तो नहीं पहुँची होंगी।

विदूषक—जो कहना हो जी खोलकर कह डालो। जैसे रोगी को असाध्य समझकर वैद्य उसे छोड़ देता है, वैसे ही आपको भी देवी ने यह समझकर छोड़ दिया कि अब आप सुधर नहीं सकते।

राजा—क्या अच्छा हो यदि उर्वशी.....।

उर्वशी—आज कृतार्थ हो गयी?

राजा—क्या अच्छा हो, यदि उर्वशी इस समय छिपे-छिपे आकर अपने बिछुए की मीठी छनन-छनन ही सुना जाये, या पीछे से आकर अपने कमल के समान कोमल हथेलियों से मेरी आँखें बन्द कर ले या इस भवन पर उतरकर वह डरती हुई धीरे-धीरे आगे बढ़े और उसकी चतुर दासी उसे खींचकर मेरे पास पहुँचा दे।।15।।

चित्रलेखा—आओ सखी उर्वशी! अब इनके मन की हुलास पूरी कर दो।

उर्वशी—[अधीरता से] अच्छा! पहले मैं इनसे कुछ ठिठोली करती हूँ।

[माया की ओढ़नी उतारकर पीछे से पहुँचकर राजा की आँखें ढक लेती है।]

[चित्रलेखा भी माया की ओढ़नी उताकर विदूषक को संकेत करती है कि बतला मत।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—भो वअस्स! का उण एसा। (भो वयस्य! का पुनः एषा।)

राजा—[स्पर्शं रूपयित्वा] सखे! नारायणोरुसंभवा सेयं वरोरूः।

विदूषकः—कहं भवं अवगच्छदि। (कथं भवानवगच्छति।)

राजा—किमत्रज्ञेयम्।

अङ्गमनङ्गक्लिष्टं सुखयेदन्या न मे करस्पर्शात्।
नोच्छ्वसिति तपनकिरणैश्चन्द्रस्यैवांशुभिः कुमुदम्।। 16।।

उर्वशी—[हस्तौ अपनीय उत्तिष्ठति। किञ्चिदपसृत्य] जेदु जेदु महाराओ (जयतु जयतु महाराजः।)

राजा—सुंदरि! स्वागतम्। [इत्येकासन उपवेशयति।]

चित्रलेखा—अवि सुहं वअस्सस्स। (अपि सुखं वयस्यस्य।)

राजा—नन्वेतदुपपन्नम्।

उर्वशी—हला देवीए दिण्णो महाराओ। अदो से पणअवदी विअ सरीरसंपक्कं गदम्हि। मा क्खु मं पुरोभाइणिं समत्थेहि। (हला! देव्या दत्तो महाराजः। अतोऽस्य प्रणयवतीव शरीरसम्पर्कं गतास्मि। मा खलु मां पुरोभागिनीं समर्थयस्व।)

विदूषकः—कहं इह ज्जेव दुम्हाणं अत्थमिदो सुज्जो। (कथं इहैव युवयोरस्तमितः सूर्यः।)

राजा—[उर्वशीमवलोकयन्]

देव्या दत्त इति यदि व्यापारं व्रजसि मे शरीरेऽस्मिन्।
प्रथमं कस्यानुमते चोरितमयि मे त्वया हृदयम्।। 17।।

विदूषक—क्यों वयस्य! ये कौन हैं?

राजा—[स्पर्श से पहचानता हुआ] मित्र! यह वही सुन्दर जाँधों वाली उर्वशी हैं जो नारायण की जाँघ से उत्पन्न हुई है।

विदूषक—आपने पहचान कैसे लिया?

राजा—इसमें पहचाने की क्या बात है। दूसरी कोई ऐसी स्त्री नहीं है जो मेरे काम-पीड़ित शरीर को अपने हाथ से छू कर सुखी कर दे। चन्द्रमा की किरणों से खिल उठने वाला कुमुद, सूर्य की किरणों से नहीं खिला करता।।16।।

उर्वशी—[हाथ हटाकर खड़ी हो जाती है। कुछ हटकर] जय हो महाराज की जय हो।

राजा—स्वागत करता हूँ सुन्दरी! [अपने ही आसन पर बैठा लेता है।]

चित्रलेखा—कहिए आप प्रसन्न तो हैं।

राजा—प्रसन्नता तो अभी-अभी हाथ लगी है।

उर्वशी—सखी! देवी ने महाराज को मेरे हाथ दान दे डाला है, इसलिये मैं इनकी विवाहिता स्त्री के समान ही इनसे सटकर बैठी हूँ। तुम मुझे कुलटा न समझ बैठना।

विदूषक—आप लोग यहाँ सायंकाल से ही डटी हुई थीं क्या?

राजा—[उर्वशी की ओर देखकर] आज तो तुम यह कहकर मुझ से सम्बन्ध जोड़ रही हो कि देवी ने मुझे तुम्हारे हाथ सौंप दिया है, पर यह तो बताओ कि तुमने पहले जो मेरा हृदय चुराया था वह किससे पूछकर चुराया था।।17।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा—वअस्स णिरुत्तरा एसा। संपदं मह विण्णवणा सुणी अदु। (वयस्य! निरुतरा एषा। साम्प्रतं मम विज्ञापना श्रूयताम्।)

राजा—अवहितोऽस्मि।

चित्रलेखा—वसंताणंतरं उण्हसमए भअवं सुज्जो मए उवचरिदव्वो ता जहा इअं मे पिअसही सग्गस्स ण उक्कंठेदि तहा वअस्सेण कादव्वं। (वसन्तानन्तरमुष्ण-समये भगवान्सूर्यो मयोपचरितव्यः। तद्यथेयं मे प्रियसखी स्वर्गाय नोत्कण्ठते तथा वयस्येन कर्तव्यम्।)

विदूषकः—किं वा सग्गे सुमरिदव्वं। ण वा तत्थ अण्हीअदि ण वा पीअदि। केवलं अणिमिसेहिं णअणेहिं मीणा विडंबीअंति। (किं वा स्वर्गे स्मर्तव्यम्। न वा तत्राश्यते न वा पीयते। केवलमनिमिषैर्नयनैर्मीना विडम्ब्यन्ते।)

राजा—भद्रे।

अनिर्देश्यसुखः स्वर्गः कस्तं विस्मारयिष्यति।
अनन्यनारीसामान्यो दासस्त्वस्याः पुरुरवाः।। 18।।

चित्रलेखा—अणुगहीददम्हि। हला उव्वसि अकादरा भविअ विसज्जेहि मं। (अनुगृहीतास्मि। हला उर्वशी, अकातरा भूत्वा विसर्जय माम्।)

उर्वशी—[चित्रलेखां परिष्वज्य सकरुणम्] सहि मा क्खु मं विसुमरेहि। (सखि मा खलु मां विस्मर।)

चित्रलेखा—[सस्मितम्] वअस्सेण संगदा तुमं एव्व एवं मए जाचिदव्वा। (वयस्येन सङ्गता त्वयैवैमेतन्मया याचितव्या।) [इति राजानं प्रणम्य निष्क्रान्ता।]

चित्रलेखा—वयस्य! इस बात का इनके पास कोई उत्तर नहीं है। अब आप मेरी बात सुनिए।

राजा—कहिए, मैं सुन रहा हूँ।

चित्रलेखा—वसन्त बीतने पर गर्मी में मुझे सूर्य की सेवा करनी है। इसलिये आप इन्हें ऐसा बाँधे रखिए कि ये प्यारी सखी स्वर्ग जाने के लिये घबरा न उठें।

विदूषक—स्वर्ग में क्या है? जिसे ये स्मरण करके घबरायेंगी। न वहाँ कुछ खाने को है, न पीने को। वहाँ के लोग तो बस दिन-रात मछली के समान सदा आँख फाड़े बैठे रहते हैं।

राजा—भद्रे! स्वर्ग में ऐसे-ऐसे सुख भरे पड़े है कि उनका वर्णन नहीं हो सकता। इसलिये उन्हें भुला कौन सकता है, पर मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मैं पुरुरवा सब स्त्रियों से मन हटाकर केवल आपकी सखी की ही सेवा करता रहूँगा।।18।।

चित्रलेखा—यह तो आपकी कृपा है। सखी उर्वशी! मुझे जी खोलकर विदा तो दो।

उर्वशी—[चित्रलेखा से गले मिलकर करुणा के साथ।] सखी! मुझे भूल न जाना।

चित्रलेखा—[मुसकराकर] अब तुम मित्र के पास पहुँच गई हो, इसलिये यदि यह बात तुमसे मैं कहती, तो अधिक ठीक होता।

[राजा को प्रणाम करके चली जाती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—दिट्ठिआ मणोरहसंपदीए वड्ढदि भवं। (दिष्ट्या मनोरथसम्पत्या वर्धते भवान्।)

राजा—इयं तावद्वृद्धिर्मम। पश्य—

सामन्तमौलिमणिरञ्जिपादपीठं एकातपत्रमवनेर्न तथा प्रभुत्वम्।
अस्याः सखे! चरणयोरहमद्य कान्तं आज्ञाकरत्वमधिगम्य यथा कृतार्थः।। 19।।

उर्वशी—णत्थि मे वाआविहवो अदो पिअदरं मंतिदुं। (नास्ति मे वाग्विभवोऽतः प्रियतरं मन्त्रयितुम्।)

राजा—[उर्वशीं हस्तेनावलम्ब्य] अहा विरुद्धसंवर्धन ईप्सितलाभो नाम। यतः—

पादास्त एव शशिनः सुखयन्ति गात्रं बाणास्त एव मदनस्य मनोनुकूलाः।
संरम्भरूक्षमिव सुन्दरि! यद्यदासीत् त्वत्सङ्गमेन ममतत्तदिवानुनीतम्।। 20।।

उर्वशी—अवरद्धम्हि चिरकारिआ अज्जउत्तस्स। (अपराद्धास्मि चिरकारिकार्यपुत्रस्य।)

राजा—सुन्दरि! मा मैवम्।

यदेवोपनतं दुःखात्सुखं तद्रसवत्तरम्।
निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः।। 21।।

विदूषकः—भो सेविदा पदोसरमणीआ चंदवादा। समओ क्खु दे वासघरपवेसस्स। (भोः सेविताः प्रदोषरमणीयाश्चन्द्रपादाः। समयः खलु ते वासगृहप्रवेशस्य।)

राजा—तेन हि सख्यास्ते मार्गमादेशय।

विदूषक—मनोरथ पूरे होने की मैं आपको बधाई देता हूँ।

राजा—यह तो मेरी सबसे बड़ी जीत है। देखो—इनकी आज्ञा पालन करने में मैं अपने को जितना धन्य समझता हूँ, उतना मैं सारी पृथ्वी का स्वामी होने तथा अपने पैर के पीढ़े की सामन्त के राजाओं के मुकुट की मणियों से रँगाने को भी अच्छा नहीं समझता।।19।।

उर्वशी—इससे बढ़कर प्यारी बात मुझे सूझ ही नहीं रही है।

राजा—[उर्वशी को हाथ से पकड़कर] जब चाही हुई वस्तु मिल जाती है, तब विरोधी वस्तुएँ भी अच्छी लगने लगती हैं। क्योंकि चन्द्रमा की वे ही किरणें आज सुख दे रही हैं और कामदेव के वे ही बाण आज मन को भा रहे हैं। हे सुन्दरी! जो-जो वस्तुएँ क्रोध भरी या कठोर जान पड़ती थीं, वे सब तुम्हारे मिलते ही कोमल हो गई हैं।।20।।

उर्वशी—मैंने आने में इतनी देर करके आर्यपुत्र का बड़ा अपराध किया है।

राजा—ऐसी बात न कहो सुन्दरी! दुःख के पीछे जो सुख मिलता है वह बड़ा रसीला होता है। पेड़ की छाया उसी मनुष्य को अच्छी लगती है जो धूप में तपकर आया हो।।21।।

विदूषक—चलिए! शाम के चन्द्रमा की किरणों का बहुत आनन्द ले चुके। अब आपके शयन-घर जाने का समय हो गया है।

राजा—तो अपनी सखी उर्वशी को वहाँ ले चलो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—इदो इदो भवदी। (इत इतो भवती।)

[इति सर्वे परिक्रामन्ति।]

राजा—सुन्दरि! इयमिदानीं मेऽभ्यर्थना।

उर्वशी—कीरिसी सा (कीदृशी सा)

राजा—

अनुपनतमनोरथस्य पूर्वं शतगुणितेव गता मम त्रियामा।
यदि तू तव समागमे तथैव प्रसरति सुभ्रु ततः कृती भवेयम्।।22।।

[इति निष्क्रान्ता सर्वे]

।। इति तृतीयोऽङ्कः।।

विदूषक—इधर से आइए देवी! इधर से।

[सब घूमते हैं।]

उर्वशी—क्या?

राजा—यही कि मनोरथ पूरा होने के पहले, रातें जैसी सौगुनी लम्बी जान पड़ती थीं, यदि वे अब तुम्हारे मिल जाने पर भी वैसी ही लम्बी हो जायँ तो मैं अपने को बड़ा भाग्यवान् समझूँ।।22।।

[सब चल जाते हैं।]

।। तीसरा अंक समाप्त।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थोऽङ्कः

(नेपथ्ये सहजन्याचित्रलेखे प्रावेशिक्याक्षिप्तिका)

पिअसहिविओअविमणा सहि सहिआ व्याउला समुल्लवइ।
सूरकरफंसविअसिअतामरसे सरवरुच्छंगे।। 1।।

(प्रियसखीवियोगविमनाः सखी सहिता व्याकुला समुल्लपति। सूर्यकरस्पर्श-विकसिततामरसे सरोवरोत्संगे।)

[ततः प्रतिशति विमनस्का चित्रलेखा सहजन्या च]

चित्रलेखा–(प्रवेशानन्तरं द्विपदिकया दिशोऽवलोक्य)

सहअरि दुक्खालिद्धअँ सरवरअम्मि सिणिद्धअँ।
वाहोवग्गिअणअणअँ तम्मइ हंसीजुअलअँ।।2।।

(सहचरी दुःखालीढं सरोवरे स्निग्धम्। वाष्पावविल्गितनयनं ताम्यति हंसीयुगलम्।।)

सहजन्या–[चित्रलेखां विलोक्य सखेदम्] सहि चित्तलेहे! मिलाअमाणसदवत्तस्स विअ दे मुहस्स छाया हिअअस्स अस्सत्थदं सूएदि। ता कहेहि मे णिव्वेदकारणं। दे समदुक्खा भविदुं इच्छामि। (सखि चित्रलेखे! म्लायमान शतपत्रस्येव ते मुखस्य छाया हृदयास्वस्थतां सूचयति। तत्कथय मे निर्वेदकारणाम्। ते समदुःखा भवितुमिच्छामि।)

चौथा अङ्क

(नेपथ्य में सहजन्या तथा चित्रलेखा का प्रवेश सूचित करने वाली आक्षिप्तिका गीति गाई जाती है।)

[अपनी प्यारी सखी के बिछोह से अनमनी और घबराई हुई हंसी, उसी तालाब के जल में अपनी सखी के लिये बैठी रो रही है, जिस के कमल सूर्य की किरणों के छूने से खिल उठे हैं।।1।।]

[सहजन्या के साथ उदास चित्रलेखा का प्रवेश]

चित्रलेखा–(प्रवेश करके द्विपदिका नामक गीति के साथ चारों ओर देखकर।)

[अपनी सखी के दुःख में घबराई हुई और एक दूसरी को प्यार करने वाली दो हंसिनियाँ आँखों से आँसू बहाते हुए तालाब के तीर पर बैठी सिसक रही हैं।।2।।]

सहजन्या–[चित्रलेखा को देखकर दुःख के साथ] सखी चित्रलेखा! मुरझाए हुए कमल के समान उदास तेरा मुँह बता रहा है कि तेरा जी ठीक नहीं है। तू मुझे अपनी व्यथा का कारण तो बता। मैं भी तेरा दुःख बाँट लेना चाहती हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा—[सकरुणम्] सहि! अच्छरोवारपज्जाएण इह भअवदो सुज्जस्स पादमूलोवट्ठाणं वट्टदि त्ति बलिअं क्खु उव्वसीए उक्कंठिदम्हि। (सखि! अप्सरोवारपर्यायेणेह भगवतः सूर्यस्य पादमूलोपस्थाने वर्तत इति बलवत्खलु उर्वश्या उत्कण्ठितास्मि।)

सहजन्या—सहि! जाणे वो अण्णोण्णसिणेहं। तदो तदो। (सखि! जाने युवयोरन्योन्यस्नेहम्। ततस्ततः।)

चित्रलेखा—तदो इमाइँ दिवसाइँ को णु क्खु वुत्तांतो त्ति पणिधाणट्ठिदाए मए अच्चाहिदं उवलद्धं। (ततः एतेषु दिवसेषु को न खलु वृत्तान्तः इति प्रणिधानस्थितया मयात्याहितमुपलब्धम्।)

सहजन्या—[सावेगम्] सहि कीरिसं तं। (सखी कीदृशं तत्।)

चित्रलेखा—[सकरुणम्] उव्वसी किल तं रदिसहाअं राएसिं अमच्चेसु णिवेसिदरज्जधुरं गेण्हिअ गंधमादणवणं विहरिदुं गदा। (उर्वशी किल तं रतिसहायं राजर्षिममात्येषु निवेशितराज्यधुरं गृहीत्वा गन्धमादनवनं विहर्तुंगता।)

सहजन्या—[सश्लाघम्।] सो णाम संभोओ जो तारिसेसु पदेसेसु। तदो तदो। (स नाम संभोगो यस्तादृशेषुप्रदेशेषु। ततस्ततः।)

चित्रलेखा—तहिं क्खु मंदाइणीए पुलिणेसु गदा सिअदापव्वद केलीहिं कीलमाणा विज्जाधरदारिआ उदयवदी णाम देण राएसिणा णिज्झाइद त्ति कुविदा उव्वसी। (तत्र खलु मन्दाकिन्याः पुलिनेषु सिकतापर्वतेकेलीभिः क्रीडन्ती विद्याधरदारिकोदयवती नाम तेन राजर्षिणा निध्यातेति कुपिता उर्वशी।)

चित्रलेखा—[दुःखी होकर] सखी! यहाँ भगवान् सूर्य की सेवा के लिये सब अप्सराओं की पारी बँधी हुई है। आज मैं भी अपनी पारीपर आई थी इसलिये आज उर्वशी को स्मरण करके मेरा जी बड़ा व्याकुल हो उठा है।

सहजन्या—सखी, यह तो मैं जानती हूँ कि तुम दोनों एक दूसरे को बड़ा प्यार करती हो। हाँ, तब.....

चित्रलेखा—यह सोचकर जब मैंने उसका कुशल-समाचार जानने को ध्यान लगाया, तो जान पड़ा कि वह बड़े संकट में पड़ गई है।

सहजन्या—[घबराकर] संकट कैसा सखी?

चित्रलेखा—[रुआसी होकर] विहार करने के लिये उर्वशी गंधमादन पर्वत पर अपने प्रेमी राजा पुरुरवा को साथ लेकर गई थी, जो राज्य का काम मंत्रियों को सौंपकर उसके साथ गए थे।

सहजन्या—[प्रशंसा करती हुई] ऐसे सुन्दर प्रदेश में संभोग करना तो सच्चा संभोग कहलाता है। हाँ, तो फिर क्या हुआ?

चित्रलेखा—वहाँ जब वह मंदाकिनी के तटपर जाकर बालू के टीले बना-बनाकर खेल रही थी, उस समय वह देखती क्या है कि उदयवती नाम की एक विद्याधर की कन्या को राजा बैठे घूर रहे हैं। बस इसी बात पर उर्वशी नाराज हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहजन्या—होदव्वं। दूरारुढो क्खु पणओ असहणो। तदो तदो। (भवितव्यम्। दूरारूढः खलु प्रणयोऽसहनः। ततस्ततः।)

चित्रलेखा—तदो सा भट्टिणो अणुणअं अप्पडिवज्जमाणा गुरुसाव संमूढहिअ-आविसुमरिददेवदाणिअमा इत्थिआजणपरिहरणिज्जं कुमारवणं पविट्ठा। पवेसाणंतरं अ काणणोवंतवत्तिलदा भावेण परिणदं से रूवम्। (ततः सा भर्तुरनुनयमप्रतिपद्यमाना गुरुशापसंमूढहृदया विस्मृतदेवतानियमा स्त्रीजनपरिहरणीयं कुमारवनं प्रविष्टा। प्रवेशानन्तरं च काननोपान्तवर्ति लताभावेन परिणतमस्या रूपम्।)

सहजन्या—[सशोकम्] सव्वधा णत्थि विहिणो अलंघणिज्जं णाम। जेण तारिसस्स अणुराअस्स अअं एव्व एक्कवदे अण्सारिसो पलिणामो संवुत्तो। अह किमवत्थो सो राएसी।

(सर्वथा नास्ति विधेरलङ्घनीयं नाम। येन तादृशस्यानुरागस्यायमेवैकपदेऽन्यादृशः परिणामः संवृत्तः। अथ किमवस्थः स राजर्षिः।)

चित्रलेखा—सो वि तस्सिं एव्व काणणे पिअदमं विचिण्णतो अहो-रत्ते अदिवाहेदि। [नभोवलोक्य] इमिण उण णिव्वुदाणं वि उक्कंठाकारिण मेहोदएण अणत्थाहीणो हविस्सदि।

[नेपथ्ये जम्भलिका]

सहअरिदुक्खालिद्धअँ सरवरअंमि सिणिद्धअँ।
अविरलवाहजलोल्लअँ तम्मइ हंसी-जुअलँ।।3।।

[सोऽपि तस्मिन्नेव कानने प्रियतमां विचिन्वन्नहोरात्रानतिवाहयति। एतेन पुनर्निवृतानामप्युत्कण्ठाकारिणा मेघोदयेनानर्थाधीनो भविष्यति।)

(सहचरी दुःखालीढं सरोवरे स्निग्धम्।
अविरलबाष्पजलार्द्रं ताम्यति हंसीयुगलम्।।)

सहजन्या—हाँ, यह हो सकता है; क्योंकि जब प्रेम बहुत बढ़ जाता है तब ऐसी बातें सही नहीं जातीं। हाँ, तब....

चित्रलेखा—भरत मुनि के शाप से उसकी बुद्धि ऐसी मारी गई कि राजा की मनुहार को उसने ठुकरा भी दिया और कार्तिकेय के नियम का ध्यान छोड़कर वह उस कुमार वन में बैठ तो गई जहाँ स्त्रियों के जाने की रोक थी। बस, ज्यों ही वह घुसी त्यों ही वह कुमारवन के बाड़े पर लता बन गई।

सहजन्या—[शोक के साथ] सचमुच भाग्य किसी को नहीं छोड़ता। बताइए, कहाँ तो ऐसा प्रेम और कहाँ ऐसा उल्टा फल। अच्छा, अब उन राजर्षि की क्या दशा है?

चित्रलेखा—वे भी उसी वन में प्यारी को दिन-रात खोजते हुए अपने दिन बिता रहे हैं। [आकाश की और देखकर] सुखी लोगों के मन में भी चाह भरने वाले इन बादलों को देखकर तो उनका जी ही टूट गया होगा।

[नेपथ्य में जम्मलिका नामक गीति के साथ]

[अपनी सखी के दुःख में घबराई हुई और एक दूसरी को प्यार करने वाली दो हंसिनियाँ आँखों से आँसू बहाते हुए तड़ाग के तीर पर बैठी सिसक रही हैं।।3।।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहजन्या—सहि! ण क्खु तारिसा आकिदिविसेसा चिरं दुक्खभाइणो होन्ति। तां अवस्सं किंपि अणुग्गहणिमित्तं भूवोवि समाअमकारणं हविस्सदि। [प्राची दिशं विलोक्य] ता एहि। उदअंमुहस्स भअवदो सुज्जस्स उवठ्ठाणं करेम्ह।

[नेपथ्ये खण्डधारा]

चिंतादुम्मिअमाणसिआ सहअरिदंसणलालसिआ।
विअसिअ कमलमणोहरए विहरइ हंसी सरवरए।।4।।

(सखि! न खलु तादृश आकृतिविशेषाश्चिरं दुःखभागिनो भवन्ति। तदवश्यं किमप्यनुग्रहनिमित्तं भूयोऽपि समागमकारणं भविश्यति। तदेहि। उदयोन्मुखस्य भगवतः सूर्यस्योपस्थानं कुर्वः।

चिन्तादूनमानसिका सहचरीदर्शनलालसिका।
विकसितकमलमनोहरे विहरति हंसी सरोवरे।)

[इति निष्क्रान्ते]

।। इति प्रवेशकः।।

(नेपथ्ये पुरुरवसः प्रावेशिक्याक्षिप्तिका)

गहणं गइंदणाहो पिअविरहुम्माअपअलिअविआरो।
विसइ तरुकुसुमकिसलअभूसिअणिअदेहपब्भारो।।5।।

(गहनं गजेन्द्रनाथः प्रियाविरहोन्मदप्रकटितविकारः।
विशति तरुकुसुमकिसलयभूषितनिजदेहप्राग्भारः।)

[ततः प्रविशति आकाशबद्धलक्ष्यः उन्मत्तवेषो राजा]

सहजन्या—सखी! ऐसे भाग्यवान् पुरुष बहुत दिनों तक दुखी नहीं रहते। इसलिये कोई न कोई ऐसा कारण आ ही जायेगा कि वे दोनों फिर मिल जायँगे [पूर्व दिशा की ओर देखकर] लो सूर्य निकल आए है। आओ हम लोग सूर्य की प्रार्थना करें।

(नेपथ्य में खण्डधारागीति के साथ)

चिन्ता से अनमनी और अपनी सखी से मिलने की अधीर हंसी खिले हुए कमलों से लुभावने लगाने वाले तालाब में बिहार कर रही हैं।।4।।

[दोनों जाती हैं]

।। प्रवेशक समाप्त हुआ।।

(नेपथ्य में पुरुरवा के प्रवेश के लिए गीत का गान)

[यह बड़ा-सा हाथी अपनी प्यारी के बिछोह में पागल होने के कारण अपने मन की व्यथा प्रकट करता हुआ-सा पेड़ों के फूलों और कोमल पत्तों से अपने बड़े शरीर को सजाता हुआ वन में चला आ रहा है।।5।।

[आकाश की ओर मुँह उठाए हुए और पागल जैसा वेश बनाए हुए राजा का प्रवेश।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—[सक्रोधम्] आः दुरात्मन् रक्षः। तिष्ठ तिष्ठ। मे प्रियतमामादाय गच्छसि। [विलोक्य] हन्त! शैलशिखराद्गगनमुत्पत्य बाणैर्मामभिवर्षति।

(नेपथ्ये)

हिअआदिअपिअदुक्खओ सरवरए धुदपक्खओ।
वाहोविग्गअणअणओ तम्मइ हंसजुआणओ।। 6।।

(हृदयाहितप्रियादुःख सरोवरे धुतपक्षः।
वाष्पापवल्गितनयनस्ताम्यति हंसयुवा।)

[लोष्ठं गृहीत्वा हन्तु धावन् द्विपदिकया विभाव्य सकरुणम्]

कथम्—

नवजलधरः संनद्धोऽयं न दृप्तनिशाचरः सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न नाम शरासनम्।
अयमपिपटुर्धारासारो न बाणपरंपरा कनकनिकषस्निग्धा विद्युत्प्रिया न ममोर्वशी।। 7।।

(नेपथ्ये)

मइँ जाणिअँ मिअलोअणी, णिसअरु कोइ हरेइ।
जाव णु णवतडसामलि, धराहरु वरिसेइ।। 8।।
(मया ज्ञातं मृगलोचनां निशाचरः कोऽपि हरति।
यावन्नु नव तडिच्छ्यामलो धाराधरो वर्षति।।)

[विचिन्त्य सकरुणम्] क्व नु खलु सा रम्भोरूर्गता स्यात्।]

राजा—[क्रोध से] अरे, खड़ा रह दुष्ट राक्षस! खड़ा रह! तू मेरी प्रियतमा को लिए चला जा रहा है? [देखकर] अरे! यह पहाड़ की चोटी से आकाश में उड़कर मुझपर बाण बरसाने लगा।

(नेपथ्य में)

[यह जवान हंस अपनी प्यारी के बिछोह में पंख फड़फड़ाता हुआ आँखों में आँसू भरे तालाब में बैठा सिसक रहा है।। 6।।

[एक ढेला लेकर मारने दौड़ता है, पर यथार्थ ज्ञान होने पर करुणा के साथ।] अरे, यह तो अभी-अभी बरसने वाला बादल है, राक्षस नहीं। इसमें यह खिंचा हुआ इन्द्रधनुष है, राक्षस का धनुष नहीं। ये जो टप-टप बरस रहे हैं ये बाण नहीं हैं, बूँदे हैं और यह जो कसौटी पर बनी हुई सोने की रेखा के समान चमक रही है, यह भी मेरी प्रिया उर्वशी नहीं है, बिजली है।। 7।।

(नेपथ्य में)

मैंने समझा था कि मृग के समान आँखों वाली मेरी प्यारी को कोई राक्षस हरकर लिए चला जा रहा है, पर यहाँ केवल बिजली को चमकाता हुआ काला बादल पानी बरसा रहा है।। 8।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिष्ठेत्कोपवशात्प्रभावपिहिता दीर्घं न सा कुप्यति।
स्वर्गायोत्पतिता भवेन्मयि पुनर्भावाद्रमस्या मनः।
तां हर्तुं विबुधद्विषोऽपि न च मे शक्ताः पुरोवर्तिनीं
सा चात्यन्तमदर्शनं नयनयोर्यातेति कोऽयं विधिः।। 9।।

[इति दिशोऽवलोक्य सनिःश्वासम्।] अये! परावृत्तभागधेयानां दुःखं दुःखानुबन्धि। कुतः—

अयमेकपदे तया वियोगः प्रियया चोपनतः सुदुःसहो मे।
नववारिधरोदयादहोभिर्भवितव्यं च निरातपत्वरम्यैः।। 10।।

नेपथ्ये

जलहर संहर एहु कोपइँ आढत्तओ
अविरलधारासारदिसामुहकंतओ ।
ए मइँ पुहविं भमंतो जइ पिअँ पेक्खिमि
तव्वे जं जु करीहिसि तं तु सहीहिमि।। 11।।

(जलधर संहरैतं कोपमाज्ञप्तः अविरलधारासारदिशामुखकान्तः।
ए अहं पृथ्वीं भ्रमन्यदि प्रियां प्रेक्षे तदा यद्यत्करिष्यसि तत्तत्सहिष्ये।।)

[विहस्य] मुधैव खलु मया मनसः परितापवृद्धिरुपेक्ष्यते। यथा मुनयोऽपि व्याहरन्ति—राजा कालस्य कारणमिति। तत्किमहं जलदसमयं न प्रत्यादिशामि।

नेपथ्ये

गंधुम्माइअ महुअरगीएहिं वज्जंतेहिं परहुअ तूरेहिं।
पसरिअपवणुव्वेलिअपल्लवणिअरु
सुललिअविविहपआरेहिं णच्चइ कप्पअरु।। 12।।

(गन्धोन्मादितमधुकरगीतैः, वाद्यमानैः परभृततूर्यैः)

[दुःख से सोचकर] वह केले के समान जाँघों वाली सुन्दरी कहाँ गई होगी? कहीं वह क्रोध में आकर अपने दैवी प्रभाव से छिप न गई हो, पर आज तक उसने इतनी देर कभी नहीं की या कहीं वह स्वर्ग ही न चली गई हो। पर यह तो नहीं हो सकता, क्योंकि वह मुझे तो जी-जान से प्यार करती है। देवताओं के शत्रु राक्षस भी उसे मेरे सामने से हरकर नहीं ले जा सकते, फिर भी मुझे वह कहीं दिखाई नहीं दे रही है। यह कैसा दुर्भाग्य है।।9।। [चारों ओर देखकर लंबी साँस लेकर] अरे! फूटे भाग वालों के लिये तो आपत्ति पर आपत्ति आया ही करती हैं। क्योंकि—कहाँ एक ओर तो प्रिय का ऐसा बिछोह जो सहा नहीं जा रहा है और कहाँ दूसरी ओर ऐसा सुहावना दिन जो बादलों के उठने से और धूप के छिप जाने से और भी लुभावना हो गया है।।10।।

नेपथ्य में

[लगातार बरसने से चारों ओर फैले हुए हे बादल! इस समय तुम मेरे कहने से अपना क्रोध रोक लो। पृथ्वी पर घूमकर जब मैं अपनी प्रिया को पा जाऊँ, तब तुम जो-जो करोगे वह मैं सिर माथे लेकर सहूँगा।।11।।] [हँसकर] मैं अकारथ हो कर अपने मन की पीड़ा को यों ही बढ़ा रहा हूँ। क्योंकि मुनि लोग भी कहते हैं कि राजा जैसा समय चाहे, वैसा समय ला सकता है, तो मैं इस वर्षा के समय को ही क्यों न आज्ञा दूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसृतपवनोद्वेल्लितपल्लवनिकरः
सुललितविधिप्रकारं नृत्यति कल्पतरुः।।)

अथवान प्रत्यादिशामि जलदेसयं यत्प्रावृषेण्यैरेव लिङ्गैर्मम राजोपचारः सम्प्रति। कथमिव—

विद्युल्लेखा कनकरुचिरं श्रीवितानं ममाभ्रं
व्याधूयन्ते निचुलतरुभिर्मञ्जरीचामराणि।
धर्मच्छेदात्पटुतरगिरो वन्दिनो नीलकण्ठाः
धाराहारोपनयनपरा नैगमाः सानुमन्तः।। 13।।

भवतु। किमेवं परिच्छदश्लाघया। यावदस्मिन्कानने तां प्रियामन्वेषयामि।

(नेपथ्ये)

दइआरहिओ अहिअं दुहिओ बिरहाणुगओ परिमंथरओ।
गिरिकाणणए कुसुमुज्जलए गजजूहवई बहुझीणगई।। 14।।

(दयितारहितोऽधिकं दुःखितो विरहानुगतः परिमन्थरः।
गिरिकानने कुसुमोज्ज्वले गजयूथपतिर्बहुक्षीणगतिः।।)

[परिक्रम्यावलोक्य च] हन्त हन्त! व्यवसितस्य मे संदीपनमिव संवृत्तम्। कुतः—

आरक्तराजिभिरियं कुसुमैर्नवकन्दलीसलिलगर्भैः।
कोपादन्तर्बाष्पे स्मरयति मां लोचने तस्याः।। 15।।

इतो गतेति कथं नु तत्रभवती मया सूचयितव्या। यतः—

नेपथ्य में

[सुगन्ध से झूमने वाले भौरों के गाने के साथ-साथ और कोयल की बोली में बजने वाली बंसियों की ध्वनि से गूँजते हुए पवन से जिस कल्पवृक्ष के कोमल पत्ते हिल रहे हैं, वह देखो कैसी सुन्दरता से अनेक प्रकार के हाव-भाव के साथ नाच रहा है।।12।। पर इस वर्षा के समय को कहना ही व्यर्थ है, क्योंकि वर्षा काल के जो चिह्न दिखाई दे रहे हैं उन्हीं के कारण तो मैं आज भी राजा के समान शोभा दे रहा हूँ। क्योंकि देखो—बिजली के सोने से बना हुआ यह बादल ही मेरा छत्र है। निचुल के पेड़ मेरे ऊपर अपनी मञ्जरियों के चँवर डुला रहे हैं। गर्मी समाप्त हो जाने के कारण मधुर गान करने वाले ये मोर भाटों का काम कर रहे हैं और झरनों के मोती भेंट करती हुई ये पहाड़ियाँ ही मेरी प्रजा हैं।।13।। अच्छा, जाने दो, अपने ठाट-बाट की बड़ाई करने से लाभ ही क्या? चलूँ इसी बन में प्रिया को खोजूँ।

[नेपथ्य में]

[प्यारी के विरह से अत्यन्त दुखी होने से यह हाथी फूलों से उजले इस पहाड़ी में धीरे-धीरे घूम रहा है।।14।।]

[घूमकर और देखकर] हाय! हाय! उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मेरी पीड़ा को और भी बढ़ाने वाला यह और दूसरा मिल गया; क्योंकि इस नये कन्दली के पेड़ के जल भरे लाल फूलों को देखकर मुझे उर्वशी के उन नेत्रों का स्मरण हो आया, जो क्रोध से लाल हो गए थे और जिनमें आँसू छलक आए थे।।15।। फिर, यह मुझे कौन बतायेगा कि वह किधर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्भ्यां स्पृशेद्वसुमतीं यदि सा सुगात्री मेघाभिवृष्टसिकतासु वनस्थलीषु।
पश्चान्नता गुरुनितम्बतया ततोऽस्याः दृश्येत चारुपदपङ्क्तिरलक्तकाङ्का।। 16।।

[परिक्रम्यावलोक्य च सहर्षम्] उपलब्धमुपलक्षणम् येन तस्याः कोपनाया मार्गोऽनुमीयते।

हृतोष्ठरागैर्नयनोदबिन्दुभिः निमग्ननाभेर्निपतद्भिरङ्कितम्।
च्युतं रुषाभिन्नगतेरसंशयं शुकोदरश्याममिदं स्तनांशुकम्।। 17।।

भवतु। आदास्ये तावत्। [परिक्रम्य विभाव्य च सास्रम्] कथं सेन्द्रगोपं नवशाद्वलमिदम्। कुतो नु खलु निर्जने वने प्रिया-प्रवृत्तिरवगमयितव्या। [शिखिनं दृष्ट्वा] अये! अयमासारोच्छ्वसितशैलेयस्थलीपाषाणमारूढः—

आलोकयति पयोदान्प्रबलपुरोवातताडितशिखण्डः।
केका गर्भेण शिखी दूरोन्नमितेन कण्ठेन।। 18।।

[उपेत्य] भवतु। यावदेनं पृच्छामि।

(नेपथ्ये)

संपत्तविसूरणओ तुरिअं परवारणओ।
पिअअम-दंसण-लालसओ गअवरु विम्हिअ-माणसओ।। 19।।

से गई है। यदि वह सुन्दरी वर्षा से भीगी हुई बालू वाले इस वन की धरती पर चलती तो महावर से रँगे हुए उसके सुन्दर पैरों की ऐसी छापें दूर तक अवश्य दिखाई देतीं जो उसके नितम्बों के भारी होने के कारण एड़ी की ओर गहरी होतीं।।16।। [इधर उधर घूमकर हर्ष के साथ] मुझे कुछ-कुछ तो ऐसे चिह्न मिल रहे हैं, [जिनसे में कुछ-कुछ अनुमान लगा सकता हूँ कि वह क्रोधित देवी किधर से गई है—क्योंकि तोते के पेट-जैसे हरे रंग वाली उसकी चोली यही है जिस पर उसके आँसुओं से धुलकर ओठों से गिरे हुए लाल रंग की बुँदकियाँ दिखाई दे रही हैं और जो क्रोध में हड़बड़ी से चलने के कारण खिसककर नीचे गिर गई होगी।।17।। अच्छा, तो मैं इसे उठा लेता हूँ। [घूमकर उसे देखकर रोता हुआ] अरे! यह तो हरी घास पर बीर बहूटियाँ फैली हुई हैं। अब इस सुनसान वन में प्यारी का ठिकाना कहाँ से चलेगा। [मोर को देखकर] अरे! वर्षा से भाप छोड़ने वाली चट्टान पर बैठा हुआ और सामने के प्रचण्ड पवन से छितराती हुई कलँगी वाला यह मोर अपनी ग्रीवा ऊँचे उठाकर कें-कें करता हुआ बादलों को देख रहा है।।18।। [पास जाकर] अच्छा, चलूँ इसी से पूछूँ।

(नेपथ्य में)

[दुःख से भरा हुआ अपनी प्रियतमा को देखने के लिये अधीर और अपने शत्रु को पछाड़ देने वाला यह बड़ा-सा हाथी मन में घबराया हुआ-सा बड़े वेग से चला जा रहा है।।19।।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सम्प्राप्तविसूरणः त्वरितं परवारणः।
प्रियतमदर्शनलालसो गजवरो विस्मितमानसः।।)

[अञ्जलिं-बद्ध्वा]

बंहिण पइँ इअ अब्भत्थिअम्मि ओअक्खहि मं ता
एत्थ वणे भम्मंते जइ पइँ दिट्ठी सा महु कंता।
णिसम्महि मिअंकसरिसवअणा हंसगई
ए चिण्हे जाणीहिसि आअक्खिउ तुज्झ मइँ।।20।।

(बर्हिण त्वामित्यभ्यर्थये आचक्ष्व मे तत्
अत्र वने भ्रमता यदि त्वया-दृष्टा सा मम कान्ता।
निशामय मृगाङ्कसदृशवदना हंसगतिः
अनेन चिह्नेन ज्ञास्यस्याख्यातं तव मया।।)

नीलकण्ठ ममोत्कण्ठा वनेऽस्मिन्वनिता त्वया।
दीर्घापाङ्गा सितापाङ्ग दृष्टा दृष्टिक्षमा भवेत्।।21।।

[विलोक्य] कथमदत्तैव प्रतिवचनं नर्तितुं प्रवृत्तः? किं नु खलु हर्षकारणमस्य। [विचिन्त्य] आं ज्ञातम्—

मृदुपवनविभिन्नो मत्प्रियाया विनाशात्।
घनरुचिरकलापो निःसपत्नोऽस्य जातः।
रतिविगलितबन्धे केशपाशे सुकेश्या।
सति कुसुमसनाथे कं हरेदेष बर्ही।।22।।

भवतु। परव्यसन निर्वृतं न खलु एनं पृच्छामि। [परिक्रम्यावलोक्य च] अये इयमातपान्त संधुक्षितमदा जम्बूविटपमध्यास्ते परभृता। विहङ्गमेषु पण्डिता जातिरेषा। यावदेनामभ्यर्थये।

[हाथ जोड़ते हुए] अरे मोर। मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि यदि घूमते-फिरते तुमने मेरी खोई हुई प्यारी कहीं देखे हो तो मुझे बता दो। सुनो! उसका मुँह चन्द्रमा के समान है और उसकी चाल हंस जैसी है। बस, मैं जो चिह्न तुम्हें बता रहा हूँ उतने से ही तुम उसे पहचान लोगे।।20।।]

उजले कोनों की कॉंखों वाले मोर! क्या तुमने मेरी उस प्रियतमा को इस वन में देखा है जिसकी आँखें बड़ी-बड़ी हैं, जिसके लिए मैं व्याकुल हूँ और जो ऐसी सुन्दर है कि बस, उसे देखते ही बनता है।।21।। [देखकर] क्या, बिना उत्तर दिए ही यह नाचने लगा। यह इतना मग्न क्यों हो रहा है? [सोचकर] हाँ समझ गया—मेरी प्रिया के खो जाने से इसके मन्द मन्द पवन से छितराए बादलों के समान सुन्दर पंखों को लजाने वाला आज कोई नहीं रह गया है। आज यदि वह सुन्दर बालों वाली होती, जिसके खुले हुए बालों में फूल गुँथे हुए होते तो उसके आगे इस मोर की शोभा को पूछता कौन।।22।। अच्छा! दूसरों के दुःख-सुख पर ध्यान न देने वाले इस मोर से अब मैं बात नहीं करूँगा। [घूमकर और देखकर] अरे! यह गर्मी पाकर से मतवाली कोयल जामुन की शाखा पर बैठी हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नेपथ्ये)

विज्झज्झरकाणणलीणओ दुक्खविणिग्गअबाहुप्पीडओ।
दूरो सारिअ हिअ आणंदओ अंबरमाणे भमइ गइंदओ।। 23।।

(विद्याधरकाननलीनो दुःखविनिर्गतबाष्पोत्पीडः।
दूरोत्सारितहृदयानन्दोऽम्बरमानेन भ्रमति गजेन्द्रः।)

[इति नर्तित्वा वलन्तिकयोपसृत्य जानुभ्यां च स्थित्वा] हेले हेले।

परहुअ महुरपलाविणि कंती णंदणवण सच्छंद भमंती।
जइ पइँ पिअअम सा महु दिट्ठी ता आअक्खहि महु परपुट्ठी।। 24।।

(परभृते! मधुरप्रलापिनि कान्ते नन्दन वने स्वच्छन्दं भ्रमन्ती।
यदि त्वया प्रियतमा सा मम दृष्टा तदाचक्ष्व मे परपुष्टे।)

भवति!

त्वां कामिनो मदनदूतिमुदाहरन्ति मानावभङ्गनिपुणं त्वममोघमस्त्रम्।
तामानय प्रियतमां मम वा समीपं मां वा नयाशु कलभाषिणि यत्र कान्ता।। 25।।

किमाह भवती। कथं त्वामेवमनुरक्तं विहायगता इति [अग्रतोऽवलोक्य] शृणोतु भवती।

कुपिता न तु कोपकारणं सकृदप्यात्मगतं स्मराम्यहम्।
प्रभुता रमणेषु योषितां नहि भावस्खलितान्यपेक्षते।। 26।।

[ससंभ्रममुपविश्य अनन्तरं जानुभ्यां स्थित्वा कुपिता इति पुनः पठित्वा उत्थाय **विलोक्य च।]**

कथं कथाविच्छेदकारिणी स्वकार्य एव व्यासक्ता।

पक्षियों में कोयल ही सबसे चतुर समझी जाती है। चलूँ, इसी से पूछूँ।

(नेपथ्य में)

[विद्याधरों के वन में छिपा हुआ, दुःख से आँसू बहाता हुआ और हृदय का आनन्द खोकर यह बड़ा-सा हाथी बादल के समान घूम रहा है।।23।।

[वलन्तिका राग के साथ नाचता हुआ आगे बढ़कर घुटने टेककर]

[अरे रे! मीठा-मीठा कूकने वाली सुन्दर कोयल! यदि इस नन्दन-वन में मनचाहे ढँग से उड़ते-फुड़कते हुए तुमने कहीं मेरी प्रिया देखी हो, तो बता दो।।24।।

देखो! कामी लोग तुम्हें मदन की दूती बताते हैं और मानिनी स्त्रियों का रूठना दूर करने के लिये तुम अचूक हथियार समझी जाती हो। इसलिये या तो मेरी प्रियतमा को मेरे पास ही ले आयो या फिर हे मिठबोली! तू मुझे ही उसके पास झटपट ले जाकर पहुँचा दो।।25।। क्या कहा तुमने? कि तुम्हारे इतना प्यार करने पर भी वह तुम्हें छोड़कर क्यों चली गई? [आगे देखकर] सुनो! मुझे एक भी बात ऐसी स्मरण नहीं आती जिस पर रूठ कर वह गई। देखो! स्त्रियाँ तो वैसे ही अपने पतियों पर शान जमाए रहती हैं, इसलिये यह आवश्यक नहीं कि पति कोई अपराध ही करे तभी वे क्रोध करें।।26।। [झट बैठकर **फिर घुटने टेककर ऊपर वाली बात फिर से कहता है, फिर उठकर देखता हुआ]**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा।

महदपि परदुःख शीतलं सम्यगाहुः प्रणयमगणयित्वा यन्ममापद्गतस्य।
अधरमिव मदान्धा पातुमेषा प्रवृत्ता फलमभिमुखपाकं राजजम्बूद्रुमस्य।। 27।।

एवंगतेऽपि प्रियेव मे मञ्जुस्वनेति न मे कोपोऽस्याम्। सुखमास्तां भवती। इतो वयं साधयामस्तावत् [परिक्रम्य कर्णं दत्वा।] अये दक्षिणेन वनधारां प्रियाचरणनिक्षेपशंसी नूपुररवः श्रूयते यावदेनमनुगच्छामि [परिक्रम्य]

(नेपथ्ये)

पिअअमविरहकिलामिअवअणओ अविरलवाहजलाउलणअणो।
दूसहदुक्खविसंठुलगमणो पसरिअउरुतावदिविअअंगो।
अहिअं दुम्मिअ–माणसओ काणणँ भमइ गइंदओ।। 28।।

(प्रियतमा विरहक्लान्तवदनोऽविरलबाष्पजलाकुलनयनः।
दुःसहं दुःखविसंष्ठुलगमनः प्रसृतगुरुतापदीप्ताङ्गः।
अधिकं दूनमानसः कानने भ्रमति गजेन्द्रः।।)

[अनन्तरे द्विपदिकया दिशोऽवलोक्य]

(नेपथ्ये)

पिअकरिणी-विच्छोइअओ गुरुसोआणल-दीविअओ।
वाइजलाउललोअणओ करिवरु भमइ समाउलओ।। 29।।

यह क्या! मेरी बात पूरी होने से पहले ही यह अपने धन्धे में लग गई। दूसरे का दुःख कितना भी अधिक हो, पर लोग उसे कम ही समझते हैं। इसलिये मुझ विपत्ति के मारे की बात अनसुनी करके यह कोयल पकी हुई जामुनों का रस पीने में उसी प्रकार आँख मूदकर लगी हुई है, जैसे कोई मतवाला अपनी प्यारी के ओठों का रस पीने में लगा हो।।27।। पर सब कुछ होने पर भी यह गाती है मेरी प्यारी के समान ही, इसलिये मैं इस पर क्रोध नहीं करता। तुम बैठी रहो सुख से। हम ही यहाँ से चले जाते हैं। [घूमकर सुनता हुआ] अरे! इस वन के दक्षिण की ओर से प्यारी के बिछुओं की सी झन-झन सुनाई दे रही है। चलूं उधर ही चलकर देखूँ। [घूमता है।]

(नेपथ्य में)

[प्यारी के बिछोह से थका हुआ, नयनों से आँसुओं की धारा बहाता हुआ, नये अपार दुःख के कारण रुक रुककर चलने वाला और अत्यन्त शोक से जलते हुए शरीर वाला यह दुखी हाथी वन में इधर-उधर घूम रहा है।।28।।

[दो पग चलकर चारों ओर देखता है।]

(नेपथ्य)

[अपनी प्यारी हथिनी के बिछोह की भयंकर आग में जलता हुआ और रोता हुआ यह हाथी व्याकुल होकर घूम रहा है।।29।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रियकरिणीवियुक्तो गुरुशोकानलदीप्तः।
बाष्प-जलाकुल-लोचनः करिवरो भ्रमति समाकुलः।।)

[सकरुणम्] हा धिक् कष्टम्–

मेघश्यामा दिशो दृष्ट्वा मानसोत्सुकचेतसाम्।
कूजितं राजहंसानां नेदं नूपुरशिञ्जितम्।।30।।

भवतु। यावदेते मानसोत्सुकाः पतत्रिणः सरसोऽस्मान्नोत्पतन्ति तावदेतेभ्यः प्रियाप्रवृत्तिरवगमयितव्या। [उपसत्य] भो भो! जलविहङ्गमराज!

पश्चात्सरः प्रतिगमिष्यसि मानसं तत् पाथेयमुत्सृज बिसं ग्रहणाय भूयः।
मां तावदुद्धर शुचो दयिताप्रवृत्या स्वार्थात्सतां गुरुतरा प्रणयिक्रियैव।। 31 ।।

अये! यथोन्मुखो! विलोकयति यथा मानसोत्सुकेन मया न लक्षितेत्येवं वचनमाह।

रे रे हंसा किं गोइज्जइ गइअणुसारें मइँ लक्खिज्जइ।
कइँ पइँ सिक्खिउ ए गइ लालस सा पइँ दिट्ठी जहणभरालस।। 32 ।।
(रे! रे! हंस कि गोप्यते गत्यनुसारेण मया लक्ष्यते।
केन तव शिक्षिता एषा गतिर्लालसा सा त्वया दृष्टा जघनभरालसा।।)
यदि हंस गता न ते नतभ्रूः सरसो रोधसि दर्शनं प्रिया मे।
मदखेलपदं कथं नु तस्याः सकलं चौर गतं त्वया गृहीतम्।। 33 ।।

अतश्च [इति अञ्जलिं बद्ध्वा]

[दुःख के साथ] हाय, हाय। कैसे दुःख की बात है कि जिसे मैं अपनी प्यारी के बिछुओं की झन झन समझ रहा था, वह उन राजहंसों की कूक है जो उठे हुए बादलों की अँधियारी देखकर मानसरोवर जाने को उतावले हो रहे हैं।।30।। अच्छा, जब तक ये मानसरोवर जाने को उतावले पक्षी उड़ते नहीं, उससे पहले ही मैं इनसे अपनी प्यारी का ठिकाना पूछकर देखता हूँ। [पास जाकर] हे जल पक्षिराज! तुम मानसरोवर को बाद में जाना और यह जो संबल के लिये तुमने कमल नालें तोड़ ली हैं, इन्हें अभी छोड़ दो, फिर ले लेना। पहले तुम मुझे मेरी प्यारी का समाचार देकर मेरा उद्धार करो, क्योंकि सज्जन लोग अपने मित्रों को सहायता देना अपने स्वार्थ से बढ़कर समझते हैं।।31।। अरे! यह तो केवल अपनी चोंच ऊपर उठाए टुकुर-टुकुर देख रहा है, मानो कह रहा हो कि मानसरोवर जाने की उतावली में मैंने उसे देखा ही नहीं।

[अरे हंस! तुम छिपा क्या रहे हो? तुम्हारी चाल से ही मैं सब कुछ समझ गया। बताओ यह सुन्दर चाल तुमने सीखी कहाँ से? तुमने उस प्यारी को अवश्य ही देखा है जो नितम्बों के भार से धीरे-धीरे चलती है।।32।।]

यदि तैंने उस बाँकी चितवन वाली सुन्दरी को इस सरोवर के तीर पर नहीं देखा, तो बता रे चोर! उसकी वह मद से इठलाती चलने वाली सुन्दर चाल कहाँ से पा ली।।33।। इसलिये [हाथ जोड़कर] हे हंस! मेरी जिस प्यारी की चाल तुमने चुरा ली है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हंस प्रयच्छ मे कान्तां गतिरस्यास्त्वया हृता।
विभावितैकदेशेन देयं यदभियुज्यते।।34।।

[विहस्य] एष चौरानुशासी राजेति भयादुत्पतितः। यावदन्यमवकाशमवगाहिष्ये।

[परिक्रम्यावलोक्य च] अयमिदानिं प्रियासहायश्चक्रवाकः। तावदेनं पृच्छामि।

(नेपथ्ये)

मंमररणिअमणोहरए कुसुमिअतरुवरपल्लवए।
दइआविरहुम्माइअओ काणण भमइ गइंदओ।।35।।

(मर्मररणितमनोहरे कुसुमिततरुवरपल्लवे।
दयिताविरहोन्मादितः कानने भ्रमति गजेन्द्रः।)

गोरोअणा-कुंकुमवण्णा चक्का भणइ मइँ।
महुवासर-कीलंती धणिआ ण दिट्ठी पइँ।।36।।

(गोरोचनाकुङ्कुमवर्ण! चक्र! भण माम्।
मधुवासरे क्रीडन्ती धन्या न दृष्टा त्वया।।)

रथाङ्गनामन् वियुतो रथाङ्गश्रोणिबिम्बया।
अयं त्वां पृच्छति रथी मनोरथशतैर्वृतः।।37।।

कथं कः क इत्याह माम्। मा तावत्। न खलु विदितोऽहमस्य।

उसे मुझे लौटा दो। क्योंकि यदि चोर के पास चोरी का थोड़ा भी माल मिले तो उसे पूरा माल देना ही पड़ता है।।34।। [हँसकर] यह देखो, इसने समझ लिया न कि मैं चोरों को दण्ड देने वाला राजा हूँ। बस इसी डर से उड़ भागा। चलूँ, कहीं और खोजूँ। [घूमकर और देखकर] यहाँ यह चकवा अपनी प्यारी के साथ बैठा है, चलूँ इसी से पूछूँ।

(नेपथ्य में)

[पत्तों की मधुर खड़खड़ाहट से भरे और फूलों से लदे हुए वृक्षों के पत्तों वाले इस वन में यह प्यारी के बिछोह से पागल बड़ा-सा हाथी इधर-उधर घूम रहा है।।35।। गोरोचन और केशर के रंग वाले हे चकवे! बताओ कहीं तुमने वसन्त के दिनों में खेलती हुई मेरी सौभाग्यवती स्त्री देखी है।।36।।]

हे चकवे! पहिए के समान बड़े-बड़े नितम्बों वाली प्यारी से बिछुड़ा हुआ मन में सैकड़ों मनोरथ लिए हुए मैं महारथी तुमसे पूछता हूँ!।।37।। क्या यह मुझसे पूछ रहा है—कौन है? कौन है; बस रहने दो। क्या यह मुझे जानता नहीं है? सूर्य और चन्द्रमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्याचन्द्रमसौ यस्त मातामहपितामहौ।
स्वयं वृतः पतिर्द्वाभ्यामुर्वश्या च भुवा च यः।। 38।।

कथं तूष्णीं स्थितः। भवतु। उपालभे तावदेनम्।

सरसि नलिनीपत्रेणापि त्वमावृतविग्रहाम्
ननु सहचरीं दूरे मत्वा विरौषि समुत्सुकः।
इति च भवतो जायास्नेहात्पृथक्स्थितिभीरुता
मयि च विधुरे भावः कान्ताप्रवृत्तिपराङ्मुखः।। 39।।

सर्वथा मदीयानां भागधेयानां विपर्ययाणामयं प्रभावप्रकाशः। यावदन्यमवकाशमवगाहिष्ये।

[पदान्तरे स्थित्वा] भवतु न तावद्गच्छामि। [परिक्रम्यावलोक्य च]

इदं रुणद्धि मां पद्ममन्तःकूजितषट्पदम्।
मया दष्टाधरं तस्याः ससीत्कारमिवाननम्।। 40।।

भवतु। इतो गतस्य मेऽनुशयो मा भूदित्यस्मिन्नपि कमलसेविनि मधुकरे प्रणयित्वं करिष्ये।

(नेपथ्ये)

एक्कक्कमवड्ढिअगुरुअरपेम्मरसें।
सरे हंसजुआणओकीलइ कामरसें।। 41।।

(एकक्रमवर्धितगुरुतरप्रेमरसेन।
सरसि हंसयुवा क्रीडति कामरसेन।।)

जिसके नाना और दादा हैं और जिसे उर्वशी और धरणी ने अपने आप अपना स्वामी बना लिया है, मैं वही पुरुरवा हूँ।।38।। क्यों? चुप क्यों हो गए? अच्छी बात है, मैं इसे डाँटता हूँ। जब तालाबों में तुम्हारी प्यारी चकवी कमल के पत्तों की ओट में भी हो जाती है, तब तुम उसे दूर गई समझकर घबराकर चिल्लाने लगते हो। अपनी प्यारी से तो तुम इतना प्रेम करते हो कि इतना बिछोह भी तुमसे सहा नहीं जाता फिर भी मुझ प्यारी से बिछुड़े हुए से तुम बात करने को भी तैयार नहीं हो।।39।।

मेरा भाग्य ही ऐसा है कि सब कहीं मुझे उलटा ही फल मिल रहा है। चलूँ, कहीं और चलकर ढूँढूँ [कुछ चलकर रुककर] अच्छा मैं अभी नहीं जाऊँगा [घूमकर और देखकर] यह भौंरों की गूँज से भरा हुआ कमल मुझे बरबस रोक रहा है, क्योंकि यह उर्वशी के उस मुख के समान दिखाई दे रहा है, जो ओठ पर मेरे दाँत लगने पर सी-सी कर रहा हो।।40।। अच्छा! कमल पर मँडराते हुए इन भौंरों से ही पूछकर देखूँ जिससे यहाँ से चले जाने पर मुझको यह तो पछतावा न रह जाये कि उनसे नहीं पूछा।

(नेपथ्य में)

[एक ऐसा हंस तालाब में प्रेम के मद में भरा खेल रहा है, जिसके मन में प्रेम का भाव अचानक बढ़ गया है।।41।।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुकर मदिराक्ष्याः शंस तस्याः प्रवृतिं

[विभाव्य]

वरतनुरथवासौ नैव दृष्टा त्वया मे।
यदि सुरभिमवाप्स्यस्तन्मुखोच्छ्वासगन्धं
तव रतिरभविष्यत्पुण्डरीके किमस्मिन्।।42।।

साधयामस्तावत्। [इति परिक्रम्यावलोक्य च] अये! एष नीपस्कंधनिषण्णहस्तः करिणी सहायो नागराजस्तिष्ठति। अस्मात्प्रियोदन्तमुपलप्स्ये। यावदेनमुपसर्पामि।

(नेपथ्ये)

करिणीविरहसंताविअओ।
काणणे गंधुद्धुअ महुअरु।।43।।

(करिणीविरहसंतापितः।
कानने गन्धोद्धतमधुकरः।)

[विलोक्य] अथवा न त्वरा कार्या। न तावदयमुपसर्पणकालः।

अयमचिरोद्गतपल्लवमुपनीतं प्रियकरेणुहस्तेन।
अभिलषतु तावदासवसुरभिरसं सल्लकीभङ्गम्।।44।।

[क्षणमात्रं स्थित्वा। अवलोक्य] हन्त कृताह्निकः संवृतः। भवतु। समीपमस्य गत्वा पृच्छामि।

हे भौंरे! मद-भरे नैनों वाली मेरी प्यारी का समाचार तो सुनाओ। [सोचकर] या कौन जाने तुमने उसे देखा ही न हो। क्योंकि यदि तुम्हें मेरी प्रियतमा के मुख की सुगन्धित स्वाँस मिल गई होती, तो तुम इस कमल से थोड़े ही प्यार करते होते।।42।। चलें यहाँ से। [घूमकर और देखकर] अरे इस कदम्ब की डाल पर अपनी सूँड़ रखे हुए हथिनी के साथ यह एक बड़ा-सा हाथी खड़ा है। चलूँ, उसी के पास चलूँ।

(नेपथ्य में)

[हथिनी में बिछोह से तपा हुआ यह हाथी जंगल में घूम रहा है जिस पर गन्ध से मतवाले भौंरे झूम रहे हैं।।43।।]

[देखकर पर हड़बड़ी नहीं करनी चाहिए। अभी उसके पास जाना ठीक नहीं है, क्योंकि हथिनी ने अभी-अभी अपनी सूँड़ से यह पत्तों वाली और सुरा के समान गन्ध भरी जो शल्लकी के पेड़ शाखा तोड़ी है, उसे यह हाथी खा ले तब मैं पूछूँगा।।44।।

[थोड़ी देर रुककर देखकर] अच्छा, अब तो इसने भरपेट भोजन कर लिया। अच्छा, तो अब चलूँ, जाकर पूछूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हउँ पइँ पुच्छिमि आअक्खहि गअवरु ललिअपहारें णासिअतरुवरु।
दूरविणिज्जिअ ससहरुकंती दिट्ठी पिआ पइँ सम्मुह जंती।। 45।।
(अहं त्वां पृच्छामि आचक्ष्व गजवर! ललितप्रहारेण नाशिततरुवर।
दूरविनिर्जितशशधरकान्तिर्दृष्टा प्रिया त्वया सम्मुखं यान्ती।।)
[पदद्वयं पुरतः उपसृत्य]

मदकल युवतिशशिकला गजयूथप यूथिकाशबलकेशी।
स्थिरयौवना स्थिता ते दूरालोके सुखालोका।। 46।।

[आकर्ण्य सहर्षम्] अहह अनेन भवतः स्निग्धमन्द्रेण गर्जितेन प्रियोपलम्भशंसिना समाश्वासितोऽस्मि। साधर्म्याच्च त्वयि मे भूयसी प्रीतिः।

मामाहुः पृथिवीभृतामधिपतिं नागाधिराजो भवान्।
अव्युच्छिन्न-पृथुप्रवृत्ति भवतो दानं ममाप्यर्थिषु।
स्त्रीरत्नेषु ममोर्वशी प्रियतमा यूथे तवेयं वशा
सर्वं मामनु ते प्रियाविरहजां त्वं तु व्यथां मानुभूः।। 47।।

सुखमास्तां भवान्। साधयामस्तावत्। [परिक्रम्य पार्श्वतो दृष्टिं दत्वा।] अये। अयमसौ सुरभिकन्दरो नाम विशेषरमणीयः सानुमानालोक्यते। प्रियाश्चायमप्सरसाम्। अपि नाम सा सुतनुरस्योपत्यकायामुपलभ्येत [परिक्रम्यावलोक्य च।] कथमन्धकारः। भवतु

[खेल-खेल में ही बड़े-बड़े वृक्षों को सहज में उखाड़ फेंकने वाले हे गजराज! मैं तुम्हीं से पूछता हूँ। बताओ क्या तुमने मेरी उस प्रिया को इधर जाते हुए देखा है, जिसने अपनी चमक से चन्द्रमा की चाँदनी को भी लजा दिया है।।45।। [दो पग आगे बढ़कर] हे मतवाले हाथी! क्या तुमने अपनी दूर तक देखने वाली आँखों में सदा जवान दिखाई देने वाली उस उर्वशी को कहीं देखा है, जो युवतियों में चन्द्रमा की नई किरण के समान चमकती है और जिसके बालों में जूही के फूल गुँथे हुए हैं।।46।।

[सुनकर हर्ष से] आहा! इस तुम्हारे कोमल, मन्द और प्रिया का ठिकाना बताने वाले गर्जन से मेरे जी को बड़ा सहारा मिला है। तुम भी मेरे ही समान बलवान् हो, इसलिये तुम से मेरा बड़ा स्नेह हो गया है। लोग मुझे राजाओं का स्वामी कहते हैं और तुम्हें गजों का स्वामी। तुम भी दिन-रात अपना दान अर्थात् मद बहाया करते हो तो मेरे यहाँ भी दिन-रात मँगनों को दान देने का काम चलता रहता है। इधर स्त्रियों में रत्न के समान सुन्दर उर्वशी मेरी प्रियतमा है तो यह हथिनी भी तुम्हारी वैसी ही प्यारी है। इस प्रकार हम दोनों सब बातों में एक-से ही हैं, पर मैं यही मनाता हूँ कि प्रिया के बिछोह का दुःख तुम्हें कभी न सताये।।47।। तुम सुखी रहो। हम जा रहे हैं। [घूमकर अपने एक ओर देखकर] अरे! यह सुरभिकन्दर नाम का बड़ा सुहावना पर्वत दिखाई दे रहा है। और अप्सराओं को यह पर्वत बड़ा प्यारा भी है। कहीं वह सुन्दरी इस पर्वत की तलहटी में ही न मिल जाय! [घूमकर और देखकर] अरे! यहाँ कितना अँधेरा है। अच्छा, बिजली चमके तो मैं देखूँ—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्युत्प्रकाशेनावलोकयामि। हन्त मदीयैर्दुरितपरिणामैर्मेघोऽपि शतह्रदाशून्यः संवृत्तः तथापि शिलोच्चयमेनमपृष्ट्वा न निवर्तिष्ये।

पसरिअखरखुरदारिअमेइणि वणगहणे अविचल्लु।
परिसप्पइ पेच्छह लीणो णिअकज्जुज्जुअ कोलु।। 48।।

(प्रसृतखरदारितमेदिनिर्वनगहनेऽविचलः
परिसर्पति पश्यत लीनो निजकार्योद्युक्तः कोलः।।)

अपि वनान्तरमल्पकुचान्तरा श्रयति पर्वत-पर्वसु संनता।
इदमनङ्गपरिग्रहमङ्गना पृथुनितम्ब नितम्बवती तव।। 49।।

कथं तूष्णीमेवास्ते। शङ्के विप्रकर्षान्न शृणोतीति। भवतु। समीपेऽस्य गत्वा पुनरेनं पृच्छामि।

फलिहसिलाअलणिम्मलणिज्झरु बहुविहकुसुमें विरइअसेहरु।
किंणरमहुरुग्गीअमणोहरु देक्खावहि महु पिअअम महिहरु।। 50।।

(स्फटिकशिलातलनिर्मलनिर्झर! बहुविधकुसुमैर्विरचितशेखर।
किंनरमधुरोद्गीतमनोहर दर्शय मम प्रियतमां महीधर।।)

[इति परिक्रम्य अञ्जलिं बद्ध्वा।]

सर्वक्षितिभृतां नाथ दृष्टा सर्वाङ्गसुन्दरी।
रामा रम्ये वनान्तेऽस्मिन्मया विरहिता त्वया।। 51।।

[नेपथ्ये तदेवाकर्ण्य सहर्षम्।] कथं यथाक्रमं दृष्टा इत्याह। भवानपि अतः प्रियतरं शृणोतु। क्व तर्हि मे प्रियतमा। [पुनरेव सर्वक्षितिभृतां नाथ इति पठति। नेपथ्ये तदेव आकर्ण्य]

हाय! हाय! मेरे दुर्भाग्य से बादलों में बिजली भी नहीं रह गई। फिर भी इस पर्वत से पूछे बिना मैं यहाँ से टलूँगा नहीं।

[अपने बड़े-बड़े और तीखे खुरों से पृथ्वी को खूँदता हुआ अपनी टेकपर अड़ा हुआ, एक जंगली सूअर अपनी धुन में मस्त होकर इस घने जंगल में घूम रहा है। ।45।।]

हे बड़ी-बड़ी ढालों वाले पहाड़! अपने इस कामदेव के वन में क्या तुमने सुन्दर नितम्बों वाली और पोर-पोर पर झुकी हुई-सी सुन्दरी को देखा है जिसके दोनों स्तन उभरकर आपस में सट गए हैं। ।49।। अरे! यह चुप क्यों हो गया? या कौन जाने दूर होने के कारण ही वह न सुन सका हो! अच्छा, इसके पास जाकर पूछता हूँ। हे स्फटिक की चट्टानों पर बहते हुए उजले झरनों वाले! हे रंग-बिरंगे फूलों से अपनी चोटियाँ सजाने वाले! हे किन्नरों के जोड़ों के मधुर गीतों से सुहावने लगने वाले पर्वत! मेरी प्यारी की एक झलक तो मुझे दिखा दो। ।50।। [घूमकर और देखकर] हे पर्वतों के स्वामी! क्या तुमने वन के इस सुन्दर छोर में मुझसे बिछुड़ी हुई उस निराली सुन्दरी उर्वशी को कहीं देखा है। ।51।। [नेपथ्य से वैसे ही शब्द सुनकर सहर्ष] अरे! क्या यह कह रहा है कि—हाँ ठीक वैसे ही देखा है जैसा मैंने कहा था। तब तुम इससे भी प्यारी बात सुनो और मुझे बताओ कि मेरी प्रियतमा कहाँ है। [फिर से 51वाँ श्लोक पड़ता है और नेपथ्य में फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभाव्य च।] हा धिक्। ममैवायं कन्दरमुखविसर्पी प्रतिशब्दः। [मूर्च्छति। उत्थाय सविषादम्।] अहह श्रान्तोऽस्मि। अस्यास्तावद्गिरिनद्यास्तीरे स्थितस्तरङ्ग-वातमासेविष्ये। परिक्रम्यावलोक्य च] इमां नवाम्बुकलुषामपि स्रोतोवहां पश्यतो मे रमते मनः। कुतः–

तरङ्गभ्रूभङ्गा क्षुभितविहगश्रेणिरशना
विकर्षन्ती फेनं वसनमिव संरम्भशिथिलम्।
यथाविद्धं याति स्खलितमभिसन्धाय बहुशो
नदीभावेनेयं ध्रुवमसहना सा परिणता।। 52।।

भवतु। प्रसादयामि तावदेनाम्। [अञ्जलिं बद्ध्वा।]

पसीअ पिअअम सुंदरि ए णए खुहिआकरुण विहंगमए णए।
सुरसरितीरसमूसुअ एणए अलिउलझंकारिअए णए।। 53।।
(प्रसीद प्रियतमे सुन्दरि नदि क्षुभिताकरुणविहङ्गमे नदि।
सुरसरितीरसमुत्सुके नदि अलिकुलझङ्कारिते नदि।।)

[नेपथ्ये]

पुव्वदिसापवणाहअकल्लोलुग्गअबाहओ
मेहअंगे णच्चइ सललिअँ जलणिहिणहओ।
हंसविहंगमकुंकुम संखकआभरणु
करिमअराउलकसणकमलआवरणु।

उसे वही सुनाई देता है। सुनकर और समझकर] हाय रे भाग्य! यह तो पहाड़ की गुफा से टकराकर निकलने वाले मेरे ही शब्दों की गूँज है। [मूर्च्छित हो जाता है। फिर उठकर दुःख के साथ) अरे! अब तो मैं थक गया हूँ। इसलिये इस झरने से तीर पर तरंगों की ठंडी बयार में चलकर बैठता हूँ।] [घूमकर और देखकर] अभी बरसे हुए पानी से गँदले झरने को देखकर भी मेरा मन प्रसन्न हो रहा है; क्योंकि मार्ग में आने वाली चट्टानोंसे बचने के लिये यह टेढ़ा होकर बह रहा है, इसकी लहरें चढ़ी हुई भौंहों-जैसी हैं, व्याकुल पक्षियों की पातें ही इसकी मेखला है, इसका फेन ही मानो वह वस्त्र है जो चलने से ढीला पड़ गया है और जिसे वह खींचते लिए चली जा रही है। इससे मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरी क्रोधी प्रिया ही नदी बन गई है।।52।। अच्छा, चलूँ मैं इसको चलकर मनाता हूँ।

[हाथ जोड़कर]

[उड़ते हुए और कड़े स्वरों में चहचहाते हुए पक्षियों वाली, गंगा जी से मिलने को उतावली और भौरों की पाँतों से गूँजने वाली हे सुन्दरी नदी! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ।।53।।]

(नेपथ्य में)

यह देखो! समुद्रों के स्वामी का कैसा अच्छा नृत्य हो रहा है। जल में पड़ी हुई मेघों की परछाई ही उनका शरीर है। पूर्वी पवन से उठी हुई लहरें ही मानो नृत्य के लिए उठाए हुए उनके हाथ हैं। शंख और हंस आदि पक्षी ही उनके पैर के घुँघरू और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेलासलिलुव्वेल्लिअहत्थदिणतालु
ओत्थरइ दसदिस रुंधेविणु णवमेहआलु।।54।।

पूर्वदिक्पवनाहतकल्लोलोद्गतबाहुः मेघाङ्गैर्नृत्यति सललितं जलनिधिनाथः।
हंसविहङ्गमकुङ्कुमशङ्खकृताभरणः करिमकराकुलकृष्णकमलकृतावरणः।
वेला सलिलोद्वेल्लितदत्तहस्ततालोऽवस्तृणाति दशदिशोरुद्ध्वा नवमेघकालः।।)

त्वयि निबद्धरतौ प्रियवादिनि प्रणयभङ्गपराङ्मुखचेतसि।
कमपराधलवं मयि पश्यसि त्यजसि मानिनि दासजनं यतः।।55।।

[विचिन्त्य] कथं तूष्णीमेवास्ते अथवा परमार्थसरिदेवैषा। न खलूर्वशी पुरूरवसमपहाय समुद्राभिसारिणी भविष्यति। भवतु। अनिर्वेदप्राप्याणि श्रेयांसि। यावत्तमेव प्रदेशं गच्छामि यत्र मे नयनयोः सा सुनयना तिरोहिता। [परिक्रम्य विलोक्य च] इमं तावत्प्रियाप्रवृत्तये सारङ्गमासीनमभ्यर्थये।

अभिनवकुसुमस्तबकिततरुवरस्य परिसरे
मदकलकोकिलकूजितरवझङ्कारमनोहरे।
नन्दनविपिने निजकरिणीविरहानलेन संतप्तो
विचरति गजाधिपतिरैरावतनामा।।56।।

कृष्णसारच्छविर्योऽसौ दृश्यते काननश्रिया।
नवसष्पावलोकाय कटाक्ष इव पातितः।।57।।

आभूषण हैं। हाथियों और मगरों के झुण्ड ही उनके नीले वस्त्र हैं, नीले कमल ही उनकी मालाएँ हैं और तीर से टकराती हुई लहरें ही मानो ताल दे रही हैं और इसी बीच वर्षाकाल ने आकर सब दिशाओं को ढँक भी लिया है।।54।।]

हे नदी! बताओ तो तुमने इतना प्रेम करने वाले, सदा मीठी बातें करने वाले और प्रेम में कमी आने की बात ही न सोचने वाले इस प्रेमी में कौन सा ऐसा छोटे-से-छोटा भी दोष पाया है कि तुम इस दास को इस प्रकार छोड़ रही हो।।55।। अरे, यह चुप क्यों हैं? [सोचकर] या फिर यह सचमुच नदी ही होगी। क्योंकि यदि यह उर्वशी होती तो पुरुरवा को छोड़कर समुद्र की ओर जाने के लिये इतनी उतावली न होती। अच्छा, बिना दुःख उठाए सुख मिल भी तो नहीं सकता चलूँ, अब मैं उसी स्थान पर जाऊँ जहाँ वह सुन्दर नयनों वाली मेरी आँखों से ओझल हो गई थी [घूमकर और देखकर] चलूँ, इस बैठे हुए हिरण से ही प्यारी का पता पूछूँ।

[नन्दनवन के नये फूलों के गुच्छों से लदे हुए मदमाते कोयल की मीठी कूक से सुहावने लगने वाले वृक्ष के पास यह ऐरावत हाथी अपनी प्यारी हथिनी के बिछोह की आँच में तपा हुआ इधर-उधर घूम रहा है।।56।।]

इस हिरण के शरीर पर बनी हुई काली-काली बुँदकियाँ ऐसी लगती हैं, मानो वन की नई हरियाली निहारने के लिए वनलक्ष्मी ने इस पर अपनी चितवन डाली हो।।57।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[विलोक्य] किं नु खलु मामवधीरयन्निवान्यतो मुखः संवृत्तः। [दृष्ट्वा]

अस्यान्तिकमायान्ती शिशुना स्तनपायिना मृगी रुद्धा।
तामयमनन्यदृष्टिर्भग्नग्रीवो विलोकयति।। 58।।

सुरसुन्दरि जहणभरालस पीणुत्तुंग घणत्थणि
थिरजोव्वण तणुसरीरि हंसगई।
गअणुज्जलकाणणे मिअलोअणि भमंती।
दिट्ठी पइँ तह विरहसमुद्दन्तरे उत्तारहि मइँ।। 59।।

(सुरसुन्दरी जघनभरालसा पीनोत्तुङ्गघनस्तनी
स्थिरयौवना तनुशरीरा हंसगतिः।
गगनोज्ज्वलकानने मृगलोचना भ्रमन्ती
दृष्टा त्वया तर्हि विरहसमुद्रान्तरादुत्तारय माम्।।)

[उपसृत्य अञ्जलिं बद्ध्वा] हंहो हरिणीपते!

अपि दृष्टवानसि मम प्रियां वने कथयामि ते तदुपलक्षणं शृणु।
पृथुलोचना सहचरी यथैव ते सुभगं तथैव खलु सापि वीक्षते।। 60।।

कथमनादृत्य मद्वचनं कलत्राभिमुखं स्थितः। उपपद्यते परिभवास्पदं दशाविपर्ययः। यावदितोऽहमन्यमवकाशमवगाहिष्ये। [परिक्रम्यावलोक्य च] हन्त दृष्टमुपलक्षणं तस्या मार्गस्य।

[देखकर] इसने तो मेरी बात अनसुनी करके अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया है। [देखकर] इसके पास जो इसकी हरिणी चली आ रही थी और जिसे दूध पीने वाले मृगछौने ने बीच में ही रोक लिया है, उसकी ओर आँख लगाए यह टक-टक देख रहा है।58।। [नितम्बों के भारी होने के कारण धीरे-धीरे चलने वाली और ऊँचे उठे हुए मोटे-मोटे स्तनों वाली, सदा जवान रहने वाली, पतली कमर वाली, हंस-जैसी चाल वाली उस मृगनैनी अप्सरा को यदि तुमने इस आकाश के समान उजले वन में घूमते हुए देखा हो, तो उसका ठिकाना बताकर मुझे इस विरह के समुद्र से उबार लो।।59।।] [पास जाकर हाथ जोड़कर] क्यों जी हरिणी के स्वामी! क्या तुमने मेरी प्यारी को कहीं वन में देखा है? मैं तुम्हें उसका रूप-रंग बताए देता हूँ। सुनो! जैसे तुम्हारी हरिणी अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से सुन्दर चितवन चलाती है वैसे ही वह भी चलाती है।।60।। क्या यह मेरी बात अनसुनी करके अपनी हरिणी की ओर मुँह करके बैठ गया? ठीक ही है—जब दिन खोटे आते हैं तो सभी दुरदुराते हैं। तो फिर यहाँ से कहीं और चलकर उसे ढूँढूँ। [घूमकर और देखकर] अरे लो! मैंने उसके मार्ग का ठिकाना पा लिया। वही लाल कदम्ब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्तकदम्बः सोऽयं प्रियया घर्मान्तशंसि यस्यैकम्।
कुसुममसमग्रकेसरविषममपि कृतं शिखाभरणम्।।61।।

[परिक्रम्याशोकमवलोक्य च]

रक्ताशोक कृशोदरी क्व नु गता त्यक्त्वानुरक्तं जनं.....

[पवनधूयमानमूर्धानमवलोक्य सक्रोधम्]

नो दृष्टेति मुधैव चालयसि किं वाताभिभूतं शिरः।

उत्कण्ठाघटमानषट्पदघटासङ्घट्टदष्टच्छदः

तत्पादाहतिमन्तरेण भवतः पुष्पोद्गमोऽयं कुतः।।62।।

भवतु। सुखमास्तां भवान्। [परिक्रम्यावलोक्य च] किं नु खलु एतच्छिलाभेदान्तरगतं नितान्तरक्तमवलोक्यते।

प्रभालेपी नायं हरिहतगजस्यामिषलवः

स्फुलिङ्गो वा नाग्नेर्गहनमभिवृष्टं यत इदम्।

[विभाव्य]

अये रक्ताशोकप्रसवसमरागो मणिरयं

यमुद्धर्तुं पूषा व्यवसित इवालम्बितकरः।।63।।

अहो अयं हरति मे मनः। भवतु। आदास्ये तावदेनम्।

का पेड़ है जिसमें फूले हुए फूल बता रहे थे कि गर्मी बीत गई। उसी का एक ऐसा फूल लेकर प्यारी ने अपने जूड़े का शृंगार किया था, जिसमें केसर न फूट आने के कारण वह उस समय तक कड़ा ही था।।61।। [घूमकर अशोक की ओर देखता हुआ] हे लाल अशोक! इस प्रेमी को छोड़कर वह सुन्दरी कहाँ चली गई? [पवन से हिलती हुई अशोक की चोटी को देखकर क्रोध से] पवन से झूमता हुआ अपना सिर हिलाकर क्यों कह रहे हो कि मैंने नहीं देखा। यदि तुमने उसे न देखा होता, तो बताओ मधु के लालच में इकट्ठे होने वाले भौंरों से कुतरी जाने वाली पंखुड़ियों वाले तुम्हारे फूल उसकी लात खाए बिना कैसे फूल उठते।।62।। अच्छा, तुम सुखी रहो। [घूमकर और देखकर] यह पत्थर की दरार के भीतर बड़ा गहरा लाल मणि-सा दिखाई दे रहा है? यह इतना चमक रहा है कि सिंह से मारे हुए हाथी के माँस का टुकड़ा भी नहीं हो सकता। यह आग की चिनगारी भी नहीं हो सकती; क्योंकि अभी-अभी घनघोर वर्षा भी हो चुकी है। [देखकर] अरे, यह तो लाल अशोक के फूलों के समान लाल-लाल मणि है जिसे उठाने के लिये सूर्य भी मानो अपने किरण-रूपी हाथ वहाँ तक बढ़ाए हुए हैं।।63।। अरे! यह तो मेरे मन को बड़ा लुभा रहा है। अच्छा, चलूँ, इसे निकाल लूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नेपथ्ये)

पणइणिबद्धासाइअओ वाहाउलणिअणअणओ।
गअवइ गहणे दुहिअओ भमइ क्खामिअवअणओ।। 64।।

(प्रणयिनिबद्धाशः वाष्पाकुलनिजनयनः।
गजपतिर्गहने दुःखितः भ्रमति क्षामितवदनः।।)

[ग्रहणं नाटयति। गृहीत्वा] अथवा

मन्दारपुष्पैरधिवासितायां यस्याः शिखायामयमर्पणीयः।
सैव प्रिया सम्प्रति दुर्लभा मे किमेनमस्त्रोपहतं करोमि।। 65।।

[इत्युत्सृजति।]

[नेपथ्ये]

वत्स गृह्यतां गृह्यताम्—

सङ्गमनीय इति मणिः शैलसुता-चरणरागयोनिरयम्।
आवहति धार्यमाणः सङ्गममचिरात्प्रियजनेन।। 66।।

राजा—[कर्णं दत्वा] को न खलु मामेवमनुशास्ति। [अवलोक्य] अये अनुकम्पते मां कश्चिन्मृगचारी मुनिर्भगवान्। भगवन् अनुगृहीतोऽस्मि अहमुपदेशाद्भवतः [मणिमादाय] हंहो सङ्गमनीय!

तया वियुक्तस्य विलग्नमध्यया भविष्यसि त्वं यदि सङ्गमाय मे।
ततः करिष्यामि भवन्तमात्मनः शिखामणिं बालमिवेन्दुमीश्वरः।। 67।।

(नेपथ्य में)

[अपनी प्यारी को पाने की आशा लगाए, आँखों में आँसू भरे यह सूखे मुँह वाला हाथी इस वन में दुखी होता हुआ घूम रहा है।।64।।

मणि निकालने का नाट्य करता है। उसे पकड़कर] पर मेरी जिस प्यारी की मन्दार के फूलों से सुगन्धित चोटी में यह बँधनी चाहिए वही जब नहीं मिल रही है, तब मैं इसे ही लेकर क्यों इसे अपने आँसुओं से मैला करूँ।।65।। [वहीं उसे छोड़ देता है।]

[नेपथ्य में]

वत्स! इसको ले लो, ले लो। यह प्रिय से मिलाने वाली संगमनीयमणि है जो पार्वती जी के चरणों की ललाई से बनी है। इसे जो अपने पास रखता है, उसे यह शीघ्र ही प्रिय से मिलवा देती है।।66।।

राजा—[सुनकर] अरे! यह कौन मुझे इस प्रकार आज्ञा दे रहा है? [देखकर] जान पड़ता है हरिणों के समान वन में रहने वाले किसी मुनि ने मुझ पर कृपा की है। भगवन्! आपके इस उपदेश के लिये मैं आपका आभारी हूँ। [मणि उठाकर] हे संगमनीयमणि! यदि मुझे उस पतली कमर वाली सुन्दरी से मिला दोगी, तो मैं तुम्हें उसी प्रकार अपने मुकुट में लगा लूँगा जैसे शिव जी ने बाल चन्द्रमा को अपने सिर की जटाओं में रख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[परिक्रम्यावलोक्य च] अये! किं नु खलु कुसुमरहितामपि लतामिमां **पश्यतो मे मनोरमते।** अथवा स्थाने मनोरमा ममेयम्। इयं हि।

तन्वी मेघजलार्द्रपल्लवतया धौताधरेवाश्रुभिः
शून्येवाभरणैः स्वकालविरहाद्विश्रान्तपुष्पोद्गमा।
चिन्तामौनमिवास्थिता मधुलिहां शब्दैर्विना लक्ष्यते
चण्डीमामवधूय पादपतितं जातानुतापेव सा।।68।।

यावदस्यां प्रियानुकारिण्यां परिष्वङ्गप्रणयी भवामि।

लए पेक्ख विणु हिअएँ भमामि। जइ विहिजोएँ पुणि तहिं पाविमि।
ता रण्णें विणु करम णिभंती। पुणु णइ मेल्लुइँ ताह कअन्ती।।69।।
(लते प्रेक्षस्व विना हृदयेन भ्रमामि। यदि विधियोगेन पुनस्तां प्राप्नोमि।
तदारण्येन विना करोमि निर्भ्रांति। पुनर्न प्रवेशयामि तां कृतान्ताम्।।)

[इति उपसृत्य लतां आलिङ्गति। ततः प्रविशति तत्स्थान एव उर्वशी।]

राजा—[निमीलिताक्ष एव स्पर्श रूपयित्वा।] अये उर्वशीगात्रसंस्पर्शादिव निर्वृतं मे शरीरम्। तथापि नास्ति विश्वासः। कुतः—

समर्थये यत्प्रथमं प्रियां प्रति क्षणेन तन्मे परिवर्ततेऽन्यथा।

लिया है।।67।। [घूमकर और देखकर] अरे! इस बिना फूलवाली लता को देखकर भी मेरा मन क्यों इतना उछल रहा है? पर इसे देखकर तो मेरे मन को सुख मिलना ही चाहिए; क्योंकि—बादल के जल से धूले हुए कोमल पत्तों से यह उस सुन्दरी के समान दिखाई दे रही है जिसके ओठ आँसुओं से धुल गए हों, फूलने का समय न होने से न फूली हुई यह ऐसी लगती है मानो इसने आभूषण उतार दिए हों और इस पर भौंरे भी नहीं गूँज रहे हैं इसलिये यह ऐसी जान पड़ती है, मानो इसने मौन व्रत ले रखा हो। इस प्रकार यह ऐसी जान पड़ती है मानो जब इसने क्रोध किया था और मैं उसे मनाने के लिये उसके पैरों पर पड़ा था उस समय जो वह रूठकर चल दी थी उसका पछतावा कर रही हो।।68।। तो चलूँ, अपनी प्रिया के समान दिखाई देने वाली इस लता को ही तव तक गले से लगा लूँ। [हे लता! देखो! मैं यहाँ हृदय खोलकर घूम रहा हूँ। यदि दैवयोग से मैं उसे पा जाऊँ, तो इस वन से उसे इतनी दूर ले जाऊँगा कि फिर उसे यहाँ कभी आने ही न दूँगा।।69।।]

[आगे बढ़कर लता को गले लगाता है। उर्वशी आ जाती है।]

राजा—[आँखें बन्द होने पर भी स्पर्श करने का नाट्य करता हुआ] अरे! मेरे शरीर को ऐसा सुख मिल रहा है मानो उर्वशी ही मेरे शरीर से लिपटी हुई हो। फिर भी विश्वास नहीं हो रहा है, क्योंकि—मैं जिस-जिस वस्तु को भी अपनी प्यारी समझ बैठता हूँ, वही क्षण भर में बदल जाती है। अब इस लता को छूने से मुझे अपनी प्यारी से मिलने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतो विनिद्रे सहसाविलोचने करोमि न स्पर्शविभावितप्रियः।। 70।।

[शनैश्चक्षुष्युन्मील्य] कथं सत्यमेव प्रियतमा। [इति मूर्च्छितः। पतति।]

उर्वशी–[वाष्पं विसृज्य] **समस्ससदु समस्ससदु महाराओ।** (समाश्वसितु समाश्वसितु महाराजः।)

राजा–[संज्ञां लब्ध्वा] प्रिये अद्य जीवितम्।

त्वद्वियोगोद्भवे तन्वि मया तमसि मज्जता।
दिष्ट्या प्रत्युपलब्धासि चेतनेव गतासुना।। 71।।

उर्वशी–**अब्भंतरकरणाए मए पच्चक्खीकिदवुत्तन्तो क्खु महाराओ।** (अभ्यन्तरकरणया मया प्रत्यक्षीकृतवृत्तान्तः खलु महाराजः।)

राजा–अभ्यन्तरकरणयेति न खलु ते वचनार्थमवैमि।

उर्वशी–**कहइस्सं। इदं दाव पसीददु महाराओ जं मए कोववसं गदाए एवं अवत्थन्तरं पाविदो महाराओ।** (कथयिष्याभि। एतत्तावत्प्रसीदतु महाराजो यन्मया कोपवशं गतया एतदवस्थान्तरं प्रापितो महाराजः।)

राजा–कल्याणि! तावदहं प्रसादयितव्यः। त्वद्दर्शनादेवप्रसन्नबाह्यान्तःकरणोऽन्तरात्मा। तत्कथय कथमियन्तं कालमवस्थिता मया विना भवती।

मोरा परहुअ हंस रहंग अलि अग पव्वअ सरिअ कुरंगम।
तुज्झह कारणे रणणभमन्ते को ण हु पुच्छिअ मइँ रोअंते।। 72।।
(मयूरः परभृता हंसो रथाङ्ग अलिर्गजः पर्वतः सरित्कुरङ्गमः।
तव कारणेनारण्ये भ्रमता को न खलु पृष्टो मया रुदता।।)

का सुख मिल रहा है इसलिये मैं अपनी आँखें खोलूँगा ही नहीं।।70।। [धीरे से आँखें खोलकर] अरे! यह तो सचमुच मेरी प्यारी ही है। [मूर्छित होकर गिर पड़ता है।]

उर्वशी–[आँसू बहाती हुई] धीरज धरिए महाराज! धीरज धरिए।

राजा–[मूर्छा से जागकर] आज मैं जी गया प्यारी! हे सुन्दरी! तुम्हारे बिछोह के अँधेरे में डूबते हुए मैंने भाग्यवश तुम्हें उसी प्रकार पा लिया है, जैसे मरे हुए को प्राण मिल जाये।।71।।

उर्वशी–मैंने अपनी भीतरी इन्द्रियों से महाराज की सब बातें जान ली थी।

राजा–मैं तुम्हारे 'भीतरी इन्द्रिय' शब्द का अर्थ नहीं समझा।

उर्वशी–मैं बताती हूँ उसका अर्थ, पर आपसे यह प्रार्थना है पहले मुझे क्षमा कर दीजिए; क्योंकि मैंने ही क्रोध करके आपको इतना कष्ट पहुँचाया।

राजा–कल्याणी! तुम्हें मुझसे नहीं क्षमा माँगनी चाहिए। तुम्हारे दर्शन से ही मेरी अंतरात्मा और बाहरी इन्द्रियाँ सब प्रसन्न हो गई हैं। पर यह तो बताओ कि इतनी दिनों तक तुम मेरे बिना रहीं कैसे? बताओ। [मोर, कोयल, हंस, चकवा, भौंरा, हाथी, पहाड़, नदी, किरणों में से कौन ऐसा रह गया जिससे मैंने वन में घूम-घूमकर रोते हुए तुम्हारे लिये नहीं पूछा।।72।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी—एव्वं अंतक्करणपच्चक्खीकिदुवुत्तंतो महाराओ। (एवमन्तःकरण-प्रत्यक्षीकृतवृत्तान्तो महाराजः।)

राजा—प्रिये। अन्तःकरणमिति न खल्ववगछामि।

उर्वशी—सुणोदु महाराओ। पुरा भअवदा कुमारेण सासदे कुमारवदं गेण्हिअ अकलुसोणाम गंधमादणकच्छो अज्झासिदो। किदो अ एस विही। (शृणोतु महाराजः। पुरा भगवता कुमारेण शाश्वतं कुमारव्रतं गृहीत्वाकलुषो नाम गंधमादनकच्छोऽयासितः। कृतश्चैष विधिः।)

राजा—क इव।

उर्वशी—जा किल इत्थिआ इमं पदेसं पविसदि सा लदाभावेण परिणमिस्सदि त्ति। किदो अ अअं सावान्तो गोरीचरणराअसंभवं मणि विणा तदो ण मुच्चिस्सदि त्ति। तदो अहं गुरुसावसंमूढहिअआ देवदासमअं विसुममरिअ अगहिदाणुणआ इत्थिआजणपरिहरणीयं कुमारवणं पविट्टा। पवेसानन्तरं एव्व अ काणणोवंतवत्तिवा-संतीलदाभाएण परिणदं मे रूवम्। (या किल स्त्री इमं प्रदेशं प्रविशति सा लताभावेन परिणंस्यतीति। कृतश्चायं शापान्तः गौरीचरणरागसंभव-मणिं विना ततो न मोक्ष्यत इति। ततोऽहं गुरुशापसंमूढहृदया देवतासमयं विस्मृत्यागुहीतानुनया स्त्रीजनपरिहरणीयं कुमारवनं प्रविष्टा। प्रवेशानन्तरमेव च काननोपान्तवर्तिवासन्तीलताभावेन परिणतं मे रूपम्।)

राजा—प्रिये सर्वमुपपन्नम्।

श्रमखेदसुप्तमपि मां शयने या मन्यसे प्रवासगतम्।
सा त्वं प्रिये सहेथाः कथं मदीयं चिरवियोगम्।। 73।।

उर्वशी—मैंने अपनी भीतरी इन्द्रियों से महाराज की सब बातें जान ली थीं।

राजा—प्यारी! मैं सचमुच तुम्हारे इस ''भीतरी इन्द्रिय'' शब्द का अर्थ नहीं समझ सका हूँ।

उर्वशी—सुनिए महाराज! बहुत दिन हुए भगवान् कार्त्तिकेय ने सदा के लिये ब्रह्मचर्य लेकर इस पवित्र गंधमादन पर्वत पर अपना डेरा जमाया और यह नियम बना दिया कि..

राजा—क्या?

उर्वशी—यहीं कि जो स्त्री यहाँ आयेगी वह लता के रूप में बदल जायेगी। पर इस शाप का उन्होंने यह उपाय भी बता दिया था कि पार्वती जी के चरणों की ललाई से उत्पन्न होने वाली मणि के पाए बिना शाप से छुटकारा नहीं हो सकता। गुरुजी के शाप से मेरी बुद्धि ऐसी मारी गई कि मैं देवताओं के नियम को भूल गई और आपकी मनुहार को ठुकराकर कार्त्तिकेय के उस वन में बैठ गई, जहाँ स्त्रियों को नहीं जाना चाहिए। बैठते ही वन के बाड़े पर ही मैं वासन्ती लता बन गई।

राजा—प्रिये! अब मेरी समझ में सब बात आई। नहीं तो जब तुम मेरे थककर सो जाने पर भी मुझे दूर गया हुआ समझ लेती थीं, तब भला तुम मुझसे इतने दिनों तक कैसे अलग रह सकती थीं।73।। देखो, अभी तुम जिस मणि की बात कह रही थीं, वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदं तद्यथाकथितं त्वत्सङ्गमनिमित्तं मुनेरुपलभ्य मणिप्रभावादासादिता त्वमस्माभिः।

[इति मणिं दर्शयति।]

उर्वशी–अम्मी संगमणीओ अअं मणी। अदो क्खु महाराएण आलिंगिदमेत्ते ज्जेव्व पकिदित्थ म्हि संवुत्ता। (अहो सङ्गमनीयोऽयं मणिः। अतः खलु महाराजेनालिङ्गितमात्रैव प्रकृतिस्थास्मि संवृत्ता। [मणिमादाय मूर्धनि वहति।]

राजा–एवमेव सुन्दरि क्षणमात्रं स्थीयताम्–

स्फुरता विच्छुरितमिदं रागेण मणेर्ललाटनिहितस्य।
श्रियमुद्वहति मुखं ते बालातपरक्तकमलस्य।। 74।।

उर्वशी–पिअंवद महंतो क्खु कालो तुए पइट्ठाणदो णिग्गदस्स। कदाइ असूइस्संति मं पकिदीओ। ता एहि णिवुत्तम्ह। (प्रियंवद महान्खलु कालस्तव प्रतिष्ठानान्निर्गतस्य। कदाचिदसूयिष्यन्ति मह्यं प्रकृतयः। तदेहि निवर्तावहे।)

राजा–यदाह भवती।

[इति उत्तिष्ठतः।]

उर्वशी–अध कधं महाराओ गंतुं इच्छदि। (अथ कथं महाराजो गन्तुमिच्छति।)

राजा–

अचिरप्रभाविलसितैः पताकिना सुरकार्मुकाभिनवचित्रशोभिना।
गमितेन खेलगमने विमानतां नय मां नवेन वसतिं पयोमुचा।। 75।।

(नेपथ्य)

तुमसे मिलाने वाली मणि यही है, जिसे मुनि से पाकर मैंने तुम्हें पा लिया है। [मणि दिखाते हैं।]

उर्वशी–क्या यही संगमनीयमणि है? इसलिये महाराज के गले लगाते ही मैं फिर जैसी की तैसी बन गई। [मणि लेकर सिर चढ़ाती है।]

राजा–सुन्दरी! क्षण भर इसी प्रकार खड़ी तो रहो। सिर पर रखी हुई इस मणि से चमकता हुआ तुम्हारा मुँह प्रातःकाल के सूर्य की किरणों से चमकते हुए कमल के समान सुहावना लग रहा है।।74।।

उर्वशी–हे मिठबोले! आप बहुत दिनों से प्रतिष्ठान नगरी से बाहर आए हुए हैं? क्या जाने आपकी प्रजा मुझे ही इसके लिये कोस रही हो। इसलिये आइए, चलिए लौट चलें।

राजा–जैसा तुम चाहो। [दोनों उठते हैं।]

उर्वशी–तो महाराज कैसे जाना चाहते हैं?

राजा–मैं चाहता हूँ कि बिजली की झंडियों वाले और इन्द्रधनुष के नये चित्रों वाले विमान बने हुए नये मेघ पर चढ़कर ही मैं अपने नगर को जाऊँ।।75।।

[नेपथ्य में]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाविअसहअरिसंगमओ पुलअपसाहिअअंगअओ।
सेच्छापत्तविमाणओ विहरइ हंसजुआणओ।। 76।।
(प्राप्तसहचरीसङ्गमः पुलकप्रसाधिताङ्गः
स्वेच्छाप्राप्तविमानो विहरति हंसयुवा।।)

[इति निष्क्रान्तौ]
।। इति चतुर्थोऽङ्कः ।।

[अपनी प्यारी से मिलकर पुलकित शरीर वाला यह जवान हंस अपने मनचाहे विमान पर चढ़कर उड़ा चला जा रहा है।।76।।

[दोनों चले जाते हैं।]
।। चौथा अंक समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चमोऽङ्कः

[ततः प्रविशति हृष्टो विदूषकः।]

विदूषकः—ही ही भो दिट्ठिआ चिरस्स कालस्स उव्वसी सहाओ णंदणवणप्पमुहेसु देवदारण्णेसु विहरिअ पडिणिवुत्तो पिअवअस्सो। पविसिअ णअरं दाणिं ससक्कारोवआरेहिं पकिदीहिं अणुरज्जंतो रज्जं करेदि। संताणत्तणं वज्जिअ ण किंवि से हीणं। अज्ज तिहि विसेसो त्ति भअवदीणं गंगाजउणणं संगमे देवीहिं सह किदाहिसेओ संपदं उवआरिअं पविट्ठो। ता जाव तत्तभवदो अलंकरीअमाणस्स अणुलेवणमल्ले अग्गभागी होमि। (ही ही भोः दिष्ट्या चिरस्य कालस्योर्वशीसहायो नन्दनवनप्रमुखेषु देवतारण्येषु विहृत्य प्रतिनिवृत्तः प्रियवयस्यः। प्रविश्य नगरमिदानीं ससत्कारोपचारैः प्रकृतिभिरनुरज्यमानो राज्यं करोति। सन्तानत्वं वर्जयित्वा न किमप्यस्य हीनम्। अद्य तिथिविशेष इति भगवत्योर्गङ्गायमुनयोः सङ्गमे देवीभिः सह कृताभिषेकः साम्प्रतमुपकार्यां प्रविष्टः। तद्यावत्तत्रभवतोऽलंक्रियमाणस्यानुलेपमाल्येऽग्रभागी भवामि।)

[इति परिक्रामति]

[नेपथ्ये]

हद्धी हद्धी। दुऊलुतुरच्छदे तालवेंटाधारे णिक्खिविअ णीअमाणो मए भट्टिणो अब्भंतरविलासिणी मोलिरअणजोग्गो मणी आमिससंकिणा गिद्धेण अक्खित्तो। (हा धिक् हा धिक् दुकूलोत्तरच्छदे तालवृन्ताधारे निक्षिप्य नीयमानो मया भर्तुरभ्यन्तरविला-सिनीमौलि-रत्नयोग्यो मणिरामिषशङ्किना गृध्रेणाक्षिप्तः।)

पाँचवाँ अङ्क

[प्रसन्न मन से विदूषक आता है]

विदूषक—हैं हैं! यह तो बड़े आनन्द की बात हुई कि नन्दन वन आदि देवताओं के वनों में उर्वशी के साथ विहार करके मेरे प्रिय मित्र लौट आए हैं और अब अपने नगर में आकर लोगों से पाई आदर-भेंट से प्रसन्न होकर राज करने लगे हैं। अब सन्तान को छोड़कर इन्हें किसी बात की कमी नहीं रह गई। आज पर्व का दिन होने से वे देवियों के साथ श्री गंगा जी और यमुना जी के संगम में स्नान करके अभी रनिवास में लौटे हैं। इसलिये जब तक महाराज अपना साज-सिंगार पूरा करें, तब तक चलूँ मैं भी उनकी चन्दन-माला आदि में अपना भाग पहले ही निकाल लूँ।]

[घूमता है]

[नेपथ्य में]

हाय हाय! ताड़ की पिटारी में रेशम का टुकड़ा बिछाकर उस पर मैं महारानी के माथे की मणि लिए चला जा रहा था कि इतने में एक गिद्ध झपटा और उसे माँस का टुकड़ा समझकर उठा ले गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—[कर्णं दत्वा] अच्चाहिदं अच्चाहिदं। परमबहुमदो क्खु सो वअस्सस्स संगमणीओणाम चूणमणी। अदो क्खु असमत्तणेवच्छो एव्व तत्तभवं आसणादो उट्ठिअ इदो आअच्छदि। जाव णं उवसप्पामि। (अत्याहितमत्याहितम्। परमबहुमतः खलु स वयस्यस्य सङ्गमनीयो नाम चूडामणिः। अतः खल्वसमाप्त-नेपथ्य एव तत्र भवानासनादुत्थायेत आगच्छति। यावदेनमुपसर्पामि।)

[इति निष्क्रान्तः।]

।। इति प्रवेशकः।।

[ततः प्रविशति सावेगपरिजनो राजा।]

राजा—वेधक! वेधक!

आत्मनो वधमाहर्ता क्वासौ विहगतस्करः।
येन तत्प्रथमं स्तेयं गोप्तुरेव गृहे कृतम्।।1।।

किरातः—एसो एसो क्खु मुहकोडिलग्गहेमसुत्तेण मणिणा आलिहंतो विअ आआसं पडिब्भमदि। (एष एष खलु मुखकोटिलग्नहेमसूत्रेण मणिनालिखन्निवाकाशं परिभ्रमति।)

राजा—पश्याम्येनम्।

असौ मुखालंबितहेमसूत्रं बिभ्रन्मणिं मंडलचारशीघ्रः।
अलातचक्रप्रतिमं विहंगस्तद्रागलेखावलयं तनोति।।2।।

किं नु खल्वत्र कर्तव्यम्।

विदूषकः—[उपेत्य] ओ अलं एत्थ घिणाए। अवराही सासणीओ। (भोः। अलमत्र घृणया अपराधी शासनीयः।)

विदूषक—[सुनते हुए] यह तो बड़ा बुरा हुआ, बड़ा बुरा हुआ। यह मणियों में अनोखी संगमनीयमणि महाराज को बड़ी प्यारी थी। इसीलिये महाराज अधूरा शृंगार किए हुए ही आसन छोड़कर इधर चले आ रहे हैं। चलूँ। [जाता है]

।। प्रवेशक ।।

[सेवकों के साथ घबराए हुए राजा आते हैं]

राजा—अरे वेधक! वेधक! अपनी मृत्यु अपने आप बुलाने वाला वह चोट्टा पक्षी कहाँ गया, जिसने स्वयं रक्षा करने वाले के ही घंर में यह पहली चोरी की है।।1।।

किरात—वह देखिए! अपनी चोंच में सोने का डोरा पकड़े हुए यह पक्षी ऐसा चक्कर लगा रहा है मानो मणि से आकाश में लिख रहा हो।

राजा—हाँ, दिखाई दे गया। मणि के सोने के डोरे को पकड़े हुए वेग से चक्कर काटता हुआ यह इस प्रकार मणि के रंग का कुंडल बना रहा है जैसे कोई आग की लूक को चक्कर देकर घुमा रहा हो।।2।। अब क्या करना चाहिए?

विदूषक—[पास जाकर] देखिए! अब अपनी दया रहने दीजिए। अपराधी को दंड देना ही चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—सम्यगाह भवान्। धनुर्धनुस्तावत्

यवनी—एसा अणियस्सं (एषाऽनेष्यामि।) [इति निष्क्रान्ता।]

राजा—वयस्य! न दृश्यते स विहगाधमः। क्व नु खलु गतः।

विदूषकः—भो। इदो दक्खिणंतेण अवगदो सो सासणीओ कुणवभोअणो। (भोः! इतो दक्षिणान्तेनापगतः स शासनीयः कुणपभोजनः।)

राजा—[परिवृत्यावलोक्य च।] दृष्ट इदानीम्।

प्रभापल्लवितेनासौ करोति मणिना खगः।
अशोकस्तबकेनेव दिङ्मुखस्यावतंसकम्।। 3।।

यवनी—[चापहस्ता प्रविश्य।] भट्टा एवं हत्थावावसहिदं सरासणं। (भर्तः! एतद्धस्तावापसहितं शरासनम्।)

राजा—किमिदानीं शरासनेन। बाणपथमतीतः स क्रव्यभोजनः। तथा हि।

आभाति मणिविशेषो दूरमिदानीं पतत्रिणा नीतः।
नक्तमिव लोहिताङ्ग परुषघनच्छेदसंयुक्तः।। 4।।

(कञ्चुकिनं विलोक्य।) आर्य लातव्य!

कञ्चुकी—आज्ञापयतु देवः।

राजा—मद्वचनादुच्यतां नागरिकः। सायं निवासवृक्षाश्रयी विचीयतां स विहगदस्युरीति।

राजा—ठीक कहा तुमने! अरे धनुष तो लाओ।

यवनी—अभी लाई। [चली जाती है।]

राजा—मित्र! वह दुष्ट पक्षी तो कहीं दिखाई नहीं दे रहा है। न जाने किधर चला गया?

विदूषक—वह मार डालने योग्य माँस खौआ पक्षी दक्खिन ओर गया है।

राजा—[घूमकर देखता है।] वह दिखाई दे रहा है। चमकते हुए मणि को इधर-उधर चोंच में लेकर उड़ता हुआ यह पक्षी ऐसा लग रहा है मानो दिशा के माथे पर चूड़ामणि बाँध रहा हो।।3।।

यवनी—[हाथ में धनुष लिए आकर] यह लीजिए दस्ताना और धनुष।

राजा—अब क्या होगा धनुष? वह गिद्ध तो मेरे बाण की पहुँच से बाहर निकल गया और उस मणि को इतनी दूर उड़ा ले जाकर वह ऐसा लगने लगा है मानो घने बादल की टुकड़ी के साथ रात को मंगल तारा चमक रहा हो।।4।। [कञ्चुकी को देखकर] आर्य लातव्य!

कञ्चुकी—आज्ञा महाराज!

राजा—मेरी आज्ञा से नगर में डुग्गी पिटवा दो कि जब यह चोर संध्या को अपने घोंसले में पहुँचे तो इसे खोजा जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः। [इति निष्क्रान्तः।]

विदूषकः—भो। उवविसदु भवं संपदं। कहिं गदो सो रअणकुम्भीलओ भवदो सासणादो मुच्चिस्सदि। (भोः! उपविशतु भवान् साम्प्रतम्। क्व गतः स रत्नकुम्भीलको भवतः शासनान्मोक्ष्यते।)

राजा—[विदूषकेण सहोपविश्य] वयस्य।

रत्नमिति न मे तस्मिन्मणौ प्रियत्वं विहङ्गमाक्षिप्ते।
प्रियया तेनास्मि सखे सङ्गमनीयेन सङ्गमितः।।5।।

विदूषकः—णं परिगदत्थो म्हि किदो भवदा। (ननुपरिगतार्थोऽस्मि कृतो भवता।)

[ततः प्रविशति सशरं मणिमादाय कञ्चुकी।]

कञ्चुकी—जयतु जयतु देवः।

अनेन निर्भिन्नतनुः स वध्यो रोषेण ते मार्गणतां गतेन।
प्राप्तापराधोचितमन्तरिक्षात्समौलिरत्नः पतितः पतत्री।।6।।

[सर्वे विस्मयं रूपयन्ति।

कञ्चुकी—अद्भिः प्रक्षालितोऽयं मणिः कस्मै प्रदीयताम्।

राजा—वेधक! गच्छ। अग्निशुद्धमेनं कृत्वा पेटकं प्रवेशय।

किरातः—जं भट्टा आणवेदि। (यद्भर्ताज्ञापयति।) [इति मणिं गृहीत्वा निष्क्रान्तः।]

राजा—आर्य लातव्य! जानी ते भवान् कस्यायं बाण इति।

कञ्चुकी—जैसी महाराज की आज्ञा [चला जाता है।]

विदूषक—अब आप बैठ जाइए महाराज! वह रत्न का चोर आपके दंड से बचकर जायेगा कहाँ?

राजा—[विदूषक के साथ बैठकर] मित्र! उस पक्षी ने जो रत्न चुराया है, उसे मैं रत्न होने के नाते नहीं, वरन् इसलिये आदर करता हूँ कि उस संगमनीयमणि ने मुझे मेरी प्यारी से मिला दिया था।।5।।

[बाण के साथ मणि लिए हुए कञ्चुकी का प्रवेश]

कञ्चुकी—जय हो महाराज की जय हो। इस मारने योग्य पक्षी को आपके क्रोध ने बाण बनकर मार डाला और यह अपने अपराध का ठीक दण्ड पाकर आकाश से इस रत्न के साथ ही नीचे गिर पड़ा।।6।।

[सब आश्चर्य करते हैं।]

कञ्चुकी—मैंने इस मणि को पानी से धो डाला है। कहिए किसे दूँ?

राजा—वेधक! जाओ, इसे आग में शुद्ध करके पेटी में रख दो।

किरात—जैसी महाराज की आज्ञा। [मणि लेकर जाता है।]

राजा—क्यों आर्य लातव्य! कुछ ज्ञात हुआ कि बाण किसका है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कञ्चुकी—नामाङ्कितोऽयं दृश्यते। न तु मे वर्णविचारक्षमा दृष्टिः।

राजा—तेन हि उपनय शरं यावदहं निरूपयामि।

[कञ्चुकी तथा करोति। राजा नामाक्षरण्यनुवाच्य विचारयति।]

कञ्चुकी—यावदहं नियोगमशून्यं करोमि। [इति निष्क्रान्तः।]

विदूषकः—किं भवं विआरेदि। (कि भवान्विचारयति।)

राजा—शृणु तावत्प्रहर्तुर्नामाक्षराणि।

विदूषकः—अवहिदो म्हि। (अवहितोऽस्मि।)

राजा—श्रूयताम्। [इति वाचयति।]—

उर्वशीसंभवस्यायमैलसूनोर्धनुष्मतः।
कुमारस्यायुषो बाणः प्रहर्तुर्द्विषदायुषाम्।। 7।।

विदूषकः—[सपरितोषम्।] **दिट्ठिआ संताणेण वड्ढदि भवं।** (दिष्ट्या सन्तानेन वर्धते भवान्।)

राजा—सखे कथमेतत्। अन्यत्र नैमिषेयसत्रादवियुक्तोऽहमुर्वश्या। न च मया कदाचिदपि गर्भव्यक्तिरालक्षिता कुत एव प्रसूतिः। किंतु—

आविलपयोधराग्रं लवलीदलपाण्डुराननच्छायम्।
तानि दिनानि वपुरभूत्केवलमलसेक्षणं तस्याः।। 8।।

कञ्चुकी—इस पर नाम तो खुदा हुआ दिखाई देता है, पर मेरी आँखों में इसके अक्षर ठीक-ठीक पढ़े नहीं जा रहे हैं।

राजा—अच्छा, इधर लाओ बाण। मैं ही पढ़ता हूँ। [कञ्चुकी बाण देता है। राजा उस बाण पर लिखे हुए नाम के अक्षरों को बाँचकर सोचते हैं।]

कञ्चुकी—तब तक चलूँ मैं अपना काम करूँ। [जाता है]

विदूषक—आप क्या सोच रहे हैं?

राजा—उस पक्षी को मारने वाले वीर का नाम; सुनोगे?

विदूषक—हाँ, बताइए।

राजा—सुनो! [बाँचता है।] यह बाण पुरुरवा और उर्वशी के धनुर्धारी पुत्र आयु नाम के उस राजकुमार का है जो शत्रुओं के प्राण खींच लेता है।।7।।

विदूषक—[संतोष के साथ] आपको पुत्र पाने की बधाई।

राजा—पर मित्र! यह कैसे हो सकता है? नैमिषेय यज्ञ को छोड़कर मैं कभी उर्वशी जी से अलग नहीं रहा और इस बीच मैंने उनके शरीर में कभी गर्भ के लक्षण भी नहीं देखे, फिर यह पुत्र उत्पन्न कैसे हो गया? पर हाँ, एक बात है, अभी कुछ दिन पहले मैं उनके शरीर को देखता था तो उनकी आँखें अलसाई रहती थीं, उनका मुँह लवली के पत्तों के समान पीला पड़ गया था और उनके स्तनों की घुंडियाँ साँवली पड़ गईं थीं।।8।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—**मा भवं सव्वं माणुसीधम्मं दिव्वासु संभावेदु। पहावणिगूढाइँ ताणं चारिदाइँ।** (मा भवान् सर्वं मानुषीधर्मं दिव्यासु संभावयतु। प्रभावनिगूढानि तासां चरितानि।)

राजा—अस्तु तावदेवं यथा भवानाह। पुत्रसंवरणे तु किमिव कारणं तत्र भवत्याः।

विदूषकः—**मा बुड्ढिं मं राआ परिहरिस्सदित्ति।** (मा वृद्धां मां राजा परिहरिष्यतीति।)

राजा—कृतं परिहासेन। चिन्त्यताम्।

विदूषकः—**को देवदारहस्साइँ तक्कइस्सदि।** (को देवतारहस्यानि तर्कयिष्यति।)

[प्रविश्य कञ्चुकी]

कञ्चुकी—जयतु जयतु देवः। देव च्यवनाश्रमात्कुमारं गृहीत्वा सम्प्राप्ता तापसी देवं द्रष्टुमिच्छति।

राजा—उभयमप्यविलम्बितं प्रवेशय।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः। [इति निर्गम्य चापहस्तेन कुमारेण तापस्या च सह प्रवष्टिः।]

कञ्चुकी—इत इतो भगवती। [सर्वे परिक्रामति।]

विदूषकः—[विलोक्य] **किं णु क्खु सो एसो ततभवं खत्तिअकुमारओ जस्स णामंकिदो गिद्धलक्खबेधी श्रद्धणाराओ। तह हि बहुअरं भवदो अणुकरेदि।** (किं नु खलु स एष तत्रभवान्क्षत्रियकुमारको यस्य नामाङ्कितो गृध्रलक्ष्यवेध्यर्धनाराचः। तथा हि बहुतरं भवतोऽनुकरोति।)

विदूषक—आप मानुषी स्त्रियों वाली सब बातें अप्सराओं पर लागू न समझिए। वे जो चाहें अपनी दैवी शक्ति से छिपाए रख सकती हैं।

राजा—तो जो तुम कहते हो वह बात होगी। पर उन्होंने पुत्र को छिपा क्यों दिया?

विदूषक—इसलिये कि कहीं राजा मुझे बूढ़ी समझकर छोड़ न दें।

राजा—ठिठोली न करो। ध्यान से सोचो।

विदूषक—भला देवताओं की बातों का भेद कोई पा सकता है?

[कञ्चुकी आता है]

कञ्चुकी—जय हो, महाराज की जय हो। देव! च्यवन-ऋषि के आश्रम से एक कुमार को साथ लिए हुए कोई तपस्विनी आई हैं और आपका दर्शन करना चाहती हैं।

राजा—दोनों को झटपट भीतर ले आओ।

कञ्चुकी—जैसी देव की आज्ञा। [बाहर जाकर और फिर धनुषधारी कुमार को और तपस्विनी को साथ लेकर आता है] इधर आइए देवी, इधर से।

[सब घूमते हैं।]

विदूषक—[देखकर] कहीं यही वह क्षत्रिय-कुमार न हो, जिसके नाम वाला गिद्ध पर चलाया हुआ यह अर्धचन्द्र बाण मिला है और जो आपसे बहुत मिलता-जुलता भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—स्यादेवम् अतः खलु।

वाष्पायतेनिपतिता मम दृष्टिरस्मिन्वात्सल्यबन्धि हृदयं मनसः प्रसादः।
संजातवेपथुभिरुज्झित धैर्यवृत्तिः इच्छामि चैनमदयं परिरब्धुमङ्गैः।।9।।

कञ्चुकी—भगवति! एवं स्थीयताम्।

[तापसीकुमारौ स्थितौ।]

राजा—अम्ब! अभिवादये।

तापसी—महाभाग! सोमवंसवित्थारइत्तओ होहि। [आत्मगतम्] अम्हो अणाचक्खिदोवि विण्णादो एव्व इमस्स राएसिणो आउसो अओरसो संबंधो [प्रकाशम्] जाद पणम दे गुरुं।

(महाभाग! सोमवंशविस्तारयिता भव। अहो अनाख्यातोऽपि विज्ञात एवास्य राजर्षेरायुषश्च औरसः सम्बन्धः। जात! प्रणाम ते गुरुम्।)

[कुमारश्चापगर्भमञ्जलिं बद्ध्वा प्रणमति।]

राजा—वत्स! आयुष्मान् भव।

कुमारः—[स्वगतम्]

यदि हार्दमिदं श्रुत्वा पिता ममायं सुतोऽहमस्येति।
उत्सङ्गवर्धितानां गुरुषु भवेत्कीदृशः स्नेहः।।10।।

राजा—भगवति! किमागमनप्रयोजनम्।

राजा—हो सकता है। क्योंकि इसे देखते ही आँखें भर आई हैं, हृदय में प्रेम उमड़ रहा है, जी खिल गया है, मेरा शरीर धीरज खोकर काँपने लगा है और मेरी ऐसी इच्छा हो रही है कि इसे उठाकर कसकर अपने गले से लगा लूँ।।9।।

कञ्चुकी—भगवती! बस यहीं खड़ी रहिए। [तपस्विनी और कुमार खड़े रहते हैं।]

राजा—मैं प्रणाम करता हूँ माता जी!

तापसी—हे बड़भागी! आपसे चन्द्रवंश बढ़े। [मन ही मन] अरे! बिना बताए ही पता चल जाता है कि इस राजा और कुमार का सगा सम्बन्ध है [प्रकट] बेटा अपने पिता जी को प्रणाम करो।

[हाथ में धनुष लिए हुए ही कुमार हाथ जोड़कर प्रणाम करता है।]

राजा—वत्स! तुम्हारी बड़ी आयु हो।

कुमार—[मन ही मन] जब मुझे केवल यही सुनकर इतना प्रेम उमड़ रहा है कि ये मेरे पिता हैं और मैं इनका पुत्र हूँ, तब उन बालकों को अपने माता-पिता से कितना प्रेम होता होगा, जो उन्हीं की गोद में पलकर बड़े होते होंगे।।10।।

राजा—कहिए भगवती! कैसे आई?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तापसी—सुणादु महाराओ। एसो दीहाऊ आउजादमेतो एव्व उव्वसीए। किंवि णिमित्तं अवेक्खिअ मम हत्ते णसीकिदो। जं खत्तिअकुमारअस्स जादकम्मादि बिहाणं तं से भअवदा चवणेण असेसं अणुचिट्ठिदं गहीदविज्जो धणुव्वेदे अहिविणीदो। (शृणोतु महाराजः। एष दीर्घायुरायुर्जातमात्र एव उर्वश्या किमपि निमित्तमवेक्ष्य मम हस्ते न्यासीकृतः। यत्क्षत्रियकुमारस्य जातकर्मादिविधानं तदस्य भगवता च्यवनेनाशेषमनुष्ठितम्। गृहीतिविद्यो धनुर्वेदेऽभिविनीतः।)

राजा—सनाथः खलु संवृतः।

तापसी—अज्ज। पुप्फसमिधकुसणिमित्तं इसिकुमारएहिं सहगदेण इमिणा **अस्समविरुद्धं आअरिदं**। (अद्य पुष्पसमित्कुशानिमित्तं ऋषिकुमारकैः सहगतेनानेनाश्रमविरुद्ध-माचिरितम्।)

विदूषकः—[सावेगम्] किं विअ। (किमिव)

तापसी—गहीदामिसो किल गिद्धो पादवसिहरे णिलीअमाणो अणेण लक्खीकिदो बाणस्स

(गृहीतामिषः किल गृध्रः पादपशिखरे निलीयमानोऽनेन लक्ष्यीकृतो बाणस्य।)

[विदूषको राजानमवलोकयति।]

राजा—ततस्तः।

तापसी—तदो उवलद्धवुत्तंतेण भअवदा चवणेण अहं समादिट्ठा—णिज्जादेहि एवं उव्वसीहत्थे णासं त्ति। ता इच्छामि देविं उव्वसिं पेक्खिदुं। (तत उपलब्धवृत्तान्तेन भगवता च्यवनेनाहं समादिष्टा—निर्यातयैनमुर्वशीहस्ते न्यासमिति। तदिच्छामि देवीमुर्वशीं प्रेक्षितुम्।)

राजा—तेन ह्यासनमनुगुह्णातु भगवती।

[तापसी उपनीत आसन उपविशति।]

तपसी—सुनिए महाराज! जब यह चिरंजीव उत्पन्न हुआ, तभी कुछ सोच-समझकर उर्वशी इसे मेरे पास छोड़ गई। क्षत्रिय-कुमार के जितने जात-कर्म आदि संस्कार हैं, वे सब भगवान् च्यवन ऋषि ने करा दिए और पढ़-लिख चुकने पर इसे धनुष चलाना भी सिखा दिया।

राजा—तब तो यह बड़ा भाग्यवान् है।

तापसी—आज फूल, समिधा और कुशा लाने के लिये जब यह ऋषि कुमारों के साथ जा रहा था, तो इसने आश्रम के नियम से उल्टा काम कर डाला।

विदूषक—[घबराकर] क्या किया?

तापसी—एक गिद्ध माँस का टुकड़ा लिए हुए पेड़ पर बैठा था। बस उसी पर ताक कर इसने बाण चला दिया।

[विदूषक राजा की ओर देखता है]

राजा—तव?

तापसी—जब भगवान् च्यवन ने यह सुना, तब उन्होंने आज्ञा दी कि उर्वशी की धरोहर ले जाकर उसे सौंप आओ। इसीलिये मैं देवी उर्वशी से मिलने आई हूँ।

राजा—तब तक आप आसन सुशोभित कीजिए।

[लाए हुए आसन पर तापसी बैठ जाती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—आर्य लातव्य। आहूयतामुर्वशी।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः। [इति निष्क्रान्तः।]

राजा—[कुमारमवलोक्य।] एहि एहि वत्स!

सर्वाङ्गीणः स्पर्शः सतुस्य किल तेनमामुपगतेन।
आह्लादयस्व तावच्चद्रकरश्चन्द्रकान्तमिव।। 11 ।।

तापसी—जाद! णंदेहि पिदरम्। (जात! नन्दय पितरम्)

राजा—[कुमारमालिङ्ग्य पादपीठे चोपवेश्य।] वत्स इतस्तव पितुः प्रियसखं ब्राह्मणमश-ङ्कितो वन्दस्व।

विदूषकः—किंति संकिस्सदि। णं अस्समवासपरिचिदो एव्व सहामिओ। (किमिति शङ्किष्यते। नन्वाश्रमवासपरिचित एव शाखामृगः।)

कुमारः—[सस्मितम्] तात वंदे।

विदूषकः—सोत्थि भवदो। बड्ढदु भवं। (स्वस्ति भवतो। वर्धतां भवान्।)

[ततः प्रविशत्युर्वशी कञ्चुकी च।]

कञ्चुकी—इत इतो देवी।

उर्वशी—[कुमारमवलोक्य] को णु क्खु एसो सबाणसणो पादपीठे सअं महाराएण संजमीअमाणसिहण्डओ चिट्ठदि। [तापसीं दृष्टवा।] अम्मो सच्चवदी सूइदो अअे मे पुत्तओ

राजा—आर्य लातव्य! जाओ उर्वशी को बुला तो लाओ।

कञ्चुकी—जैसी देव की आज्ञा। (जाता है।)

राजा—[कुमार को देखकर] इधर आओ वत्स! इधर आओ। कहते है कि पुत्र को छूते ही सारा शरीर सुखी हो जाता है, इसलिये तुम भी मेरे पास आकर मुझे वैसे ही आनन्द दो जैसे चन्द्रमा की किरणें चन्द्रकान्तमणि को आनन्द देती हैं।।11।।

तापसी—जाओ बेटा! अपने पिताजी का चित्त सुखी करो।

[कुमार पास जाकर राजा के पैर छूता है।]

राजा—[कुमार को गले से लगाकर उसे पैर-पीढ़े पर बैठाकर] वत्स! अपने पिता के प्रिय मित्र इन ब्राह्मण को भी निडर होकर प्रणाम करो।

विदूषक—डर काहे का? आश्रम में रहने वाले वानरों से तो इसकी पहले से जान-पहचान होगी ही।

कुमार—[हँसकर] तात! प्रणाम।

विदूषक—तुम्हारा कल्याण हो। तुम फूलो-फलो।

[उर्वशी और कञ्चुकी का प्रवेश]

कञ्चुकी—इधर से आइए देवी! इधर से।

उर्वशी—[कुमार को देखकर] यह हाथ में धनुष लिए हुए कौन है, जिसे पैर-पीढ़े पर बैठाकर स्वयं महाराज उसके बाल सँवार रहे हैं। [तापसी को देखकर] अरे, सत्यवती को आऊ। महंतो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्खु संवत्तो। (को नु खल्वेष सबाणासनः पादपीठे स्वयं महाराजेन संयम्यमान-शिखण्डकस्तिष्ठति। अहो सत्यवतीसूचितोऽयं मे पुत्रक आयुः। महान् खलु संवृत्तः।)

[इति सहर्षं परिक्रामति।]

राजा—[उर्वशीं दृष्टवा।] वत्स—

इयं ते जननी प्राप्ता त्वदालोकनतत्परा।
स्नेहप्रस्रवनिर्भिन्नमुद्वहन्ती स्तनांशुकम्।। 12।।

तापसी—जाद एहि। पच्चुग्गच्छ मादरं। (जात एहि। प्रत्युद्गच्छ मातरम्।) [इति कुमारेण सह उर्वशीमुपसर्पति।]

उर्वशी—अंब! पादवंदणं करेमि। (अम्ब! पादवन्दनं करोमि।)

तापसी—वच्छे भत्तुणो बहुमदा होहि। (वत्से! भर्तुर्बहुमता भव।)

कुमार—अम्ब! अभिवादये।

उर्वशी—[कुमारमुन्नमितमुखं परिष्वज्य।] **वच्छ! पिदरं आराधइत्तओ होहि।** [राजानमुपेत्य।] **जेदु जेदु महाराओ।** (वत्स पितरमारधयिता भव। जयतु जयतु महाराजः।)

राजा—स्वागतं पुत्रवत्यै। इत आस्यताम् [इत्यर्धासनं ददाति।]

[उर्वशी उपविशति। सर्वे यथोचितमुपविशन्ति।]

तापसी—वच्छे! एसो गहीदविज्जो आऊ संपदं कवअहरो संवुत्तो। ता एदस्य दे भत्तुणो समक्खं णिज्जादिदो हत्थणिक्खेवो। ता विसज्जेदुं इच्छामि। उवरुज्झइ मह अस्समधम्मो। (वत्से! एष गृहीतविद्य आयुः साम्प्रतं कवचहरः संवृत्तः। तदेतस्य ते भर्तुः समक्षं निर्यातितो हस्त-निक्षेपः। तद्विसर्जयितुमिच्छामि। उपरुध्यते ममाश्रमधर्मः।)

देखकर ही मैं समझ गई कि यह मेरा पुत्र आयु है। अरे! यह तो बहुत बड़ा हो गया है।

[बड़ी प्रसन्न होकर घूमती है।]

राजा—[उर्वशी को देखकर बालक से] वत्स! लो ये तुम्हारी माँ आ गईं, जो तुम्हारी ओर टकटकी लगाए देख रही हैं और जिनकी चोली तुम्हारे प्रेम में टपके हुए दूध से भींग गई है।।12।।

तापसी—यहाँ आओ बेटा! आगे बढ़कर माता का स्वागत करो। [कुमार को लेकर उर्वशी से मिलने को आगे बढ़ती है।]

उर्वशी—माता जी! आपके चरणों में प्रणाम करती हूँ।

तापसी—अपने स्वामी की प्यारी बनी रहो।

कुमार—माँ! मैं प्रणाम करता हूँ।

उर्वशी—[कुमार का मुख ऊपर उठाकर उसे शरीर से चिपटाती हुई] वत्स! पिता की सेवा करने वाले बनो। [राजा के पास जाकर] जय हो, महाराज की जय हो।

राजा—पुत्रवती का स्वागत है। आओ, यहाँ बैठो। [अपने आधे आसन पर बैठा लेते हैं।]

[उर्वशी बैठती है। सब यथास्थान बैठते हैं।]

तापसी—वत्से! ठीक से पढ़-लिखकर अब यह कुमार कवच धारण करने योग्य हो गया है। इसलिये तुम्हारे स्वामी के सामने ही तुम्हारी धरोहर तुम्हें सौंप देती हूँ। अब जाना भी चाहती हूँ; क्योंकि अभी आश्रम का बहुत-सा काम मेरे बिना रुका पड़ा होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी—**चिरस्स अज्जं देक्खिअ अहिअदरं अवितिण्हम्हि। ण सक्कणोमि विसज्जिदुं। अण्णय्यं उणउवरोहिदुं। ता गच्छदु अज्जा पुणो दंसणाअ।** (चिरस्यार्यां दृष्टवाधिक-तरमवितृष्णास्मि। न शक्नोमि विस्रष्टुम्। अन्याय्यं पुनरुपोद्धुम्। तद्गच्छत्वार्या पुनर्दर्शनाय।)

राजा—अम्ब! भगवते च्यवनाय मां प्रणिपातय।

तापसी—एव्वं भोदु। (एवं भवतु।)

कुमारः—आर्ये! सत्यं यदि निवर्तसे मामप्याश्रमं नेतुमर्हसि।

राजा—अयि वत्स! उषितं त्वया पूर्वस्मिन्नाश्रमे। द्वितीयमध्यासितुं तव समयः!

तापसी—जाद। गुरुअणो वअणं अणुचिट्ठ। (जात। गुरोर्वचनमनुतिष्ठ।)

कुमारः—तेन हि।

यः सुप्तवान्मदङ्के शिखण्डकण्डूयनोपलब्धसुखः।
तं मे जातकलापं प्रेषय मणिकण्ठकं शिखिनम्।। 13।।

तापसी—[विहस्य।] **एव्वं करोमि।** (एवं करोमि।)

उर्वशी—**भअवदि! पादवंदणं करेमि।** (भगवति! पदवन्दनं करोमि।)

राजा—भगवति! प्रणमामि।

तापसी—**सोत्थि भोसु तुम्हाणम्।** (स्वस्ति भवतु युष्मभ्यम्।)

[इति निष्क्रान्ता।]

राजा—[उर्वशीं प्रति] कल्याणि!

उर्वशी—इतने दिनों पर तो आप मिली हैं। अभी आपसे मिलकर जी ही नहीं भरा इसलिये आपको जाने देने को जी ही नहीं चाहता। पर आपको रोक रखना भी बड़ा अन्याय होगा, इसलिये आप जाती हैं, तो जायँ पर फिर दर्शन अवश्य दीजिएगा।

राजा—माता जी! भगवान् च्यवन से मेरा प्रणाम कहिएगा।

तापसी—अच्छी बात है।

कुमार—आर्ये! यदि आप सचमुच लौटी जा रही हो तो मुझे भी आश्रम लेती चलो।

राजा—अरे वत्स! ब्रह्मचर्य आश्रम में रह चुके हो अब तुम्हें गृहस्थ आश्रम में रहना चाहिए।

तापसी—बेटा! पिता जी का कहना मानो।

कुमार—तो आप मेरे उस बड़े-बड़े पंखों वाले मणिकण्ठक नाम के मोर को यहाँ भेज दीजिएगा, जो मेरी गोद में सोया-सोया अपना सिर मेरे हाथों से खुजलाए जाने का आनन्द लिया करता था।।13।।

तापसी—[हँसकर] अच्छा भेज दूँगी।

उर्वशी—भगवती! मैं चरणों में प्रणाम करती हूँ।

तापसी—तुम दोनों का कल्याण हो। [चली जाती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद्याहं पुत्रिणमग्र्यः सत्पुत्रेणामुना तव।
पौलोमीसंभवेनेव जयन्तेन पुरन्दरः।। 14।।

[उर्वशी स्मृत्वा रोदिति।]

विदूषकः–[विलोक्य सादेगम्।] भो किं णु क्खु सम्पदं अत्तहोदी एक्कवदे अस्सुमुही संवुत्ता। (भोः किं नु खलु साम्प्रतमत्र भवती एकपदे अश्रुमुखी संवृत्ता।)

राजा–[सावेगम्।]

किं सुन्दरि! प्ररुदितासि ममोपनीते वंशस्थितेरधिगमान्महति प्रमोदे।
पीनस्तनोपरि निपातिभिरानयन्ती मुक्तावलीविरचनां पुनरुक्तिमस्रैः।। 15।।

[इति अस्या बाष्पं प्रमार्ष्टि।]

उर्वशी–सुणादु महाराओ। पढमं उण पुत्तदंसणसमुत्थेण आणंदेण विसुमरिद म्हि। दाणिं महिंदसंकित्तणेण सुमरिओ समओ मह हिअअं आआसेसि। (शृणोतु महाराजः। प्रथमं पुनः पुत्रदर्शनसमुत्थेनानन्देन विस्मृतास्मि। इदानीं महेन्द्रसंकीर्तनेन स्मृतः समयो मम हृदयमायासयति।)

राजा–कथ्यतां समयः।

उर्वशी–अहं पुरा महाराअगहीदहिअआ गुरुसावसंमूढा महिंदेण आणत्ता। (अहं पुरा महाराजगृहीतहृदया गुरुशापसंमूढा महेन्द्रेण आज्ञापिता।)

राजा–किमिति।

राजा–[उर्वशी से] हे कल्याणी! तुम्हारे इस सुपुत्र को पाकर आज मैं सभी पुत्र वालों से उसी प्रकार बढ़ गया हूँ, जैसे इन्द्राणी से उत्पन्न हुए जयन्त को पाकर इन्द्र।।14।।

[उर्वशी कोई बात स्मरण करके रोने लगती है।]

विदूषक–[देखकर, घबराए हुए] अरे! यह क्या? यह अचानक आपकी आँखों में आँसू क्यों आ गए?

राजा–[घबराकर] हे सुन्दरी! ऐसे शुभ अवसर पर तुम रो रही हो, जब मेरे वंश को बढ़ाने वाला पुत्र मुझे मिला हो। तुम अपने मोटे स्तनों पर गिरने वाले आँसुओं से दूसरे हार की लड़ी व्यर्थ क्यों बना रही हो।।15।। [उसके आँसू पोंछता है।]

उर्वशी–सुनिए महाराज! पहले तो मैं पुत्र का मुँह देखकर ऐसी मग्न हो गई कि सब भूल ही गई थी, पर जब आपने अभी इन्द्र का नाम लिया तो मुझे एक बात स्मरण हो आई है जो मेरे हृदय को कचोट रही है।

राजा–कहो, क्या बात है।

उर्वशी–बहुत दिन हुए, आपसे प्रेम करने पर भरत मुनि ने मुझे शाप दे दिया था। उस शाप से मैं बहुत घबरा गई थी। तब इन्द्र भगवान् ने मुझे आज्ञा दी थी....

राजा–क्या?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी–जदा सो मे पिअसहो राएसी तुइ समुप्पण्णस्स वंसकरस्स मुहं पेक्खिस्सदि तदा तुए भूओ वि मम समीवं आअंतव्वं त्ति। तदो मए महाराअविओअभीरुदाए जादमेत्तो एव्व विज्जागमणिमित्तं भअवदो चवणस्स अस्समे एसो पुत्तओ अज्जाए, सच्चवदीए हत्थे अप्पआसं णिक्खित्तो। अज्ज पिदुणो आराहणसमत्थो संवुत्तो त्ति कलअंतीए ताए णिज्जादिदो एसो मे दीहाऊ आऊ। ता एत्तिओ मे महाराएण सह संवासो। (यदा स मे प्रियसखो राजर्षिस्त्वयि समुत्पन्नस्य वंशकरस्य मुखं प्रेक्षिष्यते तदा त्वया भूयोऽपि मम समीपमागन्तव्यमिति। ततो मया महाराजवियोगभीरुतया जातमात्र एव विद्यागमनिमित्तं भगवतश्च्यवनस्याश्रमे एष पुत्रक आर्यायाः सत्यवत्या हस्तेऽप्रकाशं निक्षिप्तः अद्य पितुराराधनसमर्थः संवृत्त इति कलयन्त्या तया निर्यातित एष मे दीर्घायुरायुः। तदेतावान्मे महाराजेन सह संवासः।)

[सर्वे विषादं नाटयन्ति। राजा मोहमुपगच्छति।]

विदूषकः–**अब्बम्हण्णं अब्बम्हण्णं।** (अब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम्।)

कञ्चुकी–समाश्वसितु समाश्वसितु महाराजः।

राजा–[समाश्वस्य सनिःश्वासम्।] अहो! सुखप्रत्यर्थिता दैवस्य–

आश्वासितस्य मम नाम सुतोपलब्ध्या सद्यस्त्वया सह कृशोदरि विप्रयोगः।
व्यावर्तितातपरुजः प्रथमाभ्रवृष्ट्या वृक्षस्य वैद्युत इवाग्निरुपस्थितोऽयम्।। 16।।

विदूषकः–**अअं सो अत्थो अणत्थाणुबधो संवुत्तो। संपदं तक्केमि अत्तभवदा वक्कलं गेण्हिअ तवोवणं गंदव्वं त्ति।** (अयं सोऽर्थोऽनर्थानुबन्धः संवृत्तः। साम्प्रतं तर्कयाम्यत्र भवता वल्कलं गृहीत्वातपोवनं गन्तव्यमिति।)

उर्वशी–यही कि तुम्हारे प्यारे मित्र राजर्षि जब तुमसे उत्पन्न हुए पुत्र का मुँह देख लें, तब तुम फिर मेरे पास लौट आना। इसलिये जैसे ही यह बालक उत्पन्न हुआ वैसे ही मैंने इस डर से इसे भगवान् च्यवन के आश्रम में पढ़ाने-लिखाने के बहाने आर्या सत्यवती के पास धरोहर बनाकर छोड़ दिया था कि यदि कहीं आप इसे देख लेंगे, तो मेरा आपका बिछोह हो जायगा। आज उन्होंने मेरे इस चिरंजीव पुत्र आयु को पिता की सेवा करने योग्य समझकर लौटा दिया है। इसलिये बस आज तक ही मैं, महाराज के साथ रह सकती हूँ।

[सब दुखी होते हैं और राजा मूर्छित हो जाते हैं।]

विदूषक–बड़ा बुरा हुआ, बड़ा बुरा हुआ।

कञ्चुकी–[ढाढस बँधाता हुआ] धीरज धरिए महाराज! धीरज धरिए।

राजा–[मूर्छा से जागकर लंबी साँस लेते हुए] अरे, दैव मेरे सुख को फूटी आँखों नहीं देखना चाहता। आज ही तो पुत्र को पाकर मेरा जी ठंडा हुआ था और आज ही तुम चल दीं। वह तो ठीक ऐसा ही हुआ जैसे पहली वर्षा से ठंडाए हुए वृक्ष पर अचानक बिजली टूट पड़ी हो।।16।।

विदूषक–जान पड़ता है कि कुछ और भी विपत्तियाँ टूट पड़ने वाली हैं। मुझे तो अब यह खटका हो रहा है कि वल्कल पहनकर महाराज कहीं तपोवन को न चल दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी–मं वि मंदभाइणिं किदविणअस्स पुत्तस्स लाभाणंतरं सग्गारोहणेण अवसिदकज्जं विप्पओअमुहिं महाराओ समत्थइस्सदि। (मामपि मन्दभागिनीं कृतविनयस्य पुत्रस्य लाभानन्तरं स्वर्गरोहणेनावसितकार्यां विप्रयोगमुखीं महाराजः समर्थयिष्यति।)

राजा–सुन्दरी मा मैवम्–

न हि सुलभवियोगा कर्तुमात्मप्रियाणि प्रभवतिपरवत्ता शासने तिष्ठ भर्तुः।
अहमपि तव सूनावद्य विनयस्य राज्यं विचरितमृगयूथान्याश्रयिष्ये वनानि।। 17।।

कुमारः–नार्हति तातः पुङ्गवधारितायां धुरि नियोजयितुम्।

राजा–अयि वत्स! मैवम्।

शमयति गजानन्यान्गन्धद्विपः कलभोऽपि सन्
भवति सुतरां वेगोदग्रं भुजङ्गशिशोर्विषम्।
भुवमधिपतिर्बालावस्थोऽप्यलं परिरक्षितुं
न खलु वयसा जात्यैवायं स्वकार्यसहो भरः।। 18।।

आर्य लातव्य!

कञ्चुकी–आज्ञापयतु देवः।

राजा–मद्वचनादमात्यपरिषदं ब्रूहि संभ्रियतामायुषो राज्यभिषेक इति।

कञ्चुकी–यदाज्ञापयति देवः। [इति दुःखितो निष्क्रान्तः]

उर्वशी–मेरे जैसी अभागिनी के लिये भी महाराज यही सोचते होंगे कि पढ़ा-लिखा पुत्र पाने से इसका काम हो गया है, इसलिये अब यह स्वर्ग को चली जा रही है।

राजा–ऐसा न कहो सुन्दरी! तुम जिस पराधीनता के कारण मुझे छोड़कर जा रही हो उससे मनचाही वस्तु तो मिल नहीं सकती, इसलिये जाओ, तुम अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करो और मैं भी आज तुम्हारे पुत्र को राज्य सौंपकर इधर-उधर घूमने वाले हिरणों से भरे तपोवन में जाकर रहने लगता हूँ।।17।।

कुमार–पिताजी! रथ के जिस जुए को बड़ा बैल खींचता हो, उसे छोटे से बछड़े के कन्धे पर डालना ठीक नहीं है।

राजा–ऐसा न कहो वत्स! जैसे ऊँची जाति के हाथी का बच्चा भी दूसरे हाथियों को पछाड़ सकता है और सँपोले का विष बड़े साँप के विष जैसा ही भयंकर होता है, वैसे ही राजा का पुत्र, बालक होते हुए भी पृथ्वी का ठीक से पालन कर सकता है; क्योंकि अपने-अपने कर्त्तव्य पालन करने की शक्ति अवस्था से नहीं वरन् जाति या स्वभाव से ही उत्पन्न हो जाती है।।18।। आर्य लातव्य!

कञ्चुकी–आज्ञा कीजिए महाराज।

राजा–मेरी ओर से अमात्य परिषद को सूचना दो कि आयु के राज्याभिषेक का प्रबन्ध किया जाये।

कञ्चुकी–जैसी महाराज की आज्ञा। [दुखी होकर चला जाता है]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[सर्वे दृष्टिविघातं रूपयन्ति।]

राजा—[आकाशमवलोक्य।] किं नु खलु निरभ्रे विद्युत्संपातः।

उर्वशी—[विलोक्य।] **अम्मो भअवं णारदो।** (अहो भगवान् नारदः।)

राजा—[निपुणमवलोक्य।] अये भगवान् नारदः। य एषः—

गोरोचनानिकषपिङ्गजटाकलापः संलक्ष्यते शशिकलामलवीतसूत्रः।
मुक्तागुणातिशयसंभृतमण्डनश्रीः हेमप्ररोह इव जङ्गमकल्पवृक्षः।। 19।।

अर्घ्यं तावदस्मै।

उर्वशी—[यथोक्तमादाय।] **इअं भअवदे अरिहणा।** (इयं भगवतेऽर्हणा।)

[ततः प्रविशति नारदः। सर्व उत्तिष्ठन्ति।]

नारदः—विजयतां विजयतां मध्यमलोकपालः।

राजा—[उर्वशीहस्तादर्घ्यमादायावर्ज्य च।] भगवन्नभिवादये।

उर्वशी—भअवं पणमामि। (भगवान् प्रणमामि।)

नारदः—अविरहितौ दम्पती भूयास्ताम्।

राजा—[आत्मगतम्।] अपि नामैवं स्यात्। [कुमारमाश्लिष्य प्रकाशम्।] वत्स, भगवन्तमभिवादयस्व।

कुमारः—भगवान्। और्वशेय आयुः प्रणमति।

[सब लोगों की आँखें चकचौंध हो जाती हैं।]

राजा—[आकाश की ओर देखकर] खुले आकाश में यह बिजली कैसी?

उर्वशी—[देखकर] अरे! ये तो भगवान् नारद हैं!

राजा—[ध्यान से देखकर] हाँ, ये तो सचमुच भगवान् नारद ही हैं, जो गोरोचना के समान पीली जटा वाले कन्धे पर चन्द्रमा की कला के समान उजला जनेऊ पहने और मोतियों की माला गले में पहने हुए ऐसे उतरे चले आ रहे हैं, मानो सुनहरी शाखा वाला कोई चलता फिरता कल्पवृक्ष उतरा चला आ रहा हो।।19।। लाओ, इनकी पूजा करने के लिये सब सामग्री ले आओ।

उर्वशी—[सब सामग्री लाकर] यह रही देवर्षि की पूजा के लिये सामग्री।

[नारद जी प्रवेश करते हैं, सब उठ खड़े होते हैं।]

नारद—मध्यमलोक की रक्षा करने वाले महाराज की जय हो, जय हो।

राजा—[उर्वशी के हाथ से पूजा की सामग्री लेकर और पूजा करके] भगवान्! अभिवादन करता हूँ।

उर्वशी—भगवान्! मैं प्रणाम करती हूँ।

नारद—तुम दोनों का कभी बिछोह न हो।

राजा—[मन ही मन] यदि कहीं ऐसा हो जाता। [कुमार को गले लगाकर प्रकट] वत्स! भगवान् नारद को प्रणाम करो।

कुमार—भगवन्! उर्वशी का पुत्र आयु आपको प्रणाम करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारदः—आयुष्मानेधि।

राजा—अयं विष्टरोऽनुगृह्यताम्।

नारदः—तथा। [इत्युपविष्टः।]

[सर्वे नारदमनूपविशन्ति।]

राजा—[सविनयम्] भगवन् किमागमनप्रयोजनम्।

नारदः—राजन्। श्रूयतां महेन्द्रसन्देशः।

राजा—अवहितोऽस्मि।

नारदः—प्रभावदर्शी मघवा वनगमनाय कृतबुद्धिं भवन्तमनुशास्ति।

राजा—किमाज्ञापयति।

नारदः—त्रिकालदर्शिभिर्मुनिभिरादिष्टो महान्सुरासुरसंगरो भावी। भवाँश्च सांयुगीनः सहायो नः। तेन न त्वया शस्त्रं संन्यस्तव्यम्। इयं चोर्वशी यावदायुस्तव सहधर्मचारिणी भवत्विति।

उर्वशी—[अपवार्य।] अम्महे सल्लं विअ मे हिअआदो अबणीदं। (अहो शल्यमिव मे हृदयादपनीतम्।)

राजा—परवानस्मि देवेश्वरेण।

नारद—तुम्हारी बड़ी आयु हो।

राजा—देवर्षि! आइए, यह आसन पवित्र कीजिए।

नारद—अच्छी बात है।

[नारद मुनि के बैठने पर सब बैठ जाते हैं।]

राजा—[न्रमता से] कहिए भगवन्! कैसे आने का कष्ट किया?

नारद—इन्द्र ने कुछ सन्देश भेजा है, वह सुनिए—

राजा—जी मैं सुन रहा हूँ।

नारद—अपनी दैवी शक्ति से सबके मन की बातें जानने वाले इन्द्र ने जब देखा कि आप वन जाने की तैयारी कर रहे हैं, तो उन्होंने यह कहलाया है—

राजा—हाँ, उन्होंने क्या आज्ञा दी है?

नारद—त्रिकालदर्शी मुनियों ने भविष्यवाणी की है कि देवताओं और राक्षसों में बड़ा भारी संग्राम होने वाला है, संग्राम में कुशल आप, हम लोगों की सदा सहायता करते ही हैं, इसलिये आप शस्त्र न छोड़ें। यह उर्वशी जीवन-भर आपकी संगिनी रहेगी।

उर्वशी—[अलग] मेरे जी का तो जैसे काँटा निकल गया।

राजा—मैं तो इन्द्र का सेवक ही हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

नारदः—युक्तम्—

त्वत्कार्यं वासवः कुर्यात्त्वं च तस्येष्टमाचरेः।
सूर्यः समेधयत्यग्निमग्निः सूर्यं स्व–तेजसा।। 20।।

[आकाशमवलोक्य।] रम्भे। उपनीयतां स्वयं महेन्द्रेण संभृतः कुमारस्यायुषो यौवराज्याभिषेकः।

[प्रविष्टा यथोक्तहस्ताऽप्सरसः।]

अप्सरसः—भअवं इमे अभिसेअसंभारा। (भगवन्नेतेऽभिषेकसंभाराः।)

नारदः—उपवेश्यतामयमायुष्मान्भद्रपीठे।

रम्भा—इदो बच्छ। (इतो वत्स।) [इति कुमारं भद्रपीठ उपवेशयति।]

नारदः—[कुमारस्य शिरसि कलशमावर्ज्य।] रम्भे! निर्वर्त्यतां शेषो विधिः।

रम्भा—[यथोक्तं निर्वर्त्य] वच्छ! पणम भअवंतं पिदरो अ। (वत्स! प्रणम भगवन्तं पितरौ च।)

[कुमारो यथाक्रमं प्रणमति।]

नारदः—स्वस्ति भवते।

राजा—कुलधुरंधरो भव।

उर्वशी—पिदुणो आराहओ होहि। (पितुराराधको भव।)

नारद—ठीक ही है—जैसे सूर्य अपने तेज से अग्नि को उकसाता है और अग्नि सूर्य को अपने तेज से बढ़ाता है, वैसे ही इन्द्र तुम्हारा काम करें और तुम इन्द्र का काम करो।।20।। [आकाश की ओर देखकर] रम्भा! स्वयं इन्द्र ने कुमार आयु के युवराज बनने के उत्सव के लिये जो समाग्रियाँ भेजी हैं वे सब ले तो आओ।

[ऊपर कही हुई सामग्रियाँ लिए हुए अप्सराएँ आती हैं।]

अप्सराएँ—महाराज, अभिषेक की सामग्री आ गई।

नारद—आयुष्मान् को पीढ़े पर बैठाओ।

रम्भा—इधर वत्स, इधर (कुमार को भद्रपीठ पर बैठाती हैं।)

नारद—(कुमार के सिर पर अभिषेक करके) रम्भा जी शेष विधि पूरी कीजिए।

रम्भा—(विधि-पूर्वक अभिषेक करती है) वत्स, महाराज, नारद और माता-पिता को प्रणाम करो।

(कुमार क्रम से प्रणाम करते हैं।)

नारद—आपका कल्याण हो।

राजा—कुल के प्रधान बनो।

उर्वशी—पिता के भक्त वनो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[नेपथ्ये वैतालिकद्वयम् ।]

वैतालिकौ—विजयतां युवराजः

प्रथमः—

अमरमुनिरिवात्रिर्ब्रह्मणोऽत्रेरिवेन्दुः
बुध इव शिशिरांशोर्बोधनस्येव देवः ।
भव पितुरनुरूपस्त्वं गुणैर्लोककान्तैः
अतिशयिनि समस्ता वंश एवाशिषस्ते ।। 21 ।।

द्वितीयः—

तव पितरि पुरस्तादुन्नतानां स्थितेऽस्मिन्
स्थितिमति च विभक्ता त्वय्यनाकम्पधैर्ये ।
अधिकतरमिदानीं राजते राजलक्ष्मीः
हिमवति जलधौ च व्यस्ततोयेव गङ्गा ।। 22 ।।

अप्सरसः—[उर्वशीमुपेत्य ।] दिट्ठिआ पिअसही पुत्तस्स जुवराअसिरीए भत्तुणो अविरहेण अ बड्ढदि। (दिष्ट्या प्रियसखी पुत्रस्य युवराजश्रिया भर्तुरविरेण च वर्धते।)

उर्वशी—णं साहरणो एसो अब्भुदयो। [कुमारं हस्ते गृहीत्वा।] एहि वच्छ। जेट्ठमादरं अभिवंदेहि। [ननु साधारण एषोऽभ्युदयः। एहि वत्स। ज्येष्ठमातरमभिवन्दस्व।)

[कुमारः प्रतिष्ठते ।]

(नेपथ्य में दो वैतालिक)

दोनों—युवराज की विजय हो।

पहला वैतालिक—तुम अपने माता-पिता के वैसे ही योग्य पुत्र बनो, जैसे ब्रह्माजी के सुपुत्र अमर मुनि अत्रिजी हुए, अत्रि मुनि के चन्द्रमा हुए, चन्द्रमा के बुध और बुध के पुरुरवा हुए हैं। तुम्हारे इस जग से निराले वंश और सब आशीर्वाद तो पहले ही फल चुके हैं।।21 ।।

दूसरा वैतालिक—ऊँचे-ऊँचे लोगों में श्रेष्ठ तुम्हारे पिता हैं और उनके तुम बड़े साहसी और मर्यादा पालने वाले पुत्र हो। तुम दोनों में एक-सी भक्ति रखने वाली यह राज्य-लक्ष्मी उसी प्रकार और भी शोभा देने लगी है, जैसे हिमालय पर्वत और समुद्र दोनों में समान रूप से भक्ति रखने वाली गंगा जी शोभा देती हैं।।22 ।।

अप्सराएँ—[उर्वशी के पास जाकर] सखी उर्वशी! पुत्र के यौवराज्यभिषेक की और सदा पति के पास रहने की तुम्हें बधाई।

उर्वशी—यह सौभाग्य तो हम तुम दोनों का एक-सा ही है। [कुमार का हाथ थामकर] चलो वत्स! बड़ी माँ को प्रणाम कर आओ।

[कुमार जाने को तैयार होता है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा–तिष्ठ। सममेव तत्र भवत्याः समीपं यास्यामस्तावत्।

नारदः–

आयुषो यौवराज्यश्रीः स्मारयत्यामजस्य ते।
अभिषिक्तं महासेनं सैनापत्ये मरुत्वता।। 23।।

राजा–अनुगृहीतोऽस्मि मघवता।

नारदः–भो राजन्। किं ते भूयः प्रियमुपकरोतु पाकशासनः।

राजा–यदि मे मघवा प्रसन्नः किमतः परमिच्छामि। तथापि–इदमस्तु।

[भरतवाक्यम्]

परस्परविरोधिन्योरेकसंश्रयदुर्लभम्।
सङ्गतं श्रीसरस्वत्योर्भूतयेऽस्तु सदा सताम्।। 24।।

अपि च।

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु।। 25।।

[इति निष्क्रान्ता सर्वे।]

।। इति पञ्चमोऽङ्कः।।

समाप्तमिदं श्रीकालिदासकृतं विक्रमोर्वशीयं नाम त्रोटकम्।

राजा–ठहरो, हम सब लोग साथ ही देवी के पास चलते हैं।

नारद–तुम्हारे पुत्र आयु का यह यौवराज्यभिषेक उस उत्सव का स्मरण दिला रहा है, जिसमें इन्द्र ने कार्तिकेय को सेनापति बनाया था।।23।।

राजा–यह सब भगवान् इन्द्र की ही कृपा है।

नारद–हे राजन्! इन्द्र आपकी और कौन-सी इच्छा पूरी करें।

राजा–भगवान् इन्द्र की प्रसन्नता से बढ़कर और मुझे चाहिए ही क्या? फिर भी मैं चाहता हूँ कि–

[भरतवाक्य]

जो लक्ष्मी और सरस्वती सदा एक दूसरे से पीठ फेरे रहती हैं और जिनका मिलकर रहना बड़ा कठिन है, वे दोनों, सज्जनों के कल्याण के लिये एक साथ रहने लगें।।24।। और, सबकी आपत्तियाँ दूर हो जायँ, सब फले फूलें, सबके मनोरथ पूरे हों और चारों ओर सुख ही सुख फैल जाये।।25।।

[सब चलते हैं।]

।। पाँचवाँ अंक समाप्त हुआ ।।

।। महाकवि श्री कालिदास-विरचित विक्रमोर्वशीय नाम का त्रोटक समाप्त हुआ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

पुरुषाः	
सूत्रधारः	नाटकस्य प्रबन्धकर्ता
दुष्यन्तः	हस्तिनापुरस्य सम्राट्
भद्रसेनः	सेनापतिः
माढव्यः	विदूषकः
सर्वदमनः	दुष्यन्तपुत्रः (भरतः)
सोमरातः	धर्मगुरुः
रैवतकः	द्वारपालः
करभकः	राजसेवक
पार्वतायनः	कञ्चुकी
वैतालिकौं	राजचारणै
श्यामलः	दुष्यन्तस्य श्यालः
धीवरः	मत्स्यग्राही
मातलिः	इन्द्रसारथिः
मारीचः	प्रजापतिः कश्यपः
दुर्वासा	ऋषिः
वैखानसः	कण्सशिष्यः
शार्ङ्गरवः	कण्वशिष्यः
शारद्वतः	कण्वशिष्यः
हारीतः	कण्वशिष्य
गौतमः	कण्वशिष्यः
सूचकः	राजपुरुषः
जानुकः	राजपुरुषः

स्त्रियः	
नटी	सूत्रधारस्य पत्नी
शकुन्तला	कण्वस्य धर्मपुत्री
अनसूया	शकुन्तलायाः सखी
प्रियंवदा	शकुन्तलायाः सखी
गौतमी	तपस्विनी
चतुरिका	राजसेविका
परभृतिका	राजसेविका
मधुकरिका	राजसेविका
प्रतिहारी	परिचरिका
यवनी	परिचारिका
सानुमती	अप्सरा
अदितिः	कश्यपपत्नी (देवमाता)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। श्रीः ।।

।। अभिज्ञानशाकुन्तलम् ।।

प्रथमोऽङ्कः

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।। 1 ।।

[नान्द्यन्ते]

सूत्रधारः—अलमतिविस्तरेण। (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये! यदि नेपथ्यविधानमवसितम् इतस्तावदागम्यताम्।

अभिज्ञानशाकुन्तलम्
प्रथम अङ्क

शिवजी उस जल के रूप में हमें प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, जिसे ब्रह्मा ने सबसे पहले बनाया, उस अग्नि के रूप में दिखाई देते हैं जो विधि के साथ दी हुई हवन-सामग्री ग्रहण करती है; उस होता के रूप में दिखाई देते हैं, जिसे यज्ञ करने का काम मिला है; उन चन्द्र और सूर्य के रूप में दिखाई देते हैं, जो दिन और रात का समय निश्चित करते हैं, उस आकाश के रूप में दिखाई देते हैं, जिसका गुण शब्द हे और जो संसार भर में रमा हुआ है; उस पृथ्वी के रूप में दिखाई देते हैं, जो सब बीजों को उत्पन्न करनेवाली बताई जाती हैं; और उस वायु के रूप में दिखाई देते हैं, जिसके कारण सब जीव प्राणवान रहे हैं। जल, अग्नि, होता, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी और वायु के इन आठ प्रत्यक्ष रूपों में जो भगवान् शिव सबको दिखाई देते हैं वे आप लोगों का कल्याण करें।।1 ।।

[मंगलाचरण हो चुकने पर]

सूत्रधारः—अब बहुत विस्तार करना ठीक नहीं है। [नेपथ्य की ओर देखकर] आर्ये! यदि शृङ्गार हो चुका हो तो इधर आ जाना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[प्रविश्य]

नटी—अज्जउत्त इअं म्हि। आणवेदु अज्जो को णिओओ अणुचिट्ठिअदुत्ति।

(आर्यपुत्र इयमस्मि। आज्ञापयतु आर्यः को नियोगोऽनुष्ठीयतामिति।)

सूत्रधारः—आर्ये इयं हि रसभावविशेषदीक्षागुरोर्विक्रमादित्यस्याभिरूपभूयिष्ठा परिषत्। अस्याञ्च कालिदासग्रथितवस्तुनाऽभिज्ञानशाकुन्तलनामधेयेन नवेन नाटकेनोपस्थातव्यस्ममाभिः। तत्प्रतिपात्रमाधीतां यत्नः।

नटी—सुविहिदप्पओअदाए अज्जस्स ण किं वि परिहावइस्सदि।

(सुविहितप्रयोगताऽऽर्यस्य न किमपि परिहापयिष्यते।

सूत्रधारः—[सस्मितम्] आर्ये! कथयामि ते भूतार्थम्—

आ परितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः।।2।।

नटी—[सविनयम्] अज्ज एवं एदम्। अणन्तरकरणिज्जं दाव अज्जो आणवेदु।

(आर्य एवमेतत्। अनन्तरकरणीयं तावदार्य आज्ञपयतु।)

सूत्रधारः—आर्ये किमन्यदस्याः परिषदः श्रुतिप्रमोदहेतोर्गीतात्करणीयमस्ति।

नटी—अध कदमं उण उदुं अधिकरिअ गाइस्सम्।

(अब कतमं पुनर्ऋतुं अधिकृत्य गास्यामि।)

[आकर]

नटी—आ गई आर्यपुत्र! आज्ञा कीजिए कौन-सा नाटक खेला जाय।

सूत्रधार—आर्ये! रस और भाव का चमत्कार दिखानेवाले कलाकारों के आश्रयदाता महाराज विक्रमादित्य की इस सभा को आज विशेषरूप से बड़े-बड़े विद्वानों ने सुशोभित किया है; इसलिये इन्हें कालिदास का नया रचा हुआ अभिज्ञान-शाकुन्तल नाटक ही दिखाना चाहिए। तो जाकर सब पात्रों को ठीक कर डालो।

नटी—आपने तो पहले से ही ऐसा अच्छा सिखाकर पक्का कर दिया है कि कोई उँगली नहीं उठा सकता।

सूत्रधार—[मुसकराकर] आर्ये! सच्ची बात बताता हूँ कि जब तक विद्वान् लोग न मान लें कि नाटक बढ़िया है, तब तक मैं नाटक को सफल नहीं समझता; क्योंकि पात्रों को चाहे जितने भी अच्छे ढंग से दिखाया जाय, फिर भी मन को सन्तोष नहीं होता।।2।।

नटी—[विनय के साथ] हाँ, यह तो ठीक है। आर्य! तो आप जो आज्ञा दें वही अब किया जाय।

सूत्रधार—आर्ये! इस सभा के सदस्यों के कानों को आनन्द देनेवाला बढ़िया गीत छेड़ने से बढ़कर और क्या होगा।

नटी—तो किस ऋतु पर गीत छेड़ा जाये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूत्रधारः—आर्ये नन्विममेव तावदचिरप्रवृत्तमुपभोगक्षमं ग्रीष्मसमयमधिकृत्य गीयताम्। सम्प्रति हि—

सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गिसुरभिवनवाताः।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः।।3।।

नटी—तह। (तथा) [इति गायति]

ईसीसिचुंबिआइँ भमरेहिँ सुउमारदरकेसरसिहाइँ।
ओदंसअंति दअमाणा पमदाओ सिरीसकुसुमाइँ।।4।।

(ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमारतरकेसरशिखानि।
अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि।।)

सूत्रधारः—आर्ये! साधु गीतम्। अहो रागनिविष्टचित्तवृत्तिरालिखित इव सर्वतो रङ्गः। तदिदानीं कतमं प्रयोगमाश्रित्यैनमाराधयामः।

नटी—णं अज्जमिस्सेहिँ पढम एव्व आणत्तं अहिण्णाणसाउन्दलं णाम अपुव्वं णाडअं पओए अधिकरीअदत्ति।

(नन्वार्यमिश्रैः प्रथममेवाज्ञप्तमभिज्ञानशकुन्तलं नामापूर्व नाटकं प्रयोगेऽधिक्रियतामिति।)

सूत्रधारः—आर्ये सम्यगनुबोधितोऽस्मि। ननु अस्मिन्क्षणे विस्मृतं खलु मया। कुतः—

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः।

सूत्रधार—ग्रीष्म ऋतु अभी-अभी आई ही है और बड़ी सुहावनी भी लगती है। इसलिये इस समय ग्रीष्म ऋतु पर ही कोई राग छेड़ो। देखो—

इन दिनों नहाने में जल बड़ा सुहावना लगता है, पाटल में बसा हुआ बन का पवन भी बड़ा अच्छा लगता है, वृक्षों की घनी छाया में नींद भी अच्छी आती है और आजकल की सन्ध्या तो इतनी सुहावनी होती है कि पूछना ही क्या।।3।।

नटी—ठीक है। [गाती है]

जिन शिरीष-सुमनों के कोमल केसर-दल की मधुर शिखाएँ।
चूम-चूमकर रसमय भौंरे फिर-फिर बैठ-बैठ उड़ जाएँ।
दया भाव से उनको चुनकर सहृदयता से लेकर सत्वर।
कर्णफूल रचकर कानों में पहन रहीं उनको प्रमदाएँ।।4।।

सूत्रधार—वाह आर्ये! बहुत ही अच्छा गाया। देखो! तुम्हारे राग से लोग ऐसे बेसुध हो गए हैं कि सारी रंगशाला चित्र लिखी-सी जान पड़ती है। तो अब कौन-सा नाटक दिखाकर इनका मन बहलाया जाये।

नटी—आपने अभी-अभी कहा था कि अभिज्ञानशाकुन्तल नाम का नया नाटक खेला जाय।

सूत्रधार—ओह ठीक स्मरण दिलाया आर्ये! मैं तो भूल ही गया था। तुम्हारे गीत के मनोहर राग ने मेरे मन को बलपूर्वक वैसे ही खींच लिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[कर्णं दत्वा]

एष राजेव दुष्यन्तः सारंगेणातिरंहसा।।5।।

[इति निष्क्रान्तौ]

।। इति प्रस्तावना।।

[ततः प्रविशति मृगानुसारी सशरचापहस्तो राजा रथेन सूतश्च।]

सूतः—[राजानं मृगं चावलोक्य] आयुष्मन्।

कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके।
मृगानुसारिणं साक्षात्पश्यामीव पिनाकिनम्।।6।।

राजा—सूत! दूरममुना सारङ्गेण वयमाकृष्टाः अयं पुनरिदानीमपि—

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद्भूयसा पूर्वकायम्।
दर्भैर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति।।7।।

[सविस्मयम्] तदेष कथमनुपतत एव मे प्रयत्नप्रेक्षणीयः संवृत्तः।

[कान लगाकर सुनते हुए]

जैसे यह वेग से दौड़ता हुआ हरिण राजा दुष्यन्त को यहाँ खींच लाया है।।5।।

[दोनों का प्रस्थान]

[प्रस्तावना पूर्ण हुई]

[सारथि के साथ रथ पर बैठे हुए धनुष-बाण-धारी राजा दुष्यन्त मृग का पीछा करते हुए प्रवेश करते हैं।]

सारथी—[राजा और मृग को देखकर] आयुष्मन्!

इस काले मृग पर आँखें जमाए और धनुष की डोरी चढ़ाए हुए आप ऐसे दिखाई पड़ रहे हैं, मानो मृग के पीछे दौड़ते हुए साक्षात् महादेवजी हों।।6।।

राजा—सूत! यह हिरण तोहमें बहुत दूर दौड़ा लाया है। और अब भी यह—

बार-बार पीछे मुड़कर इस रथ को एकटक देखते हुए सुन्दर लगनेवाला हिरण बाण लगने के डर से अपने पिछले आधे शरीर को सिकोड़कर आगे के भाग से मिलाता हुआ कैसा दौड़ा चला जा रहा है। थकावट के कारण इसके खुले हुए मुँह से आधी चबाई हुई कुशा मार्ग में गिरती चली जा रही है और देखो! यह इतनी लम्बी छलाँगें भर रहा है कि इसके पाँव भी पृथ्वी पर नहीं पड़ रहे हैं। ऐसा लगता है मानो यह आकाश में उड़ रहा हो।।7।।

[आश्चर्य के साथ]

अरे! हम ठीक इसके पीछे-पीछे ही लगे चले जा रहे हैं, फिर भी हिरण आँख से ओझल कैसे हो गया?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूतः—आयुष्मन्! उद्घातिनी भूमिरिति मया रश्मिसंयमनाद्रथस्य मन्दीकृतो वेगः। तेन मृग एष विप्रकृष्टान्तरः संवृत्तः। संप्रति समदेशवर्तिनस्ते न दुरासदो भविष्यति।

राजा—तेन हि मुच्यन्तामभीषवः।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् [रथवेगं निरूप्य] आयुष्मन्! पश्य पश्य—

मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया निष्कम्पचामरशिखा निभृतोर्ध्वकर्णाः।
आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलङ्घनीया धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः।।8।।

राजा—[सहर्षम्] नूनमतीत्य हरितो हरीश्चं वर्तन्ते वाजिनः। तथा हि—

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलतां
यदर्धे विच्छिन्नं भवति कृतसंधानमिव तत्।
प्रकृत्या यद्वक्रं तदपि समरेखं नयनयो
र्न मे दूरे किंचित्क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात्।।9।।

सूत! पश्यैनं व्यापाद्यमानम्। [इति शरसंधानं नाटयति।]

[नेपथ्ये]

भो भो राजन्! आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः।

सारथी—आयुष्मन्! ऊँची-नीची भूमि होने के कारण मैंने रास खींचकर रथ का वेग कम कर दिया था, इसलिये मृग बहुत दूर निकल गया है; पर आगे समतल है, अब आप उसे हाथ में आया ही समझिए।

राजा—तो रास ढीली करो।

सारथी—जैसी आयुष्मान् की आज्ञा। [रथ का वेग देखकर] देखिए, देखिए आयुष्मन्—

रास ढीलते ही अपने आगे का शरीर फैलाकर और माथे की चौंरी सीधी खड़ी करके ये घोड़े इतने वेग से दौड़ रहे हैं कि उनकी टापों से उठी हुई धूल भी इन्हें नहीं छू पा रही है। ऐसा जान पड़ता है, मानो हरिण की दौड़ से ये होड़ कर रहे हों।।8।

राजा—[प्रसन्न होकर] सचमुच इन घोड़ों ने तो सूर्य और इन्द्र के घोड़ों को भी दौड़ में पछाड़ डाला है; क्योंकि जो वस्तु दूर से पतली दिखाई देती थी, वह तुरन्त मोटी हो जाती है, जो बीच से कटी जान पड़ती थी, वह ऐसी जान पड़ने लगती है मानो उसे किसी ने जोड़ दिया हो और जो स्वभावतः टेढ़ी वस्तुएँ हैं, वे आँख को सीधी-सी दिखाई देती हैं। रथ इतने वेग से दौड़ रहा है कि कोई वस्तु न तो मुझसे दूर ही रह पाती है न समीप ही।।9।

सारथी! ये देखो, हिरण को मारता हूँ।

[बाण चढ़ाने का अभिनय करता है।]

[नेपथ्य में]

हे राजन्! यह आश्रम का मृग है। इसे नहीं मारना चाहिए। नहीं मारना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूतः—[आकर्ण्यावलोक्य च] आयुष्मन्! अस्य खलु ते बाणपातवर्तिनः कृष्णसारस्यान्तरे तपस्विन उपस्थिताः।।

राजा—[ससंभ्रमम्] तेन हि प्रगृह्यन्तां वाजिनः।

सूतः—तथा। [इति रथं स्थापयति।]

[ततः प्रविशत्यात्मना तृतीयो वैखानसः]

वैखानसः—[हस्तमुद्यम्य] राजन्! आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः।

न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्
मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः।
क्व बत हरिणकानां जीवितञ्चातिलोलं
क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते।। 10।।
तत्साधुकृतसंधानं प्रतिसंहर सायकम्।
आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि।। 11।।

राजा—एष प्रतिसंहृतः [इति यथोक्तं करोति।]

वैखानसः—सदृशमेतत्पुरुवंशप्रदीपस्य भवतः।

जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदं तव।
पुत्रमेवं गुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि।। 12।।

सारथी—[सुनकर और देखकर] आयुष्मन्! जिस काले हिरण पर आप अभी बाण चला रहे हैं, उसके और आपके बीच में तपस्वी लोग आ खड़े हुए हैं।

राजा—[घबराकर] तो रोक लो घोड़ों को।

सारथी—अच्छी बात है [रथ खड़ा कर लेता है।]

[दो शिष्यों के साथ वैखानस (तपस्वी) का प्रवेश।]

वैखानस—[हाथ उठाकर] राजन्! यह आश्रम का मृग है। इसे नहीं मारना चाहिए! नहीं मारना चाहिए!!

इस पर कभी बाण न चलाइएगा। आपका बाण इसके कोमल शरीर के लिये वैसा ही भयंकर है, जैसे रूई के गट्ठे के लिये अग्नि। बताइए, कहाँ तो बेचारे हरिण के कोमल प्राण और कहाँ वज्र के समान कठोर आपके नुकीले बाण।।10।। इसलिये यह जो आपने तानकर बाण चढ़ाया है, इसे उतार लीजिए; क्योंकि आपके शस्त्र तो पीड़ितों की रक्षा के लिये हैं निरपराधों को मारने के लिये नहीं।।11।।

राजा—लीजिए उतार लेता हूँ। [बाण उतारता है।]

वैखानस—आप जैसे पुरुवंश के दीपक को यही शोभा देता है।

जिसने पुरुवंश में जन्म लिया है उसके लिये यही उचित है। भगवान् करे आपको ऐसे ही गुणोंवाला चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त हो।।12।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतरौ—[हस्तमुद्यम्य] सर्वथा चक्रवर्तिनं पुत्रमाप्नुहि।

राजा—[सप्रणामम्] प्रतिगृहीतम्।

वैखानसः—राजन्! समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम्। एष खलु कण्वस्य कुलपतेरनुमालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते। न चेदन्यकार्यातिपातः तत्प्रविश्य प्रतिगृह्यतामातिथेयः सत्कारः। अपि च—

रम्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः क्रियाः समवलोक्य।
ज्ञास्यसि कियद्भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणाङ्क इति।। 13।।

राजा—अपि संनिहितोऽत्र कुलपतिः।

वैखानसः—इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं गतः।

राजा—भवतु तामेव द्रक्ष्यामि। सा खलु विदितभक्तिं मां महर्षेः करिष्यति।

वैखानसः—साधयामस्तावत्। [इति सशिष्यो निष्क्रान्तः।]

राजा—सूत! तूर्णं चोदयाश्वान्। पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे।

सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। [इति भूयो रथवेगं निरूपयति।]

दोनों शिष्य—[हाथ उठाकर] निश्चय ही चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त हो।

राजा—[प्रणाम करके] आपका आशीर्वाद सिरमाथे।

वैखानस—राजन्! हम लोग समिधा लेने निकले हैं। यह सामने मालिनी नदी पर कुलपति कण्व का आश्रम है। यदि आपके काम-काज में अड़चन न हो तो चलकर अतिथि-सत्कार ग्रहण कीजिएगा। और फिर—

वहाँ जब आप देखेंगे कि ऋषि लोग निर्विघ्न होकर सब क्रियाएँ कर रहे हैं तब आप जान भी जायेंगे कि धनुष की डोरी की फटकार से बने घट्ठोंवाली आपकी भुजा कहाँ-कहाँ तक पहुँचकर रक्षा कर रही है।।13।।

राजा—क्या कुलपति जी यहाँ हैं?

वैखानस—अभी थोड़ी देर पहले अपनी पुत्री शकुन्तला को अतिथि-सत्कार का काम सौंपकर उसके खोटे ग्रहों की शान्ति के लिये सोमतीर्थ चले गए हैं।

राजा—अच्छी बात है। मैं उसी से मिल लूँगा। वही महिर्षि को बता देगी कि मेरी उनमें कितनी भक्ति है।

वैखानस—तो हम लोग चलते हैं। [शिष्यों के साथ प्रस्थान]

राजा—सारथी! घोड़े बढ़ाओ। चलें, पवित्र आश्रम के दर्शन से आत्मा ही पवित्र करें।

सारथी—जैसी आयुष्मान् की आज्ञा। [फिर रथ को वेग से दौड़ाता है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—[समन्तादवलोक्य] सूत! अकथितोऽपि ज्ञायत एव यथाऽयमाश्रमाभोगस्तपोवनस्येति।

सूतः—कथमिव।

राजा—किं न पश्यति भवान्। इह हि—

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः
प्रस्निग्धाः क्वचिदिंगुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः।
विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा-
स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाङ्किताः।। 14।।

अपि च

कुल्याम्भोमिः प्रसृतिचपलैः शाखिनो धौतमूलाः
भिन्नोरागः किसलयरुचामाज्यधूमोद्गमेन।
एते चार्वागुपवनभुविच्छिन्नदर्भांकुरायां
नष्टाशङ्का हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति।। 15।।

सूतः—सर्वमुपपन्नम्।

राजा—[स्तोकमन्तरं गत्वा] तपोवननिवासिनामुपरोधो माभूत। एतावत्येव रथं स्थापय यावदवतरामि।

सूतः—धृताः प्रग्रहाः अवतरत्वायुष्मान्।

राजा—[चारों ओर देखकर] देखो सारथी! बिना बताए ही जान पड़ता है कि हम आश्रम के तपोवन में पहुँच गए हैं।

सारथी—जी, कैसे?

राजा—देख नहीं रहे हो? यहाँ—

कहीं तो वृक्षों के तले तोतों के घोंसलों से गिरे हुए तिन्नी के दाने बिखरे पड़े हैं, कहीं इधर-उधर पड़े हुए चिकने पत्थर बता रहे हैं कि इनपर हिंगोट के फल कूटे गए हैं, कहीं निडर खड़े हुए मृग विश्वास के साथ रथ का शब्द सुन रहे हैं कि आश्रम में कोई हमें छेड़ेगा नहीं और कहीं नदी-तालावों पर आने-जाने की बटियाओं में मुनियों के वल्कलों से टपके हुए जल की रेखाएँ बनी हुई हैं।।14।। देखो! वायु के कारण लहरें लेनेवाली पानी को गूलों से यहाँ के वृक्षों की जड़ें धुल गई हैं, घी के धुएँ से नई चमकीली कोंपलों का रंग धुँधला पड़ गया है और जहाँ-जहाँ उपवन से कुशा उपाड़ ली गई है, वहाँ मृग-छौने निडर होकर धीरे-धीरे चर रहे हैं।।15।।

सारथी जी हाँ, यह सब तो है।

राजा—[कुछ आगे बढ़कर] कहीं हम लोगों के आ जाने से तपोवन-निवासियों को कष्ट न हो, इसलिये रथ यहीं रोक लो। मैं उतर जाता हूँ।

सारथी—लीजिए मैंने रास खींच ली है। आयुष्मान् उतर जायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—[अवतीर्य] सूत! विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम। इदं तावद् गृह्यताम्। [इति सूतस्याभरणानि धनुश्चोपनीयार्पयति।] सूत! यावदाश्रमवासिनः प्रत्यवेक्ष्याहमुपावर्ते तावदार्द्रपृष्ठाः क्रियन्तां वाजिनः।

सूतः—तथा। [इति निष्क्रान्तः।]

राजा—[परिक्रम्यावलोक्य च] इदमाश्रमद्वारम् यावत्प्रविशामि।

[प्रविश्य निमित्तं सूचयन्]

शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य।
अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र।। 16।।

[नेपथ्ये] इदो इदो सहीओ। [इतः इतः सख्यौ)

राजा—[कर्णं दत्त्वा] अये! दक्षिणेन वृक्षवाटिकामालाप इव श्रूयते। यावदत्र गच्छामि। [परिक्रम्यावलोक्य च] अये! एतास्तपस्विकन्यकाः स्वप्रमाणानुरूपैःसेचनघटैर्बालपादपेभ्यः पयो दातुमित एवाभिवर्तन्ते। [निपुणं निरूप्य] अहो मधुरमासां दर्शनम्—

शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः। 17।।

राजा—[उतरकर] देखो सारथी! आश्रम में सीधे-सादे वेश से ही जाना चाहिए। इसलिये तब तक ये सब यहीं रखो। [अपने आभूषण और धनुष उतारकर सारथी को देते हुए] और देखो सारथी! जब तक हम आश्रम-वासियों से मिलकर लौटते हैं, तब तक तुम भी घोड़ों को स्नान करा दो।

सारथी—जी, अच्छा। [प्रस्थान]

राजा—[घूमकर और देखकर] यही तो आश्रम का द्वार जान पड़ता है। इसी से भीतर चला जाए। [प्रवेश करके अच्छे शकुन होने की सूचना देते हुए]—इस शान्त तपोवन की भूमि में मेरी दाहिनी भुजा क्यों फड़क रही है? यहाँ भला क्या मिलने-जुलने वाला है। फिर भी जो होनी होती है (वह तो कहीं भी होकर रहती है) उसके द्वार चारों ओर होते हैं।।16।।

[नेपथ्य में]

इधर आओ सखियों, इधर आओ।

राजा—[सुनकर] अरे! फुलवारी के दाहिनी ओर किसी की बातचीत जैसी सुनाई पड़ रही है। उधर ही चलता हूँ। [घूमकर और देखकर] आहा! ये तपस्वियों की कन्याएँ अपने-अपने मेल के घड़े ले-लेकर छोटे-छोटे पौधों को सींचने के लिए इधर ही चली आ रही हैं। [ध्यान से देखकर] ओहो! ये तो बड़ी सुन्दर दिखाई पड़ती हैं।—रनिवास की रानियों में भी जो सुन्दरता कठिनाई से देखने को मिलती है, वह यदि इन आश्रमवासिनी कन्याओं को मिली है। तो यही समझना चाहिये कि जंगल की लताओं ने अपने गुणों से उद्यान की लताओं को भी लजा दिया है।।17।। अच्छा, इनके आने तक मैं यहीं ओट में खड़ा ही रहता हूँ। [देखता हुआ खड़ा रहता है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यावदिमां छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि। [इति विलोकयन्स्थितः।]

[ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला।]

शकुन्तला–इदो इदो सहीओ। [इत इतः सख्यौ]

अनसूया–हला सउन्दले तुवत्तो वि तादकण्णस्स अस्समरुक्खआ पिअदरेत्ति तक्केमि जेणणोमालिआकुसुमपेलवा तुमं वि एदाणं आलवालपूरणे णिउत्ता।

(हला शकुन्तले त्वत्तोऽपि तातकण्वस्याश्रमवृक्षकाः प्रियतरा इति तर्कयामि, येन नवमालिकाकुसुमपेलवा त्वमप्येतेषामालवालपूरणे नियुक्ता।)

शकुन्तला–ण केवलं तादणिओओ एव्व। अत्थि मे सोदरसणेहो वि एदेसु।

(न केवलं तातनियोग एव। अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु।)

[इति वृक्षसेचनं रूपयति।]

राजा–कथमियं सा कण्वदुहिता। असाधुदर्शी खलु तत्रभवान् कण्वः य इमामाश्रमधर्मे नियुंक्ते।

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति।। 18।।

भवतु। पादपान्तर्हित एव विश्रब्धं तावदेनां पश्यामि। [इति तथा करोति।]

[अपनी सखियों के साथ पौधों को सींचती हुई शकुन्तला का प्रवेश।]

शकुन्तला–इधर आओ सखियों, इधर आओ।

अनसूया–अरी शकुन्तला! मैं समझती हूँ कि पिता कण्व इन आश्रम के पौधों को तुमसे अधिक प्यार करते हैं, नहीं तो भला चमेली की कली जैसी कोमल अंगवाली तुझको वे थाँवले भरने का काम क्यों सौंप जाते।

शकुन्तला–मैं केवल पिताजी की आज्ञा से ही इन्हें नहीं सींचती हूँ, मैं स्वयं भी इनको अपने सगे जैसा प्यार करती हूँ।

[पौधों में पानी भरने का नाट्य करती है।]

राजा–क्या यही कण्व ऋषि की कन्या है! पूज्य कण्व की यह बात सचमुच ठीक नहीं लगती कि इसे भी उन्होंने आश्रम के काम में लगा दिया है। जो ऋषि इसके सहज सुन्दर शरीर को तपस्या के लिये साधना चाह रहे हैं, वे सचमुच नीले कमल की पंखुड़ी की धार से शमी का पेड़ काटने पर उतारू हुए हैं।।18।। अच्छा, तब तक निश्चिन्त होकर वृक्षों की ओट से इसे आँख भर देख तो लूँ।

[ऐसा ही करता है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला–सहि अणसूए। अदिपिणद्धेण बक्कलेण पिअंवदाए णिअन्तिदह्मि। सिढिलेहि दाव णं। (सखि अनसूये। अतिपिनद्धेन वल्कलेन प्रियंवदया नियन्त्रिताऽस्मि। शिथिलय तावदेतत्।)

अनसूया–तह। (तथा) [इति शिथिलयति।]

प्रियंवदा–[सहासम्] एत्थ पओहरविस्थारइत्तअं अत्तणो जोव्वणं उवालह। मं किं उवालंभेसि। [अत्र पयोधरविस्तारयितृ आत्मनो यौवनमुपालभस्व। मां किमुपालभसे।)

राजा–काममनुरूपमस्या वपुषो वल्कलं न पुनरलंकारश्रियं न पुष्यति कुतः।

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।। 19।।

शकुन्तला–[अग्रतोऽवलोक्य] एसो वादेरिदपल्लवांगुलीहिं तुवरेदि विअ मं केसररुक्खओ। जाव णं संभावेमि। (एष वातेरितपल्लवांगुलीभिस्त्वरयतीव मां केसरवृक्षकः। यावदेनं संभावयामि) [इति परिक्रामति।]

प्रियंवदा–हला सउन्दले! एत्थ एव्व दाव मुहुत्तअं चिट्ठ जाव तुए उवगदाए लदासणाहो विअ अअं केसररुक्खओ पडिभादि। (हला शकुन्तले! अत्रैव तावन्मुहूर्तं तिष्ठ यावत्त्वयोपगतया लतासनाथ इवायं केसरवृक्षकः प्रतिभाति।)

शकुन्तला–अदो क्खु पिअंवदासि तुमं (अतः खलु प्रियंवदाऽसि त्वम्।)

राजा–प्रियमपि तथ्यमाह शकुन्तलां प्रियंवदा। अस्याः खलु–

शकुन्तला–सखी अनसूया! इस प्रियंवदा ने ऐसा कसकर बल्कल बाँध दिया है कि मैं हिल-डुल नहीं पा रही हूँ। आकर इसे ढीला तो कर दे।

अनसूया–अच्छा। [ढीला करती है।]

प्रियंवदा–[हँसते हुए।] मुझे क्यों उलाहना देती हो। अपने उस यौवन को क्यों नहीं दोष देती जो तुम्हारे स्तनों को इतना बढ़ाता चला जा रहा है।

राजा–यद्यपि इसका कोमल शरीर वल्कल के योग्य नहीं है, फिर भी ये इसके शरीर को अलंकारों के समान ही सुशोभित कर रहे हैं। क्योंकि–जैसे सेवार से घिरा होने पर भी कमल सुन्दर लगता है और चन्द्रमा में पड़ा हुआ कलंक भी उसकी शोभा ही बढ़ाता है वैसे ही यह सुन्दरी भी वल्कल पहने हुए बड़ी भली दिखाई पड़ रही है। सच्ची बात तो यह है कि सुन्दर शरीर पर सभी कुछ शोभा देने लगता है।।19।।

शकुन्तला–[सामने देखकर।] यह केसर का वृक्ष पवन के झोंको से हिलती हुई पत्तियों की उँगलियों से मुझे बुला रहा है। जाऊँ इसका भी मन रख लूँ। [उधर घूमती है।]

प्रियंवदा–अरी शकुन्तला, क्षणभर वहाँ खड़ी तो रह जा। जब तू पेड़ से लगकर खड़ी होती है, तब यह केसर ऐसा लगता है जैसे उससे कोई लता लिपटी हुई हो।

शकुन्तला–इन्हीं सब बातों से तो तेरा नाम प्रियंवदा पड़ा है।

राजा–प्रियंवदा ने शकुन्तला से बड़ी प्यारी और सच्ची ही वात तो कही है, सचमुच–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमंगेषु संनद्धम्।। 20।।

अनसूया—हला सउन्दले। इअ सअंवरवहू बालसहआरस्स तुए किदणामहेआ वणजोसिणिति णोमालिअ। णं विसुमरिदा सि।

(हला शकुन्तले! इयं स्वयंवरवधूः बालसहकारस्य त्वया कृतनामधेया वनज्योत्स्नेति नवमालिका एनां विस्मृतासि।)

शकुन्तला—तदा अत्ताणं वि विसुमरिस्सं। [लतामुपेत्यावलोक्य च] हला रमणीए क्खु काले इमस्स लदापाअवमिहुणस्स बइअरो संवुत्तो। णवकुसुमजोव्वणा वणजोसिणी बद्धफलदाए उवभोअक्खमो सहआरो।

तदा आत्मानमपि विस्मरिष्यामि। हला रमणीये खलु काले एतस्य लतापादपमिथुनस्य व्यतिकरः संवृत्तः नवकुसुमयौवना वनज्योत्स्ना बद्धफलतयोपभोगक्षमः सहकारः।) [इति पश्यन्ती तिष्ठति।]

प्रियंवदा—[सस्मितम्] अणसूए। जाणासि किं णिमित्तं सउन्दला वणजोसिणी अदिमेत्तं पेक्खदित्ति?

(अनसूये! जानासि किं निमित्तं शकुन्तला वनज्योत्स्नामतिमात्रं प्रेक्षत इति?)

अनसूया—ण क्खु विभावेमि। कहेहि। (न खलु विभावयामि। कथय)

प्रियंवदा—जह वणजोसिणी अणुरूवेण पाअवेण संगदा अवि णाम एव्वं अहं विअत्तणो अणुरूवं वरं लहेअंत्ति। (यथा वनज्योत्स्ना अनुरूपेणं पादपेन संगता अपि नामैवमहमप्यात्मनोऽनुरूपं वरं लभेयेति।)

इसके लाल-लाल ओठ लता की कोंपलों जैसे लगते हैं, दोनों भुजाएँ कोमल-शाखाओं जैसी जान पड़ती हैं और इसके अंगों में खिला हुआ नया यौवन लुभावने फूल के समान दिखाई दे रहा है।।20।।

अनूसया—शकुन्तला यह वही नई चमेली है, जिसने आम के वृक्ष से स्वयंवर कर लिया है और जिसका नाम तूने वनज्योत्सना (वन की चाँदनी) रख छोड़ा है। इसे तो तू भूले ही चली जा रही थी।

शकुन्तला—वाह इसे भूलूँगी तब तो मैं अपने को भी भूख जाऊँगी, [लता के पास जाकर और देखकर] सखी, सचमुच इस लता और वृक्ष का मेल बड़े अच्छे दिनों में हुआ है। इधर यह वनज्योत्स्ना खिले हुए फूल लेकर नवयौवना हुई है, उधर फल से लदी हुई शाखाओं वाला आम का वृक्ष भी उभर कर आया हुआ है।

[उसे देखती हुई खड़ी रह जाती है।]

प्रियंवदा—[मुस्कराकर] अनसूया! जानती हो यह शकुन्तला इतनी मगन होकर वनज्योत्स्ना को क्यों देख रही है?

अनसूया—नहीं सखी। मैं तो नहीं जानती तू ही बता।

प्रियंवदा—देखो यह सोच रही है कि जैसे यह वनज्योत्स्ना अपने योग्य वृक्ष से लिपट गई है, वैसे ही मुझे भी मेरे योग्य वर मिल जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला—एसो णूणं तुह अत्तगदो मणोरहो। (एष नूनं तवात्मगतो मनोरथः) [इति कलशमावर्जयति।]

राजा—अपि नाम कुलपतेरियमसवर्णक्षेत्रसंभवा स्यात्। अथवा कृतं संदेहेन।

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।। 21।।

तथापि तत्त्वत एनामुपलप्स्ये।

शकुन्तला—[ससंभ्रमम्] अम्मो! सलिलसेअसंभमुग्गदो णोमालिअं उज्झिअ वअणं मे महुअरो अहिवट्टइ। (अम्मो! सलिलसेकसंभ्रमोद्गतो नवमालिकामुज्झित्वा वदनं मे मधुकरोऽभिवर्तते।) [इति भ्रमरबाधां रूपयति।]

राजा—[सस्पृहम्]

चलापाङ्गं दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः।
करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती।। 22।।

शकुन्तला—ण एसो दुट्ठो विरमदि। अण्णदो गमिस्सं [पदान्तरे स्थित्वा सदृष्टिक्षेपम्] कहं इदो वि आअच्छदि। हला परित्ताअह मं इमिणा दुव्विणीदेण महुअरेण अहिहूअमाणं।

शकुन्तला—यह तो तू अपने मन की बात कह रही है।

[घड़े का जल पेड़ की जड़ में छोड़ती है।]

राजा—यह ऋषि की कन्या कहीं दूसरे वर्ण की स्त्री से तो नहीं उत्पन्न हुई है। पर सन्देह किया ही क्यों जाय? क्योंकि जब मेरा शुद्ध मन भी इस पर रीझ उठा है, तब यह निश्चय है कि इसका क्षत्रिय से विवाह हो सकता है; क्योंकि सज्जनों के मन में जिस बात पर शंका हो, वहाँ जो कुछ उनका मन कहे वही ठीक मान लेना चाहिए।।21।। फिर भी मैं इससे ठीक-ठीक जानने का प्रयत्न करता हूँ।

शकुन्तला—[घबराकर] अरे रे, जल पड़ने से घबराकर उड़ा हुआ यह भौंरा चमेली को छोड़कर बार-बार मेरे ही मुँह पर मँडराने लगा है। [भौंरे से पीड़ित होने का नाट्य करती है।]

राजा—[ललचता हुआ।] अरे भौंरे, तुम सचमुच बड़े भाग्यवान् हो। इधर हम तो सच्ची बात की खोज में ही लुट गए, उधर तुम इसकी चञ्चल चितवन से देखे जाते हुए इस काँपती हुई बाला को बार-बार छूते जा रहे हो, उसके कानों के पास जाकर ऐसे धीरे-धीरे गुनगुना रहे हो, मानो कोई बड़े भेद की बात उसे सुनाना चाहते हो और बार-बार उसके हाथों से झटके जाने पर भी तुम उसके रस-भरे अधरों को रस पीते ही जा रहे हो।।22।।

शकुन्तला—अरे यह दुष्ट मानता ही नहीं है। कही दूसरी जगह चली जाती हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(न एष दुष्टो विरमति। अन्यतो गमिष्यामि। कथमितोऽप्यागच्छति। हला परित्रायेथां मामनेन दुर्विनीतेन मधुकरेण अभिभूयमानाम्।)

उभे–[सस्मितम्] का वअं परित्तादुं दुस्सन्दं एव्व अक्कन्द। राअरक्खिदव्वाइँ तवोवणाइँ णाम।

(के आवां परित्रातुम्। दुष्यन्तमेवाक्रन्द। राजरक्षितव्यानि तपोवनानि नाम।)

राजा–अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुम्। न भेतव्यं न भेतव्यम्–(इत्यर्धोक्ते स्वगतम्) राजभावस्त्वभिज्ञातो भवेत्। भवतु एवं तावदभिधास्ये।

शकुन्तला–[पदान्तरे स्थित्वासदृष्टिक्षेपम्] कहं इदोवि मं अणुसरदि।

(कथमितोऽपि मामनुसरति)

राजा–(सत्वरमुपसृत्य) आः।

कः पौरवे वसुमतीं शासति शासितरि दुर्विनीतानाम्।
अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यकासु।। 23।।

[सर्वा राजानं दृष्ट्वा किंचदिव संभ्रान्ताः।]

अनसूया–अज्ज ण क्खु किंवि अच्चाहिदं। इअं णो पिअसही दुट्ठ महुअरेण अहिहू-अमाणा कादरीभूदा। (आर्य न खलुकिमप्यत्याहित। इयं नौ प्रियसखी दुष्टमधुकरेणाभिभूयमाना कातरीभूता।) [इति शकुन्तलां दर्शयति।]

राजा–[शकुन्तलाभिमुखो भूत्वा] अपि तपो वर्द्धते।

[शकुन्तला साध्वसावनतमुखी तिष्ठति।]

[दूसरे स्थान पर जाकर और दृष्टि फेरकर।] अरे, क्या यहाँ भी आ पहुँचा? अब क्या करूँ? अरी सखियों! बचाओ! बचाओ इस दुष्ट भौंरे से!! इसने तो मुझे बड़ा तंग कर डाला है।

दोनों–[मुस्कराकर।] हम कौन होती हैं बचानेवाली। दुष्यन्त को क्यों नहीं पुकारती हो। अरी! तपोवन की रक्षा करना तो राजा का काम है।

राजा–अपना परिचय देने का यह अच्छा अवसर है। डरो मत! डरो मत! [आधी बात कहकर फिर मन ही मन। [किन्तु इससे तो ये समझ जायँगी कि मैं राजा हूँ। अच्छा, तो मैं फिर यों कहता हूँ।

शकुन्तला–[थोड़ी दूर जाकर खड़ी होकर फिर दृष्टि फेरती है।] क्या करूँ? यह तो यहाँ भी मेरा पीछा नहीं छोड़ता।

राजा–[झट से प्रकट होकर।] ओह! जब तक दुष्टों को दंड देनेवाला पुरुवंशी दुष्यन्त पृथ्वी पर राज्य कर रहा है, तब तक कौन ऐसा है जो भोली-भाली ऋषि-कन्याओं से छेड़छाड़ करे।।23।।

[राजा को देखकर वह सकपका जाती हैं।]

अनसूया–आर्य, ऐसी कोई बड़ी भारी विपत्ति नहीं है। हमारी इस प्यारी सखी को भौंरे ने तंग कर रखा था, इसी से यह कुछ घबरा सी गई है। [शकुन्तला की ओर संकेत करती है।]

राजा–[शकुन्तला के सामने जाकर] आपकी तपस्या तो सफल हो रही है? [शकुन्तला नीचा मुँह करके चुप रह जाती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनसूया—**दाणिं अदिहिविसेसलाहेण। हला सउन्दले! गच्छ उडअं फलामिस्सं अग्घं उवहर, इदं पादोदअं भविस्सदि।**

(इदानीमतिथिविशेषलाभेन। हला शकुन्तले! गच्छोटजं फलमिश्रमर्घ्यमुपहर। इदं पादोदकं भविष्यति)

राजा—भवतीनां सूनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यम्।

प्रियंवदा—तेण हि इमस्सिं दाव पच्छाअसीअलाए सत्तवण्णवेदिआए मुहुत्तअं उवविसिअ परिस्समविणोदं करेदु अज्जो।

(तेन ह्यस्यां तावत् प्रच्छायशीतलायां सत्तपर्णवेदिकायां मुहूर्तमुपविश्य परिश्रमविनोदं करोत्वार्यः।)

राजा—नूनं यूयमप्यनेन कर्मणा परिश्रान्ताः।

अनसूया—हला सउन्दले! उइदं रणो पज्जुवासणं अदिहीणं। ता एहि एत्थ उवविसम्ह।

(हला शकुन्तले! उचित नः पर्युपासनमतिथीनाम्। तदेहि अत्रोपविशामः।) इति सर्वे उपविशन्ति।]

शकुन्तला—[आत्मगतम्] **किं णु क्खु इमं जणं पेक्खिअ तवोवणविरोहिणो विआ रस्सं गमणीअम्हि संवुत्ता।** (किं नु खल्विमं जनं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयाऽस्मि संवृत्ता।)

राजा—[सर्वा विलोक्य] अहो समवयोरूपरमणीयं भवतीनां सौहार्दम्।

प्रियंवदा—[जनान्तिकम्] **अणसूए! को णु क्खु एसो चउरगम्भीरकिदी महुरं पिअं आलबन्दो पहाववन्दो विय लक्खीअदि।** (अनसूये! को नु खल्वेष चतुरगम्भीराकृतिर्मधुरं प्रियमालपन्प्रभाववानिव लक्ष्यते।)

अनसूया—जी हाँ, आप जैसे अनूठे अतिथि के आ जाने से तपस्या सफल ही समझिए। अच्छा शकुन्तला! जा कुटी से कुछ फल-फूल के साथ अर्ध्य तो ले आ। चरण धोने का जल यहीं मिल जायगा।

राजा—आपकी मीठी-मीठी बातों से ही मेरा अतिथि-सत्कार हो गया।

प्रियंवदा—तो आर्य! चलिए घनी छायावाले छतिवन के तले जो शीतल चौतरा है, वहीं क्षणभर बैठकर अपनी थकान मिटाइए।

राजा—आप सब भी तो काम करते-करते थक गई होंगी।

प्रियंवदा—शकुन्तला! अतिथि की बात तो रखनी ही होगी। आओ, चलो बैठा जाए।

शकुन्तला—[मन ही मन] उन्हें देखकर मेरे मन में न जाने क्यों ऐसी उथल-पुथल हो रही है, जैसी तपोवन के निवासियों के मन में नहीं होनी चाहिए।

राजा—[सबको देखकर] आप लोग एक-सी रूपवाली और अवस्थावाली हैं। आप लोगों का आपस का प्रेम मुझे बड़ा प्यारा लगता है।

प्रियंवदा—[धीरे से] अनसूया, ये चतुर और गम्भीर दिखाई देनेवाले तथा प्रिय और मधुर बोलनेवाले कोई बड़े भारी व्यक्ति जान पड़ते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनसूया—सहि मम वि अत्थि कोदूहलं। पुच्छिसं दाव णं [प्रकाशम्] अज्जस्स महुरालावजणिदो वीसम्भो मं मन्तावेदि कदमो अज्जेण राएसिणो वंसो अलंकरीअदि कदमो वा विरहपज्जुस्सुअजणो किदो देसो। किंणिमित्तं वा सुउमारदरोवि तवोवणगमण-परिस्मस्स अत्ता पवं उवणीदो।

(सखि ममाप्यस्ति कौतूहलम्। पृच्छामि तावदेनम्। आर्यस्य मधुरालापजनितो विश्रम्भो मां मन्त्रयते कतम आर्येण राजर्षेर्वंशोऽलंक्रियते कतमो वा विरहपर्युत्सुकजनः कृतो देशः किंनिमित्तं वा सुकुमारतरोऽपि तपोवनगमनपरिश्रमस्यात्मा पदमुपनीतः।)

शकुन्तला—[आत्मगतम्] हिअअ मा उत्तम्म। एसा तुए चिन्तिदाइँ अणसूया मन्तेदि। (हृदय मा उत्ताम्य। एषा त्वया चिन्तितान्यनसूया मन्त्रयते।)

राजा—[आत्मगतम्] कथमिदानीमात्मानं निवेदयामि कथं वा आत्मापहारं करोमि। भवतु एवं तावदेनां वक्ष्ये—[प्रकाशम्] भवति यः पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्तः सोऽहमाश्रमिणामविघ्नक्रियोपलम्भाय धर्मारण्यमिदमायातः।

अनसूया—सणाहा दाणिं धम्मआरिणो। (सनाथा इदानीं धर्मचारिणः) [शकुन्तला शृङ्गारलज्जां रूपयति]

सख्यौ—[उभयोराकारं विदित्वा जनान्तिकम्] हला सउन्दले जइ एत्थ अज्ज तादो संणिहिदो भवे। (हला शकुन्तले यद्यत्राद्य तातः संनिहितो भवेत्।)

शकुन्तला—तदो किं भवे। (ततः किं भवेत्।)

अनसूया—[प्रियंवदा से धीरे से] सखी, मुझे भी जानने की बड़ी उत्कण्ठा है। चलो इन्हीं से पूछें। [प्रकट] आर्य! आपकी मीठी बातों से जो हमें आपमें विश्वास उत्पन्न हो गया है, वह हमें आपसे यह पूछने को उकसा रहा है कि आर्य ने किस राजवंश को सुशोभित किया है, किस देश की प्रजा को अपने विरह से व्याकुल करके आर्य यहाँ पधारे हैं और ऐसा कौन-सा काम आ पड़ा है जिसने आपके इस सुकुमार शरीर को इस तपोवन तक लाने का कष्ट दिया है।

शकुन्तला—[मन ही मन] हृदय, उतावले मत बनो! तुम्हारे ही मन की बात अनसूया पूछ रही हैं।

राजा—[मन ही मन] अब अपना क्या परिचय दूँ और कैसे अपने को छिपाऊँ? अच्छा मैं इनसे यह कहता हूँ। [प्रकट] भद्रे पुरुवंशी राजा ने मुझे अपने राज्य की धार्मिक क्रियाओं की देखभाल का काम सौंप रखा है। इसलिये मैं यह देखने आया हूँ कि आश्रम में रहनेवाले तपस्वियों के कार्य में कोई विघ्न तो नहीं पड़ता।

अनसूया—आर्य! धर्म-क्रिया करनेवाले लोगों पर आपने बड़ी कृपा की है।

[शकुन्तला प्रेम और लज्जा का नाट्य करती है]

दोनों—[शकुन्तला और दुष्यन्त के मन की बात ताड़कर धीरे से] शकुन्तला! यदि आज पिताजी घर होते—

शकुन्तला—तो क्या होता!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सख्यौ—इमं जीविदसव्वस्सेण वि अदिहिविसेसं किदत्थं करिस्सदि। (इमं जीवितसर्वस्वेनाप्यतिथिविशेषं कृतार्थं करिष्यति।)

शकुन्तला—तुम्हे अवेध। किं वि हिअए करिअ मन्तेध। ण वो वअणं सुणिस्सं। (युवामपेतम्। किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयेथे। न युवयोर्वचनं श्रोष्यामि।)

राजा—वयमपि तावद्भवत्योः सखीगतं किञ्चित् पृच्छामः।

सख्यौ—अज्ज अणुग्गहो विअ इअं अब्भत्थणा। (आर्य अनुग्रह इवेयमभ्यर्थना।)

राजा—भगवान्कण्वः शाश्वते ब्रह्मणि स्थित इति प्रकाशः इयं च वः सखी तदात्मजेति कथमेतत्।

अनसूया—सुणादु अज्जो। अत्थि को वि केसिओत्ति गोत्तणामहेओ महाप्पहावो राएसी। (शृणोत्वार्यः। अस्ति कोऽपि कौशिक इति गोत्रनामधेयो महाप्रभावो राजर्षिः।)

राजा—अस्ति श्रूयते।

अनसूया—तं णो पिअसहीए पहवं अवगच्छ। उज्झिआए सरीरसंवड्ढणादिहिं तादकण्णो से पिदा। (तमावयोः प्रियसख्याः प्रभवमवगच्छ। उज्झितायाः शरीरसंवर्धनादिभिस्ता- तकण्वोऽस्याः पिता।)

राजा—उज्झितशब्देन जनितं मे कौहलम्। आमूलाच्छ्रोतुमिच्छामि।

दोनों—इन अनूठे अतिथि को अपने जीवन का सर्वस्व देकर भी इन्हें निहाल कर देते।

शकुन्तला—चलो हटो, तुम लोग न जाने क्या-क्या मन में लेकर बोलती हो। अब मैं तुम्हारी बातें सुनूँगी ही नहीं।

राजा—[अनसूया और प्रियंवदा से] हम भी आपकी सखी के विषय में कुछ पूछना चाहते हैं।

दोनों—पूछिए आर्य, यह तो आपकी कृपा ही है।

राजा—हमने तो सुन रखा था कि महर्षि कण्व जन्म से ही ब्रह्मचारी हैं, फिर आपकी ये सखी उनकी कन्या कैसे हो गई?

अनसूया—मैं बताती हूँ आर्य! कौशिक गोत्र के एक बड़े प्रतापी राजर्षि हैं!

राजा—हाँ, हाँ, मैंने सुना है।

अनसूया—तो बस यही समझिए कि हमारी सखी उन्हीं की कन्या है। इसकी माता इसे छोड़कर चल दीं, तो कण्व ऋषि ने ही इसे पाल-पोसकर बड़ा किया। इसीलिये वे इसके पिता कहलाते हैं।

राजा—छोड़कर चल देने की बात सुनकर तो मेरी उत्कंठा और भी बढ़ गई है। मैं इसकी पूरी कथा सुनना चाहता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनसूया—सुणादु अज्जो। गोदमीतीरे पुरा किस तस्स राएसिणो उग्गे तवसि वट्टमाणस्स किंवि जादसङ्केहिं देवेहिं मेणआ णाम अच्छरा पेसिदा णिअमविग्घ-कालिणी। (शृणोत्वार्यः गौतमीतीरे पुरा किल तस्य राजर्षेरुग्रे तपसि वर्तमानस्य किमपि जातशङ्कैर्देवैर्मेनका नाम अप्सराः प्रेषिता नियमविघ्नकारिणी।)

राजा—अस्त्येतदन्यसमाधिभीरुत्वं देवानाम्।

अनसूया—तदो वसन्तोदारसमए से उम्मादइत्तअं रूवं पेक्खिअ—(ततो वसन्तोदारसमये तस्या उन्मादयितृ रूपं प्रेक्ष्य—) [इत्यर्धोक्ते लज्जया विरमति।]

राजा—परस्ताज्ज्ञायत एव। सर्वथा अप्सरः संभवैषा।

अनसूया—अह इं। (अथकिम्।)

राजा—उपपद्यते

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्।। 24।।

(शकुन्तला अधोमुखी तिष्ठति।)

राजा—[आत्मगतम्] हन्त लब्धावकाशो मे मनोरथः किन्तु संख्याः परिहासोदाहृतां वरप्रार्थनां श्रुत्वा धृतद्वैधीभावकातरं मे मनः।

प्रियंवदा—[सस्मितं शकुन्तलां विलोक्य नायकाभिमुखी भूत्वा] **पुणो वि वक्तुकामो विअ अज्जो।** (पुनरपि वक्तुकाम इवार्यः।)

[शकुन्तला सखीमङ्गुल्या तर्जयति।]

अनसूया—तो सुनिए आर्य! बहुत दिनों की बात है। गौतमी (गोदावरी) के तट पर बैठे हुए वे राजर्षि एक बार घोर तपस्या कर रहे थे। ऐसा कहा जाता है कि उनके तप से कुढ़कर देवताओं ने उनका तप डिगाने के लिये मेनका नाम की अप्सरा भेजी।

राजा—हाँ, यह तो है ही। औरों की तपस्या देखकर देवता लोग कुढ़ा ही करते हैं।

अनसूया—तो वसन्त के आरम्भ में उसका मदभरा यौवन देखकर [आधा कहकर लजा जाती है।]

राजा—बस-बस आगे मैं समझ गया। तो ये सचमुच अप्सरा की कन्या हैं।

अनसूया—जी हाँ।

राजा—ठीक भी है। नहीं तो मनुष्यों में भला ऐसा रूप कहाँ मिल पाता है। चञ्चल चमकवाली बिजली पृथ्वी तल से थोड़े ही निकला करती है।।24।।

[शकुन्तला सिर झुका लेती है]

राजा—[मन ही मन] चलो, मेरे मनोरथ को कुछ सहारा तो मिला। पर इसकी सखी प्रियंवदा ने हँसी-हँसी में कुछ इसके वर मिलने की भी बात कही थी। इसी से मेरा मन अभी दुविधा में ही पड़ा हुआ है।

प्रियंवदा—[मुस्कराकर पहले शकुन्तला की ओर फिर राजा की ओर देखकर।] क्या आर्य कुछ और भी पूछना चाहते हैं?

[शकुन्तला सखी को उँगली से तरजती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—सम्यगुपलक्षितं भवत्या। अस्ति नः सच्चरितश्रवणलोभादन्यदपि प्रष्टव्यम्।

प्रियंवदा—अलं विआरिअ। अणिअन्तणाणुओओ तवस्सिअणो णाम। (अलं विचार्य अनियन्त्रणानुयोगस्तपस्विजनो नाम।)

राजा—इति सखीं ते ज्ञातुमिच्छामि—

वैखानसं किमनया व्रतमाप्रदानाद्व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम्।
अत्यन्तमेव मदिरेक्षणवल्लभाभिराहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभिः।। 25।।

प्रियंवदा—अज्ज! धम्माचरणे वि परवसो अअं जणो। गुरुणो उण से अणुरूववरप्पदाणे संकप्पो। (आर्य! धर्माचरणेऽपि परवशोऽयं जनः। गुरोः पुनरस्या अनुरूपवरप्रदाने संकल्पः।)

राजा—[आत्मगतम्] न दुरवापेयं खलु प्रार्थना।

भव हृदय साभिलाषं संप्रति संदेहनिर्णयो जातः।
आशङ्कसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम्।। 26।।

शकुन्तला—[सरोषमिव] अणसूए गमिस्सं अहं। (अनसूये! गमिष्याम्यहम्।)

अनसूया—किं णिमित्तं। (किं निमित्तम्)

शकुन्तला—इमं असंबद्धप्पलाविणि पिअंवदं अज्जाए गोदमीए णिवेदइस्सं। (इमामसंबद्धप्रलापिनीं प्रियंवदामार्यायै गौतम्यै निवेदयिष्यामि।)

राजा—आपने हमारे मन की बात ठीक समझ ली है। इनकी सुन्दर कथा सुनने के लोभ से हम कुछ और पूछना चाहते हैं।

प्रियंवदा—तो संकोच न कीजिए! तपस्वियों से तो आप बिना झिझक के कुछ भी पूछ सकते हैं।

राजा—आपकी सखी के सम्बन्ध में हम यह जानना चाहते हैं कि—इन्होंने कामदेव की गति को रोकनेवाला यह जो तपस्वियों का-सा वेश बनाया है वह विवाह होने तक ही रहेगा, अथवा ये अपना सारा जीवन, मदभरी आँखों के कारण प्यारी लगनेवाली हिरणियों के बीच में रहकर यों ही बिता डालेगी।।25।।

प्रियंवदा—आर्य! धर्म के काम भी यह अपने मन से नहीं कर सकती। फिर भी पिताजी का संकल्प है कि यदि इसके योग्य वर मिल जायेगा तो विवाह कर देंगे।

राजा—[मन ही मन] इस सङ्कल्प का पूरा होना तो कठिन नहीं है। हृदय, तू आशा न छोड़। जो दुविधा थी वह तो जाती रही, क्योंकि जिसे तू अग्नि समझकर छूने से डरता था वह तो छूने के योग्य रत्न निकल आया।।26।।

शकुन्तला—[खीझकर] अनसूया, मैं चली जा रही हूँ।

अनसूया—क्यों? क्यों?

शकुन्तला—इस अटपट बकनेवाली प्रियंवदा की सारी बातें जाकर आर्या गौतमी से कहती हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनसूया—सहि, ण जुत्तं अस्समवासिणो अकिदसक्कारं अदिहिविसेसं विसज्जिअ सच्छन्ददो गमणं। (सखि न युक्तमकृतसत्कारमतिथिविशेषं विसृज्य स्वच्छन्दतो गमनम्।)

[शकुन्तला न किंचिदुक्त्वा प्रस्थितैव।]

राजा—[स्वगतम्] आः कथं गच्छति। [ग्रहीतुमिच्छन्निग्रह्यात्मानम्]

अनुयास्यन्मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः।
स्थानादनुच्चलनपि गत्वेव पुनः प्रतिनिवृत्तः।। 27।।

प्रियंवदा—[शकुन्तलां निरुध्य] हला ण दे जुत्तं गन्तुं। (हला न ते युक्तं गन्तुम्।)

शकुन्तला—[सभ्रूभङ्गम्] किं णिमित्तं। [किं निमित्तम्।]

प्रियंवदा—रुक्खसेअणे दुबे धारेसि मे। एहि जाव अत्ताणं मोचिअ तदो गमिस्ससि। (वृक्षसेचने द्वेधारयसि मे। एहि तावत् आत्मानं मोचयित्वा ततो गमिष्यसि।)

[इति बलादेनां निवर्तयति]

राजा—भद्रे! वृक्षसेचनादेव परिश्रान्तामत्रभवतीं लक्षये। तथा ह्यस्याः—

स्रस्तांसावतिमात्रलोहिततलौ बाहू घटोत्क्षेपणा-
दद्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः।
बद्धं कर्णशिरीषरोधि वदने घर्माम्भसां जालकं,
बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्याकुला मूर्धजाः।। 28।।

तदहमेनामनृणां करोमि। [इत्यंगुलीयं दातुमिच्छति।]

[उभे नाममुद्राक्षराण्यनुवाच्य परस्परमवलोकयतः।]

अनसूया—सखी, ऐसे बड़े अतिथि का सत्कार किए बिना उन्हें छोड़कर ऐसे चले जाना अच्छा नहीं है।

[शकुन्तला बिना उत्तर दिए चलने को प्रस्तुत होती है।]

राजा—[मन ही मन] अरे, जाती क्यों हो? [उसे रोकने को उठते हैं, फिर अपने को रोक लेते हैं।] इस मुनि-कन्या के पीछे जाते-जाते लाज के कारण मैं सहसा रुक गया हूँ और यद्यपि मैं अपने स्थान से हिला तक नहीं, फिर भी मुझे ऐसा लग रहा है मानो मैं कुछ दूर चलकर लौट आया हूँ।।27।।

प्रियंवदा—[शकुन्तला को रोककर।] सखी तुम्हारा इस प्रकार चल देना ठीक नहीं है।

शकुन्तला—[भौंह चढ़ाकर] क्यों?

प्रियंवदा—क्योंकि तुम अभी दो पौधे और सींचने का काम मुझे हार चुकी हो अपना ऋण चुका लेना तब जाना।

राजा—भद्रे, पौधों को सींचने से ही तो आपकी सखी थकी हुई दिखाई पड़ रही हैं। क्योंकि—घड़े उठाते-उठाते इनके कन्धे ढीले पड़ गए हैं, हथेलियाँ लाल हो गई हैं, इनके बार-बार उठते हुए स्तन बता रहे हैं कि थकान से इनकी साँस फूल गई हैं, कानों में पहने हुए सिरस के फूल भी नहीं हिल रहे हैं; क्योंकि पसीने की बूंदों से उनकी पंखड़ियाँ गालों पर चिपक गई हैं और जूड़े के खुल जाने से ये अपनी बिखरी हुई लटें एक हाथ से किसी-किसी प्रकार सँभाल पा रही हैं।।28।। इसलिए लीजिए इनका ऋण मैं चुकाए देता हूँ। [अपनी अँगूठी देना चाहता है। दुष्यन्त का नाम अँगूठी पर पढ़कर दोनों एक दूसरी को देखती हैं।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—अलमस्मानन्यथा संभाव्य। राज्ञः परिग्रहोऽयमिति राजपुरुषं मामवगच्छथ।

प्रियंवदा—तेण हि णारिहदि इदं अंगुलीअअं अंगुलिविओअं। अज्जस्स वअणेण अणिरिणा वाणिं एसा। [किंचिद्विहस्य] हला सउन्दले मोइदासि अणुअम्पिणा अज्जेण अहवा महाराएण। गच्छ दाणिं। (तेन हि नार्हत्येतदंगुलीयकमंगुलिवियोगम्। आर्यस्य वचनेनानृणा इदानीमेषा। हला शकुन्तले! मोचितास्यनुकंम्पिना आर्येण अथवा महाराजेन। गच्छेदानीम्।)

शकुन्तला—[आत्मगतम्] जइ अत्तणो पहविस्सं [प्रकाशम्] का तुमं विसज्जिदव्वस्स रुन्धिदव्वस वा। (यद्यात्मनः प्रभविष्यामि। का त्वां विसर्जितव्यस्य रोद्धव्यस्य वा।)

राजा—[शकुन्तलां विलोक्य आत्मगतम्] किं नु खलु यथा वयमस्यामेवमियमप्यस्मान्प्रति स्यात्। अथवा लब्धावकाशा मे प्रार्थना। कुतः।

वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः कर्णं ददात्यभिमुखं मयि भाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदाननसंमुखीयं भूयिष्टमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः।। 29।।

[नेपथ्ये]

भो भोस्तपस्विनः संनिहितास्तपोवनसत्त्वरक्षायै भवत। प्रत्यासन्नः किल मृगयाविहारी पार्थिवो दुष्यन्तः।

तुरगखुरहतस्तथा हि रेणुर्विटपनिषक्तजलार्द्रवल्कलेषु।
पतति परिणतारुणप्रकाशः शलभसमूह इवाश्रमद्रुमेषु।। 30।।

राजा—मुझे आप कोई और न समझ बैठिएगा। यहह अँगूठी मुझे राजा से पुरस्कार में मिली है। मुझे आप लोग राज-पुरुष ही समझिए।

प्रियंवदा—तब तो इस अँगूठी को आपकी उँगली से अलग करना ठीक नहीं है। आपके कहने ही से इसका ऋण चुकता हो गया। शकुन्तला! इनकी या यों कहो कि महाराज की कृपा से तुम ऋण से मुक्त हो गई हो। अब जा सकती हो।

शकुन्तला—[मन ही मन।] अपना मन हाथ में हो तब तो जाऊँ। [प्रकट।] मुझे जाने देनेवाली या रोकनेवाली तुम होती कौन हो?

राजा—[शकुन्तला को देखकर आप ही आप] कहीं यह भी तो हम पर वैसे ही नहीं रीझ गई है, जैसे हम इस पर रीझे हैं? या फिर जान पड़ता है कि हमारे मनोरथों के फलने के दिन आ गए। क्योंकि—यद्यपि यह स्वयं मुझसे बातचीत नहीं करती फिर भी जब मैं बोलने लगता हूँ तब कान लगाकर मेरी बातें सुनने लगती हैं और यद्यपि मेरे सामने यह मुँह करके नहीं बैठती फिर भी इसकी आँख मुझपर ही लगी रहती हैं।

[नेपथ्य में]

हे तपस्वियों! आकर तपोवन के प्राणियों को बचाओ। आखेट का प्रेमी राजा दुष्यन्त पास ही आ पहुँचा है। उसके घोड़ों की टापों से उठी हुई और साँझ की ललाई के समान लाल-लाल धूल टिड्डी दल के समान उड़कर आश्रम के उन वृक्षों पर फैल रही है। जिनकी शाखाओं पर गीले वल्कल के वस्त्र फैलाए हुए हैं।।30।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपि च–

तीव्राघातप्रतिहततरुः स्कन्धलग्नैकदन्तः
पादाकृष्टव्रततिवलयासङ्गसंजातपाशः ।
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्न सारङ्गयूथो
धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः ।। 31 ।।

[सर्वाः कर्णं दत्वा किंचिदिव संभ्रान्ताः ।]

राजा–[आत्मगतम्] अहो धिक्। सैनिका अस्मदन्वेषिणस्तपोवनमुपरुन्धन्ति। भवतु। प्रतिगमिष्यामस्तावत्।

सख्यौ–अज्ज इमिणा आरण्यअवुत्तन्तेण पज्जाउल म्ह। अणुजाणीहि णो उडअगमणस्स। (आर्य अनेनारण्यकवृत्तान्तेन पर्याकुलाः स्मः। अनुजानीहि न उटजगमनाय।)

राजा–[ससंभ्रमम्] गच्छन्तु भवत्यः। वयमप्याश्रमपीडा यथा न भवति तथा प्रयतिष्यामहे।

[सर्वे उत्तिष्ठन्ति।]

सख्यौ–अज्ज असंभवाविदअदिहिसक्कारं भूओ वि पेक्खणणिमित्तं लज्जेमो अज्जं विण्णुविदुं।

(आर्य असंभावितातिथिसत्कारं भूयोऽपि प्रेक्षणनिमत्तं लज्जावहे आर्य विज्ञापयितुम्।)

राजा–मा मैवम्। दर्शनेनैव भवतीनां पुरस्कृतोऽस्मि।

[शकुन्तला राजानमवलोकयन्ती सव्याजं विलम्ब्य सह सखीभ्यां निष्क्रान्ता।]

और देखो–राजा के रथ से डरा हुआ यह जंगली हाथी हमारी तपस्या के लिये साक्षात् विघ्न बना हुआ हिरणों के झुण्ड को तितर-बितर करता हुआ तपोवन में घुसा चला आ रहा है। इसने अपनी करारी टक्कर से एक वृक्ष उखाड़ लिया है, जिसमें उसका एक दाँत फँसा हुआ है। और टूटी हुई लताएँ फन्दे के समान उसके पैरों में उलझी हुई हैं। ।31 ।।

[सब कुमारियाँ सुनकर कुछ घबरा जाती हैं]

राजा–[मन ही मन] अरे, धिक्कार है इन सैनिकों को। जान पड़ता है हमें ढूँढ़ने के लिये ये तपोवन को रौंद डाल रहे हैं। अब हमें उधर चलना ही चाहिए।

दोनों–आर्य! इस जंगली हाथी की बात सुनकर हम लोग डर गई हैं। हमें कुटी में जाने की आज्ञा दीजिए।

राजा–[शीघ्रतापूर्वक] आप लोग चलें। मैं भी प्रयत्न करता हूँ कि तपोवन में विघ्न न हो।

दोनों–आर्य! हम लोगों ने आपका कुछ भी सत्कार नहीं किया इसलिये–[सब उठती हैं।] आर्य से यह प्रार्थना करते हुए बड़ा संकोच हो रहा है कि हमें फिर दर्शन दें।

राजा–नहीं, ऐसा न कहिए। आप लोगों के दर्शन से ही हमारा सत्कार हो गया।

[शकुन्तला राजा को देखती हुइ कुशा चुभने और शाखा में धोती फँसने का बहाना करके थोड़ा रुकती है और फिर सखियों के साथ चल देती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति यावदनुयात्रिकान्समेत्य नातिदूरे तपोवनस्य निवेशयेयम्। न खलु शक्नोमि शकुन्तलाव्यापारादात्मानं निवर्तयितुम्। मम हि—

गच्छतिः पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य।। 32।।

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे।]

इति प्रथमोऽङ्कः

राजा—नगर में जाने का सारा उत्साह ठंडा पड़ गया है। इसलिये आश्रम के पास ही सैनिकों के साथ डेरा डाल देता हूँ। जान पड़ता है कि शकुन्तला के इस प्रेम-व्यापार से मैं छुटकारा न पा सकूँगा। क्योंकि—जैसे पवन के सामने झण्डा ले चलने पर उसकी रेशमी झण्डी पीछे को फहराती चलती है वैसे ही ज्यों-ज्यों मेरा शरीर आगे बढ़ता चलता है, त्यों-त्यों मेरा चञ्चल मन पीछे को दौड़ता चलता है।

[सबका प्रस्थान।]

पहला अंक समाप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीयोऽङ्कः

[ततः प्रविशति विषण्णो विदूषकः ।]

विदूषकः—[निःश्वस्य] भो दिट्ठं एदस्स मअआसीलस्स रण्णो वअस्सभावेण णिव्विण्णो म्हि। अअं मओ अअं वराहो अहं सद्दूलोत्ति मज्झण्णे वि गिम्हविरअपाअवच्छाआसु वणराईसु आहिण्डीअदि अडवीदो अडवी। पत्तसंकरकसाआइँ कडुआइँ गिरिणईजलाइँ पीअन्ति अणिअदवेलं सुल्लमंसभूइट्ठो आहारो। अण्हीअदि तुरगाणुधावणकण्डिदसंधिणो रत्तिम्मि वि णिकामं सइदव्वं णत्थि। तदो महन्ते एव्व पच्चूसे दासीएपुत्तेहिं सउणिलुद्धएहिं वणग्गहणकोलाहलेण पडिबोधिदो म्हि। एत्तएण दाणिं वि पीडा ण णिक्कमदि। तदो गण्डस्स उवरि पिण्डआ संवुत्तो। हिओ किल अम्हेसु ओहीणेसु तत्तहोदो मआणुसारेण अस्समपदं पविठ्ठस्स तावसकण्णआ सउन्दला मम अधण्णदाए दंसिता। संपदं णअरगमणस्स मणं कहं वि ण करेदि। अज्ज वि से तं एव्व चिन्तअन्तस्स अक्खीसु पभादं आसि। का गदी। जाव णं किदाचारपरिक्कमं पेक्खामि। [इति परिक्रम्यावलोक्य च] एसो बाणासणहत्थाहिं जवणीहिं वणपुप्फमालाधारिणीहिं पडिवुदो इदो एव्व आअक्छदि पिअवअस्सो। होदु। अङ्गभङ्गविअलो विअ भविअ चिट्ठिस्सं। जइ एव्वं वि णाम विस्समं लहेअं।

(भो दृष्टम्। एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन निर्विण्णोऽस्मि। अयं मृगोऽयं वराहोऽयं शार्दूल इति मध्यान्हेऽपि ग्रीष्मविरलपादपछायासु वनराजीष्वाहिण्ड्यतेऽटवीतोऽटवी पत्रसंकरकषायाणि कटूनि गिरिनदीजलानि पीयन्ते। अनियतवेलं शूल्यमांसभूयिष्ठ आहारो

द्वितीय अङ्क

[उदास मन से विदूषक का प्रवेश।]

विदूषक—[लम्बी साँस भरता हुआ] बस देख लिया। इस अहेरी राजा की मित्रता से तो जी घवरा उठा है। भरी दुपहरी में भी एक वन से दूसरे वन में भटकते हुए उन जंगली प्रदेशों में होकर चलना पड़ता है जहाँ गर्मी के कारण पेड़ों में छाँह तक नहीं रह गई है और दिन-रात यही हल्ला कान फोड़ डालता है—वह मृग आया, वह सूअर निकला, यह रहा सिंह। फिर, सड़े हुए पत्तों से मिले हुए जलवाली नदियों का कसैला और कड़ुवा पानी पीना पड़ता है और अवेर-सवेर लोहे की सीखों पर भुना हुआ माँस खाने को मिलता है। घोड़े के पीछे दौड़ते-दौड़ते शरीर के जोड़-जोड़ ऐसे ढीले पड़ गए हैं कि रात में आँख भी ठीक नहीं लग पाती। तिस पर ये दासी-पुत्र चिड़ीमार तड़के-तड़के चलो वन को, चलो वन को—चिल्ला-चिल्लाकर ऐसा हल्ला मचाते हैं कि आई-अवाई नींद उचट जाती है। अभी यह विपत्ति टली नहीं थी कि उधर फोड़े के ऊपर फुन्सी के समान दूसरी विपत्ति आ धमकी है। सुनते हैं कि हम लोगों का साथ छूट जाने पर मृग का पीछा करते-करते राजा भी तपस्वियों के आश्रम में जा पहुँचे। वहाँ मेरे दुर्भाग्य से उन्हें मुनि-कन्या शकुन्तला दिखाई दे गई। अब किसी भी प्रकार उनका मन नगर लौटने को करता ही नहीं। आज भी रातभर उसी की चिन्ता में जागते हुए उनकी आँखों ने सवेरा कर दिया। क्या करूँ। चलूँ, वे नित्य-कर्म कर चुके हों तो उनसे दो बातें करूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भुज्यते तुरगानुधावन कण्डितसंधे रात्रावपि निकामं शयितव्यं नास्ति। ततो महत्येव **प्रत्यूषे** दास्याःपुत्रैः शकुनिलुब्धकैर्वन-ग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि। इयतेदानीमपि पीडा न निष्क्रामति। ततो गण्डस्योपरि पिण्डकः संवृत्तः। ह्यः किलास्मास्ववहीनेषु तत्रभवतो मृगानुसारेणाश्रमपदं प्रविष्टस्य तापसकन्यका शकुन्तला ममाधन्यतया दर्शिता। सांप्रतं नगरगमनस्य मनः कथमपि न करोति। अद्यापि तस्य तामेव चिन्तयतोऽक्ष्णोः प्रभातमासीत्। का गतिः यावत्तं कृताचारपरिक्रमं पश्यामि। एष बाणासनहस्ताभिर्यवनीभिर्वन- पुष्पमालाधारिणीभिः परिवृत इत एवागच्छति प्रियवयस्यः। भवतु। अङ्गभङ्गविकल इव भूत्वा स्थास्यामि। यद्येवमपि नाम विश्रामं लभेय।)

[इति दण्डकाष्ठमवलम्ब्य स्थितः।]

[ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टपरिवारो राजा।]

राजा–

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि।
अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते।। 1।।

[स्मितं कृत्वा] एवामात्माभिप्रायसंभावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विडम्ब्यते। तथा हि–

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्या तया
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव।
मा गा इत्युपरुद्धया यदपि सा सासूयमुक्ता सखी
सर्वं तत्किल मत्यपरायणमहो कामी स्वतां पश्यति।। 2।।

[घूमकर और देखकर।] अरे, मेरे मित्र तो इधर ही चले आ रहे हैं जिनके साथ हाथ में धनुष लिए और गले में जंगली फूलों की माला पहने हुए बहुत-सी यवनी सेविकाएँ भी चली आ रही हैं। अच्छी बात है, मैं भी लुंज-पुंज-सा बनकर खड़ा हो जाता हूँ। कौन जाने इसी प्रकार थोड़ा विश्राम मिल जाय। [लाठी टेककर खड़ा हो जाता है।]

[जैसा ऊपर कहा गया है, उस प्रकार सेविकाओं के साथ राजा का प्रवेश।]

राजा–यद्यपि प्यारी का मिलना है तो बड़ा कठिन, पर उसकी चाल-ढाल से मन को बड़ा सहारा मिल रहा है। हम दोनों का मिलन भले ही न हो पर इतना तो सन्तोष है कि मिलने का चाव दोनों ओर एक सा है।।1।। [मुसकराकर] जो प्रेमी अपनी प्रियतमा के मन को अपने मन से परखता है, वह इसी प्रकार धोखा खाता है। और देखो–जब वह आँखें घुमाती थी, तब मैं समझता था कि उसने मुझपर ही प्यार-भरी चितवन डाली है। नितम्बों के भारी होने के कारण जब वह धीरे-धीरे चलती थी तब मैं समझता था कि वह मुझे अपनी चटक-मटक भरी चाल दिखा रही है। जब उसकी सखियों ने उसे जाने से रोका उस समय अपनी सखियों पर जो वह लाल-पीली हुई, तब मैं समझा कि यह सब मेरे ही प्रेम के लिये हो रहा है। आह, कामी को सब बातें अपने ही मन की दिखाई दिखाई पड़ती हैं।।2।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—[तथास्थित एव] भो वअस्स ण मे हत्थपाआ पसरन्ति। ता वाआमात्तेएण जई करीयसि। जेदु जेदु भवं (भो वयस्य! न मे हस्तपादाः प्रसरन्ति। तद् वाचामात्रेण जयीक्रियते। जयतु जयतु भवान्।

राजा—कुतोऽयं गात्रोपघातः।

विदूषकः—कुदो किल सअं अच्छी आउलीकरिअ अस्सुकारणं पुच्छेसि। (कुतः किल स्वयमक्ष्याकुलीकृत्याश्रुकारणं पृच्छसि।)

राजा—न खल्ववगच्छामि।

विदूषकः—भो वअस्स जं वेदसो कुज्जलीलं विडंबेदि तं किं अत्तणो पहावेण उद णईवेअस्स। (भो वयस्य! यद्वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयति तत्किमात्मनः प्रभावेण उत नदीवेगस्य।)

राजा—नदीवेगस्तत्र कारणम्।

विदूषकः—मम वि भवं। (ममापि भवान्)

राजा—कथमिव।

विदूषकः—एव्वं राअकज्जाणि उज्झिअ तारिसे आउलप्पदेसे वणचरवुत्तिणा तुए होदव्वं। जं सच्चं पच्चहं सावदसमुच्छारणेहिं संखोहिअसंधिबन्धाणं मम गत्ताणं अणीसो म्हि संवुत्तो। ता पसादइस्सं विसज्जिदुं मं एक्काहं वि दाव विस्समिदुं। (एवं राजकार्याण्युज्झित्वा तादृशे आकुलप्रदेशे वनचरवृत्तिना त्वया भवितव्यम्। यत्सत्यं प्रत्यहं श्वापदसमुत्सारणैः संक्षौभितसंधिबन्धानां मम गात्राणामनीशोऽस्मि संवृत्तः। तत्प्रसादयिष्यामि विसर्जितुं मामेकाहमपि तावद्विश्रमितुम्।)

विदूषक—[उसी मुद्रा में खड़ा हुआ] मेरे हाथ-पैर तो खुल नहीं रहे हैं, इसलिये मैं केवल मुँह से ही आपकी जय-जयकार मनाता हूँ। आपकी जय हो।

राजा—यह अंग-भंग कैसे हो गया?

विदूषक—कैसे क्या? आँखों में उँगली कोंचकर पूछ रहे हैं कि आँसू कहाँ से आए?

राजा—मैं तो कुछ भी नहीं समझ पाया।

विदूषक—अच्छा मित्र, यह तो बताइए कि नदी में जो बेंत की लता कुबड़ी बनी खड़ी रहती है, वह अपने मन से वैसी रहती है या नदी के वेग के कारण?

राजा—नदी का वेग ही उसका कारण है।

विदूषक—तो मेरे अंग-भंग के भी आप ही कारण हैं।

राजा—कैसे?

विदूषक—आप तो सब राज्य-कार्य छोड़कर इस बीहड़ प्रदेश में जंगलियों के समान घूम रहे हैं, यहाँ जंगली जन्तुओं का पीछा करते-करते मेरे अंगों के जोड़ ऐसे टूट गए हैं कि हिला भी नहीं जाता। अब आप कृपा करके मुझे तो कम से कम एक दिन विश्राम करने की आज्ञा दे ही दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—[स्वगतम्] अयं चैवमाह। ममापि कण्वसुतामनुस्मृत्य मृगयाविक्लवं चेतः। कुतः—

न नमयितुमधिज्यमस्मि शक्तो धनुरिदमाहितसायकं मृगेषु।
सहवसतिमुपेत्य यैः प्रियायाः कृत इव मुग्धविलोकितोपदेशः।। 3।।

विदूषकः—[राज्ञो मुखं विलोक्य] अत्तभवं किं वि हिअए करिअ मन्तेदि। अरण्णे मए रुदिअं आसि। (अत्रभवान्किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयते। अरण्ये मया रुदितमासीत्।)

राजा—[सस्मितम्] किमन्यत् अनतिक्रमणीयं मे सुहृद्वाक्यमिति स्थितोऽस्मि।

विदूषकः—चिरं जीअ। (चिरं जीव।) [इति गन्तुमिच्छति।]

राजा—वयस्य तिष्ठ। सावशेषं मे वचः।

विदूषकः—आणवेदु भवं (आज्ञापयतु भवान्)

राजा—विश्रान्तेन भवता ममाप्यनायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम्।

विदूषकः—किं मोदअखण्डिआए तेण हि अअं सुगहीदो खणो। (किं मोदकखण्डिकायाम्। तेन ह्ययं सुगृहीतः क्षणः।)

राजा—यत्र वक्ष्यामि। कः कोऽत्र भोः।

[प्रविश्य]

दौवारिकः—[प्रणम्य] आणवेदु भट्टा। (आज्ञापयतु भर्ता।)

राजा—रैवतक! सेनापतिस्तावदाहूयताम्।

राजा—[मन ही मन] इधर यह भी कह रहा है, उधर कण्व की कन्या का ध्यान करते-करते मेरा मन भी आखेट से ऊब चला है। क्योंकि—जिन हिरणों ने शकुन्तला के साथ रहकर उसे भोली चितवन सिखाई है उन्हें मारने के लिए यह बाण चढ़ाया हुआ धनुष मुझसे खींचते ही नहीं बनता।।3।।

विदूषक—[राजा का मुँह देखकर] आप तो न जाने क्या मन ही मन बड़बड़ा रहे हैं। मैं इतना सब क्या जंगल में ही रोता रहा?

राजा—[मुसकराकर] नहीं, नहीं, मैं भी यही सोच रहा था कि मित्र की बात टालनी नहीं चाहिए। इसीलिये मैं चुप हो गया।

विदूषक—जीते रहिए। [जाना चाहता है।]

राजा—ठहरो मित्र, अभी मेरी बात पूरी कहाँ हुई है?

विदूषक—वह भी कह डालिए, महाराज।

राजा—देखो, विश्राम कर चुको तो आकर मेरे भी एक काम में सहायता देना जिसमें तुम्हें कहीं आना-जाना नहीं पड़ेगा।

विदूषक—क्या लड्डू खाने हैं? उसके लिए इससे बढ़कर और कौन-सा ठीक अवसर होगा।

राजा—ठहरो, बताता हूँ। अरे, कौन है?

दौवारिक—[आकर प्रणाम करके] आज्ञा कीजिए स्वामी।

राजा—रैवतक! सेनापति को बुला लाओ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दौवारिकः—तह। [इति निष्क्रम्य सेनापतिना सह पुनः प्रविश्य] **एसो अण्णावअणुक्कण्ठो भट्टा इदो दिण्णविट्ठी एव्व चिट्ठदि। उवसप्पदु अज्जो।** (तथा। एषआज्ञा वचनोत्कण्ठो भर्ता इतो दत्तदृष्टिरेव तिष्ठति। उपसर्पत्वार्यः।)

सेनापतिः—[राजानमवलोक्य स्वगतम्] दृष्टदोषाऽपि स्वामिनि मृगया केवलं गुण एव संवृत्ता। तथा हि देवः—

अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वं रविकिरणसहिष्णु स्वेदलेशैरभिन्नम्।
अपचितमपि गात्रं व्यायतत्वादलक्ष्यं गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्ति।। 4।।

[उपेत्य] जयतु जयतु स्वामी गृहीतश्वापदमरण्यम्। किमद्याप्यवस्थीयते।

राजा—मन्दोत्साहः कृतोऽस्मि मृगयापवादिना माढव्येन।

सेनापतिः—[जनान्तिकम्] सखे स्थिरप्रतिबन्धो भव। अहं तावत्स्वामिनश्चित्त-वृत्तिमनुवर्तिष्ये। [प्रकाशम्] प्रलपत्वेष वैधेयः। ननु प्रभरेव निदर्शनम्।

मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः।
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।
उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः।। 5।।

दौवारिक—अच्छा। [बाहर जाकर सेनापति को साथ लिए लौट आता है।] **यह** सामने इधर दृष्टि किए हुए स्वामी बैठे हैं और कुछ आज्ञा देने ही वाले हैं। **आगे बढ़** चलिए आर्य।

सेनापति—[राजा को देखकर, मन ही मन] लोग आखेट को इतना बुरा बताते हैं, पर स्वामी को तो इससे बड़ा लाभ हुआ है। क्योंकि—पहाड़ों में घूमनेवाले हाथी के समान बलवान् शरीर के आगे का भाग निरन्तर धनुष की डोरी खींचने से ऐसा कड़ा हो गया है कि उस पर न तो धूप का ही प्रभाव पड़ता है और न पसीना ही छूटता है। बहुत दौड़-धूप से यद्यपि ये दुवले पड़ गए हैं पर पुट्ठों के पक्के होने के कारण दुबलापन दिखाई नहीं पड़ता।।4।। [पास जाकर] स्वामी की जय हो। हमने आखेट के पशुओं को वन में घेर लिया है। अब विलम्ब किसलिये है?

राजा—इस आखेट के निन्दक माढव्य ने मेरा सारा उत्साह ठण्डा कर दिया है।

सेनापति—[अलग विदूषक से] अच्छा मित्र, तुम भी डटकर विरोध करो, और मैं भी देखो स्वामी के मन को कैसे पलट देता हूँ। [प्रकट] इस मूर्ख को बकने दीजिए महाराज! स्वामी ही स्वयं देख रहे हैं कि—आखेट से चर्बी घट जाती है, तोंद छूट जाती है, शरीर हलका और फुर्तीला हो जाता है, पशुओं के मुँह पर जो भय और क्रोध दिखाई देता है उसका ज्ञान हो जाता है और चलते हुए लक्ष्यों पर बाण चलाने में हाथ सध जाते हैं, जो धनुषधारियों के लिये बड़े गौरव की बात है। लोग झूठ-मूठ ही आखेट को बुरा बताते हैं, इतना मन बहलाव और मिल कहाँ सकता है।।5।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—अवेहि रे उत्साहहेतुअ अत्तभवं पकिदिं आपण्णो। तुमं दाव अडवीदो अडवीं आहिण्डन्तो णरणासिआलोलुवस्स जिण्णरिच्छस्स कस्स वि मुहे पडिस्ससि।

(अपेहि रे उत्साहहेतुक अत्रभवान्प्रकृतिमापन्नः। त्वं तावदटवीतोऽटवीमाहिण्डमानो नरनासिकालोलुपस्य जीर्णर्क्षस्य कस्यापि मुखे पतिष्यसि।)

राजा—भद्र सेनापते आश्रमसंनिकृष्टे स्थिताः स्मः। अतस्ते वचो नाभिनन्दामि। अद्य तावत्—

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु।
विश्रब्धं क्रियतां वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रामं लभतामिदं च शिथिलज्यावन्धमस्मद्धनुः।।6।।

सेनापतिः—यत् प्रभविष्णवे रोचते।

राजा—तेन हि निवर्तय पूर्वगतान्वनग्राहिणः। यथा न मे सैनिकास्तपोवनमुपरुन्धन्ति तथा निषेद्धव्याः पश्य—

शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद्वमन्ति।।7।।

सेनापतिः—यथाज्ञापयति स्वामी।

विदूषकः—धंसदु दे उच्छाहवुत्तन्तो। (ध्वंसतां ते उत्साहवृत्तान्तः।)

विदूषक—अरे चल-चल उत्साह दिखानेवाले! अब महाराज फिर मनुष्य बन गए हैं। तुझे तो एक दिन इसी प्रकार इस वन से उस वन में घूम-घूमकर आखेट करते-करते कभी न कभी मनुष्य की नाक के लोभी किसी बूढ़े भालू के मुँह में पड़ना ही है।

राजा—भद्र सेनापति! देखो, हम लोग तपोवन के पास ठहरे हुए हैं। इसलिये तुम्हारी बात इस समय मुझे जँच नहीं रही है। आज तो—भैंसों को छोड़ दो कि वे अपनी सींगों से पानी को हिलोरते हुए तालों में तैरें, हिरणों के झुण्ड पेड़ों की घनी छाया में घेरा बनाकर बैठे जुगाली करें, बड़े-बड़े सूअर निडर होकर छिछले तालों में नागर मोथे की जड़ें खोदें और मेरे धनुष की ढीली डोरी भी कुछ देर विश्राम कर ले।।6।।

सेनापति—जैसी महाराज की इच्छा।

राजा—तो जिन हँकवों को आगे भेज दिया है, उन्हें लौटा लो और सैनिकों को समझा देना कि क़ोई ऐसा काम न कर बैठें, जिससे तपोवन के काम में बाधा पड़े। देखो—सूर्य-कान्तमणि यों तो छून में ठण्डी लगती है पर जब सूर्य उसपर अपना प्रकाश है, तब वह भी आग उगलने लगती है। उसी प्रकार ऋषि लोग यद्यपि बड़े शान्त होते हैं पर उनमें इतना तेज भी होता है कि यदि कोई उन्हें कष्ट दे तो उसे जलाकर भस्म भी कर दें।।7।।

सेनापति—जैसी स्वामी की आज्ञा।

विदूषक—नाश हो तुम्हारी उत्साह की बातों का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[निष्क्रान्तः सेनापतिः ।]

राजा—[परिजनं विलोक्य] अपनयन्तु भवन्तो मृगयावेषम्। रैवतक! त्वमपि स्वं नियोगमशून्यं कुरु।

परिजनः—जं देवो आणवेदि। (यद्देव आज्ञापयति)। [इति निष्क्रान्तः ।]

विदूषकः—किदं भवदा णिम्मच्छिअं संपदं एदस्सिं पादवच्छाआए विरइदलदाविदाणदंसणी आसणे णिसीददु भवं जाव अहं वि सुहासीणो होमि। (कृतं भवता निर्मक्षिकम्। सांप्रतमेतस्यां पादपच्छायायां विरचितलतावितानदर्शनीयायामासने निषीदतु भवान् यावदहमपि सुखासीनो भवामि।)

राजा—गच्छाग्रतः।

विदूषकः—एदु भवं। (एतु भवान्।)

[इत्युभौ परिक्रम्योपविष्टौ।]

राजा—माधव्य! अनवाप्तचक्षुःफलोऽसि येन त्वया दर्शनीयं न दृष्टम्।

विदूषकः—णं भवं अग्गदो मे वट्टदि। (ननु भवानग्रतो मे वर्तते।)

राजा—सर्वः खलु कान्तमात्मानं पश्यति। अहं तु तामाश्रमललामभूतां शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि।

विदूषकः—[स्वगतम्] होदु। से अवसरं ण दाइस्सं। [प्रकाशम्] भो वअस्स ते तावस-कण्णआ अब्भत्थणीआ दीसदि। (भवतु। अस्यावसरं न दास्ये। भो वयस्य ते तापसकन्यकाऽभ्यर्थनीया दृश्यते।)

[सेनापति चला जाता है।]

राजा—[अपने सेवकों को देखकर] अब तुम लोग भी अपने आखेट के कपड़े उतार डालो। और रैवतक! जाओ, तुम भी अपना काम देखो।

सेवक—जैसी देव की आज्ञा। [सब जाते हैं।]

विदूषक—चलो अच्छा किया जो सब मक्खियाँ भगा दीं आपने। अब चालिए, वृक्षों की घनी छायावाले लता-मण्डप के नीचे सुन्दर आसन पर आप भी चलकर बैठिए, और मैं भी सुस्ता लेता हूँ।

राजा—अच्छा, चलो आगे-आगे।

विदूषक—आप भी आइए।

[दोनों घूमकर बैठले हैं।]

राजा—माढव्य! यदि तुमने देखने के योग्य वस्तुएँ नहीं देखीं, तो आँख होने से तुम्हें लाभ ही क्या हुआ?

विदूषक—आप तो मेरी आँखों के आगे रहते हैं!

राजा—अपने को तो सभी सुन्दर समझते हैं, पर इस समय तो मैं शकुन्तला की बात कह रहा हूँ जो इस आश्रम की शोभा है।

विदूषक—[आप ही आप] अच्छा, मैं इस बात को यहीं काटे देता हूँ [प्रकट] क्यों मित्र, जान पड़ता है कि उस तपसी की कन्या पर आप लट्टू हो गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—सखे न परिहार्ये वस्तुनि पौरवाणां मनः प्रवर्तते।

सुरयुवतिसंभवं किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम्।
अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम्।।8।।

विदूषकः—[विहस्य] जब कस्स वि पिण्डखज्जूरेहिं उव्वेजिदस्स तिन्तिणीए अहिलासो भवे तह इत्थिआरअणपरिभाविणो भवदो इअं अब्भत्थणा (यथा कस्यापि पिण्डखर्जूररुद्वेजितस्य तिन्तिण्यामभिलाषो भवेत् तथा स्त्रीरत्नपरिभाविनो भवत इयमभ्यर्थना।)

राजा—न तावदेनां पश्यसि येनैवमवादीः।

विदूषकः—तं क्खु रमणिज्जं जं भवदो विम्हअं उप्पादेदि (तत्खलु रमणीयं यद्भवतोऽपि विस्मयमुत्पादयति।)

राजा—वयस्य! किं बहुना।

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।।9।।

विदूषकः—जइ एव्वं पच्चादेसो दाणिं रूववदीणां।
(यद्येवम् प्रत्यादेश इदानीं रूपवतीनाम्।)

राजा—इदं च मे मनसि वर्तते—

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।

राजा—मित्र! पुरुवंशियों का मन कुपंथ की ओर बढ़ता ही नहीं है—सुना है, उसकी माँ कोई अप्सरा थी। वह जब इसे वन में छोड़कर चली गई, तब कण्व मुनि इसे उठा लाए। यह ठीक ऐसा ही हुआ मानो नवमल्लिका का फूल अपनी डाली से स्खलित होकर मदार पर आ गिरा हो।।8।।

विदूषक—[हँसकर] जैसे कोई मीठा छुहारा खाते-खाते ऊबकर इमली पर टूट पड़े, वैसे ही आप भी रनिवास की एक-से-एक बढ़कर सुन्दरियों को भुलाकर इसपर लट्टू हो उठे हैं।

राजा—तुमने अभी उसे देखा नहीं है, इसीलिये ऐसा कह रहे हो।

विदूषक—तो ठीक है। जब आप भी उसे देखकर सुध-बुध भूले बैठे हैं, तब वह सचमुच रूपवती होगी।

राजा—मित्र! और तो क्या कहूँ। तुम बस यही समझ लो कि—ब्रह्मा ने जब उसे बनाया होगा, तब पहले उसका चित्र बनाकर या मन में संसार की सभी सुन्दरियों के रूपों को इकट्ठा करके उनमें प्राण डाले होंगे। क्योंकि ब्रह्मा की कुशलता और शकुन्तला की सुन्दरता दोनों पर बार-बार विचार करने से यही जान पड़ता है कि यह कोई निराले ही ढंग की सुन्दरी उन्होंने गढ़ी है।।9।।

विदूषक—ऐसी बात है, तब तो इसने सभी सुन्दरियों को परास्त कर दिया।

राजा—मेरी समझ में तो उसका रूप वैसा ही पवित्र है जैसा बिना सूँघा हुआ फूल,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।। 10।।

विदूषकः—तेण हि लहु परित्ताअदु णं भवं। मा कस्सवि तवस्सिणो इङ्गुदीतेल्लमिस्सचिक्कणसीस्सस्स आरण्णअस्स हत्थे पडिस्सदि। (तेन हि लघु परित्रायतामेनां भवान्। मा कस्यापि तपस्विन इङ्गुदीतैलमिश्रचिक्कणशीर्षस्य हस्ते पतिष्यति।)

राजा—परवती खलु तत्रभवती। न च संनिहितोऽत्र गुरुजनः।

विदूषकः—अत्तभवन्तं अन्तरेण कीदिसो से दिट्ठिराओ। (अत्रभवन्तमन्तरेण कीदृशस्तस्या दृष्टिरागः।)

राजा—वयस्य। निसर्गादेवाप्रगल्भस्तपस्विकन्याजनः। तथापि तु—

अभिमुखे मयि संहृतमीक्षितं हसितमन्यनिमित्तकृतोदयम्।
विनयवारितवृत्तिरतस्तया न विवृतो मदनो न च संवृतः।। 11।।

विदूषकः—[विहस्य] णं क्खु दिट्ठमेत्तस्स तुह अकं समारोहदि। (न खलु दृष्टमात्रस्य तवाङ्कं समारोहति।)

राजा—मिथः प्रस्थाने पुनः शालीनतयाऽपि काममाविष्कृतो भावस्तत्रभवत्या। तथा हि—

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा।

नखों से अछूते पत्ते, बिना बिंधा हुआ रत्न, बिना चखा हुआ नया मधु और बिना भोगा हुआ पुण्यों का फल। पर यह नहीं समझ में आता कि इस रूप को भोगने के लिये ब्रह्मा ने किसे चुन रखा है।।10।।

विदूषक—तब आप इसे चटपट हथिया लीजिए, नहीं तो कहीं हिंगोट के तेल से चिकनी खोपड़ी वाले किसी तपस्वी के हाथ में न जा पड़े।

राजा—अरे! इसमें उसके वश की बात थोड़े ही है, और फिर उसके पिता भी तो यहाँ नहीं हैं।

विदूषक—अच्छा, यह तो बताओ कि वह तुम्हारी ओर किस भाव से देख रही थी।

राजा—मित्र! ऋषियों की कन्याएँ स्वभाव से ही बड़ी भोली-भाली होती है। फिर भी—जब मैं उसकी ओर मुँह करता था, तब वह आँखें चुरा लेती थी और किसी न किसी बहाने हँस भी देती थी। वह शील से इतनी दबी हुई थी कि न तो वह अपने प्रेम को छिपा ही पा रही थी और न खुलकर प्रकट ही कर पा रही थी।।11।।

विदूषक—[हँसकर] तो क्या वह आपको देखते ही आपकी गोद में आकर बैठ जाती।

राजा—अरे सुनो तो। जब वह जाने लगी, उस समय शिष्टता की रक्षा करते हुए भी उसने अपना प्रेम जता ही दिया। क्योंकि—कुछ दूर चलने पर वह सुन्दरी सहसा यह कहकर रुक गई—अरे, मेरे पाँव में कुश का काँटा चुभ गया है। यद्यपि उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसीद्विवृत्तवदना च विमोचयन्ती
शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम् ।। 12 ।।

विदूषकः—तेण हि गहीदपाहेओ होहि। किदं तुए उववणो तवोवणं त्ति पेक्खामि। (तेन हि गृहीतपाथेयो भव। कृतं त्वयोपवनं तपोवनमिति पश्यामि।)

राजा—सखे तपस्विभिः कैश्चित्परिज्ञातोऽस्मि। चिन्तय तावत्केनापदेशेन सकृदप्याश्रमे वसामः।

विदूषकः—को अवरो अवदेसो तुह रण्णो। णीवारच्छट्ठभाअं अह्माणं उवहरन्तु त्ति। (कोऽपरोऽपदेशस्तव राज्ञः। नीवारषष्ठभागमस्माकमुपहरन्त्विति।)

राजा—मूर्ख अन्यद्भागधेयमेतेषां रक्षणे निपतति यद्रत्नराशीनपि विहायाभिनन्द्यम्। पश्य—

यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तत्फलम्।
तपःषड्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यका हि नः ।। 13 ।।

[नेपथ्ये]

हन्त सिद्धार्थौ स्वः।

राजा—[कर्णं दत्त्वा] अये धीरप्रशान्तस्वरैस्तपस्विभिर्भवितव्यम्।

[प्रविश्य]

वल्कल कहीं उलझा नहीं था, फिर भी धीरे-धीरे वल्कल सुलझाने का बहाना करके वह मेरी ओर देखती हुई कुछ देर खड़ी रह गई।।12।।

विदूषक—तब आप अपना साज-समाज सब यहीं मँगा लीजिए, क्योंकि मैं देख रहा हूँ कि आप इस तपोवन को एकदम प्रमोदवन बनाए डाल रहे हैं।

राजा—मित्र! कुछ ऋषि मुझे पहचान गए हैं। अब सोच-विचारकर कोई ऐसा उपाय बताओ कि कम से कम एक बार तो किसी बहाने आश्रम में हो आऊँ।

विदूषक—आप राजाओं के लिये कोई बहाना बनाने की क्या आवश्यकता है? जाकर यही कहिए कि आप लोग राज-कर के रूप में हमें तिन्नी का छठा भाग दे डालिए।

राजा—तू तो एकदम मूर्ख है। अरे, इन ऋषियों की रक्षा के बदले तो हमें ऐसा अनूठा कर मिलता है जिसके आगे रत्नों का ढेर भी तुच्छ है। देखो—चारों वर्णों से राजाओं को जो कर मिलता है उसका फल तो नष्ट हो जाता है, पर ये वनवासी ऋषि लोग अपने तप का जो छठा भाग हमें देते हैं वह कभी नष्ट नही होता।।13।।

[नेपथ्य में]

अहा, हम लोगों के सब काम पूरे हो गए।

राजा—[कान लगाकर] अरे, यह गम्भीर और शान्त स्वर तो ऋषियों-सा जान पड़ता है।

[प्रवेश करके]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दौवारिकः—जेदु जेदु भट्टा। एदे दुवे इसिकुमारआ पडिहारभूमिं उवट्ठिदा। (जयतु जयुत भर्ता। एतौ द्वौ ऋषिकुमारौ प्रतिहारभूमिमुपस्थितौ।)

राजा—तेन ह्यविलम्बितं प्रवेशय तौ।

दौवारिकः—एसो पवेसेमि। [इति निष्क्रम्य, ऋषिकुमाराभ्यां सह प्रविश्य] इदो इदो भवन्तौ। (एष प्रवेशयामि। इत इतो भवन्तौ।)

[उभौ राजानं विलोकयतः।]

प्रथमः—अहो दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयताऽस्य वपुषः अथवोपपन्नमेतदृषिभ्यो नातिभिन्ने राजनि। कुतः।

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाऽप्याश्रमे सर्वभोग्ये।
रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं संचिनोति।
अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः
पुण्यः शव्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः।। 14।।

द्वितीयः—गौतम! अयं स बलभित्सखो दुष्यन्तः?

प्रथमः—अथ किम्।

द्वितीयः—तेन हि—

नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्री-
मेकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुवाहुर्भुनक्ति।

द्वारपाल—महाराज की जय हो। दो ऋषिकुमार द्वार पर पधारे हैं।

राजा—उन्हें तुरंत यहाँ ले आओ।

द्वारपाल—अभी लाया। [प्रस्थान करके और ऋषिकुमारों को साथ लेकर फिर प्रवेश।] इधर से आइए भगवन्, इधर से।

[दोनों राजा को देखते हैं।]

पहला—अहा! ये इतने तेजस्वी हैं कि इन्हें देखकर हमारे मन को बड़ा भरोसा मिल रहा है। क्यों न हो—! ये राजा भी तो ऋषियों के समान ही रहते हैं। जैसे ऋषि लोग आश्रम में रहते हैं वैसे ही ये भी अपना नगर छोड़कर सबको सुख देनेवाले इस आश्रम में आ टिके हैं। अपनी प्रजा की रक्षा करके ये भी नित्य तपस्या ही करते हैं। और चारण-चारणियाँ जो इन जितेन्द्रिय राजर्षि के गीत गाती हैं, वे गीत प्रायः स्वर्ग तक सुनाई पड़ते हैं।।14।।

दूसरा—गौतम! क्या इन्द्र के मित्र राजा दुष्यन्त ये ही हैं?

पहला—हाँ ये ही हैं।

दूसरा—इसीलिये हमें यह देखकर तनिक भी आश्चर्य नहीं है कि नीले समुद्र से घिरी हुई सारी पृथ्वी पर ये नगर के फाटक की अगरी के समान अपनी लम्बी भुजाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशंसन्ते सुरयुवतयो बद्धवैरा हि दैत्यै-
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरुहूते च वज्रे।। 15।।

उभौ—[उपगम्य] विजयस्व राजन्।

राजा—[आसनादुत्थाय] अभिवादये भवन्तौ।

उभौ—स्वस्ति भवते। [इति फलान्युपहरतः।]

राजा—[सप्रणामं परिगृह्य] आज्ञापयितुमिच्छामि।

उभौ—विदितो भवानाश्रमसदामिहस्थः। तेन भवन्तं प्रार्थयन्ते।

राजा—किमाज्ञापयन्ति।

उभौ—तत्रभवतः कण्वस्य महर्षेरसांनिध्याद्रक्षांसि न इष्टिविघ्नमुत्पादयन्ति। तत्कतिपयरात्रं सारथिद्वितीयेन भवता सनाथीक्रियतामाश्रम इति।

राजा—अनुगृहीतोऽस्मि।

विदूषकः—[अपवार्य] एसा दाणिं अणुऊला ते अब्भत्थणा। (एषेदानीमनुकूला तेऽभ्यर्थना।)

राजा—[स्मितं कृत्वा] रैवतक! मद्वचनादुच्यतां सारथिः सबाणसनं रथमुपस्थापयेति।

दौवारिकः—जं देवो आणवेदि। (यद्देव आज्ञापयति) [इति निष्क्रान्तः।]

उभौ—[सहर्षम्]—

से अकेले शासन करते हैं और दैत्यों से बैर बाँधनेवाली, देवताओं की स्त्रियाँ इन्हीं के चढ़े हुए धनुष और इन्द्र के वज्र पर अपने विजय की आशा बाँधे रखती हैं।।15।।

दोनों—[पास जाकर] राजन्, आपकी जय हो।

राजा—[आसन से उठकर] आप लोगों को प्रणाम करता हूँ।

दोनों—आपका कल्याण हो। [फल भेंट करते हैं।]

राजा—[प्रणाम करके फल लेकर] आज्ञा कीजिए।

दोनों—सब आश्रमवासी जान गए हैं कि आप यहाँ ठहरे हुए हैं। इसलिए उनकी प्रार्थना है।

राजा—क्या आज्ञा है उनकी?

दोनों—उन्होंने कहलवाया है कि आदरणीय महर्षि कण्व के न रहने के कारण राक्षस लोग हमारे यज्ञ में बड़ा विघ्न डाल रहे हैं। इसलिये आप अपने सारथी के साथ यहाँ कुछ रातें बिताकर इस आश्रम को सनाथ करें।

राजा—बड़ी कृपा है उनकी।

विदूषक—[अलग] यही तो आप चाहते भी थे।

राजा—[मुस्कराकर] रैवतक! सारथी से कहना कि रथ और धनुष-बाण लेता आये।

द्वारपाल—जो आज्ञा महाराज की। [प्रस्थान]

दोनों—[प्रसन्न होकर] राजन्! आप वही कर रहे हैं जो आपके पूर्वज करते आये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुकारिणि पूर्वेषां युक्तरूपमिदं त्वयि।
आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु पौरवाः।। 16।।

राजा—[सप्रणामम्] गच्छतां पुरो भवन्तौ। अहमप्यनुपदमागत एव।

उभौ—विजयस्व। [इति निष्क्रान्तौ]

राजा—माढव्य। अप्यस्ति शकुन्तलादर्शने कुतूहलम्।

विदूषकः—**पढमं सपरीवाहं आसि दाणिं रक्खसवुत्तन्तेण बिन्दू वि णावसेसिदो** (प्रथमं सपरीवाहमासीत्। इदानीं राक्षसवृत्तान्तेन बिन्दुरपि नावशेषितः।)

राजा—मा भैषीः। ननु मत्समीपे वर्तिष्यसे।

विदूषकः—**एस रक्खसादो रक्खिदो म्हि** (एष राक्षसाद्रक्षितोऽस्मि)

[प्रविश्य]

दौवारिकः—**सज्जो रधो भट्टिणो विजअप्पत्थाणां अवेक्खदि। एस उण णअरादो देवीणं आणत्तिहरओ करभओ आअदो।** (सज्जो रथो भर्तुविजयप्रस्थानमपेक्षते। एष पुनर्नगराद्देवीनामाज्ञप्तिहरः करभक आगतः।

राजा—[सादरम्] किमम्बाभिः प्रेषितः।

दौवारिक—अहं इं। [अथ किम्।]

राजा—ननु प्रवेश्यताम्।

दौवारिकः—तह। [इति निष्क्रम्य करभकेण सह प्रविश्य] **एसो भट्टा। उवसप्प।** (तथा। एष भर्ता। उपसर्प।)

आश्रम की रक्षा करना तो आपका धर्म ही है; क्योंकि यह बात सभी जानते हैं कि शरण में आये हुए लोगों को अभयदान देने में पुरुवंशी कभी पीछे नहीं हटते।।16।।

राजा—आप लोग चलिए। मैं भी आ रहा हूँ।

दोनों—आपकी विजय हो। [प्रस्थान]

राजा—माढव्य! क्या शकुन्तला को देखने की कुछ इच्छा है?

विदूषक—पहले तो इच्छा की बाढ़ आ गई थी, पर जबसे राक्षसों का नाम सुना तबसे रक्त की बूँद भर भी नहीं रह गई है।

राजा—डरो मत। तुम्हें हम अपने साथ रक्खेंगे।

विदूषक—हाँ, तब तो राक्षसों से प्राण बचे रहेंगे।

द्वारपाल—[प्रवेश करके] महाराज! रथ तैयार है और आपकी विजय-यात्रा के लिये चलने की प्रतीक्षा कर रहा है। और हाँ, राजमाता की आज्ञा लेकर नगर से करभक भी आया है।

राजा—[आदर के साथ] क्या माता जी ने भेजा है?

द्वारपाल—जी हाँ।

राजा—तो उसे यहाँ ले आओ।

द्वारपाल—जो आज्ञा। [प्रस्थान। करभक को साथ लेकर फिर प्रवेश।] महाराज ये बैठे हैं। आगे बढ़ जाओ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करभकः—जेतु भट्टा। देवी आणवेदि—आआमिणि चउत्थदिअहे पउत्तपारणे मे उववासो भविस्सदि। तहिं दीहाउणा अवस्सं संभाविदव्वा त्ति। (जयतु भर्ता। देव्याज्ञापयति—आगामिनि चतुर्थदिवसे प्रवृत्तपारणो मे उपवासो भविष्यति। तत्र दीर्घायुषाऽवश्यं संभावितव्येति।)

राजा—इतस्तपस्विकार्यम् उतो गुरुजनाज्ञा। द्वयमप्यनतिक्रमणीयम्। किमत्र प्रतिविधेयम्।

विदूषकः—तिशङ्कू विअ अन्तरले चिट्ठ। (त्रिशङ्कुरिवान्तराले तिष्ठ।)

राजा—सत्यमाकुलीभूतोऽस्मि—

कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद् द्वैधी भवति मे मनः।
पुरः प्रतिहतं शैले स्रोतः स्रोतोवहो यथा।। 17।।

[विचन्त्य] सखे त्वमम्बया पुत्र इति प्रतिगृहीतः। अतो भवानितः प्रतिनिवृत्य तपस्विकार्यव्यग्रमानसं मामावेद्य तत्रभवतीनां पुत्रकृत्यमनुष्ठातुमर्हति।

विदूषकः—ण क्खु मं रक्खोभीरुअं गणेसि। (न खलु मां रक्षोभीरुकं गणयसि।)

राजा—[सस्मितम्] कथमेतद्भवति संभाव्यते।

विदूषकः—जह राआणुएण गन्तव्वं तह गच्छामि। (यथा राजानुजेन गन्तव्यं तथा गच्छामि।)

राजा—ननु तपोवनोपरोधः परिहरणीय इति सर्वानानुयात्रिकाँस्त्वयैव सह प्रस्थापयामि।

करभक—महाराज की विजय हो। माताजी ने कहलाया है कि आज से चौथे दिन मेरे व्रत का पारण होगा। उस अवसर पर चिरञ्जीव भी अवश्य उपस्थित रहें।

राजा—इधर तो ऋषियों का काम, उधर बड़ों की आज्ञा। दोनों ही नहीं टाले जा सकते। क्या करूँ?

विदूषक—त्रिशंकु के समान बीच में लटक जाओ।

राजा—मैं तो सचमुच बड़ी उलझन में पड़ गया हूँ। क्या बताऊँ? दोनों कार्य दो अलग-अलग स्थानों में पड़ रहे हैं। इसलिये इस समय दुविधा में पड़े हुए मन की वही दशा हो रही है जो पहाड़ से रुकी हुई नदी की धारा की होती है।।17।। [सोचकर] मित्र! देखो! माताजी तुम्हें भी पुत्र के ही समान मानती हैं। इसलिये तुम जाओ और माताजी से कह देना कि मैं ऋषियों की रक्षा में लगा हुआ हूँ और वहाँ जो कुछ मेरे करने का काम हो, सब तुम्हीं कर डालना।

विदूषक—यह न समझिए कि मैं राक्षसों से डरता हूँ।

राजा—[मुस्कराकर] भला तुम्हारे विषय में क्या कभी ऐसा सोचा भी जा सकता है?

विदूषक—तो मैं वैसे ही ठाट-बाट से जाऊँगा, जैसे राजा का छोटा भाई जाता है।

राजा—ठीक है। जहाँ तक हो तपोवन से सब बखेड़ा दूर ही रखना चाहिए। इसलिये सेना को भी तुम्हारे ही साथ भेज देता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—[सगर्वम्] तेण हि जुवराओ म्हि दाणिं संवुत्तो। [तेन हि युवराजोऽस्मीदानीं संवृत्तः।]

राजा—[स्वगतम्] चपलोऽयं बटुः। कदाचिदस्मत्प्रार्थनामन्तःपुरेभ्यः कथयेत्। भवतु। एनमेवं वक्ष्ये—[विदूषकं हस्ते गृहीत्वा प्रकाशम्] वयस्य ऋषिगौरवादाश्रमं गच्छामि। न खलु सत्यमेव तापसकन्यकायां ममाभिलाषः। पश्य—

क्वं वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः सममेधितो जनः।
परिहासविजल्पितं सखे परमार्थेन न गृह्यतां वचः।।18।।

विदूषकः—अह इं। (अथ किम्।)

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे।]

इति द्वितीयोऽङ्कः।

विदूषक—तब तो इस समय मैं युवराज ही बन गया हूँ!

राजा—[मन ही मन] यह ब्राह्मण बड़ा नटखट है। कहीं यह रनिवास में जाकर मेरी सब बातें न कह डाले। अच्छा, इसे यों समझाता हूँ—[विदूषक का हाथ पकड़कर। प्रकट] मित्र, मैं ऋषियों का बड़ा आदर करता हूँ, इसीलिये उनके आश्रम में जाया करता हूँ। और उस ऋषिकन्या के लिये तो मेरे मन में तनिक भी प्रेम नहीं है। क्योंकि—कहाँ तो हम, और कहाँ प्रेम की बातों से एकदम अनजान, मृगछौने के साथ पली हुई वह कन्या। मित्र, हमने हँसी में जो इतनी बातें तुमसे कही हैं, उन्हें तुम सत्य न समझ बैठना।।18।।

विदूषक—नहीं, नहीं, ठीक है।

[सब चले जाते हैं।]

दूसरा अंक समाप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीयोऽङ्कः

[ततः प्रविशति कुशानादाय यजमानशिष्यः।]

शिष्यः—अहो महानुभावः पार्थिवो दुष्यन्तः प्रविष्टमात्रे एवाश्रमं तत्रभवति राजनि निरुपद्रवाणि नः कर्माणि प्रवृत्तानि भवन्ति।

का कथा बाणसंधाने ज्याशब्देनैव दूरतः।
हुंकारेणेव धनुषः स हि विघ्नानपोहति।। 1 ।।

यावदिमान्वेदिसंस्तरणार्थं दर्भानृत्विग्भ्य उपनयामि [परिक्रम्यावलोक्य च आकाशे] प्रियंवदे कस्येदमुशीरानुलेपनं मृणालवन्ति च नलिनीपत्राणि नीयन्ते। [आकर्ण्य] किं ब्रवीषि। आतपलङ्घनाद्बलवदस्वस्था शकुन्तला तस्याः शरीररनिर्वापणायेति। तर्हि त्वरितं गम्यताम्। सा खलु भगवतः कण्वस्य कुलपतेरुच्छ्वसितम्। अहमपि तावद्वैतानिकं शान्त्युदकमस्यै गौतमीहस्ते विसर्जयिष्यामि। [इति निष्क्रान्तः।]

इति विष्कम्भकः।

तृतीय अङ्क

[हाथ में कुशा लिए हुए कण्व के शिष्य का प्रवेश।]

शिष्य—महाराज दुष्यन्त का प्रताप तो देखिए कि जबसे वे आश्रम में पधारे हैं तभी से हमारे सब काम बेरोक-टोक होते चले जा रहे हैं—बाण चढ़ाने की तो बात ही क्या, केवल अपने धनुष की टंकार से ही वे विघ्नों को दूर भगा देते हैं।।1।। तो चलूँ, ऋत्विजों के लिये वेदी पर बिछाने की कुशा ले जाकर पहुँचा आऊँ। [घूमकर आकाश की ओर देखते हुए।] अरी प्रियंवदा, ये डंठलवाले कमल के पत्ते और खस मिला हुआ लेप किसके लिये ले जा रही हो। [सुनने का नाट्य करते हुए] क्या कहा कि शकुन्तला लू लग जाने से बड़ी बेचैन हो गई है, उसके शरीर को ठंडक पहुँचाने के लिये ही यह सब ले जा रही हूँ। तो तुरन्त जाओ; क्योंकि वह भगवान् कुलपति कण्व के प्राण के समान है। मैं भी तब तक उसके लिये गौतमी के हाथ से यज्ञ का शान्ति-जल भेजता हूँ। [प्रस्थान]

विष्कम्भक समाप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[ततः प्रविशति कामयमानावस्थो राजा।]

राजा—[सचिन्तं निःश्वस्य]

जाने तपसो वीर्यं सा बाला परवतीति मे विदितम्।
अलमस्मि ततो हृदयं तथापि नेदं निवर्तयितुम्।।2।।

[मदनबाधां निरूप्य] भगवन्कुसुमायुध! त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयाभ्यामतिसंधीयते कामिजनसार्थः। कुतः—

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोर्द्वयमिदमयथार्थदृश्यते मद्विधेषु।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखैस्त्वमपि कुसुमबाणान्वज्रसारीकरोषि।।3।।

अथवा

अनिशमपि मकरकेतुर्मनसो रुजमावहन्नभिमतो मे।
यदि मदिरायतनयनां तामधिकृत्य प्रहरतीति।।4।।

[सखेदं परिक्रम्य] क्व नु खलु संस्थिते कर्मणि सदस्यैरनुज्ञातः श्रमक्लान्तमात्मानं विनोदयामि। [निःश्वस्य] किं नु खलु मे प्रियादर्शनादृते शरणमन्यत्। यावदेनामन्विष्यामि। [सूर्यमवलोक्य] इमामुग्रातपवेलां प्रायेणलतावलयवत्सु मालिनीतीरेषु ससखीजना शकुन्तला गमयति। तत्रैव तावद्गच्छामि [परिक्रम्य संस्पर्शं रूपयित्वा] अहो प्रवातसुभगोऽयमुद्देशः।

[काम से पीड़ित अवस्था में राजा दुष्यन्त का प्रवेश।]

राजा—[उसाँसें भरकर।] मैं तपस्वियों की शक्ति भली-भाँति पहचानता हूँ, इसलिये मैं उसे हरकर भी नहीं ले जा सकता और यह भी जानता हूँ कि विवाह करना न करना उस कुमारी के हाथों में नहीं है; इसलिये वह स्वयं भी मेरे साथ नहीं जा सकती। फिर भी न जाने क्या बात है कि मैं अपना मन उसपर से हटा ही नहीं पा रहा हूँ।।3।। [काम पीड़ा का नाट्य करते हुए।]—हे फूलों के धनुष-बाण धारण करनेवाले कामदेव! तुमने और चन्द्रमा ने उन सब कामियों को बड़ा धोखा दिया है, जो तुमपर विश्वास किए बैठे थे; क्योंकि—तुम्हारा फूलों के बाणवाला कहा जाना और चन्द्रमा का ठण्डी किरणोंवाला कहा जाना, ये दोनों बातें मुझ जैसे विरहियों को झूठी ही जान पड़ती है, क्योंकि चन्द्रमा तो अपनी ठण्डी किरणों से आग बरसा रहा है और तुमने भी अपने फूल के बाणों में वज्र की कठोरता भर ली है।।3।। पर यदि तुम मदभरी और बड़ी-बड़ी आँखोंवाली उस शकुन्तला के कारण मेरा जी बार-बार दुखाए जा रहे हो तो तुम ठीक ही कर रहे हो।।4।। [दुखी होकर घूमता हुआ] यज्ञ-पूर्ण हो पर जब ऋषि लोग मुझे विदा कर देंगे, तब मैं अपने दुखी प्राण लेकर कहाँ मन बहलाऊँगा। [ठण्डी साँस भरकर] प्रिया का दर्शन छोड़कर अब और दूसरा सहारा क्या है? चलूँ उसी को ढूँढूँ। [सूर्य को देखकर] ऐसी दुपहरी में शकुन्तला अपनी सखियों के साथ मालिनी के तट पर बने लतामण्डपों में ही जाकर प्रायः बैठा करती है। मैं वहीं चलता हूँ।] घूमकर और वायु का स्पर्श होने का अभिनय करता हुआ] वाह, यहाँ कैसा अच्छा पवन बह रहा है।—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्यमरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनीतरङ्गाणाम्।
अङ्गैरनङ्गतप्तैरविरलमालिङ्गितुं पवनः।।5।।

[परिक्रम्यावलोक्य च] अस्मिन्वेतसपरिक्षिप्ते लतामण्डपे संनिहितया शकुन्तलया भवितव्यम्। तथा [अधो विलोक्य]–

अभ्युन्नता पुरस्तादवगाढा जघनगौरवात्पश्चात्।
द्वारेऽस्य पाण्डुसिकते पदपंक्तिर्दृश्यतेऽभिनवा।।6।।

यावद्विटपान्तरेणावलोकयामि। [परिक्रम्य तथा कृत्वा। सहर्षम्] अये लब्धं नेत्रनिर्वाणम्। एषा मे मनोरथप्रियतमा सुकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयाना सखीभ्यामन्वास्यते। भवतु। श्रोष्याम्यासां विस्रम्भकथितानि। [इति विलोकयन् स्थितः।]

[ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तलः।]

सख्यौ–[उपवीज्य सस्नेहम्] हला सउन्दले! अवि सुहेदि दे णलिणीपत्तवादो? (हला शकुन्तले अपि सुखयति ते नलिनीपत्रवातः?)

शकुन्तला–किं वीअन्ति मं सहीओ। (किं वीजयतो मां सख्यौ।)

[सख्यौ विषादं नाटयित्वा परस्परमवलोकयतः।)

राजा–बलवदस्वस्थशरीरा शकुन्तला दृश्यते। [सवितर्कम्] तत्किमयमातपदोषः स्यात् उत यथा मे मनसि वर्तते [साभिलाषं निर्वर्ण्य] अथवा कृतं संदेहेन।

कमल में बसा हुआ और मालिनी की लहरों की फुहारों से लदा हुआ यह पवन, काम से तपे हुए अंगों को बड़ा सुहावना लग रहा है।।5।। [घूमकर और देखकर] बेंतों से घिरे हुए इस लतामण्डप में ही कहीं शकुन्तला बैठी होनी चाहिए। क्योंकि [नीचे देखकर] इस कुंज के द्वार पर पीली रेती में भारी नितंबवाली सखियों के पैरों के नये पड़े हुए चिह्न दिखाई दे रहे हैं, जो एड़ी की ओर गहरे और आगे की ओर उठे हुए हैं।।6।। अच्छा! इन वृक्षों की ओट से देखता हूँ। [घूमकर और प्रसन्न होकर] वाह! मेरी आँखें ठण्डी हो गईं। मेरी प्यारी यहाँ सुन्दर फूलों के बिछौनेवाली पत्थर की पटिया पर लेटी हुई है और दोनों सखियाँ इसकी सेवा कर रही हैं। अच्छा! अब सुनूँ तो कि ये आपस में क्या बातें करती हैं। [खड़ा होकर सुनता है।]

[जैसा ऊपर कहा गया है, उस दशा में शकुन्तला के साथ सखियाँ दिखाई देती हैं।]

सखियाँ–[बड़े प्यार से पंखा झलती हुई] क्यों सखी शकुन्तला! कमल के पत्तों के झलने से कुछ ठण्डक मिल रही है?

शकुन्तला–सखियों! क्या तुम मुझे पंखा झल रही थीं?

[सखियाँ दुखी होने का अभिनय करती हुई एक दूसरी को देखती हैं।]

राजा–शकुन्तला तो बड़ी बेचैन दिखाई पड़ रही है। [सोचकर] क्या इसे लू लग गई है? या कहीं ऐसा न हो कि जो दशा मेरे मन की हो रही है, वही इसके मन की भी हो। [ललचाई आँखों से देखता हुआ] पर सन्देह किया ही क्यों जाय? क्योंकि–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तनन्यस्तोशीरं शिथिलितमृणालैकवलयं
प्रियायाः साबाधं किमपि कमनीयं वपुरिदम्
समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसरयो
र्नतु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु।। 7।।

प्रियंवदा–[जनान्तिकम्] अणसूए तस्स राएसिणो पढमदंसणादो आरहिअ पज्जुस्सुआ विअ सउन्दला। किं णु क्खु से तण्णिमित्तो अअं आतङ्को भवे। (अनसूये तस्य राजर्षेः प्रथमदर्शनादारभ्य पर्युत्सुकेव शकुन्तला। किं नु खलु तस्यास्तन्निमित्तोऽयमातङ्को भवेत्।)

अनसूया–सहि मम वि ईदिसी आसङ्का हिअस्स। होदु। पुच्छिस्सं दाव णं। [प्रकाशम्] सहि पुच्छिदव्वासि किं पि। बलवं क्खु दे संदावो। (सखि समापीदृश्याशङ्का हृदस्य। भवतु। प्रक्ष्यामि तावदेनाम्। सखि प्रष्टव्याऽसि किमपि। बलवान्खलु ते संतापः।)

शकुन्तला–[पूर्वार्धेन शयनादुत्थाय] हला किं वत्तुकामासि? (हला किं वक्तुकामासि?)

अनसूया–हला सउन्दले! अणब्भन्तरा क्खु अम्हे मदणगदस्स वुत्तन्तस्स। किंदु जादिसी इतिहासणिबन्धेसु कामअमाणाणं अवत्था सुणीअदि तादिसीं दे पेक्खामि। कहेहि किंणिमित्तं संदावो। विआरं क्खु परमत्थदो अजाणिअ अणारम्भो पडिआरस्स। (हला शकुन्तले! अनभ्यन्तरे खल्वावां मदनगतस्य वृत्तान्तस्य। किंतु यादृशी इतिहासनिबन्धेषु कामयमानानामवस्था श्रूयते तादृशीं ते पश्यामि। कथय किं निमित्तं ते संतापः। विकारं खलु परमार्थतः अज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य।)

इसके स्तनों पर खस का लेप लगा हुआ है और एक हाथ में कमल की नाल का ढीला कंगन बँधा हुआ है। पर इतनी बेचैन होने पर इसका शरीर कुछ कम सुन्दर नहीं लग रहा है। यद्यपि लू लगने पर प्रेम में पड़ने पर बेचैनी एक-सी ही होती है, किन्तु लू लग जाने पर युवतियों में इतनी सुन्दरता नहीं रह जाती।।7।।

प्रियंवदा–[अलग] अनसूया! जबसे शकुन्तला ने उस राजर्पि को देखा है, तभी से यह उनपर लट्टू हो गई है। कौन जाने यह बेचैनी उन्हीं के कारण हो।

अनसूया–सखी! मैं भी कुछ ऐसी ही बात सोचती हूँ। अच्छा! इसी से पूछकर देखती हूँ। [प्रकट] सखी, मैं तुमसे कुछ पूछना चाहती हूँ। देखो, तुम्हारी बेचनी बहुत बढ़ चली है।

शकुन्तला–[बिछौने पर आधी उठकर] क्या पूछना चाहती हो सखी?

अनसूया–शकुन्तला! हम लोग प्रेम की बातें तो कुछ जानती नहीं हैं फिर भी कथा-कहानियों में हमने प्रेमियों की जो बातें सुनी हैं, ठीक वैसी ही दशा तुम्हारी भी दिखाई पड़ रही है। तो बताओ तुम किसके लिये इतनी बेचैन हो? क्योंकि जब तक रोग का पता न चले तब तक उसका उपाय कैसे किया जा सकता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—अनसूयामप्यनुगतो मदीयस्तर्कः न हि स्वाभिप्रायेण मे दर्शनम्।

शकुन्तला—[आत्मगतम्] बलवं क्खु मे अहिणिवेसो। दाणिं वि सहसा एदाणं ण सक्कणोमि णिवेदिदुं। (बलवान्खलु मेऽभिनिवेशः। इदानीमपि सहसैतयोर्न शक्नोमि निवेदयितुम्।)

प्रियंवदा—सहि सउन्दले! सुट्ठु एसा भणादि किं अत्तणो आतङ्कं उवेक्खसि। अणुदिअहं क्खु परिहिअसि अङ्गेहिं। केवलं लावण्णमई छाआ तुमं ण मुञ्चदि। (सखि शकुन्तले! सुष्ठु एषा भणति। किमात्मन आतङ्कमुपेक्षसे। अनुदिवस खलु परिहीयसेऽङ्गैः। केवलं लावण्यमयी छाया त्वां न मुञ्चति।)

राजा—अवितथमाह प्रियंवदा तथा हि—

क्षामक्षामकपोलमाननमुरः कठिन्यमुक्तस्तनं
मध्यः क्लान्ततरः प्रकामविनतावंसौ छविः पाण्डुरा।
शोच्या च प्रियदर्शना मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते।
पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी।।8।।

शकुन्तला—सहि कस्स वा अण्णस्स कहइस्सं। आआसइत्तिआ दाणिं वो भविस्सं। (सखि कस्य वाऽन्यस्य कथयिष्यामि। आयासयित्रीदानीं वां भविष्यामि।)

उभे—अदो एव्व क्खु णिब्बन्धो। सिणिद्धजणसंविभत्तं हि दुक्खं सज्झवेदणं होदि (अत एव अत खलु निर्बन्धः। स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुखं सह्यवेदनं भवति।)

राजा—मैं जो बात समझ रहा था वही अनसूया भी सोच रही है। तो मैंने जो कुछ सोचा था वह केवल मेरे मन की ही बात नहीं थी।

शकुन्तला—[मन ही मन] सचमुच मेरा प्रेम बहुत आगे तक बढ़ गया है और मुझसे एकाएक कुछ कहते नहीं बन रहा है।

प्रियंवदा—सखी शकुन्तला! अनसूया ठीक कह रही है। तुम क्यों अपना रोग बढ़ाती जा रही हो। दिन पर दिन तुम इतनी सूखती चली जा रही हो कि तुम्हारे शरीर पर बस सुन्दरता की झलक भर बची रह गई है।

राजा—प्रियंवदा सच कहती है। क्योंकि—इसके गाल मुरझा गए हैं, मुँह सूख गया है, स्तनों की कठोरता जाती रही है, कमर और भी पतली हो गई है, कन्धे झुक गए हैं और देह पीली पड़ गई है। वायु के परस से मुरझाई हुई पत्तियोंवाली माधवी लता के समान यह सुन्दर भी लगती है और इसपर दया भी आती है।।8।।

शकुन्तला—तुमसे न कहूँगी तो किससे कहूँगी? सखी! अब तुम दोनों को मेरे लिये कुछ कष्ट करना ही पड़ेगा।

दोनों—इसीलिये हम तुमसे इतना आग्रह कर रही हैं। देखो, अपने स्नेहियों से दुःख बाँट लेने पर वह कम हो ही जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन बाला;
नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम्।
दृष्टो विवृत्य बहुशोऽप्यनया सतृष्ण-;
मत्रान्तरे श्रवणकातरतां गतोऽस्मि।। 9।।

शकुन्तला—सहि जदो पहुदि मम दंसणपहं आअदो सो तवोवणरक्खिदा राएसी तदो आरहिअ तग्गदेण अहिलासेण एतदवस्थम्हि संवुत्त (सखि यतः प्रभृति मम दर्शनपथमागतः स तपोवनरक्षिता राजर्षिः तत आरभ्य तद्गतेनाभिलाषेणैतदवस्थाऽस्मि संवृत्ता।)

राजा—[सहर्षम्] श्रुतं श्रोतव्यम्।

स्मर एव तपाहेतुर्निर्वापयिता स एव मे जातः।
दिवस इवार्धश्यामस्तपात्यये जीवलोकस्य।। 10।।

शकुन्तला—तं जइ वो अणुमदं। ता तहवट्टह जह तस्स राएसिणो अणुकम्पणिज्जा होमि। अण्णहा अवस्सं सिञ्चध मे तिलोदअं। (तद्यदि वामनुमतम् तदा तथा वर्तेथाम् यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि। अन्यथा अवश्यं सिञ्चतं मे तिलोदकम्।)

राजा—संशयच्छेदि वचनम्।

प्रियंवदा—[जनान्तिकम्] अणसूए दूरगअमन्महा अक्खमा इअं कालहरणस्स। जस्सिं बद्धभावा एसा सो ललामभूदो पोरवाणं। ता जुत्तं से अहिलासो अहिणन्दिदुं। (अनसूये! दूरगतमन्मथा अक्षमेयं कालहरणस्य। यस्मिन् बद्धभावैषा स ललामभूतः पौरवाणाम्। तद्युक्तमस्या अभिलाषोऽभिनन्दितुम्।)

राजा—दुख-सुख में साथ देनेवाली अपनी इन सखियों के पूछने पर तो यह बाला अवश्य ही अपने मन की बात बता देगी। यद्यपि शकुन्तला ने उस समय बड़े प्यार से बार-बार मेरी ओर ललचाई आँखों से देखा था, फिर भी मेरे जी में बड़ी धुकधुकी हो रही है कि देखें यह अपनी बेचैनी का क्या कारण बताती है।।9।।

शकुन्तला—सखी, आश्रम की रक्षा करनेवाले वे राजर्षि जबसे मेरी आँखों में समाए हैं, तभी से उन्हीं के प्रेम में मेरी यह दशा हो गई है।

राजा—[हर्ष से] यही तो मैं सुनना चाहता था। जो कामदेव मुझे पीड़ा दे रहा था, उसी ने मुझे इस प्रकार जिला लिया, जैसे गर्मी का दिन पहले तो जीवों को व्याकुल कर देता है, पर दिन ढल जाने पर वही सबका जी हरा भी कर देता है।।10।।

शकुन्तला—यदि तुम दोनों ठीक समझो तो कोई ऐसा उपाय करो कि उन राजर्षि की मुझपर कृपा हो जाय। नहीं तो मुझे तिलाञ्जलि देने के लिये तैयार हो जाओ।

राजा—[मन ही मन] बस, यह बात सुनकर सब सन्देह जाता रहा।

प्रियंवदा—[अनसूया से अलग] सखी, इसकी प्रेम-व्यथा इतनी बढ़ गई है कि कोई उपाय शीघ्र ही करना चाहिए। सचमुच इस बात की तो सराहना करनी ही पड़ेगी कि शकुन्तला ने प्रेम किया तो पुरुवंश के भूषण दुष्यन्त से ही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनसूया—तह जह भणसि। (तथा यथा भणसि।)

प्रियंवदा—[प्रकाशम्] सहि दिट्ठिआ अणुरूबो दे अहिणिवेसो। साअरं उज्झिअ कहिं वा महाणई ओदरइ को दाणिं सहआरं अन्तरेण अदिमुत्तलदं पल्लविदं सहेदि। (सखि दिष्ट्याऽनुरूपस्तेऽभिनिवेशः। सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति कं इदानी सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते।)

राजा—किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते!

अनसूया—को उण उवाओ भवे जेण अविलम्बिअं णिहुअं अ सहीए मनोरहं संपादेम्ह। (कः पुनरुपायो भवेद्येनाविलम्वितं निभृतं च सख्या मनोरथं संपादयावः।)

प्रियंवदा—णिहुअं त्ति चिन्तणिज्जं भवे। सिग्घं त्ति सुअरं। (निभृतमिति चिन्तनीयं भवेत्। शीघ्रमिति सुकरम्।)

अनसूया—कहं विअ। (कथमिव।)

प्रियंवदा—णं सो राएसी इमस्सिं सिणिद्धदिट्ठीए सूइदाहिलासो इमाइँ दिअहाइँ पजाअराकिसो लक्खीअदि। (ननु स राजर्षिरतस्यां स्निधदृष्ट्या सूचिताभिलाष एतान्दिवसान् प्रजागरकृशो लक्ष्यते।)

राजा—सत्यमित्थंभूत एवास्मि। तथा हि

इदमशिशिरैरन्तस्तापाद्विवर्णमणीकृतं।
निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभिरश्रुभिः।
अनभिलुलितज्याघाताङ्कं मुहुर्मणिवन्धना।
कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते।।11।।

अनसूया—हाँ, यह तो है।

प्रियंवदा—[प्रकट] सखी, तू बड़ी सौभाग्यशालिनी है कि ऐसे योग्य पुरुष से तूने प्रेम किया। वता दो, भला सागर को छोड़कर महानदी और कहाँ जायगी? आम के वृक्ष को छोड़कर नये पत्तोंवाली माधवी कला और किसका सहारा लेकर चढ़ेगी?

राजा—यदि विशाखा के दोनों नक्षत्र चन्द्रकला के पीछे-पीछे चलें तो आश्चर्य ही क्या?

अनसूया—तो कोई ऐसा उपाय वताओ कि इसकी इच्छा भी तुरन्त पूरी हो जाय और कोई जान भी न पाये।

प्रियंवदा—तुरंत-वाला उपाय तो हो सकता है, पर बात छिपी रहे, इसी के लिये थोड़ा सोचना पड़ेगा।

अनसूया—क्यों?

प्रियंवदा—सच्ची बात तो यह है कि राजर्षि भी शकुन्तला से प्रेम करते हैं। तभी तो दिन-रात जागते रहने के कारण इधर वे कुछ दुबले से दिखाई पड़ने लगे हैं।

राजा—सचमुच मेरी दशा ऐसी ही हो गई है। मैं इतना दुबला हो गया हूँ कि सिर के तले लगी हुई भुजा पर वँधा हुआ, रात-रात भर मेरी आँखों की कोरों से छन-छनकर गिरे हुए गरम आँसुओं से मैले रत्नोंवाला, यह सोने का भुजबन्ध इतना ढीला पड़ गया है कि बार-बार ऊपर सरकाते रहने पर भी यह गट्ठे पर खिसक आता है और धनुष की डोरी की [illegible] से पड़े हुए घट्ठों पर भी नहीं ठहर पाता।।11।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियंवदा–[विचिन्त्य] **हला मअणलेहो से करीअदु। इमं देवप्पसादस्सावदेसेण सुमणोगोविदं करिअ से हत्थअं पावइस्सं।** (हला मदनलेखोऽस्य क्रियताम्। इमं देवप्रसादस्यापदेशेन सुमनोगोपितं कृत्वा तस्य हस्तं प्रापयिष्यामि।)

अनसूया–रोअइ मे सुउमारो पाओओ। किं वा सउन्दला भणादि। (रोचते मे सुकुमारः प्रयोगः किं वा शकुन्तला भणति।)

शकुन्तला–को णिओओ विकप्पीअदि। (को नियोगो विकल्प्यते।)

प्रियंवदा–तेण हि अत्तणो उवण्णासपुव्वं चिन्तेहि दाव ललिअपदबन्धणं। (तेन ह्यात्मन उपन्यासपूर्वं चिन्तय तावल्ललितपदबन्धनम्।)

शकुन्तला–हला चिन्तेमि अहं। अवहीरणभीरुअं पुणो वेवइ मे हिअअं। (हला चिन्तयाम्यहम्। अवधीरणभीरुकं पुनर्वेपते मे हृदयम्।)

राजा–[सहर्षम्]–

अयं स तिष्ठति संगमोत्सुको विशङ्कसे भीरु यतोऽवधीरणाम्।
लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्।। 12।।

सख्यौ–अत्तगुणावमाणिणि को दाणिं सरीरणिव्वावत्तिअं सारदिअं जोसिणिं पडन्तेण वारेदि। (आत्मगुणावमानिनि! क इदानीं शरीरनिर्वापयत्रीं शारदीं ज्योत्सनां पटान्तेन वारयति।)

शकुन्तला–[सस्मितम्] **णिओइआ दाणि म्हि।** (नियोजितेदानीमस्मि।) [इत्युपविष्टा चिन्तयति।]

प्रियंवदा–[सोचकर] सखी! इससे एक प्रेम-पत्र लिखवाया जाय और उसे फूलों में छिपाकर देवता का प्रसाद कहकर उन्हें दे आया जाय।

अनसूया–यह उपाय तो मुझे भी बड़ा सुन्दर जँचा; पर शकुन्तला से भी तो पूछ लो।

शकुन्तला–तुम्हारी बात में भला मैं क्या मीन-मेख निकाल सकती हूँ।

प्रियंवदा–तब अपनी दशा का वर्णन करते हुए एक सुन्दर-सी कविता बना डालो।

शकुन्तला–कविता तो मैं बना लूँगी। पर मेरा हृदय यही सोच-सोचकर काँप उठता है कि कहीं वे अस्वीकार न कर बैठें।

राजा–[हर्ष से] तुम जिससे निरादर की आशंका कर रही हो वह तुमसे मिलने को स्वयं उतावला हुआ खड़ा है। जो लक्ष्मी को पाना चाहता हो उसे लक्ष्मी भले ही न मिलने पर जिसे स्वयं लक्ष्मी चाहे वह लक्ष्मी को न मिले, यह कैसे हो सकता है।।12।।

दोनों–तू अपने को इतना बुरा क्यों समझ बैठी है? भला बता तो ऐसा कौन मूर्ख होगा जो शरीर को शान्ति देनेवाली शरत् की चाँदनी को रोकने के किये सिर पर कपड़ा तान ले।

शकुन्तला–[मुस्कराकर] अच्छा, जो कहती हो वही कहती हूँ। [यह कहकर बैठी हुई सोचती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—स्थाने खलु विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा प्रियामवलोकयामि। यतः—

उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः पदानि रचयन्त्याः
कण्टकितेन प्रथयति मय्यनुरागं कपोलेन।। 13।।

शकुन्तला—हला चिन्तिदं मए गीदवत्थु। ण क्खु सण्णिहिदाणि उण लेहणसाहणाणि। (हला चिन्तितं मया गीतवस्तु। न खलु संनिहितानि पुनर्लेखनसाधनानि।)

प्रियंवदा—इमस्सि सुओदरसुउमारे णलिणोपत्ते णहेहिं णिक्खित्तवण्णं करेहि। (एतस्मिञ्छुकोदरसुकुमारे नलिनीपत्रे नखैर्निक्षिप्तवर्णं कुरु।)

शकुन्तला—[यथोक्तं रूपयित्वा] हला सुणुद दाणिं संगदत्थं ण वेति। (हला शृणुतमिदानीं संगतार्थं न वेति।)

उभे—अवहिदे म्ह। (अवहिते स्वः)

शकुन्तला—[वाचयति]—

तुज्झ ण आणे हिअअं मम उण कामो दिवावि रत्तिस्मि।
णिग्घिण तवइ बलीअं तुइ वुत्तमणोरहाइँ अङ्गाइँ।। 14।।

(तव न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवाऽपि रात्रिमपि।
निर्घृण! तपसि बलीयस्त्वयि वृत्तमनोरथान्यङ्गानि।।)

राजा—[मन ही मन] प्यारी को आँख भर देखने का यह अच्छा अवसर मिला है, क्योंकि—लता के समान चढ़ी हुई एक भौंहवाला और हर्ष से पुलकित गालोंवाला इस गीत बनानेवाली का मुख ही बता रहा है कि यह मुझे कितना प्यार करती है।।13।।

शकुन्तला—सखी! गीत तो मैंने सोच लिया है, पर लिखने की सामग्री तो यहाँ कुछ भी नहीं है।

प्रियवंदा—सुग्गे की छाती के समान कोमल इस कमलिनी के पत्ते पर अपने नखों से ही लिख डालो।

शकुन्तला—[ऐसा ही करती हुई] सखी! अब सुनो, यह ठीक भी बन पाया है, या नहीं।

दानों—हाँ, हम सुन रही हैं।

शकुन्तला—[बाँचती है।]—

हे निर्दय! मैं नहीं जानती, तेरे मन की माया।।
पर तेरे ही प्रेम-पाश में पड़कर यह फल पाया।
कामदेव दिन-रात तपाता मेरी कोमल काया।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—[सहसोपसृत्य]

तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव।
ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः।। 15।।

सख्यौ—[सहर्षम] साअदं अविलम्बिणो मणोरहस्स। (स्वागतमविलम्बिनो मनोरथस्य।)

[शकुन्तलाऽभ्युत्थातुमिच्छति।]

राजा—अलमलमायासेन।

संदष्टकुसुमशयनान्याशुक्लांतबिसभङ्गसुरभीणि।
गुरुपरितापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति।। 16।।

अनसूया—इदोसिलातलेक्कदेसं अलंकरेदु वअस्सो। (इतः शिलातलैकदेशमलंकरोतु वयस्यः।)

[राजोपविशति। शकुन्तला सलज्जा तिष्ठति]

प्रियंवदा—दुवेणं णु वो अण्णोण्णाणुराओ पच्चक्खो। सहीसिणेहो मं पुणरुत्तवादिणिं करेदि। (द्वयोर्ननु युवयोरन्योन्यानुरागः प्रत्यक्षः। सखीस्नेहो मां पुनरुक्तवादिनीं करोति।)

राजा—भद्रे नैतत्परिहार्यम्। विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति।

राजा—[शीघ्रता से आगे बढ़कर।] हे सुन्दरी! तुम्हें तो कामदेव सताता भर है, पर यहाँ तो वह निरन्तर जला रहा है; क्योंकि दिन निकलने पर कुमुदिनी उतनी नहीं कुम्हलाती जितना चन्द्रमा कुम्हला जाता है।।15।।

सखियाँ—[हर्ष से] स्वागत है आपका! हम लोग अभी आपके दर्शन की बात सोच ही रही थीं कि आप स्वयं ही आ गए।

[शकुन्तला उठना चाहती है।]

राजा—कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। विरह के अत्यन्त ताप से तुमने फूल के बिछौने पर जो इधर-उधर करवटें ली थीं, उसके कारण फूलों की पंखुडियाँ तुम्हारे शरीर में पसीने से चिपट गई हैं। तुमने कमल की नाल के जो आभूपण पहन रखे हैं वे भी मुरझा गए हैं। उससे जान पड़ता है कि तुम्हारा शरीर अभी बहुत विकल है और तुम इस योग्य नहीं हो पाई हो कि उठकर आदर-सत्कार कर सको।।16।।

अनसूया—[राजा से] मित्र! आप भी इसी पत्थर की पाटी के एक कोने को सुशोभित कीजिए।

[राजा बैठ जाते हैं। शकुन्तला सकुचा जाती है।]

प्रियंवदा—यद्यपि यह बात तो प्रत्यक्ष है कि आप दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं, फिर भी अपनी सखी के प्रेम के नाते मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूँ।

राजा—भद्रे! अपने मन की बात कह डालिए; क्योंकि मन में आई हुई बात यदि मन में ही रह जाती है तो पीछे बड़ा पछताना होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियंवदा—आवण्णस्स विसअणि वासिणो जणस्स अत्तिहरेण रण्णा होदव्वं त्ति एसो वो धम्मो। [आपन्नस्य विषयनिवासिनो जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितव्यमित्येष युष्माकं धर्मः।)

राजा—नास्मात्परम्।

प्रियंवदा—तेण हि इअं णो पिअसही तुमं उद्दिसिअ इमं अवत्थन्तरं भअवता मअणेण आरोविदा। ता अरहसि अब्भुववत्तीए जीविदं से अवलम्बिदुं। (तेन हीयं नो प्रियसखी त्वामुद्दिश्येदमवस्थान्तरं भगवता मदनेनारोपिता। तदर्हस्यभ्युपपत्या जीवितं तस्या अवलम्बितुम्।)

राजा—भद्रे साधारणोऽयं प्रणयः सर्वथाऽनुगृहीतोऽस्मि।

शकुन्तला—[प्रियंवदामवलोक्य] हला किं अन्तेउरविरहपज्जुस्सुअस्स राएसिणो उवरो-हेण। (हला किमन्तःपुरविरहपर्युत्सुकस्य राजर्षेरुपरोधेन।)

राजा—सुन्दरि!

इदमनन्यपरायणमन्यथा हृदयसंनिहिते हृदयं मम।
यदि समर्थयसे मदिरेक्षणे मदनबाणहतोऽस्मि हतः पुनः।। 17।।

अनसूया—वअस्स बहुवल्लहा राआणो सुणी अन्ति। जह णो पिअसही बन्धुअणसोअ णिज्जा ण होइ तह णिव्वत्तेहि। (वयस्य बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते। यथा नौ प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वर्तय)

राजा—भद्रे किं बहुना।

परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे।
समुद्रवसना चोर्वी सखी च युवयोरियम्।। 18।।

प्रियंवदा—राजा होकर आपका यह धर्म है कि अपने राज्य में रहनेवाले लोगों का कष्ट दूर करें।

राजा—मैं कहाँ इससे हटता हूँ।

प्रियंवदा—तो भगवान् कामदेव ने आपके ही कारण हमारी सखी की यह दशा कर दी है। अब आप ही कृपा करें तो उसके प्राण बचें।

राजा—भद्रे! यह तो आपकी बड़ी कृपा है; क्योंकि मेरी भी यहाँ यही दशा है।

शकुन्तला—[प्रियंवदा को देखकर] सखी! ये राजर्षि तो रनिवास की रानियों के विरह में व्याकुल हो रहे होंगे, इन्हें इस फेर में क्यों डाल रही हो।

राजा—सुन्दरी! मेरा हृदय तुम्हें छोड़कर और किसी को प्यार नहीं करता। फिर भी हे मदभरी चितवनवाली हृदयेश्वरी! यदि तुम इसका विश्वास नहीं करती, तो मैं यही समझूँगा कि कामदेव के बाणों से एक बार घायल हुए को तुम दुबारा घायल कर रही हो।।17।।

अनसूया—वयस्य! सुनते हैं कि राजाओं के बहुत-सी रानियाँ होती हैं। तो हमारी प्यारी सखी के लिये कुछ ऐसा प्रबन्ध कीजिएगा कि हम सगे-साथियों को फिर पछताना न पड़े।

राजा—भद्रे! मैं और तो क्या कहूँ। इतना ही कह देता हूँ कि—रनिवास की इतनी रानियों के होते हुए भी मेरे कुल में दो ही बड़ी समझी जायँगी—एक तो सागर से घिरी हुई पृथ्वी, और दूसरी तुम्हारी सखी शकुन्तला।।18।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उभे—णिव्वुद म्ह। (निर्वृते स्वः।)

प्रियंवदा—[सदृष्टिक्षेपम्] अणसूए! जह एसो इदो दिण्णदिट्ठी उत्सुओ मिअपोदओ मादरं अण्णेसदि। एहि। संजोएम णं। (अनसूये! यथैष इतो दत्तदृष्टिरुत्सुको मृगपोतको मातरमन्विष्यति। एहि। संयोजयाव एनम्।) [इत्युभे प्रस्थिते।]

शकुन्तला—हला असरण म्हि। अण्णदरा वो आअच्छदु। (हला अशरणाऽस्मि। अन्यतरा युवयोरागच्छतु।)

उभे—पुहवीए जो सहणं सो तुह समीवे वट्टइ। (पृथिव्या यः शरणं स तव समीपे वर्तते।)

[इति निष्क्रान्ते।]

शकुन्तला—कहं गदाओ एव्व। (कथं गते एव।)

राजा—अलमावेगेन। नन्वयमाराधयिता जनस्तव समीपे वर्तते।

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः।
अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ।। 19।।

शकुन्तला—ण माणणीएसु अत्ताणं अवराहइस्सं। (न माननीयेष्वात्मानमपराधयिष्ये।)

[इत्युत्थाय गन्तुमिच्छति।]

दोनों—तब हमें सन्तोष है।

प्रियंवदा—[बाहर देखकर] अनसूया! देख, यह मृगछौना इधर देखता हुआ अपनी माँ को ढूँढ रहा है। चल, इसे इसकी माँ के पास पहुँचा आयें।

[चलने को उद्यत]

शकुन्तला—अरी सखियो! मुझे किसके सहारे छोड़ जा रही हो। दोनों में से एक तो ठहरो।

दोनों—सारी पृथ्वी को सहारा देनेवाला तो तेरे पास ही बैठा है।

[प्रस्थान।]

शकुन्तला—अरे क्या चली गई?

राजा—घबराती क्यों हो? तुम्हारी सेवा करनेवाला यह सेवक तो यहाँ बैठा ही है। हाथी की सूँड़ के समान ढलवाँ जाँघोंवाली! इस समय जो तुम्हें सुहाता हो, मैं वही करने को तत्पर हूँ। कहो तो इन थकावट दूर करनेवाले ठंडे कमलिनी के पत्तों से पंखा झलूँ या कहो तुम्हारे लाल कमलों जैसे दोनों चरणों को अपनी गोद में रखकर धीरे-धीरे दबाऊँ।।19।।

शकुन्तला—पूज्य लोगों से सेवा कराकर मैं अपने सिर पाप नहीं लूँगी।

[उठकर जाना चाहती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—सुन्दरि! अनिर्वाणो दिवसः इयं च ते शरीरावस्था।

उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पितस्तनावरणम्।
कथमातपे गमिष्यसि परिबाधपेलवैरङ्गैः।। 20।।

[इति बलादेनां निवर्तयति।]

शकुन्तला—**पोरव! रक्ख अविणअं। मअणसंतत्ताविण सु अत्तणो पहवामि।** (पौरव! रक्षाविनयम्। मदनसंतप्ताऽपि न खल्वात्मनः प्रभवामि।)

राजा—भीरु! अलं गुरुजनभयेन। दृष्टवा ते विदितधर्मा तत्रभवान्नात्र दोषं ग्रहीष्यति कुलपतिः। पश्य—

गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः।। 21।।

शकुन्तला—**मुञ्च दाव मं। भूओ वि सहिजणं अणुमाणइस्सं।** (मुञ्च तावन्माम्। भूयोऽपि सखीजनमनुमानयिष्ये।)

राजा—भवतु मोक्ष्यामि।

शकुन्तला—**कदा।** (कदा)

राजा—सुन्दरी! अभी दिन भी नहीं ढला है और इधर तुम्हारे शरीर की भी यह दशा है। इस दुपहरी में फूलों का बिस्तर छोड़कर और कमल के पत्तों से स्तन ढककर, विरह में तपे हुये अपने दुर्बल अंगों को लेकर तुम कहाँ जाओगी?।।20।।

[शकुन्तला का हाथ पकड़कर उसे रोक लेता है।]

शकुन्तला—पौरव! कुछ तो शील का ध्यान रखो। प्रेम से व्याकुल होने पर भी मैं अपने मन से कुछ नहीं कर सकती।

राजा—अरी डरपोक! गुरुजनों से डरने की तो कोई बात ही नहीं है। पूज्य कुलपति धर्म को भली-भाँति जानते हैं। यदि वे सब बातें जान भी लेंगे, तब भी इसे बुरा नहीं कहेंगे। देखो—बहुत-से राजर्षियों की कन्याओं ने गान्धर्वविवाह किया है और यह भी सुना जाता है कि उनके पिताओं ने उनका समर्थन ही किया।।21।।

शकुन्तला—अच्छा, अभी तो मुझे छोड़ दीजिये। मैं कम से कम सखियों से तो पूछ लूँ।

राजा—अच्छा, छोड़ दूँगा।

शकुन्तला—कब!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—

अपरिक्षतकोमलस्य यावत्कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन।
अधरस्य पिपासता मया ते सदयं सुन्दरि गृह्यते रसोऽस्य।। 22।।

[इति मुखमस्याः समुन्नमयितुमिच्छति। शकुन्तला परिहरति नाट्येन।]

[नेपथ्ये]

चक्कवाकबहुए आमन्तेहि सहअरं। उवट्ठिआ रअणी (चक्रवाकवधुके आमन्त्रयस्व सहचरम्। उपस्थिता रजनी।

शकुन्तला—[ससंभ्रमम्] **पोरव! असंसअं मम सरीरवुत्तन्तोवलम्भस्स अज्जा गोदमी इदो एव्व आअच्छदि ता विडवन्तरिदो होहि।** (पौरव! असशयं मम शरीरवृत्तान्तोपलम्भायार्या गौतमीत एवागच्छति तद्विटपान्तरितो भव।)

राजा—तथा। [इत्यात्मानमावृत्य तिष्ठति]

[ततः प्रविशति पात्रहस्ता गौतमी सख्यौ च।]

सख्यौ—इदो इदो अज्जा गोदमी। (इत इत आर्या गौतमी।)

गौतमी—[शकुन्तलामुपेत्य] **जादे! अवि लहुसंदावाइँ दे अङ्गाइँ।** (जाते! अपि लघुसंतापानि तेऽङ्गानि।)

शकुन्तला—अज्जे! अत्थि मे विसेसो। (आर्ये! अस्ति मे विशेषः।)

गौतमी—इमिणा दब्भोदएण णिराबाधं एव्व दे सरीरं भविस्सदि [शिरसि शकुन्तलामभ्युक्ष्य] **वच्छे! परिणदो दिअहो। एहि उडजं एव्व गच्छम्ह।** (अनेन दर्भोदकेन निराबाधमेव ते शरीरं भविष्यति। वत्से परिणतो दिवसः। एहि। उटजमेव गच्छामः।)

[इति प्रस्थिताः]

राजा—जैसे नये कोमल फूल का रस भौंरा बड़े चाव से पीता है, वैसे ही जब मुझ प्यासे को तुम्हारे कोमल अधरों का रस पीने को मिल जायगा तब छोड़ दूँगा।।22।।

[ऐसा कहकर उसका मुँह ऊपर उठाना चाहता है। शकुन्तला रोकने का अभिनय करती है।]

[नेपथ्य में]

अरी चकवी! अपने प्यारे से बिदा ले। रात आ पहुँची है।

शकुन्तला—[सिटपिटाकर] पौरव! जान पड़ता है मेरे शरीर की दशा जानने के लिये आर्या गौतमी यहीं आ रही है। इसलिये आप जाकर इस वृक्ष की ओट में छिप जाइए।

राजा—अच्छा। [छिप जाता है।]

[हाथमें एक पात्र लिये हुए दोनों सखियों के साथ गौतमी का प्रवेश।]

सखियाँ—इधर आइए, आर्या गौतमी इधर।

गौतमी—[शकुन्तला के पास जाकर।] वत्से! तुम्हारे शरीर का ताप कुछ कम हुआ?

शकुन्तला—हाँ, अब तो कुछ ठीक है।

गौतमी—लो, इस कुशा के जल से तुम अच्छी हो जाओगी। [शकुन्तला के सिर पर जल छिड़कती है।] वत्से! दिन ढल गया है। आओ चलें, कुटी में चलें। [जाती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला–[आत्मगतम्] हिअअ! पढमं एव्व सुहोवणदे मणोरहे कादरभावं ण मुञ्चसि। साणुसअविहडिस्स कहं दे संपदं संदावो [पदान्तरे स्थित्वा प्रकाशम्] लदावलअ संदावहारअ आमन्तेमि तुवं भूओ वि परिभोअस्स (हृदय! प्रथमेव सुखोपनते मनोरथे कातरभावं न मुञ्चसि। सानुशयविघटितस्य कथं ते सांप्रतं संतापः। लतावलय! संतापहारक! आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि परिभोगाय) [इति दुःखेन निष्क्रान्ता शकुन्तला सहेतराभिः।)

राजा–[पूर्वस्थानमुपेत्य सनिःश्वासम्] अहो विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः मया हि–

मुहुरङ्गुलिसंवृताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम्।
मुखमंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तु।। 23।।

क्व न खलु संप्रति गच्छामि। अथवा इहैव प्रियापरिभुक्तमुक्ते लतावलये मुहूर्तं स्थास्यामि। [सर्वतोऽवलोक्य]

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं
क्लान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः।
हस्ताद्भ्रष्टमिदं विसाभरणमित्यासज्यमानेक्षणो
निर्गन्तुंसहसा न वेतसगृहाच्छक्नोमि शून्यादपि।। 24।।

[आकाशे]

शकुन्तला–[मन ही मन] हृदय! जब तुम्हारा प्यारा अपने आप आ पहुँचा था तब तो तुम डरपोक बने रहे। अब पछताते हुए बिछुड़ जाने पर क्यों इतना व्यथित रहे हो। [कुछ पग चलती है, फिर खड़ी होकर, प्रकट] हे सन्ताप हरनेवाले लतापुंज। विहार के लिये मैं तुम्हें फिर निमन्त्रण दे जाती हूँ। [दुःख के साथ शकुन्तला का प्रस्थानं।]

राजा–[पहले के स्थान पर पहुँचकर आह भरकर] आह! मन की साधें पूरी होने में कितनी बाधाएँ आ कूदती हैं। क्योंकि–सुन्दर पलकोंवाली शकुन्तला के उस मुख को उठाकर मैं चूम भी नहीं पाया, जिस ओठ को वह बार-बार अपनी उँगलियों से ढकती जा रही थी, जो बार-बार नहीं-नहीं कहते हुए बड़ा सुन्दर लग रहा था और जिसे वह बार-बार अपने कन्धे की ओर मोड़ती जा रही थी।।23।। अब कहाँ जाऊँ? अच्छा इसी लता-कुंज में थोड़ी देर ठहर जाता हूँ, जहाँ प्यारी इतनी देर रहकर चली गई है। [चारों ओर देखकर] इस पटिया पर उसके शरीर से मसला हुआ यह फूलों का बिछावन पड़ा है। कमलिनी के पत्ते पर नखों से लिखा हुआ और मुरझाया हुआ यह प्रेमपत्र भी रखा हुआ है। उसके हाथों से सूखकर गिरे हुए ये कमलनाल के आभूषण भी बिखरे हुए हैं। इसलिये अपने नेत्रों को उलझानेवाली इतनी वस्तुओं के होते हुए बेंतों से घिरे हुए इस सूने लता-मण्डप को इतनी शीघ्र छोड़कर मैं कहीं भी जा नहीं पा रहा हूँ।।24।।

[आकाश में]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजन्!

सायंतने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते वेदीं हुताशनवतीं परितः प्रयस्ताः।
छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः संध्यापयोदकपिशाः पिशिताशनानाम्।। 25।।

राजा—अयमयमागच्छामि। [इति निष्क्रान्तः।]

इति तृतीयोऽङ्कः।

राजन्! सायंकाल के यज्ञकर्म के आरम्भ होते ही जलती हुई अग्निवाली वेदियों के चारों ओर साँझ के बादलों के समान काले-काले और लाल-लाल डरावने राक्षस इधर-उधर घूमने लगे हैं।।25।।

राजा—मैं आता हूँ। [प्रस्थान।]

तीसरा अंक समाप्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थोऽङ्कः

[ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ सख्यौ।]

अनसूया—पिअंवदे जइ वि गन्धव्वेण विहिणा णिव्वुत्तकल्याणा सउन्दला अणुरूवभत्तुगामिणी संवुत्तेति णिव्वुदं मे हिअअं तह वि एत्तिअं चिन्तणिज्जं। (प्रियंवदे यद्यपि गान्धर्वेण विधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तलाऽनुरूपभर्तृगामिनी संवृत्तेत्ति मे हृदयं तथाप्येतावच्चिन्तनीयम्।)

प्रियंवदा—कहं विअ। (कथमिव।)

अनसूया—अज्ज सो राएसी इट्ठिं परिसमाविअ इसीहिं विसज्जिओ अत्तणो णअरं पविसिअ अन्तेउरसमागदो इदोगदं वुत्तन्तं सुमरदि वा ण वेत्ति। (अद्य स राजर्षिरिष्टिं परिसमाप्य ऋषिभिर्विसर्जित आत्मनो नगरं प्रविश्यान्तःपुरसमागत इतोगतं वृत्तान्तं स्मरति वा न वेति।)

प्रियंवदा—वीसद्धा होहि। ण तादिसा आकिदिविसेसा गुणविरोहिणो होन्ति। तादो वाणिं इमं वुत्तान्तं सुणिअ ण जाणे किं पडिवज्जिस्सदि त्ति। (विस्रब्धा भव। न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति। तात इदानीमिमं वृत्तान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपस्यत इति।

अनसूया—जह अं देक्खामि तह तस्स अणुमदं भवे। (यथाऽहं पश्यामि तथा तस्यानुमतं भवेत्।)

प्रियंवदा—कहं विअ। (कथमिव।)

चतुर्थ अङ्क

[फूल चुनने का अभिनय करती हुई दोनों सखियों का प्रवेश]

अनसूया—प्रियंवदा! इस बात से तो जी को बड़ा संतोष हुआ कि शकुन्तला का गान्धर्वविवाह हो गया और उसे योग्य पति भी मिल गया, पर यही एक बड़ी चिन्ता है—

प्रियंवदा—क्या?

अनसूया—यही कि आज यज्ञ हो चुकने पर जब ऋषियों से बिदा लेकर ये राजा अपने नगर के रनिवास में पहुँच जायँगे, तब यहाँ की सुध उन्हें रह भी पायेगी या नहीं।

प्रियंवदा—इसकी चिन्ता न कर; क्योंकि ऐसी चाल-ढाल के लोग कपटी नहीं हुआ करते; पर ये सब बातें सुनकर न जाने पिताजी क्या करेंगे?

अनसूया—मैं जहाँ तक समझती हूँ, वे इसका समर्थन ही करेंगे।

प्रियंवदा—क्यों?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनसूया—गुणवदे कण्णआ पडिवादणिज्जेत्ति अअं दाव पढमो संकप्पो। तं जइ देव्वं एव्व संपादेदि णं अप्पआसेण किदत्थो गुरुअणो। (गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेत्ययं तावत् प्रथमः संकल्पः तं यदि दैवमेव संपादयति नन्वप्रयासेन कृतार्थो गुरुजनः।)

प्रियंवदा—[पुष्पभाजनं विलोक्य] सहि अवइदाइँ वलिकम्मपज्जत्ताइँ कुसुमाइँ। (सखि अवचितानि बलिकर्मपर्याप्तानि कुसुमानि।]

अनसूया—णं सहीए सउन्दलाए सोहग्गदेवआ अच्चणीआ। (ननु सख्याः शकुन्तलायाः सौभाग्यदेवताऽर्चनीया।)

प्रियंवदा—जुज्जदि। (युज्यते।) [इति तदेव कर्मारभते।)

[नेपथ्ये]

अयमहं भोः।

अनसूया—[कर्णं दत्वा] सहि अदिधीणं विअ णिवेदिदं। (सखि अतिथीनामिव निवेदितम्।)

प्रियंवदा—णं उडजसंणिहिदा सउन्दला। [आत्मगतम्] अज्ज उणहिअएण असंणिहिदा। (ननूटज संनिहिता शकुन्तला। अद्य पुनर्हृदयेनासंनिहिता।)

अनसूया—होदु। अलं एत्तिएहिं कुसुमेहिं। (भवतु। अलमेतावद्भिः कुसुमैः।)

[इति प्रस्थिते]

[नेपथ्ये]

अनसूया—क्योंकि उनका तो संकल्प ही था कि कोई योग्य वर मिल जायगा तो इसका विवाह कर देंगे और जब वह काम देव ने ही पूरा कर दिया है, तब तो बिना परिश्रम के ही उनका काम बन गया।

प्रियंवदा—[फूलों की पिटारी देखकर] सखी, बलि-कर्म के लिये इतने फूल तो बहुत होंगे।

अनसूया—क्यों? अभी शकुन्तला के सौभाग्य-देवता की भी तो पूजा करनी है।

प्रियंवदा—हाँ, हाँ, ठीक कहती हो। [फूल चुनने लग जाती है]

[नेपथ्य में]

अरे! मैं आया हुआ हूँ।

अनसूया—[कान लगाकर] यह तो किसी अतिथि की बोली जान पड़ती है।

प्रियंवदा—शकुन्तला तो कुटी में है ही। [मन ही मन] पर आज वह कुछ अनमनी-सी हो रही है।

अनसूया—चलो, इतने फूलों से काम हो जायेगा। [प्रस्थान]

[नेपथ्य में]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आः अतिथिपरिभाविनि!

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव।। 1।।

प्रियंदा—हद्धी हद्धी। अप्पिअं एव्व संवुत्तं। कस्सिं पि पूआरूहे अबरद्धा सुण्णहिअआ सउन्दला। [पुरोऽवलोक्य] ण ह जस्सिं कस्सिं पि। एसो दुव्वासो सुलहक्कोवो महेसी तव सविअ वेअबलुप्फुलाए दुव्बाराए गईए पडिणिवुत्तो। को अण्णो हुदवहादो दहिदुं पहवदि। (हा धिक् हा धिक्। अप्रियमेव संवृत्तम्। कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला। न खलु यस्मिन्कस्मिन्नपि। एष दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिस्तथा शप्त्वा वेगबलोत्फुल्लया दुर्वारया गत्या प्रतिनिवृत्तः। कोऽन्यो हुतवहाद्दग्धुं प्रभवति।)

अनसूया—गच्छ पादेसु पणमिय णिवत्तेहि णं जाव अहं अग्घोदअं उपकप्पेमि। (गच्छ पादयोः प्रणम्य निवर्तयैनम्। यावदहमर्घोदकमुपकल्पयामि।)

प्रियंवदा—तह। (तथा) [इति निष्क्रान्ता।]

अनसूया—[पदान्तरे स्खलितं निरूप्य] **अव्वो आवेअक्खलिदाए गईए पब्भट्टं मे अग्गहत्थादो पुप्फभाअणं।** (अहो आवेगस्खलितया गत्या प्रभ्रष्टं ममाग्रहस्तात्पुष्पभाजनम्।) [इति पुष्पोच्चयं रूपयति।]

[प्रविश्य]

प्रियंवदा—**सहि पकिदिवक्को सो कस्स अणुणअं पडिगेण्हदि। किं वि उण साणुक्कोसो किदो।** (सखि प्रकृतिवक्रः स कस्यानुनयं प्रतिगृह्णाति। किमपि पुनः सानुक्रोशः कृतः।)

अरी ओ, अतिथि का अपमान करनेवाली! जिसके ध्यान में इतनी मग्न होकर तू मुझ जैसे तपस्वी के आने की भी सुधः नहीं ले रही है, वह बहुत स्मरण दिलाने पर भी तुझे उसी प्रकार भूल जायगा, जैसे प्रमत्त मनुष्य अपनी पिछली बातें भूल जाता है।।1।।

प्रियंवदा—हाय हाय! यह तो बड़ा बुरा हुआ। जान पड़ता है कि अपने बेसुधपन में शकुन्तला ने किसी पूजनीय महात्मा का अपमान कर दिया है। [सामने देखकर] और वह भी किसी ऐसे-वैसे का नहीं, ये तो तनिक सी बात पर बिगड़ जाने वाले महर्षि दुर्वासा ही हैं जो शाप देकर क्रोध से काँपते हुए पैरों से वेग से लौटे चले जा रहे हैं। भला आग को छोड़कर जलाने का काम और कौन करेगा?

अनसूया—जा, उनके पैरों पड़कर उन्हें लौटा ला। तब तक मैं अर्घ्य का जल ले आती हूँ।

प्रियंवदा—अच्छी बात है। [प्रस्थान]

अनसूया—[दो एक पग चलकर ठोकर खा जाती है।] हाय हाय! झपटकर चलने से ऐसी ठोकर लग गई कि हाथ से फूल की पिटारी ही छूट पड़ी। [फूल चुनने का अभिनय करती है।]

प्रियंवदा—[प्रवेश करके] सखी, वे तो बड़े टेढ़े व्यक्ति हैं। वे क्या किसी की सुनते हैं? फिर भी मैंने उन्हें किसी प्रकार थोड़ा बहुत मना लिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनसूया—[सस्मितम्] **तस्सिं बहु एवं पि। कहेहि।** (तस्मिन्बह्वेतदपि। कथय।)

प्रियंवदा—जदा णिवत्तिदं ण इच्छदि तवा विण्णाविदो मए। भअवं पढमं त्ति पेक्खिअ अविण्णादतबप्पहावस्स दुहिदुजणस्स भअवदा एक्को अवराहो मरिसिदव्वो त्ति। (यदा निवर्तितुं नेच्छति तदा विज्ञापितो मया। भगवन् प्रथम इति प्रेक्ष्य अविज्ञाततपःप्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवतैकोऽपराधो मर्षयितव्य इति।)

अनसूया—तदो तदो। (ततस्ततः)

प्रियंवदा—ततो ण मे वअणं अण्णहाभविदुं अरिहदि किंदु अहिण्णणाभरणदंसणेण साबो णिवत्तिस्सदि त्ति मन्तअन्तो सअं अन्तरिहिदो (ततो न मे वचनमन्यथा-भवितुमर्हति किंत्वभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो निवर्तिष्यते इति मन्त्रयन्स्वय- मन्तर्हितः।)

अनसूया—सक्कं दाणिं अस्ससिदुं अत्थि तेण राएसिणा संपत्थिदेण सणामहेअङ्किअं अंगुलीअअं सुमरणीअं त्ति सअं पिणद्धं। तस्सि साहीणोबाआ सउन्दला भविस्सदि। (शक्यमिदानीमाश्वसितुम्। अस्ति तेन राजर्षिणा संप्रस्थितेन स्वनामधेया-ङ्कितमङ्गुलीयकं स्मरणीयमिति त्वयं पिनद्धम्। तस्मिन्स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति।)

प्रियंवदा—सहि एहि देवकज्जं दाव से णिव्वत्तेम्ह। (सखि एहि देवकार्यं तावदस्या निर्वर्तयावः।)

[इति परिक्रामतः।)

प्रियंवदा—[विलोक्य] **अणसूए पेक्ख दाव। वामहत्थोवहिदवअणा आलिहिदा विअ पिअसही। भत्तुगदाए चिन्ताए अत्ताणं पि ण एसा विभावेदि किं उण आअन्तुअं।** (अनसूये! पश्य तावत्। वामहस्तोपहितवदनाऽऽलिखितेव प्रियसखी। भर्तृगतया चिन्तयाऽऽत्मानमपि नैषा विभावयति किं पुनरागन्तुकम्।)

अनसूया—[मुस्कराकर] इतना भी क्या कम है? कहो क्या किया?

प्रियंवदा—जब वे किसी प्रकार भी लौटने को तैयार न हुए तब मैंने प्रार्थना की कि भगवन्! एक तो शकुन्तला का यह पहला ही अपराध है, फिर वह आपके तेज का प्रभाव भी नहीं पहचानती है, इसलिये कम से कम इस बार तो उसे क्षमा कर ही दीजिए।

अनसूया—तब?

प्रियंवदा—तब वे इतना ही कहकर अन्तर्धान हो गए कि मेरा वचन तो झूठा हो नहीं सकता। हाँ, इतना हो सकता है कि यदि यह कन्या अपने प्रेमी को कोई पहचान का आभूषण दिखा दे, तो मेरा शाप छूट जायगा।

अनसूया—चलो, कुछ जी हलका हुआ; क्योंकि उस राजर्षि ने चलते समय अपने नामवाली अँगूठी दी थी। वस वह अँगूठी ही शकुन्तला के शाप का सहज उपाय है।

प्रियंवदा—सखी! चलो तब तक देव-पूजन का काम पूरा कर डालें। [घूमती हैं।]

प्रियंवदा—[देखकर] देखो तो, बाएँ हाथ पर गाल रखे हुए प्यारी सखी कैसी चित्र-लिखी सी दिखाई दे रही है। पति की चिन्ता में जब यह अपनी ही सुध-बुध खो बैठी हैं, तब फिर अतिथि की कौन कहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनसूया—पिअंवदे दुवेणं एव्व णं णो मुहे एसो वुत्तन्तो चिट्ठदु। रक्खिदव्वा क्खु पकिदिपेलवा पिअसही। (प्रियंवदे! द्वयोरेव ननु नौ मुख एष वृत्तान्तस्तिष्ठतु। रक्षितव्या खलु प्रकृतिपेलवा प्रियसखी।)

प्रियंवदा—को णाम उण्होदएण णोमालिअं सिञ्चेदि। (को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति।)

[इत्युभे निष्क्रान्ते]

।। इति विष्कम्भकः ।।

[ततः प्रविशति सुप्तोत्थितः शिष्यः।]

शिष्यः—वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि तत्रभवता प्रवासादुपावृत्तेन कण्वेन। प्रकाशं निर्गतस्तावदवलोकयामि कियदवशिष्टं रजन्या इति। [परिक्रम्यावलोक्य च] हन्त प्रभातम्। तथा हि—

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-
माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजो द्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु।। 2।।

अपि च—

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि।। 3।।

अनसूया—प्रियंवदा! देखो यह बात हमारे तुम्हारे कान तक ही रहे। क्योंकि शकुन्तला बड़े कोमल स्वभाव की है। उसकी रक्षा तो करनी ही होगी।

प्रियंवदा—हाँ हाँ, यह तो है ही। नवमल्लिका की लहलहाती लता को खौलते हुए पानी से भला कौन सींचेगा। [प्रस्थान।]

।। विष्कम्भक समाप्त।।

[सोकर उठे हुए एक शिष्य का प्रवेश।]

शिष्य—बाहर से अभी लौटे हुए पूज्य कण्व ने मुझे यह देखने को कहा है कि अभी रात कितनी रह गई है। इसलिये चलूँ बाहर चलकर देखूँ। [इधर-उधर घूमकर और आकाश की ओर देखकर।] अरे यह तो दिन निकल आया; क्योंकि—एक ओर औषधियों के पति चन्द्रमा अस्ताचल को चले जा रहे हैं और दूसरी ओर अपने सारथी अरुण को आगे किए हुए सूर्य निकल रहे हैं। इन दो तेजस्वियों के एक साथ उदय और अस्त को देखकर संसार को यही शिक्षा मिलती है कि दुःख के पीछे सुख और सुख के पीछे दुःख लगा ही रहता है।।2।।

और भी देखो—चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर अब कुमुदिनी आँखों को नहीं भाती। उसकी शोभा केवल कल्पना में ही रह गई है। सचमुच जिन स्त्रियों के पति परदेश चले जाते हैं, वे वियोग का दुःख कैसे सह पाती होंगी।।3।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[प्रविश्यापटीक्षेपेण]

अनसूया—जइ वि णाम विसअपरम्मुहस्स वि जणस्स एदं ण विदिअं तह वि तेण रण्णा सउन्दलाए अणज्जं आअरिदं। (यद्यपि नाम विषयपराङ्मुखस्यापि-जनस्यैतन्न विदितं तथापि तेन राज्ञा शकुन्तलायामनार्यमाचरितम्।)

शिष्यः—यावदुपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि। [इति निष्क्रान्तः]

अनसूया—पढिबुद्धा वि किं करिस्सं। ण मे उइदेसु वि णिअकरणिज्जेसु हत्थपाआ पसरन्ति। कामो दाणिं सकामो होदु जेण असच्चसंधे जणे अणण्णहिअआ सही पदं कारिदा। अहवा दुव्वाससो कोवो एसो विआरेदि। अण्णहा कं सो राएसी तारिसाणिमन्तिअ एत्तिअस्स कालस्य लेहमेत्तं पि ण विसज्जेदि ता इदो अहिण्णाणं अंगुलीअअं से विसज्जेम। दुक्खसीले तवस्सिजणे को अब्भत्थीअदु। णं सहीगामी दोसो त्ति व्ववसिदा वि ण पारेमि पवासपडिणिउत्तस्स तादकण्णस्स दुस्सन्तपरिणीदं आबण्णसत्तं सउन्दलं णिवेदिदुं। इत्थंगए अम्हेहिं किं करणिज्जं। (प्रतिबुद्धाऽपि किं करिष्ये। न मे उचितेष्वपि निजकार्येषु हस्तपादं प्रसरति। काम इदानीं सकामो भवतु येनासत्यसंधे जने अनन्यहृदया सखी पदं कारिता। अथवा दुर्वाससः कोप एष विकारयति। अन्यथा कथं स राजर्षिस्तादृशानि मन्त्रयित्वैतावत्कालस्य लेखमात्रमपि न विसृजति। तदितोऽभिज्ञानमङ्गुलीयकं तस्य विसृजावः। दुःखशीले तपस्विजने कोऽभ्यर्थ्यताम्। ननु सखीगामी दोष्र इति व्यवसिताऽपि न पारयामि प्रवासप्रतिनिवृत्तस्य तातकण्वस्य दुष्यन्तपरिणीतामापन्नसत्वां शकुन्तलां निवेदयितुम्। इत्थंगतेऽस्माभिः किं करणीयम्।)

[प्रविश्य]

[परदे को झटके से उठाकर अनसूया आती है।]

अनसूया—[आप ही आप] यद्यपि मैं प्रेम की बातें कुछ भी नहीं जानती, फिर भी इतना तो अवश्य कह सकती हूँ कि उस राजा ने शकुन्तला के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया।

शिष्य—चलूँ गुरुजी से चलकर बता दूँ कि हवन का समय हो गया है। [प्रस्थान]

अनसूया—जाग तो गई हूँ, पर क्या बताऊँ, यहाँ अपने नित्य के काम के लिये भी हाथ-पैर नहीं उठ रहे हैं। अब कामदेव का जी तो भर गया होगा कि मेरी सच्ची सखी उस झूठे का इतना विश्वास कर बैठी। या कौन जाने दुर्वासा के शाप का ही फल हो, नहीं तो वैसी मीठी-मीठी बातें करनेवाला वह राजर्षि इतने दिन बीत जाने पर भी क्या एक पत्र तक न लिख भेजता। अब उसे सुध दिलाने के लिये उसके पास अँगूठी भेजनी ही पड़ेगी। पर कठोर जीवन बितानेवाले इन तपस्वियों में से किससे अँगूठी पहुँचाने को कहा जाय। बाहर से लौटे हुए तात कण्व से मैं सखी के अपराध की बात तो कह सकती हूँ, पर उनसे यह नहीं कह पाऊँगी कि शकुन्तला का राजा दुष्यन्त से विवाह हो गया है और वह गर्भवती भी है। अब क्या करूँ?

[प्रवेश करके]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियंवदा—[सहर्षम्] सहि तुवर तुवर सउन्दलाए पत्थाणकोदुअं णिव्वत्तिदुं। (सखि त्वरस्व त्वरस्व शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुकं निर्वर्तयितुम्।)

अनसूया—सहि कहं एदं। (सखि कथमेतत्)।

प्रियंवदा—सुणाहि। दाणिं सुहसइनपुच्छिआ सउन्दलासआसं गदम्हि। शृणु। इदानीं सुखशयनपृच्छिका शकुन्तलासकाशं गताऽस्मि।)

अनसूया—तदो तदो। (ततस्ततः)।

प्रियंवदा—तदो जाव एणं लज्जावणदमुहिं परिस्सजिअ तादकण्णेण एव्वं अहिणन्दिदं—दिट्ठिआ धूमाउलिददिट्ठिणो वि जअमाणस्स पाअए एव्व आहुदी पडिदा। वच्छे सुसिस्स परिदिण्णा विज्जा विअ असोअणिज्जा संवुत्ता। अज्ज एव्व इसिरक्खिदं तुमं भत्तुणो सआसं विसज्जेमि त्ति। (ततो यावदेनां लज्जावनतमुखीं परिष्वज्य तातकण्वेनैवमभिनन्दितम्-दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता। वत्से! सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीया संवृत्ता। अद्यैव ऋषिरक्षितां त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामीति।)

अनसूया—अह केण सूइदो तादकण्णस्स वुत्तन्तो। (अथ केन सूचितस्तातकण्वस्य वृत्तान्तः।)

प्रियंवदा—अग्गिसरणं पविट्ठस्स सरीरं विणा छन्दोमईए वाणिआए। (अग्गिसरणं प्रविष्टस्य शरीरं विना छन्दोमय्या वाण्या।)

अनसूया—[सविस्मयम्] कहं विअ। (कथमिव।)

प्रियंवदा—[हर्ष से] सखी! चलो झपटकर। शकुन्तला की विदाई का प्रबन्ध करना होगा।

अनसूया—सखी! यह सब कैसे हो गया?

प्रियंवदा—सुनो! मैं अभी शकुन्तला के पास पूछने गई थी कि तू रात को सुख से सोई है या नहीं।

अनसूया—उसके बाद?

प्रियंवदा—तब तक तात कण्व आ पहुँचे और लाज में गड़ी शकुन्तला को गले से लगाकर यह आनन्द की बात बोले—वत्से! आज आँखों में धुआँ भर जाने पर भी सौभाग्य से यजमान की आहुति ठीक अग्नि के बीच में ही पड़ी। इसलिये जैसे योग्य शिष्य को विद्या देने से मन में दुःख नहीं होता, वैसे ही तुझे भी योग्य पति के हाथ में देते हुए मुझे भी दुःख नहीं है। मैं आज ही तुझे ऋषियों के साथ तेरे पति के पास भेज दूँगा।

अनूसया—और तात कण्व को यह बताया किसने।

प्रियंवदा—जैसे ही तात कण्व यज्ञशाला में पहुँचे, वैसे ही छन्द में बँधी यह आकाशवाणी सुनाई दी—

अनसूया—[आश्चर्य से।] क्या?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियंवदा—[संस्कृतमाश्रित्य]

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव।। 4।।

अनसूया—[प्रियंवदामाश्लिष्य] सहि पिअं मे। किंदु अज्ज एव्व सउन्दला णीअदि त्ति उक्कंठासाहारणं परितोसं अणुहोमि। (सखि प्रियं मे। किंत्वद्यैव शकुन्तला नीयत इत्युत्कण्ठासाधारणं परितोषमनुभवामि।

प्रियंवदा—सहि वअं ताव उक्कंठं विणोदइस्सामो। सा तवस्सिणी णिब्बुदा होदु। (सखि आवां तावदुत्कण्ठां विनोदयिष्यावः। सा तपस्विनी निवृत्ता भवतु।)

अनसूया—तेण हि एदस्सिं चूदसाहावलम्बिदे णरिएरसमुग्गए एतण्णिमित्तं एव्वं कालन्तरक्खमा णिक्खिता मए केसरमालिआ। ता इमं हत्थसंणिहिदं करेहि जाव अहं पि से मअलोअणं तित्थमित्तिअं दुव्वाकिसलआणि त्ति मंगलसमालम्भणाणि विरएमि। (तेन ह्येतस्मिंश्चूतशाखावलम्बिते नारिकेलसमुद्‌गके एतन्निमित्तमेव कालान्तरक्षमा निक्षिप्ता मया केसरमालिका। तदिमां हस्तसंनिहितां कुरु यावदहमपि तस्यै मृगरोचनां तीर्थमृत्तिकां दूर्वाकिसलयानीति मंगलसमालम्भनानि विरचयामि।)

प्रियंवदा—तह करीअदु। (तथा क्रियताम्।)

[अनसूया निष्क्रान्ता। प्रियंवदा नाट्‌येन सुमनसो गृह्णाति।]

[नेपथ्ये]

प्रियंवदा—[संस्कृत में बोलती है।]

जैसे शमी वृक्ष के भीतर होता है पावक का वास।
वैसे ब्रह्मन्! इस कन्या में जग-हित पौरव-तेज-निवास।।4।।

अनसूया—[प्रियंवदा को गले लगाकर।] सखी! मैं तो फूली नहीं समाती। पर इस हर्ष में दुःख की बात इतनी ही है कि शकुन्तला आज ही चली जायगी।

प्रियंवदा—हम लोग तो अपने मन को ज्यों-त्यों समझा लेंगी, पर वह बेचारी तो किसी प्रकार सुखी रहे।

अनसूया—वह जो आम की डाली पर नारियल लटक रहा है, उसमें मैंने बहुत दिनों तक सुगन्धित रहनेवाली बकुल को माला आज के ही लिये रख छोड़ी है। उसे उतार ले जा। तब तक मैं गोरोचन, तीर्थ की मिट्‌टी, कोमल दूब के अंकुवे आदि मंगल-सामग्रियाँ जुटा लाती हूँ।

प्रियंवदा—अच्छा यही करो। [अनसूया जाती है। प्रियंवदा माला उतारने का नाट्य करती है।]

[नेपथ्य में]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौतमि! आदिश्यन्तां शाङ्र्गरवमिश्राः शकुन्तलानयनाय।

प्रियंवदा–[कर्णं दत्वा] **अणसूए तुवर तुवर। एदे क्खु हत्थिणाउरगामिणो इसीओ सद्दावीअन्ति।** (अनसूये त्वरस्व त्वरस्व एते खलु हस्तिनापुरगामिन ऋषयः शब्दायन्ते।)

[प्रविश्य समालम्भनहस्ता।]

अनसूया–सहि! एहि गच्छम्ह। (सखि! एहि गच्छावः।)

[इति परिक्रामतः।]

प्रियंवदा–[विलोक्य] **एसा सुज्जोदए एव्व सिहामज्जिदा पडिच्छिदणीवार-हत्थाहिं सोत्थिवाअणकाहिं तावसीहिं अहिणन्दीअमाणा सउन्दला चिट्ठइ। उवसप्पम्ह णं।** (एषा सूर्योदय एव शिखामज्जिता प्रतिष्ठितनीवारहस्ताभिः स्वस्तिवाचनिका-भिस्तापसी-भिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति। उपसर्पाव एनाम्।)

[इत्युपसर्पतः]

[ततः प्रविशति यथोद्दिष्टव्यापाराऽऽसनस्था शकुन्तला।]

तापसीनामन्यतमा–[शकुन्तलां प्रति] **जादे भत्तुणो बहुमाणसूअअं महादेईसदं लहेहि।** (जाते भर्तुर्बहुमानसूचकं महादेवीशब्दं लभस्व।)

द्वितीया–वच्छे वीरप्पसविणी होहि। (वत्से वीरप्रसविनी भव।)

तृतीया–वच्छे भत्तुणो बहुमदा होहि। (वत्से भर्तुबहुमता भव।)

[इत्याशिषो दत्वा गौतमीवर्जं निष्क्रान्ता।]

सख्यौ–[उपसृत्य] **सहि सुहमज्जणं दे होदु।** (सखि सुखमज्जनं ते भवतु।)

शकुन्तला–साअदं मे सहीणं। इदो णिसीदह। (स्वागतं मे सख्योः। इतो निषीदतम्।)

गौतमी! शाङ्गरव आदि से कहो कि शकुन्तला को पहुँचा आने के लिये तैयार हो जायँ।

प्रियंवदा–[कान लगाकर] अनसूया! चलो चलो, हस्तिनापुर जानेवाले ऋषियों की बुलाहट हो रही है।

[हाथ में सामग्री लिए हुए अनसूया का प्रवेश।]

अनसूया–आओ सखी, चलें। [दोनों घूमती हैं]

प्रियंवदा–[देखकर] यह लो। शकुन्तला तो दिन निकले ही नहा धोकर बैठी है और ये सब तपस्विनियाँ हाथ में तिन्नी के दाने लेकर उसे आशीर्वाद दे रही हैं। चलो हम भी वहीं चलें। [आगे बढ़ती हैं।]

[जैसा ऊपर कहा गया है उस रूप में शकुन्तला दिखाई देती है।]

पहली तपस्विनी–[शकुन्तला के प्रति] वत्से! तुम पति से आदर पानेवाली पटरानी बनो।

दूसरी तपस्विनी–वत्से! तुम वीरपुत्र की माता बनो।

तीसरी तपस्विनी–वत्से! तू पति की प्यारी होवो।

[यह आशीर्वाद देकर गौतमी को छोड़कर और सब चली जाती हैं।]

दोनों सखियाँ–[शकुन्तला के पास जाकर] सखी! तुम्हारा नहाना धोना फले-फूले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

शकुन्तला–आओ सखियों! स्वागत करती हूँ। आओ बैठ जाओ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उभे—[मङ्गलपात्राण्यादाय उपविश्य] **हला सज्जा होहि जाव दे मङ्गलसमालम्भणं विरएम।** (हला सज्जा भव, यावत्ते मङ्गलसमालम्भनं विरचयावः।)

शकुन्तला—**इदं पि बहु मन्तव्वं दुल्लहं दाणिं मे सहीमण्डणं भविस्सदि त्ति।** (इदमपि बहु मन्तव्यं दुर्लभमिदानीं मे सखीमण्डनं भविष्यतीति) [इति वाष्पं विसृजति।]

उभे—सहि उइअं ण दे मङ्गलकाले रोइदं। (सखि! उचितं न ते मङ्गलकाले रोदितुम्।) [इत्यश्रूणि प्रमृज्य नाट्येन प्रसाधयतः।]

प्रियंवदा—**आहरणोइदं रूवं अस्समसुलहेहिं पसाहुणें हिं विप्पआरीअदि।** (आभरणोचितं रूपमाश्रमसुलभैः प्रसाधनैर्विप्रकार्यते।)

[प्रविश्योपायनहस्तावृषिकुमारकौ।]

उभौ—इदमलंकरणम्। अलंक्रियतामत्रभवती।

[सर्वा विलोक्य विस्मिताः।]

गौतमी—वच्छ णारअ कुदो एदं। (वत्स नारद कुत एतत्।)

प्रथमः—तातकण्वप्रभावात्।

गौतमी—किं माणसी सिद्धी। (कि मानसी सिद्धिः)

द्वितीयः—न खलु। श्रूयताम्। तत्रभवता वयमाज्ञप्ताः शकुन्तलाहेतोर्वनस्पातिभ्यः कुसुमान्याहरतेति। तत इदानीं—

दोनों—[मंगल-पात्र लिए हुए बैठती हैं।] अच्छा सखी! तैयार हो जाओ। अब हम तुम्हारा मंगल-श्रृङ्गार करेंगे।

शकुन्तला—यह तो बड़े सौभाग्य की बात है, क्योंकि सखियों के हाथ का श्रृंगार अब मुझे भला मिल कहाँ पायेगा। [सिसकने लगती है।]

दोनों—सखी! ऐसे शुभ अवसर पर रोया नहीं जाता।

[आँसू पोंछकर उसे सजाने का नाट्य करती हैं।]

प्रियंवदा—सखी! तुम्हारे रूप के लिये तो और अच्छे-अच्छे आभूषण होने चाहिएँ थे। आश्रम से जुटाई हुई इन श्रृंगार की सामग्रियों से तो तुम अच्छी नहीं लगती हो।

[हाथों में उपहार लिए हुए दो ऋषि-कुमारों का प्रवेश।]

दोनों ऋषिकुमार—यह लीजिए, आभूषण, देवी को इनसे सजाइए।

[देखकर सब चकित होती हैं।]

गौमती—क्यों वत्स नारद! यह सब तुम कहाँ से पा गए।

पहला—पिता कण्व के प्रभाव से।

गौमती—क्या उनके तप के बल से?

दूसरा—नहीं जी! सुनिए तो सही। पूज्य कण्व ने हमें आज्ञा दी थी कि शकुन्तला के लिये लता-वृक्षों से फूल-पत्ते ले आओ। इसपर—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षौभं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः।।5।।

प्रियंवदा—[शकुन्तलां विलोक्य] हला इमाए अब्भुववत्तीए सुइया दे भत्तुणो गेहे अणुहोदव्वा राअलच्छित्ति। (हला अनयाऽभ्युपपत्त्या सूचिता ते भर्तुर्गेहेऽनुभवितव्या राजलक्ष्मीरिति।)

[शकुन्तला व्रीडां रूपयति।]

प्रथमः—गौतम एह्येहि अभिषेकोत्तीर्णाय कण्वाय वनस्पतिसेवां निवेदयावः।

द्वितीयः—तथा।

[इति निष्क्रान्तौ]

सख्यौ—अए अणुवजुत्तभूसणो अअं जणो। चित्तकम्मपरिअएण अङ्गेसु दे आहरणविणिओअं करेम्ह। (अये अनुपयुक्तभूषणोऽयं जनः। चित्रकर्मपरिचयेनाङ्गेषु ते आभरणविनियोगं कुर्वः।)

शकुन्तला—जाणे वो णेउणं। (जाने वां नैपुणम्।)

[उभे नाट्येनालंकुरुतः।]

[ततः प्रविशति स्नानोत्तीर्णः कण्वः।]

किसी वृक्ष ने शुभ्र मांगलिक वस्त्र दे दिया, किसी ने पैर में लगाने की महावर दे दी और वन-देवियों ने तो कोंपलों से होड़ करके वृक्षों में से कलाई तक अपने हाथ निकालकर बहुत से आभूषण दे डाले हैं।।5।।

प्रियंवदा—[शकुन्तला को देखकर] सखी! ये लक्षण बता रहे हैं कि पति के घर में तुम राज-लक्ष्मी बनकर सुख भोगोगी।

[शकुन्तला लजाने का नाट्य करती है।]

पहला—चलो, गौतम! स्नान करके गुरुजी आ गए होंगे। इन पेड़-पौधों ने जो वस्तुएँ दी हैं, इसका समाचार उन्हें भी सुना आयें।

दूसरा—चलो। [दोनों का प्रस्थान।]

दोनों सखियाँ—सखी! हमने तो कभी आभूषण पहने नहीं हैं, पर चित्रों में जैसा देखा और सीखा है, उसी ढंग से तुम्हारे शरीर पर भी आभूषण पहना देती हैं।

शकुन्तला—मैं तुम दोनों की चतुरता भली-भाँति जानती हूँ।

[दोनों आभूषण पहनाने का नाट्य करती हैं।]

[स्नान करके लौटे हुए कण्व का प्रवेश।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कण्वः—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भिताबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः।।6।।

[इति परिक्रामति]

सख्यौ—हला सउन्दले! अवसिदमण्डणासि परिधेहि संपदं खोमजुअलं। (हला शकुन्तले अवसितमण्डनासि। परिधत्स्व सांप्रतं क्षौमयुगलम्।)

[शकुन्तलोत्थाय परिधत्ते]

गौतमी—जादे! एसो दे आणन्दपरिवाहिणा चक्खुणा परिस्सजन्तो विअ गुरू उवट्ठिदो। आआरं दाव पडिवज्जस्स। (जाते एष ते आनन्दपरिवाहिणा चक्षुषा परिष्वजमानः इव गुरुरुपस्थितः। आचारं तावत्प्रतिपद्यस्व।)

शकुन्तला—[सव्रीडम्] ताद वन्दामि। (तात वन्दे।)

कण्वः—वत्से!

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव।
सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि।।7।।

गौतमी—भअवं बरो क्खु एसो ण आसिसा (भगवन् वरः खल्वेषः। नाशीः।)

कण्व—आज शकुन्तला चली जायगी, यह सोचते ही जी बैठा जा रहा है। आँसुओं को रोकने से गला इतना रुंध गया है कि मुँह से शब्द नहीं निकल रहे हैं और इसी चिन्ता में मेरी आँखें भी धुँधली पड़ गई है। जब मुझ-जैसे वनवासी को इतनी व्यथा हो रही है, तब उन बेचारे गृहस्थों को कितना कष्ट होता होगा, जो पहले-पहल अपनी कन्या को विदा करते होंगे।।6।।

[घूमते हैं।]

सखियाँ—शकुन्तला! तुम्हारा श्रृंगार तो पूरा हो गया। लो, अब यह रेशमी वस्त्रों का जोड़ा भी पहन लो।

[शकुन्तला उठकर पहनती है।]

गौतमी—वत्से! तात कण्व इधर ही आ रहे हैं। आनन्द के आँसुओं से छलकती हुई उनकी आँखों को देखकर जान पड़ता है, मानो वे अपनी आँखों से ही तुझे गले लगा रहे हों। उन्हें प्रणाम करो।

शकुन्तला—[लजाती हुई] प्रणाम करती हूँ पिताजी।

कण्व—वत्से! जैसे ययाति अपनी पत्नी शर्मिष्ठा का आदर करते थे, वैसे ही तेरे पति भी तेरा आदर करें और शर्मिष्ठा के पुत्र पुरु के समान ही तुझे भी चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त हो।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गौतमी—भगवन! यह तो आपने वरदान दिया है आशीर्वाद नहीं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कण्वः—वत्से! इतः सद्योहुताग्नीन्प्रदक्षिणीकुरुष्व।

[सर्वे परिक्रामन्ति।]

कण्वः—[ऋक्छन्दसाऽऽशास्ते।]—

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैर्वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु।।8।।

प्रतिष्ठस्वेदानीम्। [सदृष्टिक्षेपम्] क्व ते शार्ङ्गरवमिश्राः।

[प्रविश्य]

शिष्यः—भगवन् इमे स्मः।

कण्वः—भगिन्यास्ते मार्गमादेशय।

शार्ङ्गरवः—इत इतो भवती।

[सर्वे परिक्रामन्ति।]

कण्वः—भो भोः संनिहितदेवतास्तपोवनतरवः।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।9।।

कण्व—वत्से! चलो, अग्नि में अभी आहुति पड़ी है, चलकर उसकी प्रदक्षिणा कर लो।

[सब प्रदक्षिणा करते हैं।]

कण्व—[ऋग्वेद के छन्द में आशीर्वाद देते हैं।]

बिछी कुशा से यथास्थान वेदी पर समिधा से जलती।
हव्य गन्ध की गन्धभरी कर दें पवित्र ये अग्नि तुझे।।8।।

अब चलो। [इधर-उधर देखकर] अरे! वे सब शार्ङ्गरव आदि कहाँ हैं?

शिष्य—[प्रवेश करके] भगवन्! ये हैं हम लोग।

कण्व—जाओ! अपनी बहन को पहुँचा आओ।

शार्ङ्गरव—इधर से आओ देवी, इधर से।

[सब घूमते हैं]

कण्व—वन-देवताओं से भरे हुए तपोवन के वृक्षों!—जो पहले तुम्हें पिलाए बिना स्वयं जल नहीं पीती थी, जो आभूषण पहनने का प्रेम होने पर भी, तुम्हारे स्नेह के कारण तुम्हारे कोमल पत्तों को हाथ नहीं लगाती थी, जो तुम्हारी नई कलियों को देख-देखकर फूली नहीं समाती थी, वही शकुन्तला आज अपने पति के घर जा रही है। तुम सब इसे प्रेम से विदा दो।।9।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[कोकिलरवं सूचयित्वा]

अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः।
परभृतविरुतं कलं यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम्।। 10।।

[आकाशे]

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभिश्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः।
भूयात्कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः।। 11।।

[सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति।]

गौतमी—जादे! ण्णादिजणसिणिद्धाहिं अणुण्णादगमणासि तवोवणदेवदाहिं। पणम भअवदीणं। (जाते! ज्ञातिजनस्निग्धाभिरनुज्ञातगमनाऽसि तपोवनदेवताभिः। प्रणम भगवतीः।)

शकुन्तला—[सप्रणामं परिक्रम्य जनान्तिकम्] हला पिअंवदे! णं अज्जउत्तदंसणुस्सुआए वि अस्समपदं परिच्चअन्तीए दुक्खेण मे चलणो पुरदो पवट्टदि। (हला प्रियंवदे! नन्वार्यपुत्रदर्शनोत्सुकाया अप्याश्रमपदं परित्यजन्त्या दुःखेन मे चरणौ पुरतः प्रवर्तते।)

प्रियंवदा—ण केवलं तवोवणविरहकादरा सही एव्व तुए उवट्ठिदविओअस्स तवोवणस्स वि दाव समवत्था दीसइ। पेक्ख—

[कोयल की कूक सुनाई पड़ती है। उसकी ओर संकेत करके] शकुन्तला के वन के साथी वृक्षों ने कोयल के शब्दों में उसे जाने की आज्ञा दे दी है।।10।। [आकाश में] इस शकुन्तला की यात्रा कल्याणमय हो। इसके मार्ग में बीच-बीच में नीली कमलिनियों से भरे हुए ताल हों, नियम से थोड़ी-थोड़ी दूरी पर लगे हुए, धूप से बचानेवाली घनी छाँहवाले वृक्ष हों, धूल में कमल के पराग की कोमलता हो और मार्ग-भर सुख देनेवाला पवन बहता चले।।11।।

[सब आश्चर्य से सुनते हैं।]

गौतमी—वत्से! जो वन-देवियाँ तुझे सगे-सम्बन्धियों के समान प्यारी हैं, वे तुझे आशीर्वाद दे रही हैं। इन्हें प्रणाम कर लो।

शकुन्तला—[प्रणाम करती हुई घूमकर, अलग प्रियंवदा से] सखी प्रियंवदा! यद्यपि इस समय मुझे आर्यपुत्र के दर्शन की बड़ी उतावली हो रही है, फिर भी आश्रम को छोड़ते हुए मेरे पैर आगे नहीं बढ़ रहे हैं।

प्रियंवदा—केवल तुम्हीं तपोवन के विरह से दुखी नहीं हो। ज्यों-ज्यों तुम्हारी विदाई की घड़ी पास आती जा रही है, त्यों-त्यों तपोवन भी उदास दिखाई पड़ता जा रहा है। देखो—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उग्गलिअदब्भकवला मिआ परिच्चत्तणच्चणा मोरा।
ओसरिअपण्डुपत्ता मुअन्ति अस्सू विअ लदाओ।।12।।

(न केवलं तपोवनविरहकातरा सख्येव त्वयोपस्थितवियोगस्य तपोवनस्यापि तावत्समवस्था दृश्यते।) पश्य—

(उद्गलितदर्भकवला मृगाः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः।।)

शकुन्तला—[स्मृत्वा] **ताद लदाबहिणिअं वणजोसिणिं दाव आमन्तइस्सं** (तात! लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये।)

कण्वः—अवैमि ते तस्यां सोदर्यस्नेहम्। इयं तावद्दक्षिणेन।

शकुन्तला—[उपेत्य लतामालिङ्ग्य] **वणजोसिणि। चूदसंगता वि मं पच्चालिङ्ग इदोगदाहिं साहावाहाहिं। अज्जप्पहुदि दूरपरिवत्तिणी दे क्खु भविस्सं।** (वनज्योत्स्ने! चूतसंगताऽपि मां प्रत्यालिङ्ग इतोगताभिः शाखाबाहुभिः। अद्यप्रभृति दूरपरिवर्तिनी ते खलु भविष्यामि।)

कण्वः—
संकल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम्।
चूतेन संश्रितवती नवमालिकेयमस्यामहं त्वयि न संप्रति वीतचिन्तः।।13।।

इतः पन्थानं प्रतिपद्यस्व।

शकुन्तला—[सख्यौ प्रति] **हला एसा दुवेणं वो हत्थे णिक्खेवो।** (हला एषा द्वयोर्युवयोर्हस्ते निक्षेपः।]

हिरणियाँ चबाई हुई कुश के कौर उगल रही हैं, मोरों ने नाचना छोड़ दिया है और लताओं से पीले-पीले पत्ते इस प्रकार झड़ रहे हैं मानो उनके आँसू गिर रहे हों।।12।।

शकुन्तला—[स्मरण करके।] तात! मैं अपनी बहन वन-ज्योत्स्ना लता से भी मिल लेना चाहती हूँ।

कण्व—मैं जानता हूँ कि तू उसे सगी बहन जैसा प्यार करती है। यह है वह, दाहिनी ओर।

शकुन्तला—[लता के पास जाकर और उससे लिपटकर।] प्यारी वनज्योत्स्ना! तू आम के वृक्ष से लिपटी होने पर भी अपनी इधर फैली हुई शाखा की बाँहों से मुझसे भेंट तो कर ले, क्योंकि आज से तो मैं तुझसे बहुत दूर जा पड़ूँगी।

कण्व—मैंने तेरे लिये जैसे पति का संकल्प किया था, तूने अपने पुण्य-प्रभाव से वैसा पति पा लिया है और इस वन-ज्योत्स्ना को भी आम का ठीक सहारा मिल गया है। अब मैं तुम दोनों की चिन्ता से छूट गया हूँ।।13।। इधर से चले आओ।

शकुन्तला—[सखियों से] सखियो! इस वन-ज्योत्सना को मैं तुम दोनों के हाथ सौंप जाती हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सख्यौ—**अअं जणो कस्स हत्थे समप्पिदो।** (अयं जनः कस्य हस्ते समर्पितः।) [इति बाष्पं विसृजतः।]

कण्व—अनसूये अलं रुदित्वा। ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्तव्या शकुन्तला।

[सर्वे परिक्रामन्ति।]

शकुन्तला—ताद एसा उडजपज्जन्तचारिणी गब्भमन्थरा मअवहू जदा अणघप्पसवा होइ तदा मे कंपि पिअणिवेदइत्तअं विसज्जइस्सह। (तात एषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधूर्यदाऽनघप्रसवा भवति तदा मह्यं कमपि प्रियनिवेदयितृकं विसर्जयिष्यथ।)

कण्वः—नेदं विस्मरिष्यामः।

शकुन्तला—[गतिभङ्गं रूपयित्वा] **को णु क्खु एसो णिवसणे मे मज्जइ।** (को नु खल्वेष निवसने से सज्जते।) [इति परावर्तते।]

कण्वः—वत्से!

यत्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते।। 14।।

दोनों—और हम लोगों को किसके हाथ सौंप जा रही हो?

[रोने लगती हैं।]

कण्व—रोओ मत अनसूया! उलटा तुम्हें तो चाहिए कि शकुन्तला को और धीरज बँधाओ।

[सब घूमते हैं।]

शकुन्तला—तात! आश्रम में चारों ओर गर्भ के भार से अलसाती हुई चलनेवाली इस हिरणी को जब सुख से बच्चा हो जाये, तब किसी के द्वारा यह प्यारा समाचार मेरे पास भिजवा दीजिएगा।

कण्व—यह नहीं भूलेंगे।

शकुन्तला—[चलने में रुकावट का अनुभव करती हुई-सी।] अरे! यह कौन मेरा आँचल पकड़कर खींच रहा है?

[पीछे घूमकर देखती है।]

कण्व—वत्से! कुशा के काँटे से छिदे हुए जिसके मुँह को अच्छा करने के लिये तू उसपर हिंगोट का तेल लगाया करती थी, वही तेरे हाथ के दिए हुए मुट्ठी भर साँवे के दानों से पला हुआ, तेरा पुत्र के समान प्यारा हिरण मार्ग रोके खड़ा है।।14।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला—**वच्छ किं सहवासपरिच्चाइणिं मं अणुसरसि। अचिरप्पसूदाए जणणीए विणा वड्ढिदो एव्व। दाणिं पि मए विरहिदं तुमं तादो चिन्तइस्सदि। णिवत्तेहि दाव।** (वत्स! किं सवासपरित्यागिनीं मामनुसरसि। अचिरप्रसूतया जनन्या विना वर्धित एव। इदानीमपि मया विरहितं त्वां तातश्चिन्तयिष्यति। निवर्तस्व तावत्।) [इति रुदती प्रस्थिता।]

कण्वः—

उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्तिं बाष्पं कुरु स्थितया विहतानुबन्धम्।
अस्मिन्नलक्षितनतोन्नतभूमिभागे मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति।। 15।।

शार्ङ्गरवः—भगवन् ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य इति श्रूयते। तदिदं सरस्तीरम्। अत्र संदिश्य प्रतिगन्तुमर्हसि।

कण्वः—तेन हीमां क्षीरवृक्षच्छायामाश्रयामः।

[सर्वे परिक्रम्य स्थिताः।]

कण्वः—[आत्मगतम्] किं नु खलु तत्रभवतो दुष्यन्तस्य युक्तरूपमस्माभिः संदेष्टव्यम्। [इति चिन्तयति।]

शकुन्तला—[जनान्तिकम्] **हला पेक्ख। णलिणीपत्तन्तरिदं वि सहअरं अदेक्खन्ती आदुरा चक्कवाई आरडदि दुक्करं अहं करेमित्ति तक्केमि।** (हला पश्य। नलिनीपत्रान्तरितमपि सहचरमपश्यन्त्यातुरा चक्रवाक्यारटति दुष्करमहं करोमीति तर्कयामि।)

शकुन्तला—वत्स! मुझ साथ छोड़कर जाने वाली के पीछे-पीछे तू कहाँ जा रहा है? तेरी माँ जब तुझे जन्म देकर मर गई थी, उस समय मैंने तुझे पाल-पोसकर बड़ा किया था। अब मेरे पीछे पिताजी तेरी देखभाल करेंगे। जा, लौट जा। [रोती हुई आगे बढ़ती है।]

कण्व—वत्से! धीरज धरकर अपने आँसू पोंछ डाल। इन आँसुओं के कारण तेरी उठी हुई बरौनियों वाली आँखें ठीक से देख नहीं पा रही हैं। इसलिये यहाँ की ऊबड़-खाबड़ धरती पर तेरे पैर उलटे सीधे पड़ते जा रहे हैं।।15।।

शार्ङ्गरव—भगवन्! सुना है कि प्रियजनों को बिदा देते समय जलाशय तक पहुँचाकर लौट जाना चाहिए। अब सरोवर का तट आ गया है इसलिये जो कुछ सन्देश कहलाना हो वह यहीं बताकर आप लोग आश्रम को लौट जायँ।

कण्व—तो चलो, इस पीपल की छाया में थोड़ा बैठ लिया जाये।

[सब घूमकर बैठ जाते हैं।]

कण्व—[अपने ही आप] माननीय राजा दुष्यन्त के पास कौन-सा सन्देश भेजना ठीक होगा [सोचते हैं।]

शकुन्तला—[सखी से अलग] सखी! देख तो। कमलिनी के पत्ते की ओट में छिपे हुए अपने चकवे को न देख सकने से यह चकवी कैसी घबराकर चिल्ला रही है। इसलिये मैं जिस काम से जा रही हूँ, वह पूरा होता नहीं दिखाई देता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनसूया–सहि! मा एव्वं मन्तेहि।

एसा वि पिएण विणा गमेइ रअणिं विसाअदीहअरं।
गरुअं पि विरहदुक्खं आसाबन्धो सहावेदि।। 16।।

(सखि! मैवं यन्त्रयस्व–
एषाऽपि प्रियेण विना गमयति रजनीं विषाददीर्घतराम्।
गुर्वपि विरहदुःखामाशाबन्धः साहयति।।)

कण्वः–शार्ङ्गरव! इति त्वया मद्वचनात्स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्यः।

शार्ङ्गरवः–आज्ञापयतु भवान्।

कण्वः–

अस्मान्साधु विचित्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन-
स्त्वय्यस्याः कथमप्यवान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम्।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया।
भाग्यायत्तमतः परं न खुल तद्वाच्यं वधूवन्धुभिः।। 17।।

शार्ङ्गरवः–गृहीतः संदेशः।

कण्वः–वत्से! त्वमिदानीमनुशासनीयाऽसि। वनौकसोऽपि सन्तो लौकिकज्ञा वयम्।

शार्ङ्गरवः–न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम।

कण्वः–सा त्वमितः पतिकुलं प्राप्य–

अनसूया–सखी! ऐसा नहीं सोचना चाहिए। जानती हो, वह चकवी विरह की लंबी रातों को पति के बिना अकेली काट देती है, क्योंकि विरह के समय भी इसे यह आशा बनी रहती है कि प्रातःकाल तो मिलन हो ही जायेगा।।16।।

कण्व–शार्ङ्गरव! शकुन्तला को दुष्यन्त के हाथ में सौंपते हुए मेरी ओर से कहना–

शार्ङ्गरवः–जी हाँ, आज्ञा कीजिए।

कण्व–कहना कि–राजन्! कहाँ तो हम लोग सीधे-सीधे संयमी तपस्वी और कहाँ आप ऊँचे घराने के राजा। फिर भी आपने अपने आप इस कन्या से विवाह कर लिया है। इन सब बातों का ध्यान करके आप कम से कम दूसरी रानियों के समान तो शकुन्तला का आदर अवश्य कीजिएगा। इससे बढ़कर इसे जो सौभाग्य मिले वह इसके भाग्य की बात है। उसके लिये हम कन्या के बान्धव लोग भला क्या कह सकते हैं।।17।।

शार्ङ्गरव–जी हाँ सन्देश समझ गया।

कण्व–वत्से! आओ। तुम्हें कुछ सीख देनी है। देखो, वन में रहते हुए भी सांसारिक व्यवहार हम लोग भली भाँति जानते हैं।

शार्ङ्गरव–ऐसी कौन-सी बात है जिसे विद्वान् लोग न जानते हों।

कण्व–देखो! यहाँ से पति के घर पहुँचकर घर के सब बड़े-बूढ़ों की सेवा करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुश्रूषस्व गुरून्कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
पत्युर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।। 18।।

कथं वा गौतमी मन्यते।

गौतमी—एतिओ बहूजणस्स उवदेसो। जादे! एदं क्खु सव्वं ओधारेहि। (एतावान्वधूजनस्योपदेशः। जाते! एतत्खलु सर्वमवधारय।)

कण्वः—वत्से! परिष्वजस्व मां सखीजनञ्च।

शकुन्तला—ताद! इदो एव्व किं पिअंवदाअणसूआओ सहीओ णिवत्तिस्सन्ति। (तात! इत एव किं प्रियंवदानसूये सख्यौ निवर्तिष्येते।)

कण्वः—वत्से! इमे अपि प्रदेये। न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम्। त्वया सह गौतमी यास्यति।

शकुन्तला—[पितरमाश्लिष्य] कहं दाणिं तादस्स अङ्कादो परिब्भट्टा मलअतरुन्मूलिआ चन्दणलदा विअ देसन्तरे जीविअं धारइस्सं। (कथमिदानीं तातस्याङ्कात्परिभ्रष्टा मलयतरून्मूलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवितं धारयिष्यामि।

कण्वः—वत्से! किमेवं कातरासि।

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला।

अपनी सौतों से सखियों-जैसा प्रेम रखना। पति निरादर भी करें तो क्रोध करके उनसे झगड़ा मत कर बैठना। दास-दासियों को बड़े प्यार से रखना और अपने सौभाग्य पर बहुत ऐंठना मत। जो स्त्रियाँ घर में इस प्रकार चलती हैं वे ही सच्ची गृहिणी होती हैं और जो इसका उलटा करती हैं, वे खोटी स्त्रियाँ तो अपने कुल के लिए कलंक होती हैं।।18।। क्यों गौतमी! ठीक है न!

गौतमी—कुलवधुओं के लिये इससे बढ़कर और क्या उपदेश होगा। वत्से! ये सब बातें गाँठ बाँध लो।

कण्व—वत्से! आओ, मुझसे और अपनी सखियों से गले मिल लो।

शकुन्तला—तात! क्या प्रियंवदा आदि सखियाँ यहाँ से लौट जायँगी?

कण्व—वत्से! इनका भी तो विवाह करना है। इसलिये इनका वहाँ जाना ठीक नहीं है। तेरे साथ गौतमी तो जा ही रही है।

शकुन्तला—[पिता से गले लगकर] पिताजी की गोद से अलग होकर मलयपर्वत से उखाड़े हुए चन्दन के पौधे के समान मैं परदेश में पहुँचकर कैसे सुख पाऊँगी?

कण्व—वत्से! इतनी क्यों अधीर हो रही हो? जब तुम ऊँचे कुलवाले पति की पटरानी होकर उनके घर के कामों में दिन-रात फँसी रहोगी और जैसे पूर्व दिशा, सूर्य को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तनयमचिरात्प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि।। 19।।

[शकुन्तला पितुः पादयोः पतति।]

कण्वः—यदिच्छामि ते तदस्तु।

शकुन्तला—[सख्यावुपेत्य] हला दुवे वि मं समं एव्व परिस्सजह (हला द्वे अपि मां सममेव परिष्वजेथाम्।)

सख्यौ—[तथा कृत्वा] सहि जइ णाम सो राआ पच्चहिण्णाणमन्थरो भवे तदो से इमं अत्तणामहेअअङ्किअं अंगुलिअअं दंसेहि। (सखि! यदि नाम स राजा प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत्ततस्तस्येदमात्मनामधेयाङ्कितमंगुलीयकं दर्शय।)

शकुन्तला—इमिणा संदेहेण वो आकम्पिदम्हि (अनेन संदेहेन वामाकम्पितास्मि।)

सख्यौ—मा भाआहि। सिणेहो पावसङ्की। (मा भैषी। स्नेहः पापशङ्की।)

शार्ङ्गरवः—युगान्तरमारूढः सविता। त्वरतामत्रभवती।

शकुन्तला—[आश्रमाभिमुखी स्थित्वा] ताद कदा णु भूओ तवोवणं पेक्खिस्सं [तात कदा नु भूयस्तपोवनं प्रेक्षिष्ये।)

कण्वः—श्रूयताम्—

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।
भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्।। 20।।

उत्पन्न करती है वैसे ही पवित्र पुत्र उत्पन्न करोगी, उस समय तुम मुझसे बिछुड़ने का सब दुख भूल जाओगी।।19।।

[शकुन्तला पिता के पैरों में पड़ती है।]

कण्व—तुम्हारे लिय मैं जो-जो कहता हूँ वह तुम्हें मिले।

शकुन्तला—[सखियों के पास जाकर] सखियो! आओ तुम दोनों एक साथ मेरे गले लग जाओ।

सखियाँ—[गले लगकर] सखी, देखो! यदि वे राजा तुम्हें पहचानने में भूल करें, तो यह उनके नामवाली अँगूठी तुम उन्हें दिखा देना।

शकुन्तला—नहीं नहीं, डरो मत। प्रेम में तो अनिष्ट की आशंका होती ही है।

शार्ङ्गरव—देवी! दिन बहुत चढ़ आया है। अब शीघ्रता करनी चाहिए।

शकुन्तला—[आश्रम की ओर मुँह करके] तात! अब आश्रम के फिर कब दर्शन हो सकेंगे?

कण्व—सुनो! बहुत दिनों तक इस पृथ्वी की सौत बनकर और अपने अद्वितीय वीर पुत्र को राज्य और कुदुम्व का भार सौंपकर जब तुम अपने पति के साथ आओगी तब इस शान्त आश्रम में सुख से रहना।।20।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौतमी—जादे! परिहीअदि गमणवेला। णिवत्तेहि पिदरं। अहवा चिरेण वि पुणो पुणो एसा एव्वं लन्तइस्सदि णिवत्तदु भवं। (जाते! परिहीयते गमनवेला। निवर्तय पितरम्। अथवा चिरेणापि पुनः पुनरेषैवं मन्त्रयिष्यते। निवर्ततां भवान्।)

कण्वः—वत्से! उपरुध्यते तपोऽनुष्ठानम्।

शकुन्तला—[भूयः पितरमाश्लिष्य] तवच्चलणपीडिदं तादसरीरं ता मा अदिमेत्तं मम किदे उक्कण्ठिदुम्। (तपश्चरणपीडितं तातशरीरम् तन्माऽतिमात्रं मम कृते उत्कण्ठितुम्।)

कण्वः—[सनिश्वासम्]—

शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम्।
उटजद्वारविरूढं नीवारवलिं विलोकयतः।। 21।।

गच्छ! शिवास्ते पन्थानः सन्तु।

[निष्क्रान्ता शकुन्तला सहयायिनश्च।]

सख्यौ—[शकुन्तलां विलोक्य] हद्धी हद्धी अन्तलिड्दिा सउन्दला वणराईए। (हा धिक्! हा धिक्! अन्तर्हिता शकुन्तला वनराज्या।)

कण्वः—[सनिःश्वासम्] अनसूये! गतवती वां सहधर्मचारिणी। निगृह्य शोकमनुगच्छतं मां प्रस्थितम्।

उभे—ताद सउन्दलाविरहिदं सुण्णं विअ तवोवणं कं पविसावो। (तात शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनं कथं प्रविशावः।)

गौतमी—वत्से! बिदा की घड़ी बीतती जा रही है। जाने दो पिताजी को। [कण्व से] आप अब लौट जायँ, नहीं तो यह बहुत देर तक यों ही कुछ-न-कुछ कहती ही रहेगी।

कण्व—वत्से! अब जाओ। हमारे तप के कामों में देर हो रही है।

शकुन्तला—[पिता से फिर भेंट करके] आप तो यों ही तप के कारण बहुत दुबले हो गए हैं, इसलिये आप मेरी बहुत अधिक चिन्ता न कीजिएगा।

कण्व—[लम्बी साँस लेकर] वत्से! तुमने बलि के लिये जो तिन्नी के धान छींटे थे, उनके अंकुर जब तक कुटी के द्वार पर दिखाई देते रहेंगे, तब तक मेरा शोक कैसे कम होगा।।21।। जाओ! तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो।

[सहयात्रियों के साथ शकुन्तला जाती है।]

दोनों सखियाँ—[शकुन्तला को देखकर] हाय, हाय। शकुन्तला तो वृक्षों की ओट में ओझल हो गई।

कण्व—[लम्बी साँस लेकर।] अनसूया! तुम्हारी सखी तो चली गई। अब यह रोना-धोना छोड़ो और मेरे साथ लौट चलो।

दोनों—हाय, शकुन्तला के बिना सूने आश्रम में हम कैसे चलेंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कण्वः—स्नेहप्रवृत्तिरेवंदर्शिनी। [सविमर्शं परिक्रम्य] हन्त भोः शकुन्तलां पतिकुलं विसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम्। कुतः।

अर्थो कि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।। 22।।

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे।]

इति चतुर्थोऽङ्कः।

कण्व—प्रेम में ऐसा ही होता है। [कुछ विचारते हुए घूमकर] ओह! शकुन्तला को पति के घर भेजकर अब मेरे मन को छुट्टी मिली। क्योंकि—कन्या सचमुच पराई सम्पत्ति ही होती है। आज उसे पति के घर भेजकर मेरा मन वैसे ही निश्चिन्त हो गया है, जैसे किसी की धरोहर लौटा दी हो।।22।।

[सब जाते हैं।]

चौथा अंक समाप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चमोऽङ्कः

[ततः प्रविशत्यासनस्थो राजा विदूषकश्च]

विदूषकः—[कर्णं दत्त्वा] भो वअस्स संगीतसालन्तरे अवधाणं देहि। कलविसुद्धाए गीदीए सरसंजोओ सुणीअदि। जाणे तत्तहोदी हंसवदिआ वण्णपरिअअं करोदित्ति। (भो वयस्य! संगीतशालान्तरेऽवधानं देहि। कलविशुद्धाया गीतेः स्वरसंयोगः श्रूयते। जाने तत्रभवती हंसपदिका वर्णपरिचयं करोतीति।)

राजा—तूर्ष्णीं भव यावदाकर्णयामि।

[आकाशे गीयते।]

अहिणवमहुलोलुवो भवं तह परिचुम्बिअ चूअमञ्जरिं।
कमलवसइमेत्तणिव्वुदो महुअर विह्मरिओ सि णं कहं।।1।।
(अभिनवमधुलोलुपो भवाँस्तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम्।
कमलवसतिमात्रनिर्वृतो मधुकर विस्मृतोऽस्येनां कथम्।।)

राजा—अहो रागपरिवाहिनी गीतिः।

विदूषकः—किं दाव गीदीए अवगओ अक्खरत्थो (किं तावद्गीत्या अवगतोऽक्षरार्थः।)

पञ्चम अङ्क

[राजा आसन पर बैठे हैं और पास ही विदूषक भी बैठा हुआ है।]

विदूषक—[कान लगाकर] सुनो वयस्य! संगीत-शाला की ओर कान लगाकर तो सुनो। कोई बड़े लय-ताल से अत्यन्त मीठे स्वरों में गीत गा रहा है। जान पड़ता है महारानी हंसपदिका स्वर साध रही हैं।

राजा—अच्छा चुप हो जाओ तो सुनूँ।

[नेपथ्य में गीत]

नये नये मधू के लोभी ओ मधुकर!
एक बार ही रसाल की मधुर मंजरी चूम गए तुम।
क्यों निवास पर कमल-कोश में मुझे भूलकर घूम गए तुम।।
नये नये मधु के लोभी ओ मधुकर।।1।।

राजा—वाह, गीत में कैसी प्रेम की धारा बह रही है?

विदूषक—पर इस गीत में जो चोट की गई है, वह भी समझ पाए हो?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—[स्मितं कृत्वा] सकृत्कृतप्रणयोऽयं जनः। तदस्या देवीवसुमतीमन्तरेण मदुपालम्भमवगतोऽस्मि। सखे माढव्य! मद्वचनादुच्यतां हंसपदिका—निपुणमुपालब्धोऽस्मीति।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि। [उत्थाय] **भो वअस्स! गहीदस्स ताए परकीएहिं हत्थेहिं सिहण्डए ताडीअमाणस्स अच्छराए वीदराअस्स विअ णत्थि दाणिं मे मोक्खो।** (यद्भवानाज्ञापयति। भो वयस्य! गृहीतस्य तथा परकीयैर्हस्तैः शिखण्डके ताड्यमानस्याप्सरसा वीतरागस्येव नास्तीदानीं मे मोक्षः।)

राजा—गच्छ। नागरिकवृत्त्या संज्ञापयैनाम्।

विदूषकः—का गई। (का गतिः।) [इति निष्क्रान्तः।]

राजा—[आत्मगतम्] किं नु खलु गीतार्थमाकर्ण्येष्टजनविरहादृतेऽपि बलवदुत्कण्ठितोऽस्मि। अथवा—

रम्याणि वीक्ष्य मधुराँश्च निशम्य शब्दान्पर्युत्सुकीभवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि।।2।।

[इति पर्याकुलस्तिष्ठति।]

[ततः प्रविशति कञ्चुकी।]

कञ्चुकी—अहो नु खल्वीदृशीमवस्थां प्रतिपन्नोऽस्मि।

आचार इत्यवहितेन मया गृहीता या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः।
काले गते बहुतिथे मम सैव जाता प्रस्थानविक्लवगतेरवलम्बनार्था।।3।।

राजा—[मुसकराते हुए] हाँ, हाँ। मैं समझ गया। मैंने रानी से केवल एक ही बार प्रेम किया है, इसलिये आजकल जो देवी वसुमती से मैं प्रेम करने लगा हूँ, उसी पर ये छींटे कसे जा रहे हैं। मित्र माढव्य! मेरी ओर से हंसपदिका से जाकर कहना कि तुमने बड़ी मीठी चुटकी ली है।

विदूषक—जैसी आपकी आज्ञा। [खड़ा होकर] पर वयस्य! जैसे अप्सराओं के हाथों में पड़कर बड़े-बड़े विरागी ऋषि नहीं छूट पाते हैं, वैसे ही जब अपनी दासियों से मेरी चोटी पकड़वाकर वे मुझे पीटने लगेंगी, उस समय उनसे छुटकारा पाना मेरे लिये भी कठिन हो जायगा।

राजा—जाओ, चतुराई के साथ सन्देश देना।

विदूषक—आप कह रहे हैं तो जाना ही पड़ेगा। [चला जाता है।]

राजा—[मन ही मन] मेरे सभी सगे-प्यारे मेरे पास ही हैं, फिर भी इस गीत को सुनकर मैं न जाने क्यों इतना अनमना-सा हो उठा हूँ या—

सुन्दर वस्तुएँ देखकर और मीठे शब्द सुनकर जब सुखी लोग भी उदास हो जायँ तब यही समझना चाहिए कि उनके मन में पिछले जन्म के प्रेमियों के जो संस्कार बैठे हुए हैं, वे ही अपने आप जाग उठे हैं।।2।। [यह सोचकर व्याकुल हो उठता है।]

कञ्चुकी—आह, मेरी भी क्या दशा हो चली है।—जिस बेंत की छड़ी को कभी मैं रनिवास के द्वारपाल का नियम समझकर हाथ में लिए रहा करता था, वही अब इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोः कामं धर्मकार्यमनतिपात्यां देवस्य। तथापीदानीमेव धर्मासनादुत्थिताय पुनरुपरोधकारि कण्वशिष्यागमनमस्मै नोत्सहे निवेदितुम्। अथवाऽविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकारः। कुतः।

भानुः सकृद्युक्ततुरङ्ग एव रात्रिंदिवं गन्धवहः प्रयाति।
शेषः सदैवाहितभूमिभारः षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः।।4।।

यावन्नियोगमनुतिष्ठामि। [परिक्रम्यावलोक्य च] एष देवः—

प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा निषेवते शान्तमना विविक्तम्।
यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः।।5।।

[उपगम्य] जयतु जयतु देवः। एते खलु हिमगिरेरुपत्यकारण्यवासिनः कण्वसंदेशमादाय सस्त्रीकास्तपस्विनः संप्राप्ताः। श्रुत्वा देवः प्रमाणम्।

राजा—[सादरम्] किं कण्वसंदेशहारिणः।

कञ्चुकी—अथ किम्।

राजा—तेन हि मद्वचनाद्विज्ञाप्यतामुपाध्यायः सोमरातः अमूनाश्रमवासिनः श्रौतेन विधिना सत्कृत्य स्वयमेव प्रवेशयितुमर्हतीति। अहमप्येताँस्तपस्विदर्शनोचिते प्रदेशे स्थितः प्रतिपालयामि।

कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः। [इति निष्क्रान्तः।]

बुढ़ापे में मुझ लड़खड़ाते पैरोंवाले का सहारा बन गई है।।3।।

यह तो ठीक है महाराज को धर्मकार्य करना चाहिए। फिर भी अभी-अभी न्यायासन से उठकर गए हैं। अब उन्हें फिर से कष्ट देने के लिये जो ये कण्व के शिष्य आ धमके हैं, इनकी सूचना पहुँचाने को मेरा तो जी नहीं करता। पर प्रजा के शासन के काम में विश्राम कहाँ। क्योंकि—सूर्य एक ही बार अपने घोड़े जोतकर अब तक चला जा रहा है, पवन भी रात-दिन बहता ही रहता है और शेषनाग भी इस पृथ्वी के भार को अपने ऊपर सदा धारण ही किए रहते हैं। ठीक यही दशा उपज का छठा अंश लेनेवाले राजा की भी है।।4।। इसलिये चलूँ मैं भी अपना कर्तव्य पालन करूँ। [इधर उधर देखकर] ये महाराज अपनी सन्तान-जैसी प्रजा का काम करके, थक जाने पर यहाँ एकान्त में उसी प्रकार विश्राम कर रहे हैं, जैसे दिन की धूप से तपा हुआ गजराज हाथियों के झुण्ड को चरने के लिये छोड़कर स्वयं ठंडे स्थान में विश्राम लेता है।।5।। [पास जाकर] महाराज की जय हो। हिमालय की तराई में रहनेवाले कुछ तपस्वी लोग कण्व का सन्देश लेकर स्त्रियों के साथ आए हुए हैं। अब जैसा देव ठीक समझें।

राजा—[आदर से] क्या महर्षि कण्व का सन्देश लेकर आए हैं?

कञ्चुकी—जी हाँ!

राजा—तो कुल-पुरोहित सोमरातजी को कहला दो कि वे इन आश्रमवासियों का वैदिक रीति से सत्कार करके इन्हें अपने ही साथ लिवा लायें। मैं भी तब तक उधर चलकर बैठता हूँ, जहाँ ऋषियों से भेंट की जाती है।

कञ्चुकी—जैसी महाराज की आज्ञा। [प्रस्थान]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—[उत्थाय] वेत्रवति! अग्निशरणमार्गमादेशय।

प्रतीहारी—इदो इदो देवो। (इत इतो देवः।)

राजा—[परिक्रामति। अधिकारखेदं निरूप्य] सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी संपद्यते जन्तुः। राज्ञां तु चरितार्थता दुःखान्तरैव।

औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा
क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव।
नातिश्रमापनयनाय च श्रमाय
राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम्।।6।।

वैतालिकौ—विजयतां देवः।

प्रथमः—

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्।।7।।

द्वितीयः—

नियमयसि विमार्गप्रस्थितानात्तदण्डः
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय।

राजा—[उठकर] वेत्रवती! चलो हमें यज्ञशाला तक पहुँचा दो।

प्रतीहारी—इधर से आइए महाराज, इधर से।

राजा—[घूमता है। राजकाज का दुःख बताते हुए] अपने मन की साध पूरी हो जाने पर और सब जीवों को तो सुख मिलता है, पर हम लोगों की राजा बनने की इच्छा जब पूरी हो जाती है, तब कष्ट ही कष्ट हाथ लगता है। राजा बनकर बड़ी प्रतिष्ठा पा लेने से मन की उमंग तो पूरी हो जाती है, पर जब राज्य का पालन करना पड़ता है, तब बड़ा कष्टप्रद हो जाता है। इसलिये राज्य उस छतरी के समान है जिसकी मूठ अपने हाथ में ले लेने से थकावट ही अधिक होती है, विश्राम कम मिलता है।।6।।

[नेपथ्य में]

दो वैतालिक—महाराज की जय हो।

पहला—अपने सुख की इच्छा छोड़कर आप प्रजा की भलाई में लगे रहते हैं। या यों कहना चाहिए कि इस प्रकार आप अपना धर्म ही पाल रहे हैं, क्योंकि वृक्ष, अपने सिर पर तो कड़ी धूप सहता है, पर अपने तले बैठे हुए जीवों को छाया ही देता रहता है।।7।।

दूसरा—दुष्टों को आप अपने राजदण्ड से ठीक रखते हैं और सबके आपसी झगड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम
त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम्।।8।।

राजा—एते क्लान्तमनसः पुनर्नवीकृताः स्मः। [इति परिक्रामति।]

प्रतीहारी—एसो अहिणवसम्मज्जणसस्सिरीओ सण्णिहिदहोमधेणू अग्गिसरणालिन्दो। आरोहदु देवो। (एष अभिनवसंमार्जनसश्रीकः संनिहितहोमधेनुरग्निशरणालिन्दः। आरोहतु देवः।)

राजा—[आरुह्य परिजनांसावलम्बी तिष्ठति] वेत्रवति! किमुद्दिश्य भगवता कण्वेन मत्सकाशमृषयः प्रेषिताः स्युः।

किं तावद्व्रतिनामुपोढतपसां विघ्नैस्तपो दूषितं
धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम्।
आहोस्वित्प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधा-
मित्यारूढवहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः।।9।।

प्रतीहारी—**सुचरिदणंदिणो इसीओ देवं सभाजइदुं आअदेत्ति तक्केमि।** (सुचरितनन्दिन ऋषयो देव सभाजयितुमागता इति तर्कयामि।)

[ततः प्रविशन्तिः गौतमीसहिताः शकुन्तलां पुरस्कृत्य मुनयः पुरश्चैषां कञ्चुकी पुरोहितश्च।]

कञ्चुकी—इत इतो भवन्तः।

मिटाकर आप प्रजा की रक्षा करते हैं। प्रजा में जो धनी लोग हैं उनके तो बहुत-से सगे सम्बन्धी हो सकते हैं, पर साधारण प्रजा के तो माँ-बाप भाई सब कुछ आप ही हैं।।8।।

राजा—मेरा उदास मन इनकी बातें सुनकर फिर हरा हो गया।

[चारों ओर घूमते हैं]

प्रतीहारी—यह रही झाड़-बुहारकर सुन्दर की हुई यज्ञशाला की बैठक, जहाँ पास ही हवन के लिये घी-दूध देनेवाली गौ भी बँधी है। इसी यज्ञशाला में चढ़ जायँ महाराज।

राजा—[चढ़कर परिचारकों के कन्धों के सहारे खड़ा होता है।] वेत्रवती! भगवान् कण्व ने ऋषियों को भला मेरे पास किस लिये भेजा होगा? कहीं उपद्रवी राक्षसों ने बहुत प्रकार की तपस्या करनेवाले इन ऋषियों के तप में तो बाधा नहीं डाल दी है; या कहीं कोई तपोवन के प्राणियों को तो नहीं सता बैठा है; या कहीं मेरे पापों के कारण तपोवन की लताओं और वृक्षों का फलना-फूलना तो नहीं रुक गया है। मेरे मन में अनेक प्रकार की ऐसी बुरी-बुरी आशंकाएँ उठ रही हैं कि कुछ ठीक-ठीक समझ न पाने से मेरे जी में खलबली मच गई है।।9।।

प्रतीहारी—देव! मैं तो समझती हूँ कि ये ऋषि लोग महाराज के अच्छे कामों से प्रसन्न होकर बधाई देने आए होंगे।

[शकुन्तला को आगे किए हुए गौतमी के साथ ऋषियों का प्रवेश। आगे-आगे कञ्चुकी और पुरोहित।]

कञ्चुकी—इधर से आइए आप लोग, इधर से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शार्ङ्गरवः—शारद्वत।

महाभागः कामं नरपतिरभिन्नस्थितिरसौ
न कश्चिद्वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजते।
तथापीदं शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा
जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव।। 10।।

शारद्वतः—स्थाने भवान्पुरप्रवेशादित्थंभूतः संवृत्तः। अहमपि—

अभ्यक्तमिव स्नातः शुचिरशुचिमिव प्रबुद्ध इव सुप्तम्।
बद्धमिव स्वैरगतिर्जनमिह सुखसङ्गिनमवैमि।। 11।।

शकुन्तला—[निमित्तं सूचयित्वा] अम्महे किं मे वामेदरं णअणं विप्फुरदि। (अहो किं मे वामेतरं नयनं विस्फुरति।)

गौतमी—जादे पडिहदं अमङ्गलं सुहाइं दे भत्तुकुलदेवदाओ विवरन्दु। [जाते! प्रतिहतमङ्गलम्। सुखानि ते भर्तुकुलदेवताः वितरन्तु।]

[इति परिक्रामति]

पुरोहितः—[राजानं निर्दिश्य] भो भोस्तपस्विनः असावत्रभवान्वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनो वः प्रतिपालयति। पश्यतैनम्।

शार्ङ्गरवः—भो महाब्राह्मण! काममेतदभिनन्दनीयं तथापि वयमत्र मध्यस्थाः। कुतः।

शार्ङ्गरव—शारद्वत! यह मैं मानता हूँ कि ये राजा इतने धर्मात्मा हैं कि कभी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते और इनके राज्य में जो नीच-से-नीच वर्ण के लोग हैं, वे भी कभी कोई अधर्म का काम नहीं करते, पर इतने लोगों से भरे हुए भवन को देखकर ऐस जान पड़ता है, मानो यहाँ आग की लपटें उठी हुई हों। मेरा अकेले में रमनेवाला मन तो ऐसा करता है कि यहाँ से भाग खड़ा होऊँ।।10।।

शारद्वत—नगर में आने पर ऐसा ही लगता है। मैं भी सांसारिक भोगों में पड़े हुए यहाँ के लोगों को वैसा ही हीन समझता हूँ, जैसे नहाया हुआ व्यक्ति तेल लगाए हुए को, पवित्र-व्यक्ति, अपवित्र को, जागता हुआ व्यक्ति, सोते हुए को समझता है।।11।।

शकुन्तला—[बुरा शकुन बताकर] हैं! यह मेरी दाहिनी आँख क्यों फड़कने लगी?

गौतमी—तेरे असगुन दूर हों, पुत्री! तेरे पति-कुल के देवता सब भला ही करें।

[घूमती है]

पुरोहित—[राजा को दिखाकर] तपस्वियो! देखिए, वर्णाश्रम का पालन करनेवाले महाराज पहले से ही आसन छोड़कर खड़े हुए आप लोगों के आने की बाट देख रहे हैं। इन्हें देखिए तो।

शार्ङ्गरव—हे राजपुरोहित! माना कि ये प्रशंसा के योग्य हैं, पर हम इसे कोई नई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैर्नम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणम्।। 12।।

प्रतिहारी—**देव पसण्णमुहवण्णा दीसन्ति। जाणामि विसद्धकज्जा इसीओ।** (देव प्रसन्नमुखवर्णा दृश्यन्ते। जानामि विश्रब्धकार्या ऋषयः।)

राजा—[शकुन्तलां दृष्ट्वा] अथात्रभवती—

का स्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या।
मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्।। 13।।

प्रतिहारी—**देव कुतूहलगब्भोपहिदो ण मे तक्को पसरदि। णं दंसणीआ उण से आ किदी लक्खीआदि।** (देवकुतूहलगर्भोपहितो न मे तर्कः प्रसरति। ननु दर्शनीया पुनरस्या आकृतिर्लक्ष्यते।)

राजा—भवतु। अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्।

शकुन्तला—[हस्तमुरसि कृत्वा आत्मगतम्] **हिअअ किं एव्वं वेवसि। अज्जउत्तस्स भावं ओहाररिअ धीरं दाव होहि।** (हृदय किमेव वेपसे। आर्य्यपुत्रस्य भावमवधार्य धीरं तावद्भव।)

पुरोहितः—[पुरो गत्वा] एते विधिवदर्चितास्तपस्विनः। कश्चिदेषामुपाध्यायसंदेशः। तं देवः श्रोतुमर्हति।

राजा—अवहितोऽस्मि।

बात नहीं समझते। क्योंकि—फल लगने पर पेड़ झुकते ही हैं, नये जल से भरे हुए बादल नीचे झुक ही जाते हैं और सज्जन लोग धन पाकर नम्र होते ही हैं। यह तो परोपकारियों का स्वभाव ही होता है, इसमें नई बात क्या है।।12।।

प्रतीहारी—महाराज! ऋषि लोग प्रसन्न दिखाई पड़ रहे हैं। इसलिये मैं समझती हूँ कि ये लोग किसी अच्छे काम से ही आए होंगे।

राजा—[शकुन्तला को देखकर] ये कौन देवी हैं।—इन तपस्वियों के बीच में पीले पत्तों में नई कोंपल के समान दिखाई देनेवाली यह कौन हो सकती है, जिसकी सुन्दरता, घूँघट के कारण ठीक-ठीक खुल नहीं पा रही है।।13।।

प्रतीहारी—महाराज! मैं भी यही जानने को उतावली हो रही हूँ, पर ठीक-ठीक समझ नहीं रही हूँ। फिर भी, जान पड़ता है कि यह है बड़ी सुन्दर।

राजा—हुआ करे। पराई स्त्री पर आँख नहीं डालनी चाहिए।

शकुन्तला—[हृदय पर हाथ रखकर मन ही मन] इस प्रकार काँप क्यों रह हो? मेरे हृदय! आर्यपुत्र के प्रेम का ध्यान करके धीरज तो धरो।

पुरोहित—[आगे बढ़कर] महाराज! इन तपस्वियों का ठीक विधि से आदर-सत्कार हो चुका है। ये अपने गुरुजी का कोई सन्देश लाए हैं, उसे देव सुन लें।

राजा—हाँ, हाँ, मैं ध्यान से सुन रहा हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषयः—[हस्तानुद्यम्य] विजयस्व राजन्!

राजा—सर्वानभिवादये।

ऋषयः—इष्टेन युज्यस्व।

राजा—अपि निर्विघ्नतपसो मुनयः।

ऋषयः—

कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि।
तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति।।14।।

राजा—अर्थवान्खलु मे राजशब्दः। अथ भगवाँल्लोकानुग्रहाय कुशली कण्वः।

ऋषयः—स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः। स भवन्तमनामयप्रश्न-पूर्वकमिदमाह।

राजा—किमाज्ञापयति भगवान्।

शार्ङ्गरवः—यन्मिथः समयादिमां मदीयां दुहितरं भवानुपयाँस्त तन्मया प्रीतिमता युवयोरनुज्ञातम् कुतः।

त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसि नः शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया।
समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः।।15।।

तदिदानीमापन्नसत्वेयं प्रतिगृह्यतां सहधर्मचरणायेति।

ऋषि लोग—[हाथ उठाकर] महाराज की जय हो।

राजा—मैं आप लोगों को प्रणाम करता हूँ।

ऋषि लोग—आपका मनोरथ पूरा हो।

राजा—कहिये, ऋषियों की तपस्या में कोई विघ्न तो नहीं डाल रहा है?

ऋषि लोग—जहाँ आप जैसे राजा पृथ्वी की रक्षा कर रहे हों, वहाँ सज्जनों के धर्म-कार्यों में भला कोई विघ्न डाल सकता है? सूर्य के चमकते रहने पर भला कहीं अँधेरा भी रह सकता है।।14।।

राजा—आज मेरा राजा कहलाना सफल हुआ। अच्छा यह तो बताइए कि संसार का कल्याण करनेवाले भगवान् कण्व तो कुशल से हैं न।

ऋषि लोग—कुशलता तो ऐसे सिद्ध पुरुषों के हाथ में रहती है। उन्होंने आपका कुशल पूछते हुए यह कहलाया है—

राजा—हाँ, भगवान् कण्व ने क्या आज्ञा दी है?

शार्ङ्गरव—उन्होंने कहलाया है कि आपने जो मेरी कन्या से गुप्तरूप से विवाह कर लिया है, उसे मैं प्रसन्न होकर स्वीकार करता हूँ। क्योंकि—आदरणीय व्यक्तियों में आप सबसे प्रधान हैं और शकुन्तला पुण्यक्रिया की साक्षात् मूर्ति है। आज बहुत दिनों पर ब्रह्मा ने एक जैसे गुणवाले वर-वधू की जोड़ी रचकर अपने को दोषी कहलाने से बचा लिया है।।15।। अब आप इस गर्भवती को अपनी धर्मपत्नी बनाकर ग्रहण कर लीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौतमी—अज्ज किंपि वत्तुकाम्म्हि ण मे वअणावसरो अत्थि। कहंत्ति।

णावेक्खिओ गुरुअणो इमाए तुए पुच्छिदो ण बन्धुअणो।

एक्कक्कमेव्व चरिए भणामि किं एक्कमेक्कस्स।। 16।।

(आर्य किमपि वक्तुकामाऽस्मि। न मे वचनावसरोऽस्ति कथमिति।

नापेक्षितो गुरुजनोऽनया त्वया पृष्टो न बन्धुजनः।

एकैकमेव चरिते भणामि किमेकमेकस्य।।)

शकुन्तला—[आत्मगतम्] किं णु क्खु अज्जउत्तो भणादि। (किं नु खल्वार्यपुत्रो भणति।)

राजा—किमिदमुपन्यस्तम्।

शकुन्तला—[आत्मगतम्] पावओ क्खु वअणोवण्णासो। (पावकः खलु वचनोपन्यासः।)

शार्ङ्गरवः—कथमिदं नाम भवन्त एवं सुतरां लोकवृत्तान्तनिण्णाताः।

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते।

अतः समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः।। 17।।

राजा—किं चात्रभवती मया परिणीतपूर्वा।

शकुन्तला—[सविषादम्। आत्मगतम्] हिअअ संपदं दे आसङ्का। (हृदय सांप्रतं ते आशङ्का।)

गौमती—आर्य! मैं भी कुछ कहना चाहती हूँ। यद्यपि मुझे आप लोगों के बीच में कुछ भी बोलना नहीं चाहिए क्योंकि—न तो इसी ने अपने बड़ों से कुछ कहा-सुना, न आपने ही इसके सगे सम्बन्धियों से कोई पूछताछ की। इसलिये जब आप लोगों ने आपस में ही सब कुछ कर डाला है, तब मैं आप दोनों से भला क्या कहूँ।।16।।

शकुन्तला—[मन ही मन] देखें, इस बात पर आर्यपुत्र क्या कहते हैं?

राजा—आप लोग यह कह क्या रहे हैं?

शकुन्तला—[मन ही मन] इन्होंने बात का आरम्भ क्या किया है कि आग उगल रहे हैं।

शार्ङ्गरव—आप तो लोकाचार की सभी बातें जानते हैं फिर ऐसा क्या कह रहे हैं? जो सुहागिन स्त्री अपने पिता के घर रहती है, वह चाहे जितनी भी पतिव्रता हो फिर भी उसके सम्बन्ध में लोग बड़ी उल्टी-सीधी बातें उड़ा दिया करते हैं। इसलिये वह युवती चाहे सबकी दुलारी ही क्यों न हो, पर उसके भाई-बन्धु लोग तो यही चाहते हैं कि वह अपने पति के ही पास रहे।।17।।

राजा—क्या इस देवी से कभी पहले मेरा विवाह हो चुका है?

शकुन्तला—[दुःखी होकर मन ही मन] हृदय! तुम्हें जो खटका हो रहा था, वह आगे आ रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शार्ङ्गरवः–

किं कृतकार्यद्वेषो धर्मं प्रति विमुखता कृतावज्ञा।

राजा–कृतोऽयमसत्कल्पनाप्रश्नः।

शार्ङ्गरवः–

मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु।। 18।।

राजा–विशेषेणाधिक्षिप्तोऽस्मि।

गौतमी–जादे मुहुत्तअं मा लज्ज। अवणइस्सं दाव दे ओउण्ठणं। तदो तुमं भट्टा अहिजाणिस्सदि। (जाते मुहुर्तं मा लज्जस्व। अपनेष्यामि तावत्तेऽवगुंठनम्। ततस्त्वां भर्ताऽभिज्ञास्यति।) [इति यथोक्तं करोति।]

राजा–[शकुन्तलां निर्वर्ण्य आत्मगतम्]

इदमुपनतमेवं रुपमक्लिष्टकान्ति प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न वेत्यव्यवस्यन्।
भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारं न च खलु परिभोक्तुं नैवशक्नोमि हातुम्।। 19।।

(इति विचारयन्स्थितः।)

प्रतीहारी–[स्वगतम्] अहो धम्मावेक्खिआ भट्टिणो। ईदिसं णाम सुहोवणदं रूवं देक्खिअ को अण्णो विआरेदि। (अहो धर्मावेक्षिता भर्तुः। ईदृशं नाम सुखोपनतं रूपं दृष्ट्वा कोऽन्यो विचारयति।)

शार्ङ्गरव–आपको अपने किए पर पछतावा हो रहा है, या आप अपने कर्तव्य से भाग रहे हैं, या जान-बूझकर अपने किए हुए को भुला देना चाहते हैं?

राजा–आपने यह कहाँ की बेसिर-पैर की बातें छेड़ दी हैं?

शार्ङ्गरव–[क्रोध से] जो ऐश्वर्य में मतवाले हो जाते हैं, वे ऐसे ही खोटे काम किया करते हैं।।18।।

गौतमी–वत्से! थोड़ी देर के लिये लाज-संकोच छोड़ दो। आओ मैं तुम्हारा घूँघट उठा दूँ, जिससे तुम्हारे पति तुम्हें पहचान तो ले।

[घूँघट हटा देती है।]

राजा–[शकुन्तला को ध्यान से देखकर मन ही मन] मैं ठीक-ठीक निश्चय ही नहीं कर पा रहा हूँ कि यह जो अत्यन्त शोभावाली सुन्दरी यहाँ अपने आप आ पहुँची है, इसके साथ मैंने पहले कभी विवाह किया भी है या नहीं। इसीलिये, जैसे प्रातःकाल की ओस पड़े हुए कुन्द के फूल पर भौंरा न तो बैठता ही है, न उसे छोड़कर ही जाता है, वैसे ही मैं भी, न तो इसे ग्रहण ही कर पा रहा हूँ, न छोड़ ही पा रहा हूँ।।19।।

[राजा सोचता रह जाता है।]

प्रतीहारी–[मन ही मन] हमारे महाराज धर्म का कितना ध्यान रखते हैं। नहीं तो, अपने आप आए हुए ऐसे रूप को पाकर भला कौन इतना सोचेगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शार्ङ्गरवः—भो राजन् किमिति जोषमास्यते।

राजा—भोस्तपोधनाः चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणमत्रभवत्याः स्मरामि। तत्कथमिमा मभिव्यक्तसत्त्वलक्षणां प्रत्यात्मानं क्षेत्रिणमाशङ्कमानः प्रतिपत्स्ये।

शकुन्तला—[अपवार्य] अज्जस्स परिणए एव्व संदेहो। कुदो दाणिं मे दूरादिरोहिणी आसा। (आर्यस्य परिणय एव संदेहः। कुत इदानीं मे दूराधिरोहिण्याशा।)

शार्ङ्गरवः—मा तावत्—

कृताभिमर्शामनुमन्यमानः सुतां त्वया नाम मुनिर्विमान्यः।
मुष्टं प्रतिग्राहयता स्वमर्थं पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन।। 20।।

शारद्वतः—शार्ङ्गरव! विरम त्वमिदानीम्। शकुन्तले वक्तव्यमुक्तमस्माभिः। सोऽयमत्र भवानेवमाह। दीयतामस्मै प्रत्ययप्रतिवचनम्।

शकुन्तला—[अपवार्य] इमं अवत्थन्तरं गदे तारिसे अणुराए किं वा सुमराविदेण। अत्ता दाणिं मे सोअणीओ त्ति ववसिदं एदं। [प्रकाशम्] अज्जउत्त [इत्यर्धोक्ते] संसइदे दाणिं ण एसो समुदाआरो। पोरव ण जुत्तं णाम दे तह पुरा अस्समपदे सहावुत्ताणहिअअं इमं जणं समअपुव्वं पतारिअ ईदिसेहिं अक्खरेहिं पच्चाचक्खिदुं। (इदमवस्थान्तरं गते तादृशेऽनुरागे किं वा स्मारितेन। आत्मेदानीं मे शोचनीय इति व्यवसितमेतत्। आर्यपुत्र!

शार्ङ्गरव—क्यों महाराज! आप चुप क्यों हो गए?

राजा—तपस्वियो! बार-दार स्मरण करने पर भी इस देवी के साथ विवाह करने की बात मुझे स्मरण ही नहीं आ रही है, तब बताइये कि इस गर्भ के स्पष्ट लक्षणोंवाली देवी को स्वीकार करके दूसरे से गर्भ धारण करानेवाली स्त्री का पति कहलाने का अपयश मैं क्यो लूँ?

शकुन्तला—[अलग] आर्यपुत्र को जब विवाह में ही सन्देह हो रहा है तब मैंने और जो बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँध रखी थी, उनका तो फिर ठिकाना ही कहाँ है?

शार्ङ्गरव—हाँ-हाँ, मत करो स्वीकार। तुमको ऋषि का अपमान करना ही चाहिए; क्योंकि उन्होंने तुम्हारे साथ यह भलमनसाहत की है न, कि उनकी जिस कन्या को तुमने छल से दूषित कर दिया है, उसे वे तुम्हें योग्य पात्र समझकर उसी प्रकार सौंप रहे हैं, जैसे कोई अपनी चोरी गई हुई वस्तु मिलने पर फिर चोर को ही लौटा दे।।20।।

शारद्वत—अच्छा शार्ङ्गरव! अब तुम चुप हो जाओ। [शकुन्तला से] देखो शकुन्तला! हमें जो कुछ कहना था, कह चुके। इधर राजा भी ऐसी बातें कर रहे हैं। अब तुम्हीं इन्हें विश्वास दिलाओ।

शकुन्तला—[मन ही मन] जब बात यहाँ तक बढ़ चुकी है, तब मैं उस प्रेम की सुध दिलाकर ही क्या करूँगी। अब तो मुझे अपने भाग्य को कोसना ही रह गया है। [प्रकट] आर्यपुत्र! [आधा कहकर रुक जाती है।] पर जब इन्हें विवाह में ही सन्देह हो रहा है, तब इस प्रकार सम्बोधन करना ठीक नहीं है। हे पौरव! मुझ भोली-भाली को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संशयित इदनीं नैष समुदाचारः। पौरव! न युक्तं नाम ते तथा पुराऽऽश्रमपदे स्वभावोत्तानहृदयमिमं जनं समयपूर्वं प्रतार्येदृशैरक्षरैः प्रत्याख्यातुम्।)

राजा–[कर्णौ पिधाय] शान्तं पापम्।

व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं न पातयितुम्।
कूलंकषेव सिन्धुः प्रसन्नमम्भस्तटतरुं च।।21।।

शकुन्तला–होदु! जइ परमत्थतो परपरिग्गहसङ्किणा तुए एव्वं वत्तुं पउत्तं ता अहिण्णाणेण इमिणा तुह आसङ्कं अवणइस्सं। (भवतु! यदि परमार्थतः परपरिग्रहशङ्किना त्वयैवं वक्तुं प्रवृत्तं तदभिज्ञानेनानेन तवाशंकामपनेष्यामि।

राजा–उदारः कल्पः।

शकुन्तला–[मुद्रास्थानं परामृश्य।] हद्धी हद्धी अङ्गुलीअअसुण्णा मे अंगुली। (हा धिक्! हा धिक्! अंगुलीयकशून्या मेंऽगुलिः।) [इति सविषादं गौतमीमवेक्षते।]

गौतमी–णूणं दे सक्कावदारब्भन्तरे सचीतित्थसलिलं वन्दमाणाए पब्भट्टं अंगुलीअअं (नूनं ते शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थसलिलं वन्दमानायाः प्रभ्रष्टमंगुलीयकम्।)

राजा–[सस्तिमम्] इदं तत्प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणमिति यदुच्यते।

शकुन्तला–एत्थ दाव विहिणा दंसिदं पहुत्तणं। अवरं दे कहिस्सं। (अत्र तावद्विधिना दर्शितं प्रभुत्वम्। अपरं ते कथयिष्यामि।)

राजा–श्रोतव्यमिदानीं संवृत्तम्।

आश्रम में अपनी मीठी-मीठी बातों के जाल में फाँसकर अब इस प्रकार मेरा निरादर करना आपको शोभा नहीं देता।

राजा–[कान मूँदकर] शिव! शिव! क्या कह रही हो? अपने स्वच्छ जल को गँदला करने के लिये तीर पर खड़े वृक्ष को ढालनेवाली और तट को बहा ले जानेवाली नदी के समान आप अपना ही कुल क्यों कलंकित करना चाहती हो और मुझे भी क्यों विनाश की ओर ले जाना चाहती हो।।21।।

शकुन्तला–अच्छा, यदि आप सचमुच मुझे पराई स्त्री समझे बैठे हैं, तो मैं आपका सन्देह दूर करने के लिये यह पहचान दिखाती हूँ।

राजा–हाँ, दिखाइए।

शकुन्तला–[उँगली टटोलकर] हाय हाय, मेरी उँगली से अँगूठी कहाँ निकल गई? (रुआँसी-सी होकर गौतमी की ओर देखती है।)

गौतमी–जान पड़ता है कि शक्रावतार में शचीतीर्थ के जल को प्रणाम करते समय तुम्हारी अँगूठी निकल गई होगी।

राजा–[मुस्कुराहट के साथ] इसी को कहते हैं स्त्रियों की त्वरित-बुद्धि।

शकुन्तला–यहाँ भी मेरे दुर्भाग्य ने मेरा पीछा न छोड़ा। अच्छा मैं दूसरी बात भी बताती हूँ।

राजा–अच्छा अब सुनाने पर आ गई हो?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला—**णं एक्कस्सिं दिअहे णोमालिआमण्डवे णलिणीपत्तभाअणगअं उअअं तुह हत्थे संणिहिदं आसि।** (नन्वेकस्मिन्दिवसे नवमालिकामण्डपे नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं तव हस्ते संनिहितमासीत्।)

राजा—शृणुमस्तावत्।

शकुन्तला—**तक्खणं सो मे पुत्तकिदओ दीहापङ्गो णाम मिअपोदओ उवट्ठिओ। तुए अअं दाव पढमं पिअउ त्ति अणुअम्पिणा उवच्छन्दिदो उअएण। ण उण दे अपरिचआदो हत्थब्भासं उवगदो। पच्छा तस्सिं एव्व मए गहिदे सलिलेणेण किदो पणओ। तदा तुमं इत्थं पहसिदो सि। सव्वो सगन्धेसु विस्ससिदि। दुवेवि एत्थ आरण्णाअत्ति।** (तत्क्षणं स मे पुत्रकृतको दीर्घापाङ्गो नाम मृगपोतक उपस्थितः। त्वया अयं तावत्प्रथमं पिबत्वित्यनुकम्पिनोपच्छन्दित उदकेन। न पुनस्ते अपिरिचयाद्धस्ताभ्या-समुपगतः। पश्चात्तस्मिन्नेव मया गृहीते सलिलेऽनेन कृतः प्रणयः। तदा त्वमित्थं प्रहसितोऽसि। सर्वः सगन्धेषु विश्विसिति। द्वावप्यत्रारण्यकाविति।)

राजा—एवमादिभिरात्कार्यनिर्वर्तिनीनामनृतमयवाङ्मधुभिराकृष्यन्ते विषयिणः।

गौतमी—**महाभाअ ण अरुहसि एव्वं मन्तिदुं। तवोवणसंवड्ढिदो अणभिण्णो अअं जणो कइदवस्स।** (महाभाग नार्हस्येवं मन्त्रयितुम्। तपोवनसंवर्धितोऽनभिज्ञोऽयं जनः कैतवस्य।)

राजा—तापसवृद्धे।

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः।
प्रागन्तरिक्षगमनात्स्वमपत्यजातमन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति।।22।।

शकुन्तला—आपको स्मरण होगा कि एक दिन आप नवमालिका के कुञ्ज में अपने हाथ में पानी से भरा कमल के पत्ते का दोना लिए हुए थे।

राजा—कहती चलिए! मैं सब सुन रहा हूँ।

शकुन्तला—इतने में ही वहाँ मेरा पुत्र के समान पाला हुआ दीर्घापांग नाम का मृग-छौना भी आ पहुँचा। आपने उसपर दया करके कहा—पहले इसे जल पी लेने दो। यह कहकर आप उसे जल पिलाने लगे। पर परिचित न होने के कारण वह आपके पास गया ही नहीं। तब मैंने आपके हाथ से दोना ले लिया और वह मेरे हाथ से जल पीने लगा। उस समय आपने हँसकर कहा था कि अपने सगे-सम्बन्धियों को सभी पहचानते हैं। तुम दोनों ही वनवासी हो।

राजा—अपना काम साधनेवाली स्त्रियों की ऐसी झूठी और मीठी-मीठी बातों में कामी लोग ही फँसते हैं। समझी!

गौतमी—महाभाग! आपको ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिएँ। तपोवन में पली हुई कन्या भला छल-बल की बातें क्या जाने!

राजा—बूढ़ी तपस्विनीजी! जो मानवी स्त्रियाँ नहीं हैं, वे भी बिना सिखाए-पढ़ाए बड़ी चतुर हो जाती हैं, फिर इन समझवाली स्त्रियों का तो पूछना ही क्या। जानती हो! जब तक कोयल के बच्चे उड़ना नहीं सीख जाते तब तक वह दूसरे पक्षियों से ही उनका पालन कराती है।।22।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला—[सरोषम्] अणज्ज! अत्तणो हिअआणुमाणेण पेक्खसि। को दाणिं अण्णो धम्मकञ्चुअप्पवेसिणो तिणच्छण्णकूवोवमस्स तव अणुकिदिं पडिवदिस्सदि।

[अनार्य! आत्मनो हृदयानुमानेन प्रेक्षसे। क इदानीमन्यो धर्मकञ्चुकप्रवेशिनस्तृणच्छन्नकूपोपमस्य तवानुकृतिं प्रतिपत्स्यते।]

राजा—[आत्मगतम्] संदिग्धबुद्धिं मां कुर्वन्नकैतव इवास्याः कोपो लक्ष्यते। तथा ह्यनया—

मय्येव विस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ वृत्तं रहः प्रणयमप्रतिपद्यमाने।
भेदाद्भ्रुवोः कुटिलयोरतिलोहिताक्ष्या भग्नं शरासनमिवातिरुषा स्मरस्य।। 23।।

[प्रकाशम्] भद्रे प्रथितं दुष्यन्तस्यस्य चरितम्। तथापीदं न लक्षये।

शकुन्तला—सुट्ठु दाव अत्त सच्छन्दचारिणी किदम्हि जा अहं इमस्स पुरुवंसप्पच्चएण मुहमहुणो हिअअट्ठिअविस्स हत्थब्भासं उवगदा। (सुष्ठु तावदत्र स्वच्छन्दचारिणी कृताऽस्मि याऽहमस्य पुरुवंशप्रत्ययेन मुखमधोर्हृदयस्थितविषस्य हस्ताभ्याशमुपगता। [इति पटान्तेन मुखमावृत्य रोदिति।

शार्ङ्गरवः—इत्थमात्मकृतं प्रतिहतं चापलं दहति—

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात्संगतं रहः।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम्।। 24।।

शकुन्तला—[क्रोध से] अनार्य! तुम सबके हृदय को अपने ही हृदय के समान खोटा समझते हो! तुम्हें छोड़कर और कौन ऐसा नीच होगा जो घास-फूस से ढँके हुए कुएँ के समान धर्म का ढोंग रचकर ऐसा खोटा काम कर सके।

राजा—[मन ही मन] इसके क्रोध में सचाई दिखाई पड़ रही है, इसीलिये मेरा मन और भी सन्देह में पड़ता जा रहा है। ठीक स्मरण न आने से अकेले में किए हुए प्रेम को जो मैंने इतनी कठोरता से अस्वीकार कर दिया है, उसपर लाल-लाल आँखें करके अत्यन्त क्रोध से शकुन्तला ने जो भौंहें चढ़ा ली हैं। उन्होंने इस समय कामदेव के धनुष को भी दो टूक कर डाला है।।23।। [प्रकट] भद्रे! दुष्यन्त के कामों को सारा संसार जानता है। पर ऐसी बात तो आज तक नहीं सुनी गई।

शकुन्तला—तुमने ठीक ही किया जो मुझे कुचाली स्त्री बना डाला, क्योंकि ऊँचे कुल के धोखे में आकर ऐसे नीच के हाथ में जा पड़ी, जिसके मुँह में मधु और हृदय में विष भरा हुआ है। [आँचल से मुँह ढँकर रोने लगती है।]

शार्ङ्गरव—बिना सोचे-समझे जो काम किया जाता है उसमें ऐसा ही दुःख मिला करता है। इसलिये गुप्त प्रेम बहुत सोच-समझकर करना चाहिये; क्योंकि बिना जाने-बूझे स्वभाववाले के साथ जो मित्रता की जाती है, वह एक न एक दिन शत्रुता बनकर ही रहती है।।24।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—अयि भोः किमत्रभवतीप्रत्ययादेवास्मान्संवृतदोषाक्षरेण क्षिणुथ।

शाङ्गरवः—[सासूयम्] श्रुतं भवद्भिरधरोत्तरम्।

आजन्मनः शाठ्यमशिक्षितो यस्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य।
परातिसंधानमधीयते यैर्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः।। 25।।

राजा—भोःसत्यवादिन्! अभ्युपगतं तावदस्माभिरेवम्। किं पुनरिमामतिसंधाय लभ्यते।

शाङ्गरवः—विनिपातः।

राजा—विनिपातः पौरवैः प्रार्थयत इति न श्रद्धेयम्।

शारद्वतः—शाङ्गरव! किमुत्तरेण। अनुष्ठितो गुरोः संदेशः प्रतिनिवर्तामहे वयम्। [राजानं प्रति]—

तदेषा भवतः कान्ता त्यज वैनां गृहाण वा।
उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी।। 26।।

गौतमि! गच्छाग्रतः

[इति प्रस्थिताः।]

शकुन्तला—कहं इमिणा किदवेण विप्पलद्धम्हि। तुम्हे वि मं परिच्चअह। (कथमनेन कितवेन विप्रलब्धाऽस्मि। यूयमपि मां परित्यजथ)। [इत्यनुप्रतिष्ठते।]

गौतमी—[स्थित्वा] वच्छ सङ्गरव। अणुगच्छदि इअं क्खु णो करुणपरिदेविणी

राजा—सुनिए तो! इस देवी की बात का विश्वास करके आप उल्टी-सीधी बातें कह-कहकर हम पर क्यों दोष लगा रहे हैं?

शाङ्गरव—[अपने साथियों से क्रोध से] आपने सुनी इनकी उल्टी बातें! जिसने जन्म से लेकर अब तक छलका नाम भी न सुना हो, उसकी बातें झूठ समझी जायँ और जिन्होंने दूसरों को धोखा देने की चालें विद्या के समान सीखी हों, वे सत्यवादी समझे जायँ।।25।।

राजा—अच्छा सत्यवादीजी! मान लीजिए, हम ऐसे ही हैं। पर यह तो बताइए कि इसे छलकर हमें मिल क्या जायेगा?

शाङ्गरव—पतन।

राजा—मैं इस बात को नहीं मानता कि पुरुवंशी पतन की ओर जाना चाहेंगे।

शारद्वत—शाङ्गरव! इस कहा-सुनी से लाभ क्या है? गुरुजी का सन्देश हम इन्हें दे ही चुके। चलो, अब लौट चला जाये। [राजा से] राजन्! यह आपकी पत्नी है। इसे चाहे रखिए, चाहे निकालिए। क्योंकि पति का अपनी स्त्रियों पर पूरा अधिकार होता है।।26।। चलो गौतमी, आगे-आगे चलो। [चलते हैं।]

शकुन्तला—इस धूर्त्त ने तो मुझे छला ही है, अब क्या आप लोग भी मुझे छोड़कर चले जा रहे हैं? [उनके पीछे-पीछे जाती है।]

गौतमी—[खड़ी होकर] वत्स शाङ्गरव! यह शकुन्तला रोती हुई हम लोगों के पीछे-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सउन्दला। पच्चादेसपरुसे भत्तुणि किं वा मे पुत्तिआ करेदु। [वत्स शार्ङ्गरव! अनुगच्छतीयं खलु नः करुणपरिदेविनी शकुन्तला। प्रत्यादेशपरुषे भर्तरि किं वा मे पुत्रिका करोतु।]

शार्ङ्गरवः—[सरोषं निवृत्य] किं पुरोभागे स्वातन्त्र्यमवलम्बसे।

[शकुन्तला भीता वेपते]

शार्ङ्गरवः—शकुन्तले।

यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि किं पितुरुत्कुलया।
अथ तु वेत्सि शुचिव्रतमात्मनः पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम्।। 27।।

तिष्ठ। साधयामो वयम्।

राजा—भोस्तपस्विन्! किमत्रभवतीं विप्रलभसे।

कुमुदान्येव शशाङ्कः सविता बोधयति पङ्कजान्येव।
वाशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः।। 28।।

शार्ङ्गरवः—यदा तु पूर्ववृत्तमन्यसङ्गाद्विस्मृतो भवाँस्तदा कथमधर्मभीरुः।

राजा—भवन्तमेवात्र गुरुलाघवं पृच्छामि।

मूढः स्यामहमेषा वा वदेन्मिथ्येति संशये।
दारत्यागी भवाम्याहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः।। 29।।

पुरोहितः—[विचार्य] यदि तावदेवं क्रियताम्।

पीछे चली आ रही है। बताओ, अब ऐसे निर्दयी से ठुकराई हुई मेरी बच्ची भला कहाँ जाये?

शार्ङ्गरव—[क्रोध से लौटकर] क्यों री दुष्टे! क्या तू अपनी मनमानी करना चाहती है। [शकुन्तला भय से काँप उठती है।] सुन शकुन्तला! यदि राजा की बात सत्य है, तो तुझ जैसी कुल-कलंकिनी का पिता के घर कोई काम नहीं है और यदि तू अपने को पवित्र समझती है तो तुझे दासी बनकर भी अपने पति के ही घर में रहना चाहिए।।27।। बस यहीं रह, हम जाते हैं।

राजा—तपस्वी! आप इसे क्यों झूठ-मूठ धोखे में डाल रहे हैं—क्योंकि जैसे चन्द्रमा केवल कुमुदों को ही खिलाता है और सूर्य केवल कमलों को ही खिलाता है वैसे ही जितेन्द्रिय लोग भी पराई स्त्री को छूने की इच्छा तक नहीं करते।।28।।

शार्ङ्गरव—जब तुम अपनी दूसरी रानियों के पास आकर अपनी पिछली बात भूल सकते हो, तब तुम्हें अधर्म से क्या डर है।

राजा—[पुरोहित से] अब मैं आपसे ही पूछता हूँ कि ऐसी दुविधा में मैं क्या करूँ? क्योंकि या तो मैं भूल गया हूँ या ये झूठ कह रही हैं। अब मैं अपनी पत्नी को छोड़ने का पाप करूँ या पराई स्त्री को छूने का पाप सिर पर लूँ।।29।।

पुरोहित—[सोचकर] जब ऐसी दुविधा है तो आप एक काम कीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—अनशास्तु मां भवान्।

पुरोहितः—अत्रभवती तावदाप्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतु। कुत इदमुच्यत इति चेत्। त्वं साधुभिरुद्दिष्टः प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति। स चेन्मुनिदौहित्रस्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति अभिनन्द्य शुद्धान्तमेनां प्रवेशयिष्यसि। विपर्यये तु पितुरस्याः समीपनयनमवस्थितमेव।

राजा—यथा गुरुभ्यो रोचते।

पुरोहितः—वत्से! अनुगच्छ माम्।

शकुन्तला—भअवदि वसुहे। देहि मे विवरं। (भगवति वसुधे! देहि मे विवरम्)

[इति रुदती प्रस्थिता। निष्क्रान्ता सह पुरोधसा तपस्विभिश्च।]

[राजा शापव्यवहितस्मृतिः शकुन्तलागतमेव चिन्तयति।]

[नेपथ्ये]

आश्चर्यम् आश्चर्यम्।

राजा—[आकर्ण्य] किं नु खलु स्यात्।

[प्रविश्य]

पुरोहितः—[सविस्मयम्] देव अद्भुतं खलु संवृत्तम्।

राजा—किमिव।

राजा—हाँ, हाँ, बताइए।

पुरोहित—पुत्र उत्पन्न होने के समय तक ये मेरे घर पर रहें। आप पूछें क्यों? तो इसलिये कि आपको ऋषियों ने पहले ही आशीर्वाद दे दिया है कि आपके चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा। यदि कण्व मुनि के नाती में चक्रवर्ती के लक्षण मिल जायँ, तब तो इन्हें आदर के साथ रनिवास में रख लीजिएगा और यदि लक्षण न मिलें तो इन्हें इनके पिता के पास भेज दिया जायगा।

राजा—जैसा गुरुजी ठीक समझें।

पुरोहित—वत्से! आओ मेरे साथ चली आओ।

शकुन्तला—भगवती वसुन्धरे! तू फट जा और मुझे गोद में ले ले।

[रोती हुई शकुन्तला पुरोहित और ऋषियों के पीछे-पीछे चली जाती है।]

[शाप के कारण भूला हुआ राजा शकुन्तला के सम्बन्ध में विचार करता है।]

[नेपथ्य में]

आश्चर्य है! आश्चर्य है!

राजा—[सुनते हुए] अरे, क्या हुआ!

[पुरोहित का प्रवेश]

पुरोहित—[आश्चर्य से] महाराज, बड़े आश्चर्य की बात हो गई है।

राजा—क्या हुआ?

पुरोहित—देव! परावृत्तेषु कण्वशिष्येषु—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता।

राजा—किं च।

पुरोहितः—

स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमारादुत्क्षिप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम।। 30।।

[सर्वे विस्मयं रूपयन्ति।]

राजा—भगवन् प्रागपि सोऽस्माभिरर्थः प्रत्यादिष्ट एव। किं वृथा तर्केणान्विष्यते। विश्राम्यतु भवान्।

पुरोहितः—[विलोक्य] विजयस्व। [इति निष्क्रान्तः।]

राजा—वेत्रवति! पर्याकुलोऽस्मि। शयनभूमिमार्गमादेशय।

प्रतीहारी—इदो इदो देवो। (इत इतो देवः।) [इति प्रस्थिता।]

राजा—कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम्।
बलवत्तु दूयमानं प्रत्यायतीव मे हृदयम्।।31।।

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे।]

इति पञ्चमोऽङ्कः।

पुरोहित—महाराज! कण्व के शिष्यों के चले जाने पर वह ऋषिकन्या, ज्यों ही अपने भाग्य को कोसती हुई बाँहें पसार कर रोने लगी—

राजा—तब क्या हुआ?

पुरोहित—त्यों ही स्त्री के जैसी एक ज्योति आई और उसे अपनी गोद में उठाकर अप्सरातीर्थ की ओर चली गई।।30।।

[सब आश्चर्य प्रकट करते हैं।]

राजा—हमने तो उसे पहले ही छोड़ दिया है, इसलिये उसपर सोचना-विचारना व्यर्थ है। अब आप भी जाकर विश्राम करें।

पुरोहित—[देखकर] महाराज की जय हो। [जाता है।]

राजा—वेत्रवती! मैं कुछ अनमना-सा हो गया हूँ। मुझे शयनघर पहुँचा दो।

प्रतीहारी—इधर से आइए महाराज, इधर से। [चलती है।]

राजा—यद्यपि विवाह की सुध न होने से मैंने उसका अत्यन्त तिरस्कार कर दिया है, फिर भी मेरा अत्यन्त कसकता हुआ हृदय न जाने क्यों रह-रह कर उसकी बातों में विश्वास करने को मचल रहा है।।31।।

[सब चले जाते हैं।]

पाँचवाँ अंक समाप्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठोऽङ्कः

[ततः प्रविशति नागरिकः श्यालः पश्चाद्बद्धं पुरुषामादाय रक्षिणौ च।]

रक्षिणौ—[ताडयित्वा] **अले कुम्भीलआ! कहेहि कहिं हुए एशे मणिबन्धणुक्किण्णामहेए लाअकीए अंगुलीअए शमाशादिए।** (अरे कुम्भीरक! कथय कुत्र त्वयैतन्मणिबन्धनोत्कीर्णनामधेयं राजकीयमंगुलीयकं समासादितम्।)

पुरुषः—[भीतिनाटिकतेन] **पशीदन्तु भावमिश्शे। हगे ण ईदिशकम्मकाली।** (प्रसीदन्तु भावमिश्राः अहं नेदृश कर्मकारी।)

प्रथमः—**किं शोहणे बम्हणोत्ति कलिअ रज्जा पडिग्गहे दिण्णे।** (किं शोभनो ब्राह्मण इति कलयित्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः।

पुरुषः—**सुणुध दाणिं। हगे शक्कावदालब्भन्तरालवाशी धीवले।** (शृणुतेदानीम्। अहं शक्रावताराभ्यन्तरालवासी धीवरः।)

द्वितीयः—**पाडच्चल! किं अम्हेहिं जादी पुच्छिदा।** (पाटच्चर! किमस्माभिर्जातिः पृष्टा।)

श्यालः—**सूअअ! कहेदु शव्वं अणुक्कमेण। मा णं अन्तरा पडिबन्धह।** (सूचक! कथयतु सर्वमनुक्रमेण। मैनमन्तरा प्रतिबन्धय।)

उभौ—**ज आवुत्तो आणवेदि। कहेहि।** (यदावुत्त आज्ञापयति। कथय।)

पुरुषः—**अहके जालुग्गालादिहिं मच्छबन्धणोवाएहिं कुडुम्बभलणं कलेमि।** (अहं जालोद्गालादिभिर्मत्स्यबन्धनोपायैः कुटुम्बभरणं करोमि।)

षष्ठ अङ्क

[राजा का साला नगर-रक्षक और उसके पीछे-पीछे दो रखवाले
एक पुरुष को बाँध हुए प्रवेश करते हैं।]

दोनों—[बन्दी को पीटते हुए] बोल रे चोर! यह राजा के नामवाली रतन-जड़ी अँगूठी तुझे कहाँ से हाथ लगी?

पुरुष—[डरने का नाट्य करता हुआ] दया करो महाराज। मैं ऐसा काम कभी नहीं करता।

पहला—तो क्या तुझे कोई सुपात्र ब्राह्मण समझकर राजा ने यह दान में दे डाली है।

पुरुष—सुनिए तो! मैं शक्रावतार गाँव के पास रहनेवाला एक मछुआरा हूँ।

दूसरा—अरे चोर! हमने क्या तेरी जाति पूछी थी?

श्याल—सूचक! इसे सब बातें ठीक से कहने दो, बीच में टोको मत।

दोनों—जैसी आपकी आज्ञा। हाँ, बता रे।

पुरुष—मैं जाल, कँटिया और बंसी डालकर मछली फँसाया करता हूँ और उसी से अपने बाल-बच्चों का पेट पालता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यालः—[विहस्य] **विशुद्धो दाणिं आजीबो** (विशुद्ध इदानीमाजीवः।)

पुरुषः—**भट्टा मा एव्वं भण।**

शहजे किल जे विणिन्दिए ण हु दे कम्म विवज्जणीअए।
पशुमालणकम्मदालुणे अणुकम्पामिदु एव्व शोत्तिए।। 1।।

(भर्ताः मैवम् भण।)

सहजं किल यद्विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम्।
पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः।।

श्यालः—**तदो तदो** (ततस्ततः।)

पुरुषः—**एक्कशिंश दिअशे खण्डशो लोहिअमच्छे मए कप्पिदे। जाव तश्श उदलब्भन्तले एदं लदणभाशुलं अंगुलीअअं देक्खिअ पच्छा अहके शे विक्कआह दंशअन्ते गहिदे भावमिश्शेहिं। मालेहि वा मुञ्चेहि वा। अअं शे आअमवुत्तन्ते।** (एकस्मिन्दिवसे खण्डशो रोहितमत्स्यो मया कल्पितो यावत् तस्योदराभ्यन्तर इदं रत्नभासुरमङ्गुलीयकं दृष्ट्वा पश्चादहं तस्य विक्रयार्थं दर्शयन्गृहीतो भावमिश्रैः। मारयत वा मुञ्चत वा। अयमस्यागमवृत्तान्तः।)

श्यालः—**जाणुअ! विस्सगन्धी गोहादी मच्छबन्धो एव्व णिस्संसअं। अंगुलीअ-अदंसणं शे विमरिसिदव्वं। राअउलं एव्व गच्छामो।** (जानुक! विस्रगन्धी गोधादी मत्स्यबन्ध एवं निःसंशयम्। अङ्गुलीयकदर्शनमस्य विमर्शयितव्यम्। राजकुलमेव गच्छामः।)

रक्षिणौ—**तह। गच्छ अले गण्डभेदअ** (तथा। गच्छ अरे गण्डभेदक।)

[सर्वे परिक्रामन्ति।]

श्याल—[हँसकर] बड़ा काम ले रखा है।

पुरुष—ऐसा न कहिए, स्वामी!—जिस जाति को भगवान ने जो बुरा-भला काम दे दिया है, वह छोड़ा थोड़े ही जाता है। देखिए पशुओं को मारना है तो बड़ा बुरा काम, पर बड़े-बड़े दयावान् और वेद जाननेवाले ब्राह्मण भी यज्ञ के लिये पशुओं को मारते ही हैं।।1 ।।

श्याल—अच्छा, अच्छा आगे बता क्या हुआ?

पुरुष—एक दिन ज्योंही मैं एक रोहू मछली काट रहा था, त्योंही उसमें यह रत्न-जड़ी चमकीली अँगूठी दिखाई पड़ गई। उसे बेचने के लिये लाकर मैं दिखा ही रहा था कि आपने मुझे बाँध लिया। यही तो इस अँगूठी के मिलने की कथा है। अब चाहे आप मुझे मारिए, चाहे छोड़िए।

श्याल—जानुक! इसमें तो सन्देह नहीं कि यह गोह खानेवाला मछुआ ही है; क्योंकि इसके शरीर से कच्चे माँस की दुर्गन्ध आ रही है। यह जो अँगूठी मिलने की बात बता रहा है, उसकी चलकर ठीक-ठीक जाँच कर लेनी चाहिए। इसलिये चलो, राजा के पास चला जाय।

दोनों रक्षक—बहुत अच्छा। रे गँठकटे! चल।

[सब घूमते हैं।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यालः—सूअअ! इमं गोपुरदुआरे अप्पमत्ता पडिबालह जाव इमं अंगुलीअअं जहागमणं भट्टिणो णिवेदिअ तदो सासणं पडिच्छिअ णिक्कमामि। (सूचक! इमं गोपुरद्वारेऽप्रमत्तौ प्रतिपालयतं यावदिदमङ्गुलीयकं यथाऽऽगमनं भर्तुर्निवेद्य ततः शासनं प्रतीक्ष्य निष्क्रयामि।)

उभौ—पविशदु आवुत्ते शामिपशादश्श। (प्रविशत्वावुत्तः स्वामिप्रसादाय।)

[इति निष्क्रान्तः श्यालः।]

प्रथमः—जाणुअ! चिलाअदि क्खु आवुत्ते। (जानुक! चिरायते खल्वावुत्तः।)

द्वितीयः—णं अवशलोवशप्पणीआ लाआणो। (नन्ववसरोपसर्पणीया राजानः।)

प्रथमः—जाणुअ! फुल्लन्ति मे हत्था इमश्श वहस्स शुमणा पिणद्धुम्। (जानुक! प्रस्फुरतो मम हस्तावस्य वधस्य सुमनसः पिनद्धुम् (इति पुरुषं निर्दिशति।)

पुरुषः—ण अलुहदि भावे अकालणमालणं भविदुं। (नार्हति भावोऽकारणमारणो भवितुम्।)

द्वितीयः—[विलोक्य] एशे अम्हाणं शामी पत्तहत्थे लाअशाशणं पडिच्छिअ इदोमुहे देक्खीअदि। गिद्धबली भविश्शशि शुणो मुहं वा देक्खिश्शशि। (एष नौ स्वामी पत्रहस्तो राजशासनं प्रतीक्ष्येतोमुखो दृश्यते। गृध्रबलिर्भविष्यसि शुनो मुखं वा द्रक्ष्यसि।)

[प्रविश्य]

श्यालः—सूअअ! मुञ्जेदु ऐसो जालोअजीवी। उववण्णो क्खु अंगुलीअअस्स आअमो।

(सूचक! मुच्यतामेष जालोपजीवी उपपन्नः खल्वङ्गुलीयकस्यागमः।)

सूचकः—जह आवुत्ते भणादि। (यथाऽऽवुत्तो भणति।)

श्याल—सूचक! जब तक मैं महाराज को अँगूठी मिलने का समाचार सुनाकर और उनकी आज्ञा लेकर लौट न आऊँ तब तक तुम दोनों नगर के फाटक पर सँभालकर इसकी चौकसी करना।

दोनों—हाँ, हाँ, जाइए जाइए, स्वामी की कृपा पाइए।

[श्याम जाता है।]

पहला—जानुक! बड़ी देर लगा दी उन्होंने तो।

दूसरा—अरे भाई! राजा के पास अवसर देखकर ही तो पहुँचा जाता है।

पहला—जानुक! इसे मारने के लिये लाल फूलों की माला पहनाने को मेरे हाथ बड़े खुजला रहे हैं। [मछुए की ओर संकेत करता है।]

पुरुष—भाई, बिना बात के मुझे क्यों मारने पर उतारू हो रहे हो?

दूसरा—[देखकर] वह देखो! हमारे स्वामी हाथ में राजा का आज्ञा-पत्र लिए चले आ रहे हैं। अब या तो तू गिद्धों का भोजन बनेगा या कुत्तों से नीचा जायेगा।

[श्याल का प्रवेश]

श्याल—सूचक! छोड़ दो इस मछुए को। अँगूठी मिलने का ठीक विवरण मिल गया।

सूचक—जैसी स्वामी की आज्ञा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीयः—एशे जमशदणं पविशिअ पडिणिवुत्ते। (एष यमसदनं प्रविश्य प्रतिनिवृत्तः।) [इति पुरुषं परिमुक्तबन्धनं करोति।]

पुरुषः—[श्यालं प्रणम्य] भट्टा! अह कीलिशे मे आजीवे। (भर्तः! अथ कीदृशो मे आजीवः।)

श्यालः—एसो भट्टिणा अंगुलीअअमुल्लसम्मिदो पसादो वि दाविदो। (एष भर्त्राङ्गुऽलीयकमूल्यसंमितः प्रसादोऽपि दापितः।) [इति पुरुषाय स्वं प्रयच्छति।]

पुरुषः—[सप्रणामं प्रतिगृह्य] भट्टा! अणुग्गहीदम्हि। (भर्तः! अनुगृहीतोऽस्मि।)

सूचकः—एशे णाम अनुग्गहे जे शूलादो अवदालिअ हत्थिक्कन्धे पडिट्ठाविदे। (एष नामानुग्रहो यच्छूलादवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः।)

जानुकः—आवुत्त! पलिदोशं कहेहि तेण अंगुलअएण भट्टिणो शम्मदेण होदव्वं। (आवुत्त! परितोषं कथय तेनाङ्गुलीयकेन भर्तुः संमतेन भवितव्यम्।।)

श्यालः—ण तस्सिं महारुहं रदणं भट्टिणो बहुमदं त्ति तक्केमि। तस्स दंसणेण भट्ठिणो अभिमदो जणो सुमराविदो। मुहुत्तअं पकिदिगम्भीरो वि पज्जुस्सुअणअणो आसि। (न तस्मिन्महार्हं रत्नं भर्तुर्बहुमतमिति तर्कयामि। तस्य दर्शनेन भर्तुरभिमतो जनःस्मारितः। मुहूर्तं प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्युत्सुकनयन आसीत्।)

सूचकः—शेविदं णाम आवुत्तेण। (सेवितं नामावुत्तेन।)

जानुकः—णं भणाहि इमश्श कए मच्छिआभत्तुणोत्ति। (ननु भण अस्य कृते मात्स्यिकभर्तुरिति।) [इति पुरुषमसूयया पश्यति।]

दूसरा—अरे, यह तो यमराज के घर पहुँचकर लौट आया।

[उसका बन्धन खोलता है।]

पुरुष—श्याल को प्रणाम करके] कहिए स्वामी! मेरा काम कैसा निकला?

श्याल—ले! महाराज ने इस अँगूठी के मोल के बराबर धन भी तो तुझे प्रसाद में दिया है।

[मछुए को धन देता है।]

पुरुष—[हाथ जोड़कर धन लेता है।] बड़ी दया है आपकी, स्वामी!

सूचक—सचमुच दया तो इसी का नाम है कि शूली से उतारकर हाथी की पीठ पर बैठा दिया है।

जानुक—स्वामी! इसे प्रसाद नहीं, पारितोषिक कहिए। क्योंकि जान पड़ता है कि वह अँगूठी स्वामी को बड़ी अच्छी जँची है।

श्याल—इस अँगूठी के रत्नों के कारण महाराज ने उसका आदर नहीं किया वरन् उसे देखते ही उन्हें अपने किसी प्यारे का स्मरण हो आया। क्योंकि यद्यपि स्वामी स्वभाव से ही बड़े गम्भीर हैं फिर भी अँगूठी को देखकर वे थोड़ी देर के लिये अनमने-से हो गए थे।

सूचक—तब तो सचमुच आपने राजा का बड़ा काम किया है।

जानुक—यों कहो कि इस मछुए ने राजा का काम किया है। [मछुए को ईर्ष्या की दृष्टि से देखता है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषः—भट्टालक! इदो अद्धं तुम्हाण शुभणोमुल्लं होदु। (भट्टारक! इतोऽर्धं युष्माकं सुमनोमूल्यं भवतु।)

जानुकः—एत्तके जुज्जई। (एतावद्युज्यते।)

श्यालः—धीवर! महत्तरो तुमं पिअवअस्सओ दाणिं मे संवुत्तो। कादम्बरीसक्खिअं अम्हाणं पढमसीहिदं इच्छीअदि। ता सोण्डिआपणं एव्व गच्छामो। (धीवर! महत्तरस्त्वं प्रियवयस्यक इदानीं मे संवृत्तः कादम्बरीसाक्षिकमस्माकं प्रथमसौहृदमिष्यते। तच्छौण्डिकापणमेव गच्छामः।)

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे।]

।। इति प्रवेशकः।।

[ततःप्रविशत्याकाशयानेन सानुमति नामाप्सराः।]

सानुमती—णिव्वट्टिवं मए पज्जाअणिवत्तणिज्जं अच्छरातित्थसण्णिज्झं जाव साहुजणस्स अभिसेअकालो त्ति। संपदं इमस्स राएसिणो उदन्तं पच्चक्खीकरिस्सं। मेणआसंबन्धेण सरीरभूदा मे सउन्दला। ताए अ दुहिदुणिमित्तं आदिट्ठपूव्वम्हि। [समन्तादवलोक्य] किं णु क्खु उदूच्छवे वि णिरुच्छवारम्भं विअ राअउलं दीसइ। अत्थि मे विहवो पणिधाणेण सव्वं परिण्णादुं। किं दु सहीए आदरो मए माणइदव्व होदु। इमाणं एव्व उज्जाणपालिआणं तिरक्खरिणीपडिच्छण्णा पस्सवत्तिणी भविअ उवलहिस्सं। (निर्वर्तितं मया पर्यायनिर्वर्तनीयमप्सरस्तीर्थसांनिध्यं यावत्साधुजनस्याभिषेककाल इति। सांप्रतमस्य राजर्षेरुदन्तं प्रत्यक्षीकरिष्यामि। मेनकासम्बन्धेन शरीरभूता मे शकुन्तला। तया च दुहितृनिमित्तमादिष्टपूर्वाऽस्मि। किं नु खलु ऋतूत्सवेऽपि निरुत्सवारम्भमिव राजकुलं दृश्यते। अस्ति मे विभवः प्रणिधानेन सर्वं परिज्ञातुम्।

मछुआरा—स्वामी! इनमे से आधा आप अपने पान-फूल के लिये ले लीजिए।

जानुक—यह तो इनका पद ही है।

श्याल—मछुए! आज से तुम हमारे बड़े प्यारे मित्र हो गए। चलो, हम-तुम चलें और मदिरा के आगे अपनी मित्रता पक्की कर लें। चलो, मदिरा घर में चला जाये।

[सब जाते हैं।]

।। प्रवेशक समाप्त हुआ।।

[आकाश में विमान पर चढ़ी हुई सानुमती अप्सरा का प्रवेश]

सानुमती—साधुजनों के स्नान के समय अप्सरातीर्थ की देखभाल करने की आज मेरी बारी थी। वह काम तो कर चुकी। चलूँ अब चलकर अपनी आँखों से उस राजर्षि की दशा तो देख लूँ; क्योंकि मेनका की कन्या होने के नाते शकुन्तला भी मेरी कन्या ही हुई। उसी मेनका ने अपनी कन्या के लिये कुछ उपाय करने को तुझे बहुत पहले से ही कह रखा है। [चारों ओर देखकर] अरे! बसन्त के उत्सव का दिन आ पहुँचा और यहाँ राज-भवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु सख्या आदरो मया मानयितव्यः। भवतु अनयोरेवोद्यानपालिकयोस्तिरस्करणी प्रतिच्छन्ना पार्श्ववर्तिनीं भूत्वोपलप्स्ये।) [इति नाट्येनावतीर्यस्थिता।]

[ततः प्रविशति चूतांकुरमवलोकयन्ती चेटी। अपरा च पृष्ठतस्तस्याः।]

प्रथमा—

आतम्महरिअपण्डुर जीविदसव्वं वसन्तमासस्स।
दिट्ठो सि चूदकोरअ उदुमङ्गल तुमं पसाएमि।।2।।

(आताम्रहरितपाण्डुर जीवितसर्वं वसन्तमासस्य।
दृष्टोऽसि चूतकोरक ऋतुमङ्गल त्वां प्रसादयामि।।)

द्वितीया—परहुदिए किं एआइणी मन्तेसि। (परभृतिके किमेकाकिनी मन्त्रयसे।)

प्रथमा—महुअरिए चूदकलिअं देक्खिअ उन्मत्तिआ परहुदिआ होदि। (मधुकरिके! चूतकलिकां दृष्ट्वोन्मत्ता परभृतिका भवति।)

द्वितीया—[सहर्षं त्वरयोपगम्य] कहं उवट्ठिदो महुमासो। (कथमुपस्थितो मधुमासः।)

प्रथमा—महुअरिए तव दाणिं कालो एसो मदबिब्भमगीदाणं। (मधुकरिके! तवेदानीं काल एष मदविभ्रमगीतानाम्।)

द्वितीया—सहि अवलम्ब मं जाव अग्गपादट्ठिआ भविअ चूदकलिअं गेण्हिअ कामदेवच्चणं करेमि। (सखि अवलम्बस्व मां यावदग्रपादस्थिता भूत्वा चूतकलिकाँ गृहीत्वा कामदेवार्चनं करोमि।)

में एकदम सन्नाटा! यद्यपि दिव्य दृष्टि से मैं सब कुछ जान सकती हूँ, फिर भी अपनी सखी की बात तो रखनी ही होगी। अच्छा, तिरस्करिणी विद्या से अपने को छिपाकर इन मालिनों के साथ-साथ चलकर यहाँ का सब समाचार लिए लेती हूँ।

[विमान से उतरने का नाट्य करके नीचे खड़ी हो जाती है।]

[आम की ओर देखती हुई एक परिचारिका आती है। उसके पीछे दूसरी परिचारिका है।]

पहली—हे वसन्त ऋतु के जीवन-सर्वस्व! वसन्त के मंगल स्वरूप! हे लाल, हरे, पीले रंगवाले बौर! आज पहले-पहल तुम्हारा दर्शन हो रहा है। तुम हमपर प्रसन्न हो जाओ जिससे हम लोगों का वसन्त सुख से बीते।।2।।

दूसरी—अरे परभृतिका (कोयल)! तू अकेले-अकेले क्यों कूक रही है?

पहली—मधुकरिका (भौंरी)! आम की बौर देखकर परभृतिका (कोयल) तो मतवाली हो ही जाती है।

दूसरी—[उल्लास से भरी हुई शीघ्रता से पास जाती है] क्या वसन्त आ गया?

पहली—मधुकरिका (भौंरी)! तेरे भी तो मस्ती के गीत गाने के ये दिन हैं।

दूसरी—सखी! मुझे सहारा दे तो पञ्जों के बल खड़ी होकर पूजा के लिये आम की बौर उतार लूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथमा—जइ मम वि क्खु अद्धं अच्चणफलस्स। (यदि ममापि खल्वर्धमर्चनफलस्य।)

द्वितीय—अकहिदे वि एवं संपज्जइ जदो एक्कं एव्व णो जीविदं दुधाट्ठिदं सरीरं। [सखीमवलम्ब्य स्थिता चूतांकुरं गृह्णाति] अए अप्पडिबुद्धो वि चूदप्पसवो एत्थ बन्धणभङ्गसुरभी होदि। [इति कपोतहस्तकं कृत्वा]—

तुमं सि मए चूदंकुर दिण्णो कामस्स गहिदधणुअस्स।
पहिअजणजुवइलक्खो पञ्चब्भहिओ सरो होही।। 3।।

(अकथितेऽप्येतत्संपद्यते यत एकमेव नौ जीवितम् द्विधा स्थितं शरीरम्। अये अप्रतिबुद्धोऽपि चूतप्रसवोऽत्र बन्धनभङ्गसुरभिर्भवति।

त्वमसि मया चूतांकुर! दत्तः कामाय गृहीतधनुषे।
पथिकजनयुवतिलक्ष्यः पञ्चाभ्यधिकः शरो भव।।)

[इति चूतांकुरं क्षिपति।]

[प्रविश्यापटीक्षेपेण कुपितः]

कंचुकी—मा तावत्। अनात्मज्ञे देवेन प्रतिषिद्धे वसन्तोत्सवे त्वमाम्रकलिकाभङ्गं किमारभसे।

उभे—[भीते] पसीददु अज्जो। अग्गहीदत्थाओ वअं। (प्रसीदत्वार्यः। अगृहीतार्थे आवाम्।)

पहली—पूजन का आधा फल मुझे भी मिले तो सहारा दूँ।

दूसरी—यह तो बिना कहे ही मिल जाता; क्योंकि हम तुम तो दो शरीर और एक प्राण हैं। [सखी के सहारे से आम की बौर उतारती है।] वाह! यद्यपि अभी और खिल नहीं पाई है, फिर भी डाल से तोड़ते ही कैसी सुगन्ध उड़ रही है। [अञ्जली बाँधकर] अरी आम की मञ्जरी! मैं तुझे धनुष-धारी कामदेव के लिये भेंट करती हूँ। परदेश में गए हुए लोगों की युवती स्त्रियों को काम-पीड़ा देने के लिये तुम कामदेव के पाँचों बाणों में सबसे अधिक पैनी बन जाओ।।3।।

[आम की मंजरी डाल देती है।]

[परदा झटककर कञ्चुकी का प्रवेश]

कंचुकी—[क्रोधित होकर] हैं, हैं! यह क्या कर रही हो नासमझ छोकरियो! जब राजा ने इस वर्ष वसन्तोत्सव रोक दिया है, तब तुम लोग आम की मञ्जरी को क्यों तोड़ रही हो?

दोनों—[डरी हुई-सी] क्षमा कीजिए आर्य! हमें इसका ज्ञान नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंचुकी–न किल श्रुतं युवाभ्यां यद्वासन्तिकैस्तरुभिरपि देवस्य शासनं प्रमाणीकृतं तदाश्रयिभिः पत्रिभिश्च। तथा हि–

चूतानां चिरनिर्गताऽपि कलिका बध्नाति न स्वं रजः;
संनद्धं यदपि स्थितं कुरबकं तत्कोरकावस्थया।
कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुँस्कोकिलानां रुतं;
शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम्।।4।।

सानुमती–णत्थि संदेहो। महाप्पहाओ राएसी। (नास्ति संदेहः। महाप्रभावो राजर्षिः।)

प्रथमा–अज्ज कति दिअहाइँ अम्हाणं मित्तावसुणा रट्टिएण भट्टिणीपाअमूलं पेसिदाणं एत्थ अ णो पमदवणस्स पालकम्म समप्पिदं। ता आअन्तुअदाए अस्सुदपब्बो अम्हेहिं एसो वुत्तन्तो। (आर्य! कति दिवसान्यावयोर्मित्रावसुना। राष्ट्रियेण भट्टिनीपादमूलंप्रेषितयोः अत्र च नौ प्रमदवनस्य पालनकर्म समर्पितम्। तदागन्तुकतयाऽश्रुतपूर्व आवाभ्यामेष वृत्तान्तः।)

कंचुकी–भवतु। न पुनरेवं प्रवर्तितव्यम्।

उभो–अज्ज! कोदूहलं णो। जइ इमिणा जणेण सोदव्वं कहेदु अज्जो किंणिमित्तं भट्टिणा वसन्तुस्सवो पडिसिद्धो। (आर्य! कौतूहलं नौ। यद्यनेन जनेन श्रोतव्यं कथयत्वार्यः किं मिनमित्तं भर्त्रा वसन्तोत्सवः प्रतिषिद्धः)

सानुमती–उस्सवपिप्पआ क्खु मणुस्सा। गुरुणा कारणेण होदव्वं। (उत्सवप्रियाः खलुः मनुष्याः। गुरुणा कारणेन भवितव्यम्।)

कंचुकी–क्या तुम लोगों ने नहीं सुना कि वसन्त में फूलने-फलनेवाले वृक्षों ने और उनपर बसेरा लेनेवाले पक्षियों ने भी महाराज की आज्ञा मान ली है। देखो–आम के बौर बहुत पहले फूट आए थे, पर उनमें पराग अभी तक नहीं आ पाया है! कुरबक का फूल खिलना ही चाहता था, पर अभी ज्यों-का-त्यों बँधा पड़ा रह गया है। जाड़ा बीत जाने पर भी कोयल की कूक उसके गले तक आकर ही रुक गई है। कामदेव भी अपने तूणीर से बाण निकालता है, पर डरकर फिर उसी में रख लेता है, छोड़ नहीं पाता।।4।।

सानुमती–इसमें क्या सन्देह है! राजर्षि का बड़ा भारी प्रताप है।

पहली–आर्य! नगर-रक्षक मित्रावसु ने हम लोगों को अभी थोड़े दिन पहले ही महाराज की सेवा में प्रमद-वन की रखवाली करने के लिये भेजा है। इसलिये नई होने के कारण हम लोगों को इस बात का पता ही नहीं था।

कंचुकी–अच्छा, फिर कभी ऐसा काम न करना।

दोनों–आर्य! हम भी यह बात सुनना चाहती हैं। यदि सुनाने में अड़चन न हो तो कृपाकर बतला दीजिए कि महाराज ने वसन्तोत्सव क्यों रोक दिया है?

सानुमती–मनुष्यों को तो उत्सवों का बड़ा चाव होता है, इसलिये उत्सव रोक देने का कोई बहुत ही बड़ा कारण होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंचुकी—बहुलीभूतमेतत्किं न कथ्यते। किमत्रभवत्योः कर्णपथं नायातं शकुन्तलाप्रत्यादेशकौलीनम्।

उभे—सुदं रट्ठिअमुहादो जाव अंगुलीअअदस्सणं। (श्रुतं राष्ट्रियमुखाद्यावदंगुलीयकदर्शनम्।)

कंचुकी—तेन ह्यल्पं कथयितव्यम्। यदैव खलु स्वांगुलीयकदर्शनादनुस्मृतं देवेन सत्यमूढपूर्वा मे तत्रभवती रहसि शकुन्तला मोहात्प्रत्यादिष्टेति। तदा प्रभृत्येव प्रश्चात्तापमुपगतो देवः। तथा हि—

रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न प्रत्यहं सेव्यते
शय्याप्रान्तविवर्तनैर्विगमयत्युन्निद्र एव क्षपाः।
दाक्षिण्येन ददाति वाचमुचितामन्तःपुरेभ्यो यदा
गोत्रेषु स्खलितस्तदा भवति च व्रीडाविलक्षश्चिरम्।।5।।

सानुमती—पिअं मे। (प्रियं मे।)

कंचुकी—अस्मात्प्रभवतो वैमनस्यादुत्सवः प्रत्याख्यातः।

उभे—जुज्जइ। (युज्यते।)

[नेपथ्ये]

एदु एदु भवं। (एतु एतु भवान्।)

कञ्चुकी—अच्छा, यह बात जब चारों ओर फैल गई है तब मैं भी कह डालता हूँ। क्या शकुन्तला के छोड़े जाने की बात तुम लोगों के कान में नहीं पड़ी है?

दोनों—हाँ, राजा को अँगूठी मिलने तक की बात तो नगर-रक्षक के मुँह से हम सुन चुकी हैं।

कञ्चुकी—तब तो थोड़ा ही सुनाना रह गया है। उस अँगूठी को देखते ही महाराज को स्मरण हो उठा कि मैंने शकुन्तला से एकान्त में विवाह किया था और भूल से उसका निरादर कर दिया। तभी से उन्हें बड़ा पछतावा हो रहा है और उनके मन को न तो अब कोई सुन्दर वस्तु ही भाती है और न वे पहले के समान मंत्रियों के ही साथ नित्य बैठते हैं। पलँग पर करवट बदलते हुए वे पूरी रातें जाग-जागकर बिता देते हैं। जब रनिवास की रानियाँ उनसे हठ करके इस उदासी का कारण पूछती हैं, तब अकस्मात् उनके मुँह से शकुन्तला का नाम निकल जाता है और वे बड़ी देर तक लजाए रह जाते हैं।।5।।

सानुमती—यही तो मैं सुनना चाहती थी।

कञ्चुकी—बस, इसी दुःख के कारण वसन्तोत्सव रोक दिया गया है।

दोनों—तब तो ठीक ही है।

[नेपथ्य में]

आइए महाराज, आइए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंचुकी—[कर्णं दत्वा] अये! इत एवाभिवर्तते देवः। स्वकर्मानुष्ठीयताम्।

उभे—तह। (तथा।) [इति निष्क्रान्ते]

[ततः प्रविशति पश्चात्तापसदृशवेषो राजा विदूषकः प्रतीहारी च।]

कंचुकी—[राजानमवलोक्य] अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्। एवमुत्सुकोऽपि प्रियदर्शनो देवः। तथा हि—

प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिर्वामप्रकोष्ठार्पितं
बिभ्रत्काञ्चनमेकमेव वलयं श्वासोपरक्ताधरः।
चिन्ताजागरणप्रतान्तनयनस्तेजोगुणादात्मनः।
संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते।।6।।

सानुमती—[राजानं दृष्ट्वा] **ठाणे क्खु पच्चादेसविमाणिदा वि इमस्स किदे सउन्दला किलम्मदि त्ति।** (स्थाने खलु प्रत्यादेशविमानिताऽप्यस्य कृते शकुन्तला क्लाम्यतीति।)

राजा—[ध्यानमन्दं परिक्रम्य]—

प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिवोध्यमानमपि सुप्तम्।
अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं संप्रति विवुद्धम्।।7।।

कञ्चुकी—[कान लगाकर] अरे! महाराज तो इधर ही चले आ रहे हैं। अब जाओ, तुम लोग अपना-अपना काम देखो।

दोनों—बहुत अच्छा। [दोनों जाती हैं।]

[विदूषक और प्रतीहारी के साथ पश्चाताप करते हुए राजा आते हैं।]

कञ्चुकी—[राजा को देखकर] अहा! जो सुन्दर होते हैं वे सभी दशाओं में अच्छे लगते हैं। देखो, उदास होते हुए भी महाराज कैसे अच्छे लग रहे हैं। क्योंकि—केवल बाएँ हाथ पर के सोने के एक भुजवन्ध को छोड़कर उन्होंने शोभा वढ़ानेवाले सभी गहने उतार डाले हैं, उनकी उसाँसों से नीचे का ओठ भी लाल हो गया है और चिन्ता के कारण रातभर जागने से उनकी आँखें भी अलसा गई हैं। पर इस प्रकार दुःखी होने पर भी वे उसी प्रकार दुवले नहीं लगते, जैसे खरादकर काटा हुआ वह महामणि, जो छोटा हो जाने पर भी अपनी चमक के कारण छोटा नहीं लगता।।6।।

सानुमती—[राजा को देखकर] यद्यपि शकुन्तला को छोड़कर इन्होंने उसका बड़ा भारी अपमान किया है तिस पर भी शकुन्तला का इनके लिये तड़पना ठीक ही है।

राजा—[चिन्ता में घूमता हुआ] उस समय जब वह मृग के समान आँखोंवाली मेरी प्यारी शकुन्तला वार-वार मुझे समझा रही थी, तव तो मेरी आँखें खुली नहीं, अव केवल पछतावे का दुःख सहने के लिये मेरा यह अभागा हृदय जाग उठा है।।7।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सानुमती—णं ईदिसाणि तवस्सिणीए भाअहेआणि। (नन्वीदृशानि तपस्विन्या भागधेयानि।)

विदूषकः—[अपवार्य] लंघिदो एसो भूओ वि सउन्दलावाहिणा। ण आणे कहं चिकिच्छिदव्वो भविस्सदि त्ति। (लङ्घित एष भूयोऽपि शकुन्तलाव्याधिना। न जाने कथं चिकित्सितव्यो भविष्यतीति।)

कंचुकी—[उपगम्य] जयतु जयतु देवः। महाराज! प्रत्यवेक्षिताः प्रमदवनभूमयः। यथाकाममध्यास्तां विनोदस्थानानि महाराजः।

राजा—वेत्रवति! मद्वचनादमात्यमार्यपिशुनं ब्रूहि। चिरप्रबोधनान्न संभावितमस्माभिरद्य धर्मासनमध्यासितु। यत्प्रत्यवेक्षितं पौरकार्यमार्येण तत्पत्रमारोप्य दीयतामिति।

प्रतीहारी—जं देवो आणवेदि। (यद्देव आज्ञापयति।) [इति निष्क्रान्ता।]

राजा—वातायन! त्वमपि स्वं नियोगमशून्यं कुरु।

कंचुकी—यदाज्ञापयति देवः। [इति निष्क्रान्तः।]

विदूषक—किदं भवदा णिम्मिच्छिअं। संपदं सिसिरातवच्छेअरमणीए इमस्सिं पमदवणुद्देसे अत्ताणं रमइस्ससि। (कृतं भवता निर्मक्षिकम्। सांप्रतं शिशिरातपच्छेदरमणीयेऽस्मिन्प्रमदवनोद्देशे आत्मानं रमयिष्यसि।)

सानुमती—क्या करें, बेचारी शकुन्तला के भाग्य ही ऐसे हैं?

विदूषक—[अलग] ओह! शकुन्तला के रोग ने इन्हें फिर आ घेरा है। न जाने यह रोग जायगा कैसे?

कञ्चुकी—[पास जाकर] महाराज की जय हो। प्रमद-वन की भूमि झाड़-बुहारकर ठीक कर दी गई है। अब आप चलकर जब तक चाहें, तब तक उस मनबहलाव की भूमि में विश्राम करें।

राजा—प्रतीहारी! जाकर मेरी ओर से अमात्य आर्य पिशुन से कहना कि आज मैं देर से उठा हूँ, इसलिये न्याय करने के लिये सभा-भवन में नहीं पहुँच पाऊँगा। प्रजा का जो कुछ भी काम हो वह आप लिखकर मेरे पास भिजवा दीजिएगा। समझी।

प्रतीहारी—जैसी महाराज की आज्ञा। [जाती है।]

राजा—जाओ वातायन! तुम भी अपना काम देखो।

कञ्चुकी—जैसी देव की आज्ञा [जाता है।]

विदूषक—अच्छा किया जो सब मक्खियाँ उड़ा दीं। अब आप चलकर उस प्रमदवन में मन बहलाइए, जहाँ न तो जाड़े का ठंडक ही है न गर्मी की तपन ही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा–वयस्य यदुच्यते रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्था इति तदव्यभिचारि वचः कुतः।

मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना मम च मुक्तमिदं तमसा मनः।

मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता धनुषि चूतशरश्च निवेशितः।।8।।

विदूषकः–चिट्ठ दाव। इमिणा दण्डकट्ठेण कन्दप्पबाणं णासइस्सं। (तिष्ठ तावत्। अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पबाणं नाशयिष्यामि।) [इति दण्डकाष्ठमुद्यम्य चूतांकुरं पातयितुमिच्छति।]

राजा–[सस्मितम्] भवतु दृष्टं ब्रह्मवर्चसम्। सखे! क्वोपविष्टः प्रियायाः किंचिदनुकारिणीषु लतासु दृष्टं विलोभयामि।

विदूषकः–णं आसण्णपरिआरिआ चदुरिआ भवदा संदिट्ठा माहवीर मण्डवे इमं वेलं अदिवाहिस्सं। तहिं मे चित्तफलअगदं सहत्थलिहिदं तत्तहोदीए सउन्दलाए पडिकिदिं आणेहि त्ति। (नन्वासन्नपरिचारिका चतुरिका भवता संदिष्टा माधवीमण्डप इमां वेलामतिवाहयिष्ये। तत्र मे चित्रफलकगतां स्वहस्तलिखितां तत्रभवत्याः शकुन्तलायाः प्रतिकृतिमानयेति।)

राजा–ईदृशं हृदयविनोदनस्थानम्। तत्तमेव मार्गमादेशय।

विदूषकः–इदो इदो भवं। (इत इतो भवान्।)

[उभौ परिक्रामतः। सानुमत्यनुगच्छति।]

राजा–वयस्य! किसी ने बहुत ठीक कहा है कि विपत्ति सदा अवसर की ताक में रहा करती है। देखो–अभी मेरे मन से शकुन्तला को भुला देनेवाला मोह उतरा ही नहीं था कि मुझे मारने के लिये अपने धनुष पर आम के बौर का यह नया बाण चढ़ाकर कामदेव भी आ धमका।।8।।

विदूषक–अच्छा रुकिए। मैं अभी अपने डंडे से काम के बाण को तोड़े डालता हूँ न। [अपना डंडा उठाकर बौर झाड़ना चाहता है।]

राजा–[हँसते हुए] अच्छा-अच्छा, रहने दो। देख लिया तुम्हारा ब्रह्मतेज। अब चलो मित्र, कोई ऐसा स्थान बताओ जहाँ बैठकर प्रिया से कुछ-कुछ मिलती-जुलती लताओं को देखकर अपनी आँखें ठण्डी हो जायँ।

विदूषक–पर आपने तो अभी रनिवास की दासी चतुरिका को कहा है न, कि हम माधवी-मंडप में जाकर जी बहलाते है और तुम हमारे हाथ का खींचा हुआ शकुन्तला का चित्र वहाँ लेती आना।

राजा–हाँ वह स्थान तो है मनबहलाव का। तो उधर ही ले चलो।

विदूषक–तो इधर से आइए महाराज, इधर से।

[दोनों मुड़ते हैं, सानुमती पीछे हो लेती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—एसो मणिसिलापट्टअसणाहो माहवीमण्डवो उवआररमणिज्जदाए णिस्संसअं साअदेण विअ णो पडिच्छदि। ता पविसिअ णिसीददु भवं। (एष मणिशिलापट्टकसनाथा माधवीमण्डप उपचारमणीयतया निःसंशयं स्वागतेनेव नौ प्रतीच्छति। तत्प्रविश्य निषीदतु भवान्।)

[उभौ प्रवेशं कृत्वोपविष्टौ।]

सानुमती—लदासंस्सिदा देक्खिस्सं दाव सहीए पडिकिदिं। तदो से भत्तुणो बहुमुहं अणुराअं णिवेदइस्सं। (लतासंश्रिता द्रक्ष्यामि तावत्सख्याः प्रतिकृतिम्। ततोऽस्या भर्तुर्बहुमुखमनुरागं निवेदयिष्यामि।) [इति तथा कृत्वा स्थिता।]

राजा—सखे सर्वमिदानीं स्मरामि शकुन्तलायाः प्रथमवृत्तान्तम्। कथितवानस्मि भवते च। स भवान्प्रत्यादेशवेलायां मत्समीपगतो नासीत्। पूर्वमपि न त्वया कदाचित्संकीर्तितं तत्रभवत्या नाम। कच्चिदहमिव विस्मृतवानसि त्वम्।

विदूषकः—ण विसुमरामि। किंतु सव्वं कहिअ अवसाणे उण तुए परिहासविअप्पओ एसो ण भूदत्थो त्ति आचक्खिदं। मए वि मिप्पिण्डबुद्धिणा तह एव्व गहीदं। अहवा भविदव्वादा क्खु बलवदी। (न विस्मारमि। किंतु सर्वं कथयित्वाऽवसाने पुनस्त्वया परिहासविजल्प एष न भूतार्थ इत्याख्यातम्। मयापि मृत्पिण्डबुद्धिना तथैव गृहीतम्। अथवा भवितव्यता खलु बलवती।)

सानुमती—एव्वं णेदं। (एवं नु एतत्।)

राजा—[ध्यात्वा] सखे! त्रायस्व माम्।

विदूषक—देखिए! फूलों से सजी हुई मणिशिला की सुन्दर चौकी बिछाकर यह माधवी कुंज मानो आपका स्वागत करने की बाट देख रही है। इसलिये वहीं चलकर बैठा जाय।

[दोनों प्रवेश करके बैठते हैं।]

सानुमती—अच्छा तब तक मैं लता की ओट से देखती हूँ कि मेरी सखी का चित्र कैसा बना है? तभी तो मैं जाकर उससे बता सकूँगी कि तुम्हारे पति तुम पर किस प्रकार से प्रेम दिखा रहे हैं? [वैसा करती है।]

राजा—वयस्य! अब शकुन्तला की सभी बातें स्मरण आ रही हैं और तुमसे तो मैं सब बता चुका हूँ। जब मैंने शकुन्तला को यहाँ से लौटाया था उस समय न तो तुम थे और न तुमने वे सब बातें ही स्मरण दिलाई। जान पड़ता है मेरे ही समान तुम भी भूल गये थे।

विदूषक—भूला तो नहीं था। पर सब कुछ कह चुकने पर आपने अंत में यह कह डाला कि ये सब बातें तो मैंने हँसी में कही थीं, तब मेरी मिट्टी की पिंडवाली खोपड़ी भी वही सच समझ बैठी। या यों कहिए कि जो होनेवाला होता है, वह होकर ही रहता है।

सानुमती—यही बात है।

राजा—[सोचकर] मुझे बचाओ मित्र!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—भो किं एदं। अणुववण्णं क्खु ईदसिं तुइ। कदा वि सप्पुरिसा सोअवत्तव्वा ण होन्ति। णं पवादे वि णिक्कम्पा गिरीओ। (भोः किमेतत्। अनुपपन्नं खल्वीदृशं त्वयि। कदाऽपि सत्पुरुषाः शोकवक्तव्या न भवन्ति। ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः।)

राजा—वयस्स! निराकरणविक्लवायाः प्रियाया समवस्थामनुस्मृत्य बलवदशरणोऽस्मि। सा हि—

इतः प्रत्यादेशात्स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता
स्थिता तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे।
पुनर्दृष्टिं बाष्पप्रसरकलुषामर्पितवती
मयि क्रूरे यत्तत्सविषमिव शल्यं दहति माम्।। 9।।

सानुमती—अम्महे। ईदिसी स्वकज्जपरदा इमस्स संदावेण अहं रमामि। (अहो! ईदृशी स्वकार्यपरता। अस्य संतापेनाहं रमे।)

विदूषकः—भो अस्थि मे तक्को केण वि तत्तहोदी आआसचारिणा णीदे त्ति। (भोः अस्ति मे तर्कः केनापि तत्रभवती आकाशचारिणा नीतेति।)

राजा—कः पतिदेवतामन्यः परामर्ष्टुमुत्सहेत। मेनका किल सख्यास्ते जन्मप्रतिष्ठेति श्रुतवानस्मि। तत्सहचारिणीभिः सखी ते हृतेति मे हृदयमाशङ्कते।

सानुमती—संमोहो क्खु विम्हअणिज्जो ण पडिबोहो। (संमोहः खलु विस्मयनीयो न प्रतिबोधः।)

विदूषक—अरे आप यह क्या कर रहे हैं? यह आपको शोभा नहीं देता। सज्जन लोग कभी ऐसे दुखी नहीं होते। देखिए, आँधी आने पर भी पहाड़ नहीं हिला करते।

राजा—मित्र! जिस समय मैंने प्यारी को यहाँ से लौटाया, उस समय उसकी जो दशा थी उसे स्मरण करके मैं आपे में नहीं रह पाता। क्योंकि, उस समय वह—जब यहाँ से लौटा दी गई और अपने साथियों के पीछे चलने लगी, तब गुरु के समान पूज्य गुरु शिष्यों ने उसे डाँटकर कहा कि तुम यहीं रहो। वह खड़ी हो गई। उस समय आँखों में आँसू भरकर मुझ निष्ठुर की ओर उसने जो देखा था, वह मुझे ऐसी पीड़ा दे रहा है जैसे किसी ने विष से बुझे हुए शस्त्र से मेरे शरीर में घाव कर दिया हो।।9।।

सानुमती—अरे! अपने किए पर इतना पछतावा। इनके दुःख को लेकर मेरे जी को बड़ा सन्तोष मिल रहा है।

विदूषक—महाराज! मैं सोचता हूँ कि देवी शकुन्तला को कोई स्वर्गीय दूत उठा ले गया होगा।

राजा—अरे, उस पतिव्रता को दूसरा छू कौन सकेगा? पर सुना है कि उसकी माँ मेनका है। मुझे डर है कि कहीं उसकी सखियाँ ही उसे न उठा ले गई हों!

सानुमती—इस समय राजा को जो इतनी बातें स्मरण हो रही हैं, उन्हें सुनकर मुझे इतना अचरज नहीं होता, जितना इस बात पर कि उस समय वे भूल कैसे गए थे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—जइ एव्वं अत्थि क्खु समाअमो कालेण तत्तहोदीए। (यद्येवम् अस्ति खलु समागमः कालेन तत्रभवत्या।)

राजा—कथमिव।

विदूषकः—ण क्खु मादापिदरा भत्तुविओअदुक्खिअं दुहिदरं चिरं देक्खिदुं पारेन्ति। (न खलु मातापितरौ भर्तृवियोगदुःखितां दुहितरं चिरं द्रष्टुं पारयतः।)

राजा—वयस्य।

स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु क्लिष्टं नु तावत्फलमेव पुण्यम्।
असंनिवृत्त्यै तदतीतमेते मनोरथानामतटप्रपाताः।। 10।।

विदूषकः—मा एव्वं। अंगुलीअअं एव्वं णिदंसणं अवस्संभावी अचिन्तणिज्जो समाअमो होदि त्ति। (मैवम्। नन्वङ्गुलीयकमेव निदर्शनमवश्यंभाव्यचिन्तनीयः समागमो भवतीति।)

राजा—[अंगुलीयकं विलोक्य] अये इदं तावदसुलभस्थानभ्रंशि शोचनीयम्।

तव सुचरितमङ्गुलीय नूनं प्रतनु ममेव विभाव्यते फलेन।
अरुणनखमनोहरासु तस्याश्च्युतमसि लब्धपदं यदङ्गुलीषुः।। 11।।

सानुमती—जइ अण्णहत्थगदं भवे सच्चं एव्व सोअणिज्जं भवे। (यद्यन्यहस्तगतं भवेत् सत्यमेव शोचनीयं भवेत्।)

विदूषक—यदि उसकी सखियाँ ही उठा ले गई होंगी, तब तो उसे थोड़े दिनों में मिला ही समझिए।

राजा—क्यों?

विदूषक—पति से बिछुड़ी हुई अपनी कन्या का दुःख माता-पिता अधिक दिनों तक नहीं देख सकते।

राजा—मित्र! मैं ठीक-ठीक समझ ही नहीं पा रहा हूँ कि शकुन्तला वह मिलाप सपना था, या जादू था, या भ्रम था, या किसी ऐसे पुण्य का फल था, जिसका भोग पूरा हो चला था। सचमुच इन बातों ने मेरी सभी आशाओं को पहाड़ से गिराकर चूर-चूर कर डाला है।।10।।

विदूषक—ऐसा न कहिए। यह अँगूठी की बतला रही है कि उससे भेंट अवश्य होगी।

राजा—[अँगूठी देखकर] हाय! इसपर भी मुझे बड़ा तरस आता है कि इतने सुन्दर स्थान पर पहुँचकर भी यह निकलकर कैसे गिर पड़ी? अरी अँगूठी! तेरी इस दशा से ही ज्ञान हो जाता है कि मेरे ही समान तेरे पुण्यों का भी भोग पूरा हो चला था। नहीं तो शकुन्तला के लाल नखोंवाली अँगुलियों से भला तू क्यों निकलकर गिरती।। 11।।

सानुमती—हाँ, यदि यह किसी दूसरे के हाथ लग गई होती, तब तो सचमुच इसपर दया आती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—भो इअं णाममुद्दा केण उग्घादेण तत्तहोदिए हत्थाब्भासं पाविदा। (भो! इयं नाममुद्रा केनोद्धातेन तत्रभवत्या हस्ताभ्याशं प्रापिता।

सानुमती—मम वि कोदूहलेण अआरिदो एसो। (ममापि कौतूहलेनाकारितः एषः।)

राजा—श्रूतयाम्! स्वनगराय प्रस्थितं मां प्रिया सबाष्पमाह—कियच्चिरेणार्यपुत्रः प्रतिपत्तिं दास्यतीति।

विदूषकः—तदो तदो। (ततस्ततः।)

राजा—पश्चादिमां मुद्रां तदङ्गुलौ निवेशयता मया प्रत्यभिहिता—

एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं
नामाक्षरं गणय गच्छति यावदन्तम्।
तावत्प्रिये मदवरोधगृहप्रवेशं
नेता जनस्तव समीपमुपैष्यतीति।। 12।।

तच्च दारुणात्मना मया मोहान्नानुष्ठितम्।

सानुमती—रमणीओ क्खु अवही विहिणा विसंवादिदो। (रमणीयः खल्ववधिर्विधिना विसंवादितः।)

विदूषकः—अध कहं धीवलकप्पिअस्स लोहिअमच्छस्स उदलब्भन्तले आसि। (अथ कथं धीवरकल्पितस्य रोहितमत्स्यस्योदराभ्यन्तर आसीत्।)

राजा—शचीतीर्थं वन्दमानायाः सख्यास्ते हस्ताद्गङ्गास्रोतसि परिभ्रष्टम्।

विदूषक—अच्छा, यह तो बताइए कि आपकी यह अँगूठी देवी शकुन्तला के पास पहुँच कैसे गई?

सानुमती—इसके मन में भी इस बात को जानने का वैसा ही चाव है, जैसा मेरे मन में है।

राजा—अच्छा सुनो। जब मैं वन से अपनी राजधानी को लौट रहा था, उस समय प्यारी ने आँखों में आँसू भरकर पूछा था—अब कितने दिनों में सुध लीजिएगा।

विदूषक—उसके बाद।

राजा—तब उसकी उँगली में यह अँगूठी पहनाते हुए मैंने कहा था—प्यारी! इस अँगूठी पर लिखे हुए मेरे नाम के अक्षरों को प्रतिदिन गिनती रहना! जब सभी अक्षर गिन चुकोगी, तब रनिवास का कोई सेवक तुम्हें बुलाने के लिये यहाँ आ पहुँचेगा।।12।। पर मुझ कठोर हृदय से ऐसा करते न बन पड़ा।

सानुमती—बात तो बड़ी अच्छी थी, पर दैव ने सब चौपट कर दिया।

विदूषक—अच्छा तो उस मछुए ने जिस रोहू मछली को काटा था, उसके पेट में वह अँगूठी कहाँ से पहुँच गई?

राजा—जब शकुन्तला शचीतीर्थ को हाथ जोड़कर प्रणाम कर रही थी, उसी समय वह अँगूठी उँगली से निकलकर गंगाजी की धारा में जा गिरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—**जुज्जइ।** (युज्यते।)

सानुमती—**अदो एव्व तवस्सिणीए सउन्दलाए अधम्मभीरुणो इमस्स राएसिणो परिणए संदेहो आसि। अहवा ईदिसो अणुराओ अहिण्णाणं अवेक्खदि। कहं विअ एदं।** (अत एव तपस्विन्याः शकुन्तलाया अधर्मभीरोरस्य राजर्षे परिणये सन्देह आसीत्। अथवेदृशोऽनुरागोऽभिज्ञानमपेक्षते। कथमिवैतत्।)

राजा—उपालप्स्ये तावदिदमङ्गुलीयकम्।

विदूषकः—[आत्मगतम्] **गहीदो णेण पन्था उम्मत्तआणम्।** (गृहीतोऽनेन पन्था उन्मत्तानाम्।)

राजा—

कथं नु तं बन्धुरकोमलाङ्गुलिं करं विहायासि निमग्नमम्भसि।

अथवा—

अचेतनं नाम गुणं न लक्षयेन्मयैव कस्मादवधीरिता प्रिया।। 13।।

विदूषकः—[आत्मगतम्] **अहं क्खु बुभुक्खाए खादिदव्वत्ति।** (अहं खलु बुभुक्षया खादितव्य इति।)

राजा—अकारणपरित्यागानुशयतप्तहृदयस्तावदनुकम्प्यतामयं जनः पुनर्दर्शनेन।

[प्रविश्यापटीक्षेपेण चित्रफलकहस्ता]

चतुरिका—**इअं चित्तगदा भट्टिणी।** (इयं चित्रगता भट्टिनी।)

[इति चित्रफलकं दर्शयति।]

विदूषक—अच्छा, यह बात है।

सानुमती—जान पड़ता है कि इसीलिये इन राजर्षि ने अधर्म के डर से बेचारी शकुन्तला के साथ विवाह होने की बातों में संदेह किया था, नहीं तो भला ऐसे प्रेम में क्या किसी पहचान की आवश्यकता पड़ती है।

राजा—मैं अभी इस अँगूठी को डाँटता हूँ।

विदूषक—[आप ही आप] अरे, ये तो अब पागल हो चले हैं।

राजा—अरी अँगूठी! उन सुन्दर उँगलियों को छोड़कर तू क्यों जल में कूदने गई? पर अँगूठी में तो जीव नहीं था, इसलिये उसने गुण की परख न की, पर मैंने मनुष्य होकर उसका कैसे निरादर कर डाला।।13।।

विदूषक—[आप ही आप] यदि थोड़ी देर और इनकी यही दशा रही, तब तो मेरी भूख मुझे खा ही डालेगी।

राजा—हे प्यारी! तुम्हें बिना कारण छोड़ देने की जलन से मैं जला जा रहा हूँ। मुझे अपना दर्शन देकर दया करके जिला तो लो।

[परदा उठाकर चित्रफलक लिए हुए प्रवेश करके]

चतुरिका—यह रहा देवी का चित्र। [चित्रफलक दिखाती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—साहु वअस्स। महुरावत्थाणदंसणिज्जो भावाणुप्पवेसो। खलदि विअ मे दिट्ठी णिण्णुण्णअप्पदेसेसु। (साधु वयस्य। मधुरावस्थानदर्शनीयो भावानुप्रवेशः स्खलतीव मे दृष्टिर्निम्नोन्नतप्रदेशेषु।)

सानुमती—अम्मो एसा राएसिणो णिउणदा। जाणे सही अग्गदो मे वट्टदि त्ति। (अहो एषा राजर्षेर्निपुणता। जाने सख्यग्रतो मे वर्तत इति।)

राजा—

> यद्यत्साधु न चित्रे स्यात्क्रियते तत्तदन्यथा।
> तथापि तस्या लावण्यं रेखया किंचिदन्वितम्।। 14।।

सानुमती—सरिसं एदं पच्छादावगुरुणो सिणेहस्स अणवलेवस्स अ। (सदृशमेतत्पश्चात्तापगुरोः स्नेहस्थानावलेपस्य च।)

विदूषकः—भो दाणिं तिण्णिओ तत्तहोदीओ दीसन्ति। सव्वाओ अ दंसणीआओ। कदमा एत्थ तत्तहोदी सउन्दला। (भोः इदानीं तिस्रस्तत्रभवत्यो दृश्यन्ते। सर्वाश्च दर्शनीयाः। कतमाऽत्र तत्रभवती शकुन्तला।

सानुमती—अणभिण्णो क्खु ईदिसस्स रूवस्स मोहदिट्ठी अअं जणो। (अनभिज्ञः खल्वीदृशस्य रूपस्य मोघदृष्टिरयं जनः।)

राजा—त्वं तावत्कतमां तर्कयसि।

विदूषक—वाह, वयस्य! वाह। इसके अंग-अंग आपने ऐसे सुन्दर बना दिए हैं कि इसके मन के भाव तक ठीक-ठीक उतर आए हैं। मेरी आँखें तो इस चित्र में बने हुए ऊँचे-नीचे स्थलों में जैसे ठोकरें खाती रह जाती हैं।

सानुमती—अरे! राजर्षि तो बड़े चतुर चित्रकार हैं। चित्र ऐसा जान पड़ता है, मानो सखी शकुन्तला सामने ही खड़ी हो।

राजा—यद्यपि मैंने इस चित्र के सब दोष ठीक कर दिए हैं फिर भी इन रेखाओं में देवी की सुन्दरता बहुत थोड़ी-सी ही उतर पाई है।।14।।

सानुमती—इस पछतावे और नम्रता से भरे प्रेमी को ऐसा ही कहना शोभा देता है।

विदूषक—क्यों? इस चित्र में तो तीन-तीन देवियाँ दिखाई पड़ रही हैं और तीनों एक से एक बढ़कर चटकीली हैं। बताओ तो, इनमें देवी शकुन्तला कौन-सी है?

सानुमती—इस असूझे को सुन्दरता की तनिक भी परख नहीं है।

राजा—अच्छा, तुम इनमें से किसको शकुन्तला समझ रहे हो?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—तक्केमि जा एसा सिढिलकेसबन्धणुव्वन्तकुसुमेण केसन्तेण उब्भिण्णस्सेअबिन्दुणा वअणेण विसेसदो ओसरिआहिं बाहाहिं अवसेअसिणिद्धतरुणपल्लवस्स चूअपाअवस्स पासे इसिपरिस्सन्ता विअ आलिहिदा सा सउन्दला। इदराओ सहीओ त्ति। (तर्कयामि यैषा। शिथिलकेशबन्धनोद्वान्तकुसुमेन केशान्तेनोद्भिन्नस्वेदबिन्दुना वदनेन विशेषतोऽपसृताभ्यां बाहुभ्यामवसेकस्निग्धतरुणपल्लवस्य चूतपादपस्य पार्श्वे ईषत्परिश्रान्तेवालिखिता सा शकुन्तला। इतरे सख्याविति।)

राजा—निपुणो भवान्। अस्त्यत्र मे भावचिह्नम्।

स्विन्नाङ्गुलिविनिवेशो रेखाप्रान्तेषु दृश्यते मलिनः।
अश्रु च कपोलपतितं दृश्यमिदं वर्तिकोच्छ्वासात्।। 15।।

चतुरिके! अर्धलिखितमेतद्विनोदस्थानम्। गच्छ। वर्तिकां तावदानय।

चतुरिका—अज्ज माढव्व! अवलम्ब चित्तफलअं जाव आअच्छामि। (आर्य माढव्य! अवलम्बस्व चित्रफलकम् यावदागच्छामि।

राजा—अहमेवैतदवलम्बे। [इति यथोक्तं करोति।]

[निष्क्रान्ता चेटी।]

राजा—[निःश्वस्य] अहं हि—

साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय पूर्वं चित्रार्पितां पुनरिमां बहुमन्यमानः।
स्रोतोवहां पथि निकामजलामतीत्य जातः सखे प्रणयवान्मृगतृष्णिकायाम्।। 16।।

विदूषक—मैं तो समझता हूँ कि पानी के छिड़काव से जो यह आम का पेड़ चमक रहा है उसी से सटकर कुछ थकी हुई-सी जो खड़ी दिखाई देती है वही शकुन्तला है, जिसके ढीले जूड़ों से फूल गिर रहे हैं, मुँह पर पसीने की बूँदें झलक रही हैं और दोनों कन्धे झुके हुए हैं। इसके साथ वाली ये दोनों इसकी सखियाँ होगी।

राजा—तुम सचमुच चतुर हो। यहाँ मेरे प्रेम के चिह्न भी बने हुए हैं। चित्र की कोरों पर मेरी पसीजी हुई उँगलियों के काले धब्बे पड़ गए हैं और मेरी आँखों से जो आँसू टपका, उससे शकुन्तला के गाल पर का रंग उभर आया है।।15।। अरी चतुरिका! अभी इस विनोदस्थान का चित्र पूरा नहीं बन पाया है। जा, चित्र बनाने की कूंचियाँ तो लेती आ।

चतुरिका—आर्य माढव्य! इस चित्रपट को थोड़ा पकड़े रहिए, मैं अभी आती हूँ!

राजा—मैं ही इसे थामे रहता हूँ।

[चित्र-फलक ले लेता है।]

[चेटी जाती है।]

राजा—[उसाँस भरकर] मित्र! मेरी दशा तो देखो कि जब वह स्वयं मेरे पास आई थी, तब तो मैंने उसका निरादर करके लौटा दिया और अब उसके चित्र पर इतना प्रेम दिखाने चला हूँ। यह तो ऐसा ही जैसे कोई भरी हुई नदी को छोड़कर मृगतृष्णा की ओर लपके।।16।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—[आत्मगतम्] एसो अत्तभवं णदिं अदिक्कमिअ मिअतिण्हिआं संकन्तो। [प्रकाशम्] भो अवरं किं एत्थ लिहिदव्वं। (एषोऽत्रभवान्नदीमतिक्रम्य मृगतृष्णिकां संक्रान्तः। भोः अपरं किमत्र लिखितव्यम्।)

सानुमती—जो जो पदेशो सहीए मे अहिरूवो तं तं आलिहिदुकामो भवे। (यो यः प्रदेशः सख्या मेऽभिरूपस्तं तमालिखितुकामो भवेत्।]

राजा—श्रूयताम्—

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्।। 17।।

विदूषकः—[आत्मगतम्] जह अहं देक्खामि पूरिदव्वं णेण चित्तफलअं लम्बकुञ्चाणं तावसाणं कदम्बेहिं। (यथाऽहं पश्यामि पूरितव्यमनेन चित्रफलकं लम्बकूर्चानां तापसानां कदम्बैः।)

राजा—वयस्य! अन्यच्च शकुन्तलायाः प्रसाधनमभिप्रेतमत्रविस्मृतमस्माभिः।

विदूषकः—किं विअ। (किमिव।)

सानुमती—वणवासस्स सोउमारस्स अ जं सरिसं भविस्सदि। (वनवासस्य सौकुमार्यस्य च यत्सदृशं भविष्यति।)

विदूषक—[आप ही आप] यहाँ महाराज तो नदी को छोड़कर मृगतृष्णा के पीछे दौड़ रहे हैं। [प्रकट] कहो मित्र! अब इस चित्र में और क्या बनाना रह गया है?

सानुमती—मैं सोचती हूँ कि राजा अब चित्र में वे स्थान बनावेंगे जो मेरी सखी को बहुत प्यारे थे।

राजा—सुनो! अभी मालिनी नदी बनानी है, जिसकी रेत में हंस के जोड़े बैठे हों। उसके दोनों ओर हिमालय की वह तलहटी दिखानी है जहाँ हिरण बैठे हुए हों। मैं एक ऐसा पेड़ भी खींचना चाहता हूँ जिसपर वल्कल के वस्त्र टँगे हुए हों और जिसके नीचे एक हिरणी अपनी बाईं आँख काले हिरण की सींग से रगड़कर खुजला रही हो।।17।।

विदूषक—[आप ही आप] मेरी बात मानिए तो आप इस चित्र को लम्बी-लम्बी दाढ़ी वाले तपस्वियों से भर डालिए।

राजा—वयस्य! अभी भी मैं शकुन्तला को जो आभूषण पहनाना चाहता था, वे ही बनाना भूल गया हूँ।

विदूषक—वे कौन-कौन से?

सानुमती—वे ही जो उसके जैसी सुकुमारी वनवासिनी कुमारियाँ पहना करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—

कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम्।
न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे।। 18।।

विदूषकः—भो किं णु तत्तहोदी रत्तकुवलअपल्लवसोहिणा अग्गहत्थेण मुहं ओवारिअ चइदचइदा विअ ट्ठिआ। [सावधानं निरूप्य दृष्ट्वा] आ एसो दासीएपुत्तो कुसुमरसपाडच्चरो तत्तहोदीए वअणं अहिलंघदि महुअरो। (भोः किं नु तत्रभवती रक्तकुवलयपल्लव- शोभिनाऽग्रहस्तेन मुखमपवार्य चकितचकिततेव स्थिता। आः एष दास्याः पुत्रः कुसुमरसपाटच्चरस्तत्रभवत्या वदनमभिलङ्घति मधुकरः।

राजा—ननु वार्यतामेष धृष्टः।

विदूषकः—भवं एव्व अविणीदाणं सासिदा इमस्स वारणे पहविस्सदि। (भवानेवाविनीतानां शासिताऽस्य वारणे प्रभविष्यति।)

राजा—युज्यते। अयि भोः! कुसुमलताप्रियातिथे! किमत्र परिपतनखेदमनुभवसि।

एषा कुसुमनिषण्णा तृषिताऽपि सती भवन्तमनुरक्ता।
प्रतिपालयति मधुकरी न खलु मधु विना त्वया पिबति।। 19।।

सानुमती—अज्ज वि अभिजादं क्खु एसो वारिदो। (अद्याप्यभिजातं खल्वेष वारितः।)

विदूषकः—पडिसिद्धा वि वामा एसा जादी। (प्रतिषिद्धाऽपि वामैषा जातिः।)

राजा—वयस्य; अभी तो मैं वह शिरीष का फूल भी नहीं बना पाया, जिसकी डंठल उसने कानों पर धारण कर रखी थी और जिसका पराग उसके गालों पर फैला हुआ था। अभी तो उसके स्तनों के बीच में चन्द्रमा की किरण के समान पतले कमल के तन्तुओं की माला भी नहीं बनाई।।18।।

विदूषक—क्यों मित्र? देवी अपनी कमल की पंखुड़ी के समान कोमल और लाल हथेलियों से अपना मुँह ढके बहुत डरी हुई-सी खड़ी क्यों दिखाई दे रही हैं? [ध्यान से देखकर] अरे! देखिए, यह फलों के रस का चोर नीच भौंरा देवी के मुँह पर आकर मँडरा रहा है।

राजा—भगाओ तो इस ढीठ को।

विदूषक—दुष्टों को दंड देना तो आपका काम है, इसलिये अब आप ही इसे भगाइए।

राजा—अच्छी बात है। ओ फूल और लताओं के प्यारे अतिथि! तू क्यों इसके मुँह पर मँडराने का कष्ट कर रहा है। तेरे प्रेम की प्यासी भौंरी तेरी ओर आँख लगाए फूल पर बैठी हुई है और तेरे बिना मकरन्द नहीं पी रही है।।19।।

सानुमती—इस अवस्था में भी ये कितनी कोमलता से भौंरे को चले जाने के लिये कह रहे हैं।

विदूषक—ऐसे खोटे लोग कहने से थोड़े ही मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—एवं भो न मे शासने तिष्ठसि। श्रूयतां तर्हि संप्रति—

अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं पीतं मया सदयमेव रतोत्सवेषु।
बिम्बाधरं स्पृशसि चेद्भ्रमर प्रियायास्त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम्।। 20।।

विदूषकः—एव्वं तिक्खणदण्डस्स किं ण भाइस्सदि। [प्रहस्य आत्मगतम्] एसो दाव उम्मत्तो। अहं पि एदस्स संगेण ईदिसवण्णो विअ संवुत्तो। [प्रकाशम्] भो चित्तं क्खु एदं (एवं तीक्ष्णदण्डस्य किं न भेष्यति। एष तावदुन्मत्तः। अहमप्येतस्य सङ्गेनेदृशवर्ण इव संवृत्तः। भोः चित्रं खल्वेतत्।)

राजा—कथं चित्रम्।

सानुमती—अहं पि दाणिं अवगदत्था। किं उण जहालिहिदाणुभावी एसो (अहमपीदानीमवगतार्था। किं पुनर्यथालिखितानुभाव्येषः।)

राजा—वयस्य किमिदमनुष्ठितं पौरोभाग्यम्।

दर्शनसुखमनुभवतः साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन।
स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता।। 21।।

[इति वाष्पं विरहति।]

सानुमती—पुव्वावरविरोही अपुव्वो एसो विरहमग्गो। (पूर्वापरविरोध्यपूर्व एष विरहमार्गः।)

राजा—क्यों रे! तू मेरा कहना नहीं मानता। तो अब सुन—मेरी प्यारी का जो ओठ अछूते नन्हें पौधे की कोमल कोंपलों के समान लाल है और जिसे मैंने रति के समय भी बहुत बचा-वचाकर पिया था। उसे यदि तूने छुआ तो तुझे कमल के कोश में डालकर बन्दी बना दूँगा।।20।।

विदूषक—क्या तू ऐसे कठोर दण्ड देनेवाले से भी नहीं डरता? [हँसकर आप ही आप] अरे, ये तो पागल हो ही गए हैं। अब इनके साथ रहने से मैं भी कुछ-कुछ वैसा ही हो चला हूँ। [प्रकट] अरे महाराज! यह तो चित्र है।

राजा—अरे! क्या चित्र है?

सानुमती—स्वयं मैं ही अब समझ पा रही हूँ कि यह चित्र है, फिर भला उसका तो पूछना ही क्या, जिसने शकुन्तला में तल्लीन होकर उसका चित्र बनाया है।

राजा—यह तुमने क्या दुष्कर्म कर डाला मित्र! मैं तो बड़ा मगन होकर सामने खड़ी हुई शकुन्तला के दर्शन का आनन्द ले रहा था; पर तुमने स्मरण दिलाकर मेरी प्यारी को चित्र ही बना डाला।।21।।

[ऐसा कहकर आँसू बहाने लगता है।]

सानुमती—यह तो विरह का निराला ही ढंग देख रही हूँ कि जिसमें पहले कुछ था, अब कुछ और ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—वयस्य! कथमेवमविश्रान्तदुःखमनुभवामि।

प्रजागरात्खिलीभूतस्तस्याः स्वप्ने समागमः।
वाष्पस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि।। 22।।

सानुमती—सव्वहा पमज्जिदं तुए पच्चादेसदुक्खं सउन्दलाए। (सर्वथा प्रमार्जितं त्वया प्रत्यादेशदुःखं शकुन्तलायाः।)

[प्रविश्य]

चतुरिका—जेदु जेदु भट्टा। वट्टिआकरन्डअं गेण्हिअ इदोमुहं पत्थिद म्हि। (जयतु जयतु भर्ता। वर्तिकाकरण्डकं गृहीत्वेतोमुखं प्रस्थिताऽस्मि।)

राजा—किं च।

चतुरिका—सो मे हत्थादो अन्तरा तरलिआदुदीआए देवीए वसुमदीए अहं एव्व अज्जउत्तस्स उवणइस्सं त्ति सबलक्कारं गहीदो। (स मे हस्तादन्तरा तरलिकाद्वितीयया देव्या वसुमत्याऽहमेवार्यपुत्रस्योपनेष्यामीति सवलात्कारं गृहीतः।)

विदूषकः—दिट्ठिआ तुमं मुक्का। (दिष्ट्या त्वं मुक्ता।)

चतुरिका—जाव देवीएविडवलग्गं उत्तरीअं तरलिआ मोचेदि ताव मए णिव्वाहिदो अत्ता। (यावद्देव्या विटपलग्नमुत्तरीयं तरलिका मोचयति तावन्मया निर्वाहित आत्मा।)

राजा—वयस्य उपस्थिता देवी बहुमानगर्विता च। भवानिमां प्रतिकृतिं रक्षतु।

राजा—वयस्य! जानते हो, इस समय मेरे हृदय पर क्या बीत रही है? नींद न लगने के कारण मैं उससे स्वप्न में भी नहीं मिल पाता और सदा बहते रहनेवाले ये आँसू उसे चित्र में भी नहीं देखने देते।।22।।

सानुमती—तुमने शकुन्तला को छोड़कर हम लोगों के मन में जो कसक भर दी थी; वह आज तुमने सब धो डाली।

[प्रवेश करके]

चतुरिका—जय हो, महाराज की जय हो। चित्र-सामग्री का डिब्बा लिए हुए मैं इधर ही चली आ रही थी कि—

राजा—तो क्या हुआ?

चतुरिका—बीच में ही तरलिका के साथ आती हुई महारानी वसुमती ने यह कहकर मुझसे बलपूर्वक वह डिब्बा ले लिया कि मैं स्वयं इसे आर्यपुत्र के पास पहुँचा आती हूँ।

विदूषक—अपना बड़ा भाग समझ कि तू उनके हाथ से बिना पिटे बचकर निकल आई।

चतुरिका—उधर तरलिका वृक्ष की डाली में उलझी हुई महारानी की ओढ़नी छुड़ाने में लगी, इधर मै चुपचाप खिसक आई।

राजा—जान पड़ता है महारानी बड़ा मुँह फूलाए इधर ही चली आ रही है, इसलिये अब इस चित्र को ले जाकर कहीं छिपा कर रखो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषकः—अत्ताणं त्ति भणाहि। [चित्रफलकमादायोत्थाय च] जह भवं अन्तेउरकालकूडादो मुञ्चीअदि तदो मं मेहप्पडिच्छन्दे पासादे सद्दावेहि। (आत्मानमिति भण। यदि भवानन्तःपुरकालकूटान्मोक्ष्यते तदा मां मेघप्रतिच्छन्दे प्रसादे शब्दापय) [इति द्रुतपदं निष्क्रान्तः।]

सानुमती—अण्णसंकन्तहिअओवि पढमसंभावणं अवेक्खदि। अदिसिढिलसोहदो दाणिं एसो। (अन्यसंक्रान्तहृदयोऽपि प्रथमसंभावनामपेक्षते। अतिशिथिलसौहार्द इदानीमेषः।)

[प्रविश्य पत्रहस्ता]

प्रतीहारी—जेदु जेदु देवो। (जयतु जयतु देवः।)

राजा—वेत्रवति! न खल्वन्तरा दृष्टा त्वया देवी।

प्रतीहारी—अहं इं। पत्तहत्थं मं देक्खिअ पडिणिउत्ता (अथ किम्। पत्रहस्ता मां प्रेक्ष्य प्रतिनिवृता।)

राजा—कार्यज्ञा कायोपरोधं मे परिहरति।

प्रतीहारी—देव अमच्चो विण्णवेदी—अत्थजादस्स गणणाबहुलदाए एक्कं एव्व पोरकज्जं अवक्खिदं तं देवो पत्तारूढं पच्चक्खीकरेदु त्ति। (देव अमात्यो विज्ञापयति—अर्थजातस्य गणनाबहुलतयैकमेव पौरकार्यमवेक्षितं तद्देवः पत्रारूढं प्रत्यक्षीकरोत्विति।)

राजा—इतः पत्रिकां दर्शय। [प्रतीहार्युपनयति।]

विदूषक—यह क्यों नहीं कहते कि हमें ही छिपा लो? [चित्रपट लेकर उठकर] अच्छा, जब आपको रनिवास के चंगुल से छुटकारा मिल जाय तो मेघप्रतिछन्द भवन में मुझे पुकार लीजिएगा।

[झपटकर निकल जाता है।]

सानुमती—इन्होंने दूसरे को हृदय दे डाला है, पर ये अपनी पहली रानी के प्रेम को भी ठेस नहीं लगने देना चाहते। पर सच्ची बात तो यह है कि राजा के मन में रानी के लिये कुछ भी प्रेम बचा नहीं रह पाया है।

[हाथ में पत्र लिए हुए प्रतीहारी का प्रवेश।]

प्रतीहारी—जय हो, महाराज की जय हो।

राजा—वेत्रवती! तुम्हें बीच में महारानी तो नहीं मिली थी?

प्रतीहारी—जी हाँ, मिली थीं। पर मेरे हाथ में यह पत्र देखकर अभी उलटे पाँवों लौट गई हैं।

राजा—वे समय-असमय पहचानती हैं, इसीलिये मेरे काम में वाधा नहीं बनना चाहती होंगी।

प्रतीहारी—महाराज! अमात्य ने कहलवाया है कि आज का सारा दिन कई विभागों को रुपये-पैसे का जोड़ लगाने में ही बीत गया। इसलिये प्रजा का केवल एक ही काम मैं देख पाया हूँ। उसे पत्र में पढ़कर ही देव समझ लें।

राजा—लाओ, पत्र इधर दो।

[प्रतीहारी पत्र ले जाकर देती है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—[अनुवाच्य] कथम्। समुद्रव्यवहारी सार्थवाहो धनमित्रो नाम नौव्यसने विपन्नः। अनपत्यश्च किल तपस्वी। राजगामी तस्यार्थसंचय इत्येतदमात्येन लिखितम्। कष्टं खल्वनपत्यता। वेत्रवति! बहुधनत्वाद्बहुपत्नीकेन तत्रभवता भवितव्यम्। विचीयतां यदि काचिदापन्नसत्त्वा तस्य भार्यासु स्यात्।

प्रतीहारी—देव! दाणिं एव्व साकेदअस्स सेट्ठिणो दुहिआ णिव्वुत्तपुंसवणा जाआ से सुणीअदि। (देव! इदानीमेव साकेतस्य श्रेष्ठिनो दुहिता निर्वृत्तपुंसवना जायाऽस्य श्रूयते।)

राजा—ननु गर्भः पित्र्यं रिक्थमर्हति। गच्छ। एवममात्यं ब्रूहि।

प्रतीहारी—जं देवो आणवेदि (यद्देव आज्ञापयति।) [इति प्रस्थिता।]

राजा—एहि तावत्।

प्रतीहारी—इअम्हि। (इयमस्मि।)

राजा—किमनेन संततिरस्ति नास्तीति।

येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना।
स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम्।। 23।।

प्रतीहारी—एव्वं णाम घोसइदव्वं। [निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य] काले पवुट्ठं विअ अहिणन्दिदं देवस्स सासणम्। (एवं नाम घोषयितव्यम्। काले प्रवृष्टमिवाभिनन्दितं देवस्य शासनम्।)

राजा—[बाँचकर] अरे! क्या समुद्र के व्यापारी धनमित्र की नाव डूबने से मृत्यु हो गई। बेचारे के कोई सन्तान भी नहीं थी। और प्रधानमंत्री जी लिखते हैं कि उसका सब धन राज-कोष में आ जाना चाहिए। निःसन्तान होना भी कितना कष्टदायक होता है। अच्छा वेत्रवती! सेठजी के पास कोई कमी तो थी नहीं, इसलिये उनके बहुत-सी पत्नियाँ होंगी। पता लगाओ उनमें से कोई गर्भवती भी है?

प्रतीहारी—हाँ देव! सुना जाता है कि अयोध्यावाले सेठ की जो कन्या उनसे ब्याही गयी थी, उसने अभी थोड़े दिन हुए पुंसवन संस्कार कराया है।

राजा—तब जाकर अमात्य से कहना कि वह गर्भ का बालक ही सेठ के सब धन का स्वामी होगा।

प्रतीहारी—जैसी महारानी की आज्ञा।

[यह कहकर चली जाती है।]

राजा—अच्छा इधर तो सुनो!

प्रतीहारी—जी, आ गई।

राजा—किसी को सन्तान होने या न होने से क्या? जाकर ढिंढोरा पिटा दो कि पापियों को छोड़कर हमारी प्रजा के और जितने लोग हैं, उनके जो जो कुटुम्बी न रहें उनका कुटुम्बी दुष्यन्त समझा जाये।।23।।

प्रतीहारी—यही ढिंढोरा पिटवा दिया जाएगा। [लौटकर] महाराज की इस आज्ञा सुनकर प्रजा वैसे ही मगन हो उठी है, जैसे समय पर पानी बरसने से खेती लहलहा उठती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—[दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य] एवं भोः संततिच्छेदनिरवलम्बानां कुलानां मूलपुरुषावसाने संपदः परमुपतिष्ठन्ति। ममाप्यन्ते पुरुवंशश्रिय एष एव वृत्तान्तः।

प्रतीहारी—पडिहदं अमंगलम्। (प्रतिहतममङ्गलम्।)

राजा—धिङ्मामुपस्थितश्रेयोऽवमानिनम्।

सानुमती—असंअअं सहिं एव्व हिअए करिअ णिन्दिदो णेण अप्पा। (असंशयं सखीमेव हृदये कृत्वा निन्दितोऽनेनात्मा।)

राजा—

संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी त्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा।
कल्पिष्यमाणा महते फलाय वसुन्धरा काल इवोप्तवीजा।। 24।।

सानुमती—अपरिच्छिण्णा दाणिं दे संददी भविस्सदि। (अपरिच्छिन्नेदानीं ते सन्ततिर्भविष्यति।)

चतुरिका—[जनान्तिकम्] अए इमिणा सत्यवाहवुत्तन्तेण दिउणुव्वेओ भट्टा। णं अस्सासिदुं मेहप्पडिच्छन्दादो अज्जं माढव्वं गेण्डिअ आअच्छेहि। (अपि अनेन सार्थवाहवृत्तान्तेन द्विगुणोद्वेगो भर्ता। एनमाश्वासयितुं मेघप्रतिच्छन्दादार्यं माढव्यं गृहीत्वागच्छ।)

प्रतीहारी—सुट्ठ भणसि। (सुष्ठु भणसि।) [इति निष्क्रान्ता।]

राजा—अहो दुष्यन्तस्य संशयमारूढाः पिण्डभाजः। कुतः।

अस्मात्परं बत यथाश्रुति संभृतानि को नः कुले निवपनानि करिष्यतीति।

राजा—[लम्बी साँस लेकर] इसी प्रकार निपूतों का कुछ धन उनके न रहने पर दूसरों के हाथ चला जाया करता है। मेरे पीछे पुरुवंश की राज्य-लक्ष्मी की भी यही दशा होने वाली है।

प्रतीहारी—भगवान् ऐसे बुरे दिन न दिखायें।

राजा—घर आई लक्ष्मी का निरादर करनेवाले मुझ अभागे को धिक्कार है।

सानुमती—इसमें सन्देह नहीं कि राजा ने शकुन्तला वाली बात पर ही अपने को धिक्कारा है।

राजा—जैसे समय पर बोई हुई पृथ्वी फल देनेवाली होती है वैसे ही मुझसे गर्भ धारण करके जो मेरे कुल को चलानेवाली धर्मपत्नी थीं, उसे ही मैंने निरादर के साथ छोड़ दिया।।24।।

सानुमती—तुम्हारी सन्तान तुम्हारा वंश चलानेवाली होगी।

चतुरिका—[अलग] अरी प्रतीहारी! इस सेठवाली बात सुनकर तो राजा का दुःख दूना बढ़ गया है। इसलिये इनके मन बहलाने के लिये आर्य माढव्य को मेघप्रतिच्छन्द भवन से बुला ला।

प्रतीहारी—यह ठीक कहती हो।

[जाती है।]

राजा—दुष्यन्त के पूर्वज भी बेचारे बड़े संदेह में पड़ गए होंगे, क्योंकि—वे विकल होकर सोच रहे होंगे कि दुष्यन्त के पीछे कौन हमारा वैदिक विधि से तर्पण करेगा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तं धौताश्रुशेषमुदकं पितरः पिबन्ति।।25।।

[इति मोहमुपगतः]

चतुरिका–[ससंभ्रममवलोक्य] समस्ससदु समस्ससदु भट्टा। (समाश्वसितु समाश्वसितु भर्ता।)

सानुमती–हद्धी हद्धी। सदि क्खु दीवे ववधाणदोसेण एसो अन्धआरदोसं अणुहोदि। अहं दाणिं एव्व णिव्वदं करेमि। अहवा सुदं मए सउन्दलं समस्सासअन्तीए महेन्दजणणीए मुहादो–जण्णभावोस्सुआ देवा एव्व तह अणुचिट्ठिस्सन्ति जइ अइरेण धम्मपदिणिं भट्टा अहिणन्दिस्सदि त्ति। ता ण जुत्तं एदं कालं पडिपालिदुं। जाव इमिणा वुत्तन्तेण पिअसहिं समस्सासेमि। (हा धिक्। हा धिक्। सति खलु दीपे व्यवधानदोषेणैषोऽन्धकारदोषमनुभवति। अहमिदानीमेव निर्वृतं करोमि। अथवा श्रुतं मया शकुन्तलां समाश्वासयन्त्या महेन्द्रजनन्या मुखात्–यज्ञभागोत्सुका देवा एव तथानुष्ठास्यन्ति यथाऽचिरेण धर्मपत्नीं भर्ताऽभिनन्दिष्यतीति। तन्न युक्तं कालं प्रतिपालयितुम्। यावदनेन वृत्तान्तेन प्रियसखीं समाश्वासयामि।) [इत्युद्भ्रान्तकेन निष्क्रान्ता।]

[नेपथ्ये]

अब्बम्हण्णाम्। (अब्रह्मण्यम्।)

राजा–[प्रत्यागतः कर्णं दत्वा] अये माधव्यस्येवार्तस्वरः। कः कोऽत्र भोः।

[प्रविश्य]

प्रतीहारी–[ससंभ्रमम्] परित्ताअदु देवो संसअगदं वअस्सम्। (परित्रायतां देवः संशयगतं वयस्यम्।)

इसी सोच में वे मेरे हाथ से तर्पण किए हुए जल के कुछ भाग से तो अपने आँसू धोते होंगे और जो बच जाता होगा, बस उतना ही पी पाते होंगे।।25।।

[ऐसा कहकर मूर्छित हो जाते हैं।]

चतुरिका–[घबराहट के साथ देखकर] धीरज धरिए महाराज! धीरज धरिए।

सानुमती–हाय हाय! जैसे दीपक के रहते हुए भी बीच में ओट पड़ जाने से अँधेरा हो जाता है, वैसे ही इस राजा को भी मोह हो गया है। मैं इसकी चिन्ता अभी मिटा देती; पर अदिति ने शकुन्तला को समझाते हुए कहा था कि यज्ञ में भाग पाने के लिये उत्सुक देवता लोग ही तुम्हारा और दुष्यन्त का मिलन करायेंगे, तो अब देर नहीं करनी चाहिए। चलूँ शकुन्तला को ये सब बातें सुना आऊँ, तो उसे धीरज हो जाय।

[झटके से ऊपर उड़ जाती है।]

[नेपथ्य में]

अरे ब्राह्मण को मार डाला, मार डाला।

राजा–[सजग होकर कान लगाकर] अरे! यह तो माध्यव्य का-सा रोना सुनाई पड़ रहा है। अरे! कोई है?

प्रतीहारी–[प्रवेश करके घबराहट के स्वर में] महाराज! आपके मित्र बड़े संकट में पड़ गए हैं। बचाइए चलकर उन्हें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—केनात्तगन्धो माणवकः।

प्रतीहारी—अदिट्ठरूवेण केण वि सत्तेण अदिक्कमिअ मेहप्पडिच्छन्दस्स पासादस्स अग्गभूमिं आरोविदो। (अदृष्टरूपेण केनापि सत्त्वेनातिक्रम्य मेघप्रतिच्छन्दस्याग्र- भूमिमारोपितः।)

राजा—[उत्थाय] मा तावत्। ममापि सत्त्वैरभिभूयन्ते गृहाः।

अथवा—

अहन्यहन्यात्मन एव तावज्ज्ञातुं प्रमादस्खलितं न शक्यम्।
प्रजासु कः केन पथा प्रयातीत्यशेषतो वेदितुमस्ति शक्तिः।। 26।।

[नेपथ्ये]

भो वअस्स अविहा अविहा। (भो वयस्स अविहा अविहा।)

राजा—[गतिभेदेन परिक्रामन्] सखे! न भेतव्यं न भेतव्यम्।

[नेपथ्ये]

[पुनस्तदेव पठित्वा] कहं ण भाइस्सं। एस मं को वि पच्चवणदसिरोहरं इक्खुं विअ तिण्णभंगं करेदि। (कथं न भेष्यामि। एष मां कोऽपि प्रत्यवनतशिरोधरमिक्षुमिव त्रिभङ्गं करोति)

राजा—[सदृष्टिक्षेपम्] धनुस्तावत्।

[प्रविश्य शार्ङ्गहस्ता]

यवनी—भट्टा एदं हत्थावावसहिदं सरासणं। (भर्तः एतद्धस्तावाप सहितं शरासनम्।)

[राजा सशरं धनुरादत्ते।]

राजा—माधव्य को किसने सता रखा है?

प्रतीहारी—किसी भूत-प्रेत ने उन्हें पकड़कर मेघ-प्रतिच्छन्द भवन के मुंडेरे पर ले जाकर टाँग दिया है।

राजा—[उठकर] यह कैसे हो सकता है? क्या मेरे घर में भी भूत-प्रेत अड्डा जमाने लगे हैं? पर यह हो भी सकता है—क्योंकि जब मनुष्य यही नहीं जानता कि वह स्वयं भूल से नित्य कितने पाप कर बैठता है, तो यह कैसे जाना जा सकता है कि प्रजा में कौन किस समय क्या कर रहा है।।26।।

[नेपथ्य में]

दुहाई है मित्र, दुहाई!

राजा—[वेग से घूमता हुआ] डरो मत मित्र, डरो मत।

[नेपथ्य में]

हाय, हाय! डरूँ क्यों नहीं? यहाँ कोई मेरे गले को ईख के समान मरोड़कर तीन टुकड़े किए डाल रहा है।

राजा—[चारों ओर देखता हुआ] अरे, धनुष तो ले आओ।

[हाथ में धनुष लिए हुए प्रवेश करके]

यवनी—महाराज! यह लीजिए धनुष और दस्ताना।

[राजा धनुष-बाण लेते हैं।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[नेपथ्ये]

एष त्वामभिनवकण्ठशोणितार्थी शार्दूलः पशुमिव हन्मि चेष्टमानम्।
आर्तानां भयमपनेतुमात्तधन्वा दुष्यन्तस्तव शरणं भवत्विदानीम्।।27।।

राजा—[सरोषम्] कथं मामेवोद्दिशति। तिष्ठ कुणपाशन। त्वमिदानीं न भविष्यसि। [शार्ङ्गमारोप्य] वेत्रवति! सोपानमार्गमादेशय।

प्रतीहारी—इदो इदो देवो। (इत इतो देवः।)

[सर्वे सत्वरमुपसर्पन्ति।]

राजा—[समन्ताद्विलोक्य] शून्यं खल्विदम्।

[नेपथ्ये]

अविहा अविहा। अहं अत्त भवन्तं पेक्खामि। तुमं मं ण पेक्खसि। बिडालग्गहीदो मूसओ विअ णिरासो म्हि जीविदे संवुत्तो। (अविहा अविहा। अहमत्रभवन्तं पश्यामि। त्वं मां न पश्यसि। बिडालगृहीतो मूषक इव निराशोऽस्मि जीविते संवृत्तः।)

राजा—भोस्तिरस्करिणीगर्वित! मदीयमस्त्रं त्वां द्रक्ष्यति। एष तमिषुं संदधे।

यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षिष्यति द्विजम्।
हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः।।28।।

[इत्यस्त्रं संधत्ते]

[नेपथ्य में]

तेरे कंठ के गरम रुधिर का प्यासा मैं तेरा उसी प्रकार वध किए डालता हूँ, जैसे तड़पते हुए पशु को सिंह मार डालता है। अब आयें पीड़ितों के रक्षक धनुषधारी दुष्यन्त तुझे बचाने।।27।।

राजा—क्या तू मुझे भी चुनौती दे रहा है? तो ठहर सड़ा माँस खाने वाला पिशाच! मैं अभी तुझे मार डालता हूँ। [धनुष चढ़ाकर] वेत्रवती! चल तो आगे-आगे सीढ़ी पर।

प्रतीहारी—इधर से आइए देव, इधर से।

[सबका वेग से प्रस्थान]

राजा—[चारों ओर देखकर] यहाँ तो कहीं कोई भी नहीं दिखाई दे रहा है।

[नेपथ्य में]

हाय! हाय! मैं आपको देख रहा हूँ, पर आप मुझे नहीं देख रहे हैं। मैं तो बिल्ली के पँजों में पड़े हुए चूहे के समान अपने प्राणों से हाथ धोए बैठा हूँ।

राजा—अच्छा रे छल विद्या के घमंडी! अब मेरा बाण ही तुझे देख लेगा। देख! मैं यह बाण चढ़ाता हूँ और जैसे हंस, जलमिश्रित दूध में से दूध को पी जाता है और पानी को छोड़ देता है वैसे ही यह भी तुझ को मार डालेगा और इस ब्राह्मण को बचा लेगा।।28।।

[बाण चढ़ाता है]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[ततः प्रविशिति विदूषकमुत्सृज्य मातलिः।]

मातलिः—

कृताः शरव्यं हरिणा तवासुराः शरासनं तेषु विकृष्यतामिदम्।
प्रसादसौम्यानि सतां सुहृज्जने पतन्ति चक्षूंषि न दारुणाः शराः।। 29।।

राजा—[ससभ्रममस्त्रमुपसंहरन्] अये मातलिः। स्वागतं महेन्द्रसारथे!

[प्रविश्य]

विदूषकः—अहं जेण इट्ठिपसुमारं मारिदो सो इमिणा साअदेण अहिणन्दीअदि। (अहं येनेष्टिपशुमारं मारितः सोऽनेन स्वागतेनाभिनन्द्यते।)

मातलिः—[सस्मितम्] आयुष्मन्। श्रूयतां यदर्थमस्मि हरिणा भवत्सकाशं प्रेषितः।

राजा—अवहितोऽस्मि।

मातलिः—अस्ति कालनेमिप्रसूतिर्दुर्जयो नाम दानवगणः।

राजा—अस्ति। श्रुतपूर्वं मया नारदात्।

मातलिः—

सख्युस्ते स किल शतक्रतोरजय्यस्तस्य त्वं रणशिरसि स्मृतो निहन्ता।
उच्छेत्तुं प्रभवति यन्न सप्तसप्तिस्तन्नैशं तिमिरमपाकरोति चन्द्रः।। 30।।

स भवानात्तशस्त्र एव इदानीं तमैन्द्ररथमारुह्य विजयाय प्रतिष्ठताम्।

[विदूषक को छोड़कर मातलि का प्रवेश]

मातलि—इन्द्र ने राक्षसों के मारने का काम आपको सौंपा है। अब आप उन राक्षसों पर ही चलकर अपने बाण चलाइए; क्योंकि सज्जन लोग अपने मित्रों पर बाण नहीं बरसाते, अपनी कृपा बरसाते हैं।।29।।

राजा—[बाण उतारता हुआ] कौन? मातलि? आओ, स्वागत है इन्द्र के सारथी!

विदूषक—[प्रवेश करके] अरे! जो मुझे बलिपशु के समान मार रहा था उसका यहाँ स्वागत किया जा रहा है।

मातलि—[मुस्कुराकर] आयुष्मन्! इन्द्र ने मुझे जिस काम से आपके पास भेजा है, वह पहले सुन लीजिए।

राजा—हाँ कहिए, मैं सुन रहा हूँ।

मातलि—कालनेमिके वंशवाले दानवों का एक ऐसा दल बन गया है, जो हराए नहीं हार रहा है।

राजा—हाँ, नारद मुनि ने मुझसे बहुत दिन पहले बताया था।

मातलि—आपके मित्र इन्द्र उन्हें जीत नहीं पा रहे हैं। अब यही समझा गया है कि आप ही उन्हें रणक्षेत्र में पराजित कर सकते हैं, क्योंकि रात के जिस अँधेरे को सूर्य नहीं दूर कर सकता, उसे चन्द्रमा ही हरता है।।30।। अब आप यह धनुष-बाण लिए हुए इसी इन्द्र के रथ पर चढ़कर विजय के लिये चले चलिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—अनुगृहीतोऽहमनया मघवतः संभावनया। अथ माधव्यं प्रति भवता किमेवं प्रयुक्तम्।

मातलिः—तदपि कथ्यते। किंचिन्निमित्तादपि मनःसंतापादायुष्मान्मया विक्लवो दृष्टः। पश्चात्कोपयितुमायुष्मन्तं तथा कृतवानस्मि। कुतः।

ज्वलित चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते।
प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात्प्रतिपद्यते हि जनः।। 31।।

राजा—[जनान्तिकम्] वयस्य अनतिक्रमणीया दिवस्पतेराज्ञा। तदत्र परिगतार्थं कृत्वा मद्वचनादमात्यपिशुनं ब्रूहि—

त्वन्मतिः केवला तावत्परिपालयतु प्रजाः।
अधिज्यमिदमन्यस्मिन्कर्मणि व्यापृतं धनुः।। 32।।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि। (यद्भवानाज्ञापयति।) [इति निष्क्रान्तः।]

मातलिः—आयुष्मान् रथमारोहतु।

[राजा रथाधिरोहणं नाटयति।]

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे।]

।। इति षष्ठोऽङ्कः ।।

राजा—भगवान् इन्द्र ने यह सम्मान देकर मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया है। पर यह तो बताइए कि आपने माधव्य के साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया था?

मातलि—वह भी बताता हूँ। मैंने आकर देखा कि आपका मन न जाने क्यों बड़ा दुखी हो रहा है। इसलिये आपका क्रोध जगाने के लिये मैंने यही ठीक समझा; क्योंकि आग तभी जलती है जब ईंधन को हिला-डुला दिया जाय, और साँप भी अपना फन उठाकर तभी फुफकारता है, जब उसे कोई छेड़ दे। इसी प्रकार मनुष्यों को भी जब तक कोई उकसाकर भड़का न दे, तब तक वह अपना तेज नहीं दिखा पाता।।31।।

राजा—[विदूषक से] वयस्य! इन्द्र भगवान् की आज्ञा टाली तो जा नहीं सकती। इसलिये अमात्य पिशुन को यह सब समाचार सुना देना और मेरी ओर से उनसे यह कह देना कि—जब तक मेरा धनुष उधर दूसरे काम में फँसा हुआ है, तब तक अपनी बुद्धि से ही प्रजा का पालन करें।।32।।

विदूषक—जैसी आपकी आज्ञा। [जाता है।]

मातलि—चलें, आयुष्मान् रथ पर चढ़ जायँ।

[राजा रथ पर चढ़ने का नाट्य करते हैं।]

[सबका प्रस्थान]

।। छठा अंक समाप्त।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तोऽङ्कः

[ततः प्रविशत्याकाशयानेन रथाधिरूढो राजा मातलिश्च ।]

राजा—मातले! अनुष्ठितनिदेशोऽपि मघवतः सत्क्रियाविशेषादनुपयुक्तमिवात्मानं समर्थये।

मातलिः—[सस्मितम्] आयुष्मन्! उभयमप्यपरितोषं समर्थये।

प्रथमोपकृतं मरुत्वतः प्रतिपत्त्या लघु मन्यते भवान्।
गणयत्यवदानविस्मितो भवतः सोऽपि न सत्क्रियागुणान्।। 1 ।।

राजा—मातले! मा मैवम्। स खलु मनोरथानामप्यभूमिर्विसर्जनावसरसत्कारः मम हि दिवौकसां समक्षमर्धासनोपवेशितस्य—

अन्तर्गतप्रार्थनमन्तिकस्थं जयन्तमुद्वीक्ष्य कृतस्मितेन।
आमृष्टवक्षोहरिचन्दनाङ्का मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा।। 2 ।।

मातलिः—किमिव नामायुष्मानमरेश्वरान्नार्हति। पश्य—

सप्तम अङ्क

[आकाश में रथ पर चढ़े हुए राजा दुष्यन्त और मातलि दिखाई देते हैं।]

राजा—मातलि! यद्यपि मैंने भगवान् इन्द्र की आज्ञा का पालन मात्र किया था, पर जैसी धूम-धाम से उन्होंने मेरा स्वागत-सत्कार किया, उसके सामने तो मेरी सेवा कुछ भी नहीं थी।

मातलि—[मुस्कराकर] आयुष्मन्! मैं तो समझता हूँ कि आप दोनों का ही मन एक दूसरे का आदर करके भरा नहीं। राजन्! इन्द्र का इतना बड़ा काम करके भी आप जो अपनी सेवा को तुच्छ समझ रहे हैं, उसका कारण यही है कि आप भगवान् इन्द्र को बड़प्पन देना चाहते हैं और वे भी आपकी वीरता से इतने आश्चर्य में भर गए हैं कि आपका इतना सम्मान करके भी वे समझ रहे हैं कि आपका ठीक-ठीक आदर हो नहीं पाया।।1।।

राजा—नहीं मातलि! यह बात नहीं है! वहाँ से चलते समय मेरा जो सत्कार हुआ है, उतने सम्मान की तो कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। उन्होंने देवताओं के सामने ही मुझे अपने आधे सिंहासन पर बिठा लिया और अपनी छाती पर शोभा देती हुई हरिचन्दन लगी हुई वह मन्दार की माला अपने गले से उतारकर मुस्कराते हुए मेरे गले में डाल दी, जिसे पाने के लिये जयन्त ललचाई आँखों से देख रहा था।।2।।

मातलि—मुझे बताइए, ऐसा कौन सा सम्मान है, जो देवराज इन्द्र के हाथ आप नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखपरस्य हरेरुभयैः कृतं त्रिदिवमुद्धृतदानवकण्टकम्।
तव शरैरधुना नतपर्वभिः पुरुषकेसरिणश्च पुरा नखैः।।3।।

राजा—अत्र खलु शतक्रतोरेव महिमा स्तुत्यः—

सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः
संभावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्।
किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता
तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्।।4।।

मातलिः—सदृशमेवैतत्। [स्तोकमन्तरमतीत्य] इतः पश्य नाकपुष्ठपृतिष्ठितस्य सौभाग्यमात्मयशसः।

विच्छित्तिशेषैः सुरसुन्दरीणां वर्णैरमी कल्पलतांऽशुकेषु।
विचिन्त्य गीतक्षममर्थजातं दिवौकसस्त्वच्चरितं लिखन्ति।।5।।

राजा—मातले! असुरसंप्रहारोत्सुकेन पूर्वेद्युर्दिवमधिरोहता मया न लक्षितः स्वर्गमार्गः। कतमस्मिन्मरुतां पथि वर्तामहे।

मातलिः—

त्रिस्रोतसं वहति यो गगनप्रतिष्ठां ज्योतींषि वर्तयति च प्रविभक्तरश्मिः।

पा सकते। देखिए—सदा सुख का जीवन बितानेवाले इन्द्र के लिये दो ही तो ऐसे हुए हैं, जिन्होंने राक्षस-रूपी काँटे स्वर्ग से उखाड़ फेंके हैं—एक तो नृसिंह भगवान् थे, जिन्होंने अपने नखों से देवताओं के शत्रु हिरण्यकशिपु का पेट फाड़ डाला था और दूसरे आप हैं जिन्होंने इस बार अपने चिकने-चिकने जोड़वाले बाणों से शत्रु को मार भगाया है।।3।।

राजा—यह सब तो भगवान् इन्द्र की महिमा का फल है। यदि कोई सेवक बहुत बड़ा काम करके आये तो यही समझना चाहिए कि स्वामी जी ने यह काम सौंपकर उसे जो बड़ा भारी समान दे दिया था, उसी का वह फल है। यदि सूर्य, आगे-आगे अरुण को करके न ले चले तो भला अरुण में इतनी शक्ति कहाँ कि वह अँधेरे को दूर भगा सके।।4।।

मातलि—ऐसी बातें कहना आपका बड़प्पन है। [थोड़ी दूर चलकर] आयुष्मन्! इधर स्वर्ग में फैली हुई अपनी कीर्ति की धाक तो देखिए। देवता लोग आपके पराक्रम के गीत बना-बनाकर कल्पवृक्ष के कपड़ों पर उन रंगों से लिख रहे हैं जो अप्सराओं के शृंगार से बचे रह गए हैं।।5।।

राजा—मातलि! मैं जब आया था, तब राक्षसों से युद्ध करने के ध्यान में इतना मग्न था कि उस बार स्वर्ग का मार्ग भली-भाँति देख ही नहीं पाया था। अच्छा यह तो बताओ कि हम लोग इस समय पवन के किस तल में चल रहे हैं?

मातलि—यह वही तल है जिसे लोग कहते हैं कि वामन भगवान ने अपने दूसरे पग से मापकर पवित्र कर दिया है। यहाँ 'परिवह' नाम का वह पवन चला करता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्य द्वितीयहरिविक्रमनिस्तमस्कं वायोरिमं परिवहस्य वदन्ति मार्गम्।।6।।

राजा—मातले! अतः स खलुसबाह्यान्तःकरणो ममान्तरात्मा प्रसीदति। [रथाङ्गमवलोक्य] मेघपदवीमवतीर्णौ स्वः।

मातलिः—कथमवगम्यते।

राजा—

अयमरविवरेभ्यश्चातकैर्निष्पतद्भिर्हरिभिरूचिरभासां तेजसा चानुलिप्तैः।
गतमुपरि घनानां वारिगर्भोदराणां पिशुनयति रथस्ते शीकरक्लिन्ननेमिः।।7।।

मातलिः—क्षणादायुष्मान्स्वाधिकारभूमौ वर्तिष्यते।

राजा—[अधोऽवलोक्य] मातले! वेगावतरणादाश्चर्यदर्शनः संलक्ष्यते मनुष्यलोकः। तथा हि—

शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णस्वान्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात्पादपाः।
संतानैस्तनुभावनष्टसलिला व्यक्तिं भजन्त्यापगाः।
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते।।8।।

मातलिः—साधु दृष्टम्। [सबहुमानमवलोक्य] अहो उदाररमणीया पृथिवी।

जिसमें आकाशगंगा बहा करती हैं और जो अपनी वायु-धाराओं से नक्षत्रों को ठीक-ठीक चलाया करता है।।6।।

राजा—मातलि! यही कारण है कि मेरी भीतरी और बाहरी सब इन्द्रियों के साथ-साथ मेरी अन्तरात्मा भी प्रसन्न हो उठी है। [रथ के पहियों को देखते हुए] अब हम आकाश के उस भाग पर उतर आए हैं, जिसमें बादल चला करते हैं।

मातलि—यह आपने कैसे जाना?

राजा—यह तो जल-कणों से भींगा हुआ आपके रथ का धुरा ही बता रहा है कि हम जल-भरे मेघों के ऊपर से चले जा रहे हैं, क्योंकि बिजली की चमक से घोड़े भी चमक उठते हैं और रथ के पहियों के अरों के बीच में निकल-निकलकर चातक इधर-उधर उड़ते फिर रहे हैं।।7।।

मातलि—आयुष्मान् क्षणभर में ही अपने राज्य की भूमि पर उतर जायँगे।

राजा—[नीचे देखकर] मातलि! वेग से उतरने के कारण नीचे का मनुष्यलोक कितना विचित्र दिखाई पड़ रहा है। क्योंकि—देखो! जान पड़ता है, मानो धरती पहाड़ों की ऊँची चोटियों से नीचे उतर रही हो, पत्तों में छिपी हुई वृक्षों की शाखाएँ अब दिखाई पड़ती जा रही है, दूर से पतली दिखाई देनेवाली नदियाँ चौड़ी होती जा रही है और यह पृथ्वी इस प्रकार हमारी ओर उठी चली आ रही है मानो कोई इसे ऊपर को उछाल रहा हो।।8।।

मातलि—ठीक देखा आपने। [आदर से देखकर] वाह! धरती कैसी सुहावनी दिखाई पड़ रही है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—मातले! कतमोऽयं पूर्वापरसमुद्रावगाढः कनकरसनिष्यन्दी सांध्य इव मेघपरिघः सानुमानालोक्यते।

मातलिः—आयुष्मन्! एष खलु हेमकूटो नाम किंपुरुषपर्वतस्तपः संसिद्धिक्षेत्रम्। पश्य—

स्वायंभुवान्मरीचेर्यः प्रबभूव प्रजापतिः।
सुरासुरगुरु सोऽत्र सपत्नीकस्तपस्यति।।9।।

राजा—तेन ह्यनतिक्रमणीयानि। श्रेयाँसि प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्तं गन्तुमिच्छामि।

मातलिः—प्रथमः कल्पः।

[नाट्येनावतीर्णौ]

राजा—[सविस्मयम्]—

उपोढशब्दा न रथाङ्गनेमयः प्रवर्तमानं न च दृश्यते रजः।
अभूतलस्पर्शतयानिरुन्धतस्तवावतीर्णोऽपि रथो न लक्ष्यते।।10।।

मातलिः—एतावानेव शतक्रतोरायुष्मतश्च विशेषः।

राजा—मातले! कतस्मिन्प्रदेशे मारीचाश्रमः।

मातलिः—[हस्तेन दर्शयन्]—

वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरसा संदष्टसर्पत्वचा
कण्ठे जीर्णलताप्रतानवलयेनात्यर्थसंपीडितः।

राजा—मातलि! बताओ तो, यह पूर्व और पश्चिम के समुद्रों तक फैला हुआ, सुनहरी धारा बहानेवाला और सन्ध्या के मेघों की दीवार के समान लम्बा-चौड़ा कौन सा पहाड़ दिखाई दे रहा है?

मातलि—आयुष्मन्! यह तो हेमकूट नामक पहाड़ है, जिसमें किन्नर लोग रहते हैं और जहाँ तपस्या करनेवालोंको शीघ्र ही सिद्धि मिल जाया करती है। देखिए, यहाँ देवताओं और दानवों के पिता स्वयम्भू मरीच के पुत्र प्रजापति कश्यप अपनी पत्नी के साथ बैठकर तपस्या कर रहे हैं।।9।।

राजा—तब तो हाथ में आया सौभाग्य छोड़ना नहीं चाहिए। मैं चाहता हूँ कि भगवान् कश्यप की प्रदक्षिणा कर लूँ तब जाऊँ।

मातलि—यह तो आपने ठीक सोचा।

[दोनों उतरने का नाट्य करते हैं।]

राजा—[आश्चर्य से] अरे! तुम्हारा रथ कब नीचे उतर आया, यह तो जान ही नहीं पड़ा; क्योंकि पृथ्वी से न छूने के कारण न तो इसके पहियों की घरघराहट ही सुनाई दी, न धूल ही उड़ी और न तुमने रास ही खींची।।10।।

मातलि—आयुष्मान् के और इन्द्र के रथ में बस यही तो अन्तर है।

राजा—मातलि! मरीचि के पुत्र कश्यप का आश्रम किधर है?

मातलि—[हाथ से दिखाते हुए] वह रहा कश्यप ऋषि का आश्रम, जहाँ वे ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं ब्रिभज्जटामण्डलं
यत्र स्थाणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्बं स्थितः।। 11।।

राजा—नमोऽस्मै कष्टतपसे।

मातलिः—[संयतप्रग्रहं रथं कृत्वा] महाराज एतावदितिपरवर्धितमन्दारवृक्षं प्रजापतेराश्रमं प्रविष्टौ स्वः।

राजा—स्वर्गादधिकतरं निर्वृतिस्थानम्। अमृतह्रदमिवावगाढोऽस्मि।

मातलिः—[रथं स्थापयित्वा] अवतरत्वायुष्मान्।

राजा—[अवतीर्य] मातले। भवान्कथमिदानीम्।

मालिः—संयन्त्रितो मया रथः। वयमप्यवतरामः। [तथा कृत्वा] इत आयुष्मन्। [परिक्रम्य] दृश्यन्तामत्रभवतामृषीणां तपोवनभूमयः।

राजा—ननु विस्मयादवलोकयामि—

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने
तोये काञ्चनपद्मरेणुकपिशे धर्माभिषेकक्रिया।

तपस्या कर रहे हैं कि उनके आधे शरीर तक दीमकों ने वाँवी उठा ली है, छाती पर साँप की केंचुलियाँ छुटी पड़ी हैं, गले में सूखी हुई बेले उलझी हुई हैं, कन्धों तक लटकी हुई जटाओं में चिड़ियों ने घोंसले बना लिए हैं और सूखे पेड़ के ठूँठ के समान अचल होकर वे सूर्य पर आँखें जमाए बैठे हैं।।11।।

राजा—ऐसी कठोर तपस्या करनेवाले महात्मा को मैं प्रणाम करता हूँ।

मातलि—[रास खींचकर और रथ रोककर] महाराज! हम लोग प्रजापति कश्यप के आश्रम में पहुँच गए हैं। यह देखिए, यह सुन्दर मन्दार के वृक्षों की पाँत अदिति ने अपने हाथ से लगाई है।

राजा—यहाँ तो स्वर्ग से भी बढ़कर शान्ति फैली हुई है। ऐसा जान पड़ता है मानो मैं अमृत-कुण्ड में कूद पड़ा हूँ।

मातलि—[रथ रोककर] उतरें आयुष्मान्!

राजा—[उतरकर] मातलि! अब आप क्या करेंगे?

मातलि—मैंने भली-भाँति रथ रोक लिया है। मैं भी आपके साथ ही उतर रहा हूँ। [उतरकर] इधर से आइए आयुष्मन्! [घूमते हुए] आइए, यहाँ ऋषियों की तपोभूमि देखिए।

राजा—सचमुच मुझे तो यह देखकर बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि यहाँ ये तपस्वी लोग उन वस्तुओं के बीच में बैठकर तपस्या कर रहे हैं, जिन्हें पाने के लिये दूसरे ऋषि लोग तपस्या किया करते हैं। यहाँ पर ये लोग कल्पवृक्षों के वन का वायु पी-पीकर जीते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यानं रत्नशिलातलेषु विबुधस्त्रीसंनिधौ संयमो
यत्काङ्क्षन्ति तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी।।12।।

मातलिः—उत्सर्पिणी खलु महतां प्रार्थना। [परिक्रम्य आकाशे] अये वृद्धशाकल्य! किमनुतिष्ठति भगवान्मारीचः। किं ब्रवीषि। दाक्षायण्या पतिव्रताधर्ममधिकृत्य पृष्टस्तस्यै महर्षिपत्नीसहितायै कथयतीति।

राजा—[कर्णं दत्वा] अये प्रतिपाल्यावसरः खलु प्रस्तावः।

मातलिः—[राजानमवलोक्य] अस्मिन्नशोकवृक्षमूले तावदास्तामायुष्मान् यावत्त्वामिन्द्रगुरुवे निवेदयितुमन्तरान्वेषी भवामि।

राजा—यथा भवान्मन्यते। [इति स्थितः।]

मातलिः—आयुष्मन् साधयाम्यहम्। [इति निष्क्रान्तः।]

राजा—[निमित्तं सूचयित्वा]—

मनोरथाय नाशंसे किं बाहो स्पन्दसे वृथा।
पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्धते।।13।।

[नेपथ्ये]

हैं, सुनहरे कमल के पराग से सुवासित जल में स्नान करके पूजा-पाठ करते हैं, रत्न-शिलाओं पर बैठकर समाधि लगाते हैं और अप्सराओं के बीच में बैठकर तपस्या साधते हैं।।12।।

मातलि—ऐसे महापुरुषों की इच्छाएँ भी तो वैसी ही बड़ी होती हैं। [घूमकर आकाश में] कहिए वृद्ध शाकल्यजी! इस समय महात्मा कश्यप क्या कर रहे हैं? क्या कहा कि दाक्षायणी ने पातिव्रतधर्म के सम्बन्ध में जो प्रश्न किया था, उसका उत्तर वे उन्हें और ऋषि पत्नियों को बैठे सुना रहे हैं?

राजा—[कान लगाकर] अरे, यह तो ऐसा कथा-प्रसंग छिड़ गया है कि अब इसके समाप्त होने तक रुकना ही होगा।

मातलि—[राजा को देखकर] जब तक मैं इन्द्र के पिता महर्षि कश्यप को आपके आने की सूचना देने का कोई अवसर ढूँढ़ निकालूँ, तब तक आप इस अशोक वृक्ष के नीचे ही चलकर बैठिए।

राजा—जैसा आप ठीक समझें। [बैठता है।]

मातलि—अच्छा तो मैं जा रहा हूँ आयुष्मन्! [चला जाता है।]

राजा—[अच्छा शकुन देखकर] अपने मनोरथ पूरे होने की तो मुझे कोई आशा ही नहीं है, फिर तुम व्यर्थ ही क्यों फड़क रही हो मेरी भुजा! सच है, जो आई हुई लक्ष्मी को ठुकरा देता है, उसे पीछे ऐसे ही पश्चात्ताप करना पड़ता है।।13।।

[नेपथ्य में]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मा क्खु चावलं करेहि। कहं गदो जेव अत्तणो पकिदिं। (मा खलु चापलं कुरु। कथं गत एवात्मनः प्रकृतिम्।)

राजा—[कर्णं दत्त्वा] अभूमिरियमविनयस्य। को नु खल्वेष निषिध्यते। [शब्दानुसारेणावलोक्य सविस्मयम्] अये को नु खल्वयमनुबध्यमानस्तपस्विनीभ्यामबालसत्त्वो बालः।

अर्धपीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकेसरम्।
प्रक्रीडितुं सिंहशिशुं बलात्कारेण कर्षति।। 14।।

[ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टकर्मा तपस्विनीभ्यां सह बालः।]

बालः—**जिम्भ सिङ्घ दन्ताइं दे गणइस्सं।** (जृम्भस्व सिंह दस्ताँस्ते गणयिष्ये।)

प्रथमा—**अविणीद किं णो अपच्चणिव्विसेसाणि सत्ताणि विप्पअरेसि। हन्त बड्ढइदे संरम्भो। ठाणे क्खु इसिजणेण सव्वदमणो त्ति किदणामहेओ सि।** (अविनीत! किं नोऽपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि। हन्त! वर्धते तवसंरम्भः। स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि।)

राजा—किं न खलु बालेऽस्मिन्नौरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः नूनमनपत्यता मां वत्सलयति।

द्वितीया—**एसा क्खु केसरिणी तुमं लङ्घेदि जइ से पुत्तअं ण मुञ्चेसि।** (एषा खलु केसरिणी त्वां लङ्घयिष्यति यदि तस्याः पुत्रकं न मुञ्चसि।)

बस नटखटपन न कर। क्यों? तू फिर अपने स्वभाव पर उतर आया?

राजा—[कान लगाकर] अरे, यहाँ तो नटखटपन होना ही नहीं चाहिए, फिर यहाँ कौन किसे डाँट रहा है? [जिधर से बोली सुनाई देती है, उधर देखकर आश्चर्य से] अरे, यह कौन पराक्रमी बालक है, जिसके पीछे-पीछे दो तपस्वनियाँ चली आ रही हैं और जो—अपने खेलने के लिये सिंहनी के स्तनों से आधा दूध पिए हुए सिंहनी के बच्चे को खेलने के लिये बलपूर्वक घसीटे लिए चला आ रहा है, जिसके केसर इस खींचा-तानी में छितरा गए हैं।।14।।

[ऊपर कही हुई दशा में तपस्विनियों के साथ बालक का प्रवेश]

बालक—खोल ले (रे) छिंघ (सिंह) अपना मुँह! मैं तेले (तेरे) दाँत गिनूँगा।

पहली—अरे नटखट! जिन पशुओं को हम लोगों ने अपनी सन्तान के समान पाल रखा है, उन्हें तू इतना क्यों सताया करता है? क्या कहें, तेरा नटखटपन दिन-दिन बढ़ता ही जा रहा है। ऋषियों ने तेरा नाम ठीक ही सर्वदमन रख छोड़ा है।

राजा—इस बालक पर मेरे मन में वैसा ही प्रेम हो रहा है मानो यह मेरा अपना ही पुत्र हो। पर जान पड़ता है कि पुत्र न होने के कारण ही मेरे मन में यह वात्सल्य प्रेम उमड़ आया है।

दूसरी—इसके बच्चे को तू नहीं छोड़ेगा, तो यह सिंहिनी तेरे ऊपर झपट पड़ेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालः—[सस्मितम्] अम्हहे बलिअं क्खु भीदो म्हि। (अहो! बलीयः खलु भीतोऽस्मि।) [इत्यधरं दर्शयति।]

राजा—

महतस्तेजसो बीजं बालोऽयं प्रतिभाति मे।
स्फुलिङ्गावस्थया वह्निरेधापेक्ष इव स्थितः।। 15।।

प्रथमा—वच्छ एदं बालमिइन्दअं मुञ्च। अवरं दे कीलणअं दाइस्सं। (वत्स एनं बालमृगेन्द्रं मुञ्च। अपरं ते क्रीडनकं दास्यामि।)

बालः—कहिं। देहि णं। (कुत्र। देह्येतत्।) [इति हस्तं प्रसारयति।]

राजा—कथम्। चक्रवर्तिलक्षणमप्यनेन धार्यते। तथा ह्यस्य—

प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितो विभाति जालग्रथिताङ्गुलिः करः।
अलक्ष्यपत्रान्तरमिद्धरागया नवोषसा भिन्नमिवैकपङ्कजम्।। 16।।

द्वितीया—सुव्वदे। ण सक्को एसो वाआमत्तेण विरमयिदुं। गच्छ तुमं। ममकेरए उडए मक्कण्डेअस्अ इसिकुमारअस्स वण्णचित्तिदो मित्तिआमोरओ चिट्ठदि। तं से उवहर। (सुव्रते! न शक्य एष वाचामात्रेण विरमयितुम्। गच्छ त्वम्। मदीये उटजे मार्कण्डेयस्यर्षिकुमारस्य वर्णचित्रितो मृत्तिकामयूरस्तिष्ठति। तमस्योपहर।)

प्रथमा—तह। (तथा) [इति निष्कान्ता।]

बालः—इमिणा एव्व दाव कीलिस्सं। (अनेनैव तावत्क्रीडिष्यामि।) [इति तापसीं विलोक्य हसति।]

बालक—[मुस्कराते हुए] अरे (अरे) मैं तो बला (बड़ा) दल (डर) गया हूँ। [ओठ निकालकर मुँह बनाता है।]

राजा—यह बालक तो मुझे बड़े तेजस्वी का पुत्र जान पड़ता है और उस चिनगारी के रूप में रहने वाली अग्नि के समान दिखाई पड़ रहा है जो भड़क उठने के लिये बस ईंधन की बाट देख रही हो।।15।।

पहली—वत्स! इस सिंह के बच्चे को छोड़ दे। मैं तुझे और खिलौना लाए देती हूँ।

[हाथ फैलाता है]

बालक—कहाँ है? लाओ दो।

राजा—अरे, इसके हाथ में तो चक्रवर्तियों के लक्षण भी दिखाई दे रहे हैं। क्योंकि—खिलौने के लोभ से फैलाया हुआ यह जाल के समान मिली हुई उँगलियों वाला इसका हाथ उस अकेले कमल के जैसा दिखाई दे रहा है, जो प्रातःकाल की लाली से चमक रहा हो और जिसकी पंखुड़ियाँ अभी पूरी खुल भी न पाई हों।।16।।

दूसरी—सुव्रता! यह बातों में नहीं फुसलाया जा सकता। तू जा, मेरी कुटी में जो ऋषिकुमार मार्कण्डेय का रँगा हआ मिट्टी का मोर रक्खा है, उसे उठा ला।

पहली—अच्छा। [जाती है]

बालक—औल (और) तब तक मैं इछीछे (इसी से) खेलता हूँ। [यह कहकर तपस्विनी को देखकर हँस देता है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—स्पृहयामि खलु दुर्ललितायास्मै।

आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासैरव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन्।
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान्वहन्ती धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति।। 17।।

तापसी—होदु। ण मं अअं गणेदि। [पार्श्वमवलोकयति] को एत्थ इसिकुमाराणं। [राजानमवलोक्य] भद्दमुह! एहि दाव। मोएहि इमिणा दुम्मोअहत्थग्गहेण डिम्भलीलाए बाहीअमाणं बालमिइन्दअं। (भवतु। न मामयं गणयति। कोऽत्र ऋषिकुमाराणाम्? भद्रमुख! एहि तावत् मोचयानेन दुर्मोचहस्तग्रहेण डिम्भलीलया बाध्यामानं बालमृगेन्द्रम्।)

राजा—[उपगम्य। सस्मितम्] अयि भो महर्षिपुत्र!

एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना संयमः किमिति जन्मतस्त्वया।
सत्त्वसंश्रयसुखोऽपि दूष्यते कृष्णसर्पशिशुनेव चन्दनः।। 18।।

तापसी—भद्दमुह! ण क्खु अअं इसिकुमारओ। (भद्रमुख! न खल्वयमृषिकुमारः।)

राजा—आकारसदृशं चेष्टितमेवास्य कथयति। स्थानप्रत्ययात्तु वयमेवं तर्किणः। [यथाऽभ्यर्थितमनुतिष्ठन्बालस्पर्शमुपलभ्य, आत्मगतम्]

अनेन कस्यापि कुलांकुरेण स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममैवम्।
कां निर्वृतिं चेतसि तस्य कुर्याद्यस्यायमङ्गात्कृतिनः प्ररूढः। 19।।

राजा—मुझे तो यह नटखट बालक न जाने क्यों बड़ा प्यारा लगता है। वह भाग्यवान् धन्य है जिसकी गोद में बैठकर यह स्वभाव से हँसमुख, कली के समान कुछ-कुछ झलकते हुए दाँतोंवाला और तुतला-तुतला कर बातें करनेवाला बालक अपने अंग की धूल उसके अंग में लगाता होगा।।17।।

तपस्विनी—अरे! यह तो मेरी बात सुनता ही नहीं। [इधर-उधर देखकर] अरे कोई ऋषिकुमार यहाँ है? [राजा को देखकर] हे भद्र! तनिक आप ही आकर इस बालक के हाथ से इस सिंह के बच्चे को छुड़ा दीजिए। इसने इसे ऐसा कसकर पकड़ रखा है कि मेरे हाथ से तो छुड़ाए नहीं छूटता।

राजा—[पास जाकर मुस्कराहट के साथ] अरे, महर्षिकुमार! तुम यहाँ आश्रम के नियमों से उल्टा काम क्यों कर रहे हो? ये बेचारे जीव जो जन्म से ही सीधे-सादे रहकर सुखी जीवन बिता रहे हैं, उन्हें तुम उस प्रकार क्यों सता रहे हो, जैसे काले सर्प का बच्चा चन्दन के पेड़ को सताता है।।18।।

तपस्विनी—भद्र! यह ऋषिकुमार नहीं है।

राजा—इसके रूप और कार्यों से ही जान पड़ रहा है कि यह ऋषिकुमार नहीं है। पर यहाँ तपोवन में देखकर मैंने इसे ऋषिकुमार ही समझ लिया था। [जी भरकर बालक के शरीर पर हाथ फेरकर आप-ही-आप] न जाने यह बालक किस वंश का है? इसे एक बार ही छू लेने से जब मेरे शरीर को इतना सुख मिल रहा है? तब उस भाग्यवान् को कितना आनन्द मिलता होगा जिसका यह सगा पुत्र है।19।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तापती—[उभौ निर्वर्ण्य] **अच्छरिअं। अच्छरिअं।**

(आश्चर्यम्। आश्चर्यम्।)

राजा—आर्ये किमिव।

तापसी—**इमस्स बालअस्स दे वि संवादिणी आकिदी त्ति विम्हाविदम्हि। अपरिइदस्स वि दे अप्पडिलोमो संवुत्तो त्ति** (अस्य बालकस्य तेऽपि संवादिन्याकृतिरिति विस्मापिताऽस्मि। अपरिचितस्यापि तेऽप्रतिलोमः संवृत्त इति।)

राजा—[बालकमुपलालन्] न चेन्मुनिकुमारोऽयमथ कोऽस्य व्यपदेशः।

तापसी—**पुरुवंसो।** (पुरुवंशः।)

राजा—[आत्मगतम्] कथमेकान्वयो मम। अतः खलु मदनुकारिणमेनमत्रभवती मन्यते। अस्त्येतत्पौरवाणामन्त्यं कुलव्रतम्।

भवनेषु रसाधिकेषु पूर्वं क्षितिरक्षार्थमुशन्ति ये निवासम्।
नियतैकपतिव्रतानि पश्चात्तरुमूलानि गृहीभवन्ति तेषाम्।। 20।।

[प्रकाशम्] न पुनरात्मगत्या मानुषाणामेश विषयः।

तापसी—**जह भद्दमुहो भणादि। अच्छरासंबन्धेण इमस्स जणणी एत्थ देवगुरुणो तवोवणे पसूदा।** (यथा भद्रमुखो भणति। अप्सरः सवन्धेनास्य जनन्यत्र देवगुरोस्तपोवने प्रसूता।)

राजा—[अपवार्य] हन्त द्वितीयमिदमाशाजननम्। [प्रकाशम्] अथ सा तत्रभवती किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी।

तपस्विनी—[दोनों को देखकर] आश्चर्य है, आश्चर्य है।

राजा—आश्चर्य की क्या बात है, आर्ये!

तपस्विनी—तुम्हारा और इस बालक का एकदम मिलता-जुलता रूप देखकर मैं तो आश्चर्य में भर गई हूँ और फिर देखिए कि अनजान होते हुए भी इसने आपका कहना नहीं टाला।

राजा—[बच्चे को दुलारते हुए तपस्विनी से] अच्छा यह तो बताइए कि यह ऋषिकुमार नहीं है, तो फिर किस वंश का है?

तपस्विनी—पुरुवंश का।

राजा—[मन ही मन] अरे क्या यह मेरे ही वंश का है? तभी ये तपस्विनी जी मुझे इससे मिलता-जुलता बता रही हैं।

पुरुवंशियों की तो यह बँधी हुई रीति है कि वे—युवावस्था में पृथ्वी की रक्षा के लिये विलास की सामग्रियों से भरे भवनों में रहना चाहते हैं और बुढ़ापे में अपनी पतिव्रता स्त्री को साथ लेकर वृक्ष के नीचे कुटिया बनाकर रहने लगते हैं।।20।। [प्रकट] पर यहाँ अपनी शक्ति से तो कोई मनुष्य पहुँच नहीं सकता।

तपस्विनी—आप ठीक कह रहे हैं। इसकी माँ अप्सरा की कन्या है। इसलिये उसने यहाँ मरीचि के आश्रम में ही इसे जन्म दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—[अपने आप] अरे! यह तो मेरी आशा की दूसरी सीढ़ी मिल गई। [प्रकट]

तापसी—को तस्स धम्मदारपरिच्चाइणो णाम संकीतिदुं चिन्तिस्सदि। (कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नाम संकीर्तयितुं चिन्तयिष्यति।)

राजा—[स्वगतम्] इयं खलु कथा मामेव लक्ष्यीकरोति। यदि तावदस्य शिशोर्मातरं नामतः पृच्छामि अथवाऽनार्यः परदारव्यवहारः।

[प्रविश्य मृण्मयूरहस्ता]

तापसी—सव्वदमण! सउन्दलावण्णं पेक्ख। (सर्वदमन! शकुन्त-लावण्यं प्रेक्षस्व।)

बालः—[सदृष्टिक्षेपम्] कहिं वा मे अज्जू (कुत्र वा मम माता।)

उभे—णामसारिस्सेण वञ्चिदो माउवच्छलो। (नाम सादृश्येन वञ्चितो मातृवत्सलः।)

द्वितीया—वच्छ इमस्स मित्तिआमोरअस्स रम्मत्तणं देक्खत्ति भणिदो सि। (वत्स अस्य मृत्तिकामयूरस्य रम्यत्वं पश्येति भणितोऽसि।)

राजा—[आत्मगतम्] किं वा शकुन्तलेत्यस्य मातुराख्या। सन्ति पुनर्नामधेयसादृश्यानि। अपि नाम मृगतृष्णिकेव नाममात्रप्रस्तावो मे विषादाय कल्पते।

बालः—अज्जुए। रोअदि मे एसो भद्दमोरआ। (मातः रोचते में एष भद्रमयूरः।) [इति क्रीडनकमादत्ते।]

प्रथमाः—[विलोक्य सोद्वेगम्] अम्हहे रक्खाकरण्डअं से मणिबन्धे ण दीसदि। (अहो रक्षाकरण्डकमस्य मणिबन्धे न दृश्यते।)

अच्छा यह तो बताइए कि वे देवी किन राजर्षि की पत्नी हैं?

तपस्विनी—जिसने अपनी धर्म-पत्नी को छोड़ दिया हो, भला ऐसे पापी का भी कोई अपने मुँह से नाम निकालता है।

राजा—[आप ही आप] यह कथा तो पूरी-पूरी मुझपर ही लागू हो रही है। अच्छा, माता का ही नाम पूछकर देखूँ। किन्तु पराई स्त्री के विषय में कुछ पूछना भलमनसाहत नहीं है।

[हाथ से मिट्टी का मोर लिए हुए तपस्विनी आती है।]

तपस्विनी—सर्वदमन! शकुन्त-लावण्य (इस पक्षी की सुन्दरता) तो देख!

बालक—[चारों ओर देखता हुआ] कहाँ है मेरी माँ?

दोनों—अपनी माँ का इसे ऐसा मोह है कि उसके नाम के अक्षर सुनने भर से ही इसे धोखा हो गया।

दूसरी—वत्स! मैं कह रही थी कि तुम इस मिट्टी के मोर की सुन्दरता देखो।

राजा—[आप ही आप] तो क्या इसकी माँ का नाम शकुन्तला है; पर संसार में एक जैसे बहुत से नाम होते हैं। कहीं यह नाम भी मेरे दुःख को और बढ़ाने के लिये मृग-तृष्णा के समान ही न आ गया हो।

बालक—माँ! यह मोल (मोर) तो बला (बड़ा) अच्छा है। [खिलौना लेता है।]

पहली—[देखकर घबराहट के साथ] अरे, इसके हाथ पर बँधी हुई रक्षा की जड़ी नहीं दिखाई दे रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—अलमलमावेगेन। नन्विदमस्य सिंहशावविमर्दात्परिभ्रष्टम्। [इत्यादातुमिच्छति।]

उभे—मा क्खु एदं अवलम्बिअ। कहं गहीदं णेण। (मा खल्विदमवलम्व्य। कथम् गृहीतमनेन।) [इति विस्मयादुरोनिहितहस्ते परस्परमवलोकयतः।]

राजा—किमर्थ प्रनिषिद्धाः स्मः।

प्रथमा—सुणोदु महाराओ। एसाअवराजिदा णाम ओसही इमस्स जातकम्मसमए भअवदा मारीएण दिण्णा। एदं कित मादापिदरो अप्पाणं च वज्जिअ अवरो भूमिपडिदं ण गेण्हादि। (श्रृणोतु महाराजः। एषाऽपराजिता नामौषधिरस्य जातकर्मसमये भगवता मारीचेन दत्ता। एतां किल मातापितरावात्मानं च वर्जयित्वाऽपरो भूमिपतितां न गृह्णति।)

राजा—अथ गृह्णाति।

प्रथमा—तदो तं सप्पो भविअ दंसइ। (ततस्तं सर्पो भूत्वा दशति।)

राजा—भवतीभ्यां कदाचिदस्याः प्रत्यक्षीकृता विक्रिया।

उभे—अणेअसो। (अनेकशः।)

राजा—[सहर्षम्। आत्मगतम्] कथमिव संपूर्णमपि मे मनोरथं नाभिनन्दामि। [इति बालं परिष्वजते।]

द्वितीया—सुव्वदे एहि। इमं वुत्तन्तं णिअमव्वावुदाए सउन्दलाए णिवेदेम्ह (सुव्रते! एहि। इमं वृत्तान्तं नियमव्यापृतायै शकुन्तलायै निवेदयावः।)

[इति निष्क्रान्ते]

राजा—घबराइए मत! सिंह के बच्चे से खींचा-तानी करते समय वह यहीं गिर गई थी।

[उठाना चाहता है।]

दोनों—हैं हैं! उसे छूइएगा मत! अरे, इन्होंने तो उसे उठा लिया!

[आश्चर्य से छती पर हाथ रखकर एक दूसरी को देखती हैं।]

राजा—आप लोगों ने उठाने से मुझे रोका क्यों?

पहली—सुनिए महाराज! जब इसका जात-कर्म संस्कार हो रहा था उस समय कश्यप ने अपराजिता नाम की यह जड़ी इसके हाथ में बाँधकर कहा था कि यदि यह पृथ्वी पर गिर पड़े तो इसे, इसके माता-पिता को छोड़कर दूसरा कोई न उठाये!

राजा—और यदि दूसरा कोई उठा ले तो?

पहली—तो यह साँप बनकर तत्काल डस लेगी।

राजा—आप लोगों ने कभी इसका ऐसा परिवर्तन देखा है?

दोनों—बहुत बार देखा है।

राजा—[आप ही आप] तब मैं अपने मनोरथ पूरे होने पर क्यों न फूला समाऊँ।

[बालक को छाती से लगाता है।]

दूसरी—अरी सुव्रते! आओ, यह समाचार उस तपस्विनी शकुन्तला को तो सुना आयें।

[दोनों चली जाती हैं]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालः—मुञ्च मं। जाव अज्जुए सआसं गमिस्सं। (मुञ्च मां यावन्मातुः सकाशं गमिष्यामि।)

राजा—पुत्रक! मया सहैव मातरमभिनन्दिष्यसि।

बालः—मम क्खु तादो दुस्सन्दो ण तुमं। (मम खलु तातो दुष्यन्तः, न त्वम्।)

राजा—[सस्मितम्] एष विवाद एव प्रत्याययति।

[ततः प्रविशत्येकवेणीधरा शकुन्तला]

शकुन्तला—विआरकाले वि पकिदित्थं सव्वदमणस्स ओसहिं सुणिअ ण मे आसा आसि अत्तणो भाअहेएसु। अहवा जह साणुमदीए आचक्खिदं तह संभावीअदि एदं। (विकारकालेऽपि प्रकृतिस्थां सर्वदमनस्यौषधिं श्रुत्वा न म आशाऽऽसीदात्मनो भागधेयेषु। अथवा यथा सानुमत्याऽऽख्यातं तथा संभाव्यत एतत्।)

राजा—[शकुन्तलां विलोक्य] अये सेयमत्रभवती शकुन्तला। यैषा—

वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति।। 21।।

शकुन्तला—[पश्चात्तापविवर्णं राजानं दृष्ट्वा] ण क्खु अज्जउत्तो विअ। तदो को एसो दाणिं किदरक्खामङ्गलं दारअं मे गत्तसंसग्गेण दूसेदि। (न खल्वार्यपुत्र इव। ततः क एष इदानीं कृतरक्षामङ्गलं दारकं मे गात्रसंसर्गेण दूषयति।)

बालक—थोलो (छोड़ो)। हम अपनी माँ के पास दायँगे (जायँगे)।

राजा—वत्स! मेरे साथ ही चलकर अपनी माता को आनन्द देना।

बालक—मेले (मेरे) पिता तुम नहीं, दुष्यन्त हैं।

राजा—[मुस्कराकर] यह विरोध ही मेरे विश्वास को पक्का कर रहा है।

[अपने बालों को एक लट में बाँधे हुए शकुन्तला आती है।]

शकुन्तला—यह सुनकर भी मुझे अपने भाग्य पर भरोसा नहीं हुआ कि सर्वदमन के हाथ से गिरी हुई रक्षा की जड़ी उनके छूने पर साँप नहीं बनी। या फिर सानुमती ने जो कहा है, वह कौन जाने ठीक ही हो।

राजा—[शकुन्तला को देखकर] अरे! ये ही तो वे देवी शकुन्तला हैं, जिनके शरीर पर मैले कपड़ों का जोड़ा पड़ा हुआ है, तप करते-करते जिनका मुँह सूख गया है, जिनके वाल एक लट में उलझे हुए पड़े हैं और जो शुद्ध मन से मुझ जैसे निर्दयी के वियोग में इतने दिनों से तप करती चली आ रही हैं।।21।।

शकुन्तला—[पछतावे से पीले पड़े हुए राजा को देखकर] ये तो आर्यपुत्र जैसे नहीं जान पड़ते। तव ये कौन हैं, जो रक्षा बँधे हुए मेरे पुत्र को अपने शरीर से लगा-लगाकर मैला कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालः–[मातरमुपेत्य] **अज्जुए! एसो कोवि पुरिसो मं पुत्त त्ति आलिङ्गदि।** (मातः! एष कोऽपि पुरुषो मां पुत्र इत्यालिङ्गति।)

राजा–प्रिये! क्रौर्यमपि मे त्वयि प्रयुक्तमनुकूलपरिणामं संवृत्तं यदहमिदानीं त्वयाऽप्रत्यभिज्ञातमात्मानं पश्यामि।

शकुन्तला–[आत्मगतम्] **हिअअ समस्सस समस्सस। परिच्चत्तमच्छरेण अणुअप्पिअ म्हि देव्वेण। अज्जउत्तो क्खु एसो।** (हृदय समाश्वसिहि। समाश्वसिहि। परित्यक्तमत्सरेणानुकम्पिताऽस्मि दैवेन। आर्यपुत्रः खल्वेषः।)

राजा–प्रिये।

स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्या प्रमुखे स्थिताऽसि मे सुमुखि।
उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्।। 22।

शकुन्तला–**जेदु जेदु अज्जउतो...।** (जयतु जयत्वार्यपुत्र...) [इत्यर्धोक्ते बाष्पकण्ठी विरमति।]

राजा–सुन्दरि!

बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं मया।
यत्ते दृष्टमसंस्कारपाटलोष्ठपुटं मुखम्।। 23।।

बालः–अज्जुए! को एसो। (मातः! क एषः।)

शकुन्तला–वच्छ! दे भाअहेआइँ पुच्छेहि। (वत्स! ते भागधेयानि पृच्छ।)

बालक–[माता के पास आकर] देखो माँ, ये कोई पुलुछ (पुरुष) मुदे (मुझे) वेता (बेटा) कहकल (कहकर) गले लगा लहे (रहे) हैं।

राजा–प्रिये! मैंने जो तुम्हारे साथ निठुराई की थी उसका यही ठीक दंड है कि तुम अभी तक मुझे पहचान नहीं रही हो।

शकुन्तला–[आप ही आप] धीरज धरो मेरे हृदय! आज दैव ने पिछला सब वैर छोड़कर मेरी सुन ली है। सचमुच ये ही आर्यपुत्र हैं।

राजा–प्रिये! आज मेरा वड़ा सौभाग्य है कि मेरी स्मृति पर पड़ा हुआ मोह का परदा हट गया और तुम सुन्दरी आज मुझे ही मिल गई, जैसे चन्द्र-ग्रहण बीत चुकने पर रोहिणी चन्द्रमा से आकर मिल जाती है।।22।।

शकुन्तला–जय हो आर्यपुत्र, जय...[इतना आधा ही कहने पर गला भर आने से रुक जाती है।]

राजा–सुन्दरी! तुमने अपने रुँधे हुए गले से जो 'जय' शब्द कहा है, उसी से मेरी जीत हो गई। क्योंकि आज मेरी आँखों ने तुम्हारे उस मुख को फिर से देख पाया है, जिसके ओठ रँगे न जाने के कारण पीले पड़ गए हैं।।23।।

बालक–क्यों माँ! ये कौन हैं?

शकुन्तला–अपने भाग्य से पूछ बेटा!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—[शकुन्तलायाः पादयोः प्रणिपत्य]—

सुतनु हृदयात्प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते
किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत्।
प्रबलतमसामेवंप्रायाः शुभेषु हि वृत्तयः
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया।। 24।।

शकुन्तला—उट्ठेदु अज्जउत्तो। णूणं मे सूअरिअप्पडिबन्धअं पुराकिदं तेसु दिअहेसु परिणाममुहं आसि जेण साणुक्कोसो वि अज्जउत्तो मइ विरसो संवुत्तो। (उतिष्ठत्वार्यपुत्रः। नूनं मे सुचरितप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणाममुखमासीद्येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि विरसः संवृत्तः।) [राजोत्तिष्ठति।]

शकुन्तला—अह कहं अज्जउत्तेण सुमरिदो दुक्खभाई अअं जणो। (अथ कथमार्यपुत्रेण स्मृतो दुःखभाग्ययं जनः।)

राजा—उद्धृतविषादशल्यः कथयिष्यामि।

मोहान्मया सुतनु पूर्वमुपेक्षितस्ते यो बाष्पबिन्दुरधरं परिबाधमानः।
तं तावदाकुटिलपक्ष्मविलग्नमद्य बाष्पं प्रमृज्य विगतानुशयो भवेयम्।। 25।।

[इति यथोक्तमनुतिष्ठति।]

शकुन्तला—[नाममुद्रां दृष्ट्वा] अज्जउत्त! एदं ते अंगुलीअअं। (आर्यपुत्र! इदं तेऽङ्गुलीयकम्।)

राजा—[शकुन्तला के पैरों पर गिरकर] सुन्दरी! मैंने तुम्हारा जो निरादर किया था, उसकी कसक तुम अपने मन से निकाल डालो, क्योंकि उस समय न जाने कहाँ से मेरे मन में अज्ञान का अँधेरा आकर छा गया था। सचमुच जो तमोगुणी होते हैं, वे अच्छे कामों में भी ऐसी भूल कर बैठते हैं, क्योंकि अन्धे के गले में कोई माला भी पहनाये तो वह उसे साँप समझकर झटके से उतार फेंकता है।।24।।

शकुन्तला—उठिए आर्यपुत्र! उन दिनों कोई पिछले जन्म का पाप-फल रहा होगा कि इतने दयालु आर्यपुत्र भी मुझपर इतने कठोर हो गए थे।

[राजा उठते हैं।]

शकुन्तला—पर यह तो बताइए कि आर्यपुत्र को इस दुखिया का स्मरण कैसे हो आया।

राजा—पहले मैं अपने हृदय का काँटा निकाल डालूँ तब कहूँ। सुन्दरी! तुम्हारी आँखों के आँसुओं की जो बूँदें उस दिन गालों पर से ढुलककर अधरों को चोट पहुँचा रही थीं और जिनका मैंने उस दिन अनजाने निरादर कर दिया था, वे आज भी तुम्हारी टेढ़ी बरौनियों में उलझी हुई दिखाई दे रही हैं। उन्हें जब तक मैं अपने हाथ से पोंछ न लूँगा तब तक मन को शान्ति नहीं मिलेगी।।25।।

[अपने हाथ से शकुन्तला के आँसू पोंछते हैं।]

शकुन्तला—[दुष्यन्त के हाथ में उनके नामवाली अँगूठी देखकर] आर्यपुत्र! यही तो आपकी वह अँगूठी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—अस्मादंगुलीयोपलम्भात्खलु स्मृतिरुपलब्धा।

शकुन्तला—विसमं किदं णेण जं तदा अज्जउत्तस्स पच्चअकाले दुल्लहं आसि। (विषमं कृतमनेन यत्तदाऽर्यपुत्रस्य प्रत्ययकाले दुर्लभमासीत्।

राजा—तेन हि ऋतुसमवायचिह्नं प्रतिपद्यतां लताकुसुमम्।

शकुन्तला—ण से विस्ससामि। अज्जउत्तो एव्वं णं धारेदु। (नास्य विश्वसिमि। आर्यपुत्र! एवैतद्धारयतु।)

[ततः प्रविशति मातलिः]

मातलि—दिष्ट्या धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान्वर्धते।

राजा—अभूत्संपादितस्वादुफलो मे मनोरथः। मातले! न खलु विदितोऽयमाखण्डलेन वृत्तान्तः स्यात्।

मातलिः—[सस्मितम्] किमीश्वराणां परोक्षम्। एत्वायुष्मान्। भगवान्मारीचस्ते दर्शनं वितरति।

राजा—शकुन्तले! अवलम्ब्यतां पुत्रः। त्वां पुरस्कृत्य भगवन्तं द्रष्टुमिच्छामि।

शकुन्तला—हिरिआमि अज्जउत्तेण सह गुरुसमीवं गन्तुं। (जिह्रेम्यार्यपुत्रेण सह गुरुसमीपं गन्तुम्)

राजा—अप्याचरितव्यमभ्युदयकालेषु। एह्येहि। [सर्वे परिक्रामन्ति।]

राजा—इसी अँगूठी के मिल जाने पर ही तो मुझे सारी बातें स्मरण हो आईं।

शकुन्तला—इसने सचमुच बड़ा खोटा काम किया था कि जब मैं आर्यपुत्र को इसे दिखाकर विश्वास दिलाने चली ठीक उसी समय यह न जाने कहाँ चली गई।

राजा—[अँगूठी उतारकर शकुन्तला को देते हुए।] अच्छा, तो जैसे लता में फूल लगने से यह जान लिया जाता है कि लता का वसन्त से मिलन हो गया, वैसे ही तुम भी मुझसे मिलने की पहचान के लिये यह अँगूठी पहन लो।

शकुन्तला—[हाथ उठाती हुई] नहीं, नहीं, अब मैं इसका विश्वास नहीं करती। आर्यपुत्र ही इसे पहने रहें।

[मातलि आता है।]

मातलि—धर्मपत्नी से मिलने और पुत्र का मुँह देखने की आयुष्मान् को बधाई है।

राजा—मेरे मनोरथ का तो सचमुच बड़ा मीठा फल हुआ है मातलि! पर इन्द्र भगवान् तो यह बात जानते नहीं होंगे।

मातलि—[हँसकर] भला देवताओं से भी कोई बात छिपी रहती है। आइए आयुष्मन्! भगवान् मारीच आपको दर्शन देना चाहते हैं।

राजा—शकुन्तला! बालक की उँगली थाम लो। मैं तुम्हें साथ लेकर ही भगवान् के दर्शन के लिये चलना चाहता हूँ।

शकुन्तला—बड़ों के पास आर्यपुत्र के साथ जाने में मुझे लाज लग रही है।

राजा—हर्ष के अवसर पर तो साथ ही चला जाता है। आओ, आओ!! [सब घूमते हैं]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[ततः प्रविशत्यदित्या सार्धमासनस्थो मारीचः।]

मारीचः—[राजानमवलोक्य] दाक्षायणि!

पुत्रस्य ते रणशिरस्ययमग्रयायी दुष्यन्त इत्यभिहितो भुवनस्य भर्ता।
चापेन यस्य विनिवर्तितकर्म जातं तत्कोटिमत्कुलिशमाभरणं मघोनः।।26।।

अदितिः—संभावणीआणुभावा से आकिदी। (संभावनीयानुभावाऽस्याकृतिः।)

मातलिः—आयुष्मन् एतौ पुत्रप्रीतिपिशुनेन चक्षुषा दिवौकसां पितरावायुष्मन्तमवलोकयतः। तावुपसर्प।

राजा—मातले एतौ—

प्राहुर्द्वादशधा स्थितस्य मुनयो यत्तेजसः कारणं
भर्तारं भुवनत्रयस्य सुषुवे यद्यज्ञभागेश्वरम्।
यस्मिन्नात्मभुवः परोऽपि पुरुषश्चक्रे भवायास्पदं
द्वन्द्वं दक्षमरीचिसंभवमिदं तत्स्रष्टुरेकान्तरम्।। 27।।

मातलिः—अथकिम्।

राजा—[उपगम्य] उभाभ्यामपि वासवनियोज्यो दुष्यन्तः प्रणमति।

मारीचः—वत्स! चिरंजीव। पृथिवीं पालय।

[अदिति के साथ आसन पर बैठे हुई मारीच दिखाई देते हैं।]

मारीच—[राजा को देखकर] दाक्षायणी! ये ही संसार का पालन करनेवाले राजा दुष्यन्त हैं, जो तुम्हारे पुत्र इन्द्र की लड़ाई में सबसे आगे रहते हैं और जिनके धनुष ने ही इतना काम कर डाला है कि इन्द्र का तीखी धारवाला वज्र उनका आभूषण भर बना बैठा रहता है।।26।।

अदिति—इनके डील-डौल से ही इनके पराक्रम का ज्ञान हो रहा है।

मातलि—आयुष्मन्! देखो! ये ही हैं देवताओं के माता-पिता, जो आपकी ओर ऐसे प्यार से देख रहे हैं, जैसे माता-पिता अपने बच्चों को देखते हैं। जाओ, उनके पास चले जाओ।

राजा—मातलि! क्या वे ही ये स्त्री-पुरुष हैं जो ब्रह्मा से एक पीढ़ी पीछे दक्ष और मरीचि से उत्पन्न हुए हैं, जिन्हें ऋषि लोग बारहों आदित्यों के माता-पिता मानते हैं, यज्ञ में भाग लेनेवाले इन्द्र ने जिनसे जन्म लिया है और अपने में से अपने आप उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मा भी संसार का कल्याण करने के लिये जिनकी गोद में जन्म लिया करते हैं।।27।।

मातलि—हाँ, हाँ वे ही हैं ये।

राजा—[पास पहुँचकर] सदा इन्द्र की आज्ञा माननेवाला यह दुष्यन्त आप दोनों को प्रणाम करता है।

मारीच—बहुत दिनों तक जीओ, वत्स! और पृथ्वी का पालन करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदितिः—वच्छ! अप्पडिरहो होहि। (वत्स! अप्रतिरथो भव।)

शकुन्तला—दारअसहिदा वो पादवन्दणं करेमि। (दारकसहिता वां पादवन्दनं करोमि।)

मारीचः—वत्से!

आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमः सुतः।
आशीरन्या न ते योग्या पौलोमीसदृशी भव।। 28।।

अदितिः—जादे! भत्तुणो अभिमदा होहि। अवस्सं दीहाऊ वच्छओ उहअकुलणन्दणो होदु। उवविस। (जाते! भर्तुरभिमता भव। अवश्यं दीर्घायुर्वत्सक उभयकुलनन्दनो भवतु। उपविशत।)

[सर्वे प्रजापतिमभित उपविशन्ति।]

मारीचः—[एकैकं निर्दिशन्]—

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी सदपत्यमिदं भवान्।
श्रद्धा वित्तं विधश्चेति त्रितयं तत्समागतम्।। 29।।

राजा—भगवन्! प्रागभिप्रेतसिद्धिः पश्चाद्दर्शनम्। अतोऽपूर्वः खलु वोऽनुग्रहः। कुतः।

उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं घनोदयः प्राक्तदनन्तरं पयः।
निमित्तनैमित्तिकयोरयं क्रमस्तव प्रसादस्य पुरस्तु संपदः।। 30।।

अदिति—वत्स! तुम इतने बलवान् होओ कि कोई शत्रु तुम्हारे आगे न टिक सके।

शकुन्तला—मैं अपने पुत्र के साथ आपके चरणों में प्रणाम करती हूँ।

मारीच—वत्से! तुम्हारा पति इन्द्र के समान है और तुम्हारा पुत्र जयन्त के समान है। इसलिये यह तो समझ में ही नहीं आता कि तुम्हें आशीर्वाद क्या दूँ। फिर भी यही आर्शीर्वाद देता हूँ कि तुम इन्द्राणी के समान तेजस्वी बनो।।28।।

अदिति—बेटी! अपने पति का आदर पाओ और तुम्हारा बेटा चिरंजीवी होकर दोनों कुलों को सुख दे। आओ, बैठ जाओ।

[सब प्रजापति के चारों ओर बैठ जाते हैं।]

मारीच—[अलग-अलग सबको संकेत करते हुए।] आज सौभाग्य से यह पतिव्रता शकुन्तला, यह श्रेष्ठ बालक और तुम ये तीनों ऐसे इकट्ठे मिल गए हो, जैसे श्रद्धा, धन और क्रिया तीनों एक साथ मिल जायँ।।29।।

राजा—भगवन्! आपकी कृपा तो सचमुच अनोखी है, जिसमें दर्शन से पहले ही मनचाहा फल मिल गया; क्योंकि—कार्य और कारण का तो यही क्रम है कि पहले फूल लगता है, तब फल आता है, पहले बादल उठते हैं, तब वर्षा होती है, पर आपके यहाँ तो सारे सुख आपकी कृपा के आगे-आगे चलते जा रहे हैं।।30।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातलिः—एवं विधातारः प्रसीदन्ति।

राजा—भगवन्! इमामाज्ञाकरीं वो गान्धर्वेण विवाहविधिनोपयम्य कस्यचित्कालस्य बन्धुभिरानीतां स्मृतिशैथिल्यात्प्रत्यादिशन्नपराद्धोऽस्मि तत्रभवतो युष्मत्सगोत्रस्य कण्वस्य। पश्चादङ्गुलीयकदर्शनादूढपूर्वां तद्दुहितरमवगतोऽहम्। तच्चित्रमिव मे प्रतिभाति।

यथा गजो नेति समक्षरूपे तस्मिन्नपक्रामति संशयः स्यात्।
पदानि दृष्ट्वा तु भवेत्प्रतीतिस्तथाविधो मे मनसो विकारः।। 31 ।।

मारीचः—वत्स अलमात्मापराधशङ्कया। संमोहोऽपि त्वय्युपपन्नः। श्रूयताम्।

राजा—अवहितोऽस्मि।

मारीचः—यदैवाप्सरस्तीर्थावतरणात्प्रत्यक्षवैक्लव्यां शकुन्तलामादाय मेनका दाक्षायणीमुपगता तदैव ध्यानादवगतोऽस्मि दुर्वाससः शापादियं तपस्विनी सहधर्मचारिणी त्वया प्रत्यादिष्टा नान्यथेति। स चायमगुङ्लीयकदर्शनावसानः।

राजा—[सोच्छ्वासम्] एष वचनीयान्मुक्तोऽस्मि।

मातलि—जो स्वयं भाग्य बनाने वाले हैं, उनकी ऐसी ही कृपा होती है।

राजा—भगवन्! आपकी इस आज्ञाकारिणी कन्या से मैंने गान्धर्वविधि से विवाह कर लिया था। फिर कुछ दिनों पीछे जब इनके सगे-सम्बन्धी लोग इन्हें मेरे पास लाए, तब मेरी स्मृति को न जाने क्या हो गया कि मैं एकदम भूल गया और मैंने इनको लौटा दिया। ऐसा करके मैंने आपके गोत्रवाले कण्वजी का बड़ा भारी अपराध कर डाला। फिर जब मैंने यह अँगूठी देखी, तब मुझे स्मरण हुआ कि मैंने तो कण्वजी की कन्या से विवाह किया था। ये सब बातें मुझे बड़ी विचित्र-सी जान पड़ रही हैं। मुझे अपनी यह भूल ठीक वैसी ही लग रही है, जैसे आँख के सामने से चले जाते हुए हाथी को देखकर मन में यह सन्देह हो कि यह हाथी है या नहीं और फिर उसके निकल जाने पर उसके पैरों की छाप देखकर यह विश्वास किया जाय कि हाँ, यह सचुमच हाथी ही था।।31 ।।

मारीच—वत्स! तुम अपने अपराध की बात अपने मन से एकदम निकाल डालो क्योंकि इस प्रकार की भूल तुमसे हो ही नहीं सकती। सुनो, मैं बताता हूँ जो हुआ है।

राजा—जी, सुन रहा हूँ।

मारीच—जब मेनका बिलखती हुई शकुन्तला को लेकर, अप्सरा तीर्थ से उतरकर यहाँ दाक्षायणी के पास आई, तभी मैंने ध्यान से जान लिया था कि दुर्वासा के शाप से ही तुमने अपनी इस तपस्विनी धर्मपत्नी को छोड़ दिया है और वह शाप तब तक के लिये है जब तक तुम अँगूठी न देख लो।

राजा—[सन्तोष की साँस लेकर] चलो, दोष से छुटकारा तो मिला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला—[स्वगतम्] दिट्ठिआ अकारणपच्चादेसी ण अज्जउत्तो ण हु सत्तं अत्ताणं सुमिरेमि अहवा पत्तो मए स हि साबो विरहसुण्णहिअआए ण विदिदो। अदो सहीहिं संदिठ्ठम्हि भत्तुणो अंगुलीअअं दंसइदव्वं त्ति। (दिष्ट्याऽकारणप्रत्यादेशी नार्यपुत्रः न खलु शप्तमात्मानं स्मरामि। अथवा प्राप्तो मया स हि शापो विरहशून्यहृदयया न विदितः अतः सीखभ्यां संदिष्टाऽस्मि भर्तुरंगुलीयकं दर्शयितव्यमिति।)

मारीचः—वत्से विदितार्थाऽसि। तदिदानीं सहधर्मचारिणं प्रति न त्वया मन्युः कार्यः। पश्य।

शापादसि प्रतिहता स्मृतिरोधरूक्षे
भर्तर्यपेततमसि प्रभुता तवैव।
छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे
शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा।। 32।।

राजा—यथाऽऽह भगवान्।

मारीचः—वत्स! कच्चिदभिनन्दितस्त्वया विधिवदस्माभिरनुष्ठितजातकर्मा पुत्र एष शाकुन्तलेयः।

राजा—भगवन्! अत्र खलु मे वंशप्रतिष्ठा। [इति बालं हस्तेन गृह्णाति।]

शकुन्तला—[मन ही मन] यह बड़े भाग्य की बात है कि आर्यपुत्र ने मुझे बिना कारण नहीं छोड़ा था। पर यह तो स्मरण ही नहीं आ रहा है कि मुझे शाप मिला कब। या यह भी हो सकता है कि मुझे शाप गिला हो और अपने विरह की धुन में पड़े रहने के कारण मुझे उसका ज्ञान ही न हुआ हो। अब मेरी समझ में आ रहा है कि चलते समय मेरी सखियों ने यह क्यों कहा था कि पति को अँगूठी दिखा देना।

मारीच—वत्से! तुम ठीक समझी हो। अब तुम अपने पति पर क्रोध न करना। देखो! जैसे, दर्पण पर धूल पड़ी रहने से उसमें ठीक छाया नहीं दिखाई देती और वही जब पोंछ दिया जाता है तब छाया बड़ी सरलता से दिखाई पड़ने लगती है, वैसे ही शाप के कारण स्मृति धुँधली पड़ जाने से उन्होंने तुम्हें छोड़ दिया था, पर अब शाप छूट जाने से उन्होंने तुम्हें भली-भाँति पहचान लिया है।।32।।

राजा—भगवान्, ठीक कहते हैं।

मारीच—वत्स! शकुन्तला के जिस पुत्र के संस्कार हमने ठीक विधि से कर दिए हैं, उसे तुमने अपनाया या नहीं?

राजा—यही बालक तो हमारा वंश चलानेवाला है।

[यह कहकर बालक को गोद में उठा लेते हैं।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारीचः—तथा भाविनमेनं चक्रवर्तिनमवगच्छतु भवान्। पश्य,

रथेनानुद्धातस्तिमितगतिना तीर्णजलधिः
पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधामप्रतिरथः।
इहायं सत्त्वानां प्रसभदमनात्सर्वदमनः
पुनर्यास्यत्याख्यां भरत इति लोकस्य भरणात्।।33।।

राजा—भगवता कृतसंस्कारे सर्वमस्मिन्वयमाशास्महे।

अदितिः—भअवं इमाए दुहिदुमणोरहसंपत्तीए कण्णो वि दाव सुदवित्थारो करीअदु। दुहिदुवच्छला मेणआ इह एव्व उपचरन्ती चिट्ठदि। (भगवन्! अनया दुहितृमनोरथसंपत्त्या कण्वोऽपि तावच्छ्रुतविस्तारः क्रियताम्। दुहितृवत्सला मेनकेहैवोपचरन्ती तिष्ठति।)

शकुन्तला—[आत्मगतम्] मणोरहो क्खु मे भणिदो भअवदीए। (मनोरथः चलु मे भणितो भगवत्या।)

मारीचः—तपःप्रभावात्प्रत्यक्षं सर्वमेव तत्रभवतः।

राजा—अतः खलु मम नातिक्रुद्धो मुनिः।

मारीचः—तथाप्यसौ प्रियमस्माभिः प्रष्टव्यः कः कोऽत्र भोः।

[प्रविश्य]

मारीच—यह तुम्हारा वंश तो चलायेगा ही, साथ ही चक्रवर्ती राजा भी होगा। देखो! यह बालक अपने दृढ़ और सीधे चलनेवाले रथ पर चढ़कर समुद्र पार करके सातों द्वीपोंवाली पृथ्वी को इस प्रकार अकेला जीत लेगा कि संसार का कोई वीर इसके सामने टिक न सकेगा। यहाँ इसने सब जीवों को तंग कर रखा था, इसीलिये इसका नाम सर्वदमन पड़ गया था। आगे चलकर यह सारे संसार का भरण-पोषण करेगा, इसलिये इसका नाम भरत होगा।।33।।

राजा—जिसके संस्कार आपने किए हों, उससे तो हमें इन सब बातों की आशा है ही।

अदिति—भगवन्! इस कन्या के मनोरथ पूरे होने की सारी बात कण्वजी को भी कहला भेजनी चाहिए; क्योंकि इसे प्यार करनेवाली इसकी माँ मेनका ने यहाँ रहकर हम लोगों की बड़ी सेवा की है।

शकुन्तला—[मन में] देवी ने तो मेरे ही मन की बात कह दी है।

मारीच—तप के प्रभाव से कण्व ऋषि सब कुछ जानते हैं।

राजा—इसीलिये उन्होंने मुझपर क्रोध नहीं किया।

मारीच—फिर भी यह प्यारी बात उनके पास कहला भेजनी चाहिए। अरे कोई है? [एक शिष्य आता है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्यः—भगवन्! अयमस्मि।

मारीचः—गालव इदानीमेव विहायसा गत्वा मम वचनात्तत्रभवते कण्वाय प्रियमावेदय यथा पुत्रवती शकुन्तला तच्छापनिवृत्तौ स्मृतिमता दुष्यन्तेन प्रतिगृहीतेति।

शिष्यः—यदाज्ञापयति भगवान्। [इति निष्क्रान्तः।]

मारीचः—वत्स! त्वमपि स्वापत्यदारसहितः सख्युराखण्डलस्य रथमारुह्य ते राजधानीं प्रतिष्ठस्व।

राजा—यदाज्ञापयति भगवान्।

मारीचः—अपि च।

भवतु तव बिडौजाः प्राज्यवृष्टिः प्रजासु
त्वमपि विततयज्ञो वज्रिणं भावयेथाः।
गणशतपरिवर्तैरेवमन्योन्यकृत्यै-
र्नियतमुभयलोकानुग्रहश्लाघनीयैः।। 34।।

राजा—भगवन्! यथाशक्ति श्रेयसे यतिष्ये।

मारीचः—वत्स! किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि।

राजा—अतः परमपि प्रियमस्ति। यदिह भगवान्प्रियं कर्तुमिच्छति तर्हीदमस्तु—

शिष्य—मैं हूँ भगवन्!

मारीच—गालव! अभी आकाश-मार्ग से जाकर मेरी ओर से कण्वजी को यह प्यारा समाचार देना कि शाप छूटने पर दुष्यन्त ने सब स्मरण करके शकुन्तला और उसके पुत्र को ग्रहण कर लिया है।

शिष्य—जैसी भगवान की आज्ञा। [चला जाता है।]

मारीच—वत्स! तुम भी अव अपने पुत्र और स्त्री को साथ लेकर अपने मित्र इन्द्र के रथ पर चढ़कर अपनी राजधानी को लौट जाओ।

राजा—जैसी भगवान् की आज्ञा।

मारीच—और सुनो! तुम्हारी प्रजा के लिये इन्द्र सदा भरपूर वर्षा किया करें और तुम भी सैकड़ों गण-तन्त्रों पर राज्य करते हुए बहुत यज्ञ करके इन्द्र को प्रसन्न करते रहो। इस प्रकार एक दूसरे के लिये ऐसे अच्छे-अच्छे काम करते रहो कि दोनों लोक सुखी रहें।।34।।

राजा—भगवन्! मैं यथाशक्ति अच्छे काम करने का प्रयत्न करूँगा।

मारीच—वत्स! और कुछ तुम्हारी इच्छा हो तो कह डालो।

राजा—इससे बढ़कर भी क्या और कोई बात हो सकती है? फिर भी यदि आप मुझपर कुछ और कृपा करना ही चाहते हैं तो ऐस कीजिए कि—[भरतवाक्य] राजा सदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[भरतवाक्यम्]

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम् ।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः ।। 35 ।।

[इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।]

।। इति सप्तमोऽङ्कः ।।
।। समाप्तमिदमभिज्ञानशाकुन्तलं नाम नाटकम् ।।

अपनी प्रजा की भलाई में लगा रहे, बड़े-बड़े विद्वान कवियों की वाणी का सब कहीं आदर हो और अपने से उत्पन्न होनेवाले तथा चारों ओर अपनी शक्ति फैलानेवाले महादेवजी ऐसी कृपा करें कि मुझे अब फिर जन्म न लेना पड़े।।35।।

[सब चले जाते हैं।]

।। सातवां अंक समाप्त ।।
।। महाकवि श्रीकालिदास-विरचित का रचा हुआ अभिज्ञान-शाकुन्तलम् नाम का नाटक समाप्त हुआ ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट-1

नाट्य-साहित्य से सम्बद्ध कुछ प्रमुख पारिभाषिक शब्द
(Important Descriptive Words Related to Dramatic Literature)

नाट्य-साहित्य (नाट्यशास्त्र) से सम्बद्ध कुछ प्रमुख पारिभाषिक शब्दों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

1. पूर्वरङ्ग (Prologue)—नाटकीय कथा की अवतारणा से पहले नट लोग (अभिनयकर्ता) रंगमंच के विघ्नों को दूर करने के लिए जो कुछ भी करते हैं; उसे 'पूर्वरङ्ग' के नाम से जाना जाता है। यह प्रत्याहार आदि अंगों के भेद से कई प्रकार का होता है—

यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रंगविघ्नोपशान्तये।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरंगः स उच्यते।।

।। साहित्यदर्पण।। 6/22।।

2. नान्दी (Praise)—'नान्दी' का अभिप्राय मंगलाचरण की उस प्रक्रिया से है; जिसके अन्तर्गत देवता, ब्राह्मण तथा राजादिकों की आशीर्वादयुक्त स्तुति की जाती है। इससे लोग आनन्दित होते हैं; अतः इसे 'नान्दी' कहते हैं। इसमें मांगलिक वस्तु, शंख, चन्द्र, चक्रवाक और कुमुद आदि का वर्णन होता है। इसमें बारह या आठ पद[1] होने चाहिए—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।।
मांगल्यशंचन्द्राब्ज-कोक-कैरव-शंसिनी।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत।।

।। साहित्यदर्पण।। 6/24-25।।

3. सूत्रधार (Director)—'सूत्रधार' का अर्थ है, रंगमंच का प्रबन्धक करने वाला वह प्रधान अभिनेता; जो पात्रों की संगति उचित रूप से नियत करता है। यह पात्रों को अभिनय के विषय में उचित निर्देश देता है। दूसरे शब्दों में नाट्य के उपकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं अभिनय के निर्देशन आदि को सूत्र कहा जाता है; इस सूत्र को धारण करने वाला ही 'सूत्रधार'[2] कहा जाता है—

नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सबीजकम्।
रंग-दैवत-पूजाकृत सूत्रधार उदीरितः।।

4. नेपथ्य (Green room)—नेपथ्य रंगभूमि का वह आन्तरिक भाग है; जहाँ नाटकीय अभिनय की सारी तैयारियाँ होती हैं। वहाँ पर नाटक के सभी पात्र साज-सज्जा का कार्य करते हैं। कभी-कभी आवश्यकतानुसार बहुत-सी बातें नेपथ्य से ही कह दी जाती हैं—

कुशीलब-कुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।।

5. नायक (Hero)—नायक को परिभाषित करते हुए आचार्य विश्वनाथ कविराज ने लिखा है—

"त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्त-लोकस्तेजो-वैदग्ध्य-शीलवान्नेता।।"3/30।।

अर्थात्—दाता, कृतज्ञ, पण्डित, कुलीन, लक्ष्मीवान्, लोगों के अनुराग का पात्र, रूप, यौवन तथा उत्साह से युक्त, तेजस्वी, चतुर और सुशील पुरुष 'नायक'[3] होता है। धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित तथा धीरप्रशान्त के भेद से 'नायक' चार प्रकार के होते हैं। यद्यपि उपभेदों के साथ नायक के कुल 48 भेद होते हैं

---

1. यहाँ 'पद' शब्द से सुबन्त और तिङन्त का भी ग्रहण होता है।
2. "आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुनः।
रंगप्रसाधनप्रौढ़ः सूत्रधार इहोदितः।।"
अन्यम् च—
"वर्तनीयतया सूत्रं प्रथमं येन सूच्यते।
रंगभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते।।"
।। संगीत सर्वस्व।।
3. नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियवंदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशस्थिरो युवा।।
बुध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञा-कला-मान-समन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।।
।। दशरूपक।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नायक भेद निरूपण

- नायक
  - धीरोदात्त
    - दक्षिण [1]
    - धृष्ट [2]
    - अनुकूल [3]
    - शठ [4]
  - धीरोद्धत
    - दक्षिण [5]
    - धृष्ट [6]
    - अनुकूल [7]
    - शठ [8]
  - धीरललित
    - दक्षिण [9]
    - धृष्ट [10]
    - अनुकूल [11]
    - शठ [12]
  - धीरप्रशान्त
    - दक्षिण [13]
    - धृष्ट [14]
    - अनुकूल [15]
    - शठ [16]

नोट—उपर्युक्त सोलह नायकों में से प्रत्येक (i) उत्तम (ii) मध्यम तथा (iii) अधम; तीन-तीन प्रकार का होने से (16 × 3 = 48) कुल 48 प्रकार का होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5.1. धीरोदात्त (Brave and Noble-Minded)

अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/32।।

अर्थात्—अपनी प्रशंसा न करने वाला (अविकत्थन), क्षमायुक्त, अतिगम्भीर स्वभाव वाला, महासत्त्व, अर्थात् हर्ष, शोकादि से अपने स्वभाव को नहीं बदलने वाला, स्थिर-प्रकृति, विनयावच्छिन्न गर्व से गर्वित और दृढ़व्रती पुरुष 'धीरोदात्त' नायक कहा जाता है। जैसे—'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में दुष्यन्त; 'उत्तररामचरितम्' में राम आदि।

5.2. धीरोद्धत (Brave and Haughty)

मायापरः प्रचण्डश्चपलोऽहंकारदर्पभूयिष्ठः।
आत्मश्लाघानिरतो धीरैर्धीरोद्धतः कथितः।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/33।।

अर्थात्—मायावी, प्रचण्ड, घमण्डी, चपल, शूर तथा अपने मुख से अपनी प्रशंसा करने वाला 'नायक' धीरोद्धत कहलाता है। 'वेणीसंहारम्' में भीम आदि।

5.3. धीरललित (Reckless and Sportive)

निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/34।।

अर्थात्—निश्चिन्त, अत्यन्त कोमल स्वभाव वाला तथा सदैव नृत्य, गीतादि कलाओं में आसक्त रहने वाला 'नायक' धीरललित कहा जाता है। जैसे 'रत्नावली' नाटिका में वत्सराज उदयन इत्यादि।

5.4. धीरप्रशान्त (Deep and Calm)

सामान्यगुणैर्भूयान् द्विजादिको धीरशान्तः स्यात्।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/34।।

अर्थात्—त्यागी, कृती इत्यादि नायक पूर्वोक्त सामान्य गुणों से युक्त ब्राह्मादिक 'नायक' धीरप्रशान्त कहे जाते हैं। जैसे—'मालतीमाधवम्' में माधव इत्यादि।

6. नायिका (Heroine)—त्यागी, कृती इत्यादि, 'नायक' के समान गुणों वाली 'नायिका' (Heroine) को भी समझना चाहिए। स्वकीया, परकीया तथा साधारण के भेद से ये तीन प्रकार होती हैं; वैसे उपभेदों के साथ नायिकाओं के कुल 384 प्रकार बताए गए हैं—

अथ नायिका त्रिभेदा स्वाऽन्या साधारणी स्त्रीति।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासम्भवैर्युक्ता।। 3/56।।
चतुरधिकाशीतियुतं शतत्रयं नायिका-भेदाः।। 3/87।।,

।। साहित्यदर्पण।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ कुछ प्रमुख नायिकाओं का विवरण दिया जा रहा है।

6.1. स्वकीया (Swakeeya)

विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/56।।

अर्थात्–विनय तथा सरलता आदि गुणों से युक्त, घर के कार्यों में तत्पर रहने वाली पतिव्रता स्त्री, 'स्वकीया' नायिका कहलाती है। मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा के भेद से इसके तीन प्रकार हैं।

6.1.1. मुग्धा (Mugdha)

प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा।
कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/58।।

अर्थात्–जिसमें नवीन-यौवन की छटा पहले-पहल उत्पन्न हुई हो (प्रथमावतीर्ण-यौवना), जिसमें कामकलाओं के विलास पहले-पहल आविर्भूत हुए हों (प्रथमावतीर्ण-मदनविकारा), जो रति करने में संकोच तथा झिझक का प्रदर्शन करे (रतिवामा), जिसका मान चिरस्थायी न हो (मानमृदु) या अत्यधिक लज्जाशील (समधिकलज्जावती) नायिकाएँ 'मुग्धा' कही जाती हैं। इनके इन पाँच गुणों के आधार पर इनके पाँच भेद भी किए गए हैं।

6.1.2. मध्या (Madhya)

मध्या विचित्रसुरता प्ररूढस्मरयौवना।
ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीडिता मता।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/59।।

अर्थात्–विचित्रसुरता, प्ररूढ़स्मरा, प्ररूढ़यौवना, ईषत्प्रगल्भवचना या मध्यमव्रीडिता; नायिकाएँ 'मध्या' कही जाती हैं। इन पाँच गुणों के आधार पर 'मध्या-नायिका' के पाँच उपविभाग भी किए गए हैं।

6.1.3. प्रगल्भा (Pragalbha)

स्मरान्धा गाढतारुण्या समस्तरतकोविदा।
भावोन्नता दरव्रीडा प्रगल्भाक्रान्तनायका।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/60।।

अर्थात्–स्मरान्धा, गाढ़तारुण्या, समस्तरतकोविदा, भावोन्नता, दरव्रीडा या आक्रान्तनायका; नायिकाओं को 'प्रगल्भानायिका, कहा जाता है। इन्हीं छः गुणों के आधार पर इनके छः उपविभाग भी किए गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6.2. परकीया (कुलटा तथा कन्या) (Parakeeya)

परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढा कन्यका तथा।
यात्रादिनिरताऽन्योढा कुलटा गलितत्रपा।।
कन्या त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना।
।। साहित्यदर्पण।। 3/66-67।।

अर्थात्—परकीया नायिका, अन्यविवाहिता (अन्योढ़ा) तथा अविवाहिता (कन्या) के भेद से दो प्रकार की होती हैं। इनमें यात्रादिक मेले तथा तमाशों की शौकीन निर्लज्जा, कुलटा ही 'अन्योढ़ा' कही जाती हैं, जबकि अविवाहिता, सलज्जा तथा नवयौवना नायिकाएँ **'कन्या'** कही जाती हैं। पिता, भ्राता, आदि के वशीभूत होने के कारण ये भी 'परकीया' कही जाती हैं; जैसे—'मालतीमाधवम्' में मालती।

6.3. साधारण (वेश्या) (Prostitute)

धीरा कलाप्रगल्भा स्याद् वेश्या सामान्यनायिका।।
निर्गुणानपि न द्वेष्टि न रज्यति गुणिष्वपि।
वित्तमात्रं समालोक्य सा रागं दर्शयेद् बहिः।।
काममङ्गीकृतमपि परिक्षीण-धनं नरम्।
मात्रा निष्कासयेदेषा पुनः संधानकाङ्क्षया।।
तस्कराः पण्डका मूर्खाः सुखप्राप्तधनास्तथा।
लिङ्गिनश्छन्नकामाद्या आसां प्रायेण वल्लभाः।।
एषापि मदनायत्ता क्वापि सत्यानुरागिणी।
रक्तायां वा विरक्तायां रतमस्यां सुदुर्लभम्।।
।। साहित्यदर्पण।। 3/67-71।।

अर्थात्—धीरा, नृत्य-गीतादि 64 कलाओं में निपुण, सबकी सामान्य स्त्री **'वेश्या'** कही जाती है। वेश्या, निर्गुण पुरुषों से द्वेष नहीं करती है और न ही गुणियों में अनुरक्त होती है। केवल धन को देखकर बाह्यप्रेम-प्रदर्शन मात्र करती है। अच्छी तरह से स्वीकृत पुरुष भी यदि धनहीन हो जाए तो उसे अपनी माता के द्वारा निकलवा देती है, स्वयं नहीं निकालती; क्योंकि पुनः धनागम के होने पर उससे मेल करने की इच्छा रखती है। चोर, पण्डक (नपुंसक), मूर्ख, अनायास ही धन को प्राप्त कर लेने वाले, ब्रह्मचारी, संन्यासी आदि वेशधारी प्रच्छन्न-कामुक पुरुष, प्रायः इनके वल्लभ होते हैं। कहीं-कहीं वेश्याएँ भी कामाभिभूत होती हुईं अनुराग से युक्त होती हैं, जैसे—'मृच्छकटिकम्' में **'बसन्तसेना'**। रागहीना वेश्या के उदाहरण के रूप में 'लटक-मेलक' की **'मदनमञ्जरी'** को देखा जा सकता है। ये चाहे अनुरक्त हों या विरक्त हों, इनमें रति अत्यन्त दुर्लभ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6.5. स्वाधीनपतिका (Swadheenapatika)

कान्तो रतिगुणाकृष्टो न जहाति यदन्तिकम्।
विचित्रविभ्रमासक्ता सा स्यात्स्वाधीनभर्तृका।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/74।।

अर्थात्—रतिगुण से आकृष्ट प्रियतम, जिसका संग न छोड़े वह विचित्र विलासों से युक्त नायिका 'स्वाधीनपतिका' कही जाती है।

6.5. खण्डिता (Khandita)

पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्यसंभोगचिह्नितः।
सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/75।।

अर्थात्—अन्य स्त्री के संसर्ग-चिह्नों से युक्त नायक, जिसके पास जाय; वह ईर्ष्याकलुषित नायिका 'खण्डिता' कही जाती है।

6.6. अभिसारिका (Abhisarika)

अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा।
स्वयं वाभिसरत्येषा धीरैरुक्ताभिसारिका।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/76।।

अर्थात्—कामाभिभूत होकर यदि कोई 'नायिका' किसी पूर्वसंकेतित स्थान पर बुलावे या स्वयं जावे, तो वह 'अभिसारिका-नायिकाँ' कही जाती है। कुलीना, वेश्या तथा दासी के भेद से इसके भी तीन उपभेद हैं।

6.7. कलहान्तरिता (Kalahantarita)

चाटुकारमपि प्राणनाथं रोषादपास्य या।
पश्चात्तापमवाप्नोति कलहान्तरिता तु सा।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/82।।

अर्थात्—जो नायिका क्रोध के मारे पहले तो प्रार्थना करते हुए प्रियतम को निरस्त कर दे और फिर पीछे पश्चात्ताप करे; उसे 'कलहान्तरिता' नायिका कहते हैं।

6.8. विप्रलब्धा (Vipralabdha)

प्रियः कृत्वापि संकेतं यस्या नायाति सन्निधिम्।
विप्रलब्धा तु सा ज्ञेया नितान्तमवमानिता।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/83।।

अर्थात्—संकेत करके भी प्रिय, जिसके पास न आवे; वह नितान्त अपमानित हुई नायिका 'विप्रलब्धा' कही जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6.9. प्रोषितभर्तृका (Proshitabhartrika)

नानाकार्यवशाद् यस्या दूरदेशं गतः पतिः।
सा मनोभव-दुःखार्ता भवेत्प्रोषितभर्तृका।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/84।।

अर्थात्--गृहस्थधर्म के अनेक कार्यों में उलझा हुआ, जिसका पति, दूरदेश में चला गया हो; वह कामपीड़ित नायिका 'प्रोषित-भर्तृका' कही जाती है।

6.10. वासकसज्जा (Vasakasajja)

कुरुते मण्डनं यस्याः सज्जिते वासवेश्मनि।
सा तु वासकसज्जा स्याद्विदित-प्रियसंगमा।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/85।।

अर्थात्—सुसज्जित महल में जिस नायिका को सखियाँ सुभूषित कर रही हों तथा प्रिय का समागम निश्चित हो; उसे 'वासकसज्जा-नायिका' कहते हैं।

6.11. विरहोत्कण्ठिता (Virahotkanthita)

आगन्तुं तु कृतचित्तोऽपि दैवान्नायाति चेत्प्रियः।
तदनागमदुःखार्ता विरहोत्कण्ठिता तु सा।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/86।।

अर्थात्—आने का निश्चय करके भी दैववशात् जिसका प्रियतम न आ सके, वह खिन्न मन वाली नायिका 'विरहोत्कण्ठिता' कही जाती है।

7. प्रतिनायक (Villian)—खलनायक या प्रतिनायक को परिभाषित करते हुए आचार्य विश्वनाथ कविराज ने लिखा है—

"धीरोद्धतः पापकारी व्यसनी प्रतिनायकः"

।। 3/131।।

अर्थात्—धीरोद्धित गुण वाला पापी और काम, क्रोधादि से उत्पन्न व्यसनों में फँसा हुआ पुरुष 'प्रतिनायक' या खलनायक कहा जाता है, जैसे—रावण, शिशुपाल तथा दुर्योधन आदि।

8. विदूषक (Jester)

कुसुम-वसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/42।।

अर्थात्—किसी पुष्प या बसन्त आदि ऋतुओं पर जिसका नाम हो तथा जो अपनी क्रिया, देह, वेश और भाषा आदि से हँसाने वाला हो और अपने मतलब का पूरा हो; अर्थात् खाने-पीने की बात कभी न भूले; वह पुरुष 'विदूषक' कहा जाता है। नाटकों में इसकी योजना नायक के सहायक के रूप में की जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

9. शकार (Shakara)

मदमूर्खताभिमानी दुष्कुलतैश्वर्यसंयुक्तः।
सोऽयमनूढाभ्राता राज्ञः श्यालः शकार इत्युक्तः।।
।। साहित्यदर्पण।। 3/44।।

अर्थात्–सम्पत्तिशाली राजा की अविवाहिता स्त्री का मदान्ध, मूर्ख, अभिमानी तथा नीचकुलोत्पन्न भाई 'शकार' कहा जाता है। इसकी गणना राजा के सहायकों में की जाती है।

10. काञ्चुकीय (Chamberlian)

अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते।।
अथवा
ये नित्यं सत्यसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते मताः।।
।। मातृगुप्ताचार्य।।

अर्थात्–अन्तःपुर (रनिवास) की रक्षा के लिए नियुक्त, वह वृद्ध व्यक्ति; जो सत्यवादी, काम-दोषादिशून्य, व्यवहारकुशल तथा विवेकशील होता है वह 'काञ्चुकीय' कहा जाता है।

11. स्वगत (Aside)

"अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम्"।।
।। दशररूपक।।

अर्थात्–कभी-कभी रंगमञ्च का पात्र, अन्य पात्रों के द्वारा न सुनने योग्य (अश्राव्य) अपने मन की गुप्त बातों को प्रकाश में लाने के लिए अन्य पात्रों की ओर से मुँह फेरकर इस तरह से बातें करता है, मानों रंगमञ्चस्थ कोई पात्र सुन ही नहीं रहा है; लेकिन सामाजिक इस बात को सुनकर पात्र का मानसिक अभिप्राय समझ लेते हैं। इस प्रकार के 'स्वगत' पात्र की मानसिक भावनाओं का व्यक्तिगत प्रकाशन होता है।

12. प्रकाश (Aloud or Openly)

"सर्वश्राव्यं प्रकाशम् स्यात्।" दशरूपककार की इस परिभाषा के अनुसार जो बातें सबको सुनकर या सबको सुनने के लिए कही जाए, उसे 'प्रकाश' कहते हैं। इस प्रकार 'प्रकाश' किसी भी पात्र के विचारों का खुला प्रदर्शन है।

13. अपवारित (Apavarita)

"रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्याऽपवारितम्"।।
।। दशरूपक।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—जो बात कुछ पात्रों से या किसी पात्रविशेष से छिपाकर कुछ अन्य पात्रों से कही जाए; तो सम्भाषण की इस प्रक्रिया को 'अपवारित' कहते हैं।

14. आकाशभाषित (A Theatrical Language)

किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत्।
श्रुत्येवानुक्तमप्येकस्तत् स्यादाकाशभाषितम्।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/32।।

अर्थात्—अभिनेता का वह कथन-विशेष, जिसमें वह आकाश की ओर दृष्टि उठाकर कोई प्रश्न इस प्रकार करता है; मानो वह प्रश्न उस अभिनेता से ही किया जा रहा हो; तत्पश्चात् वही उस प्रश्न का उत्तर भी देता है। सम्भाषण की यह प्रक्रिया 'आकाशभाषित' कही जाती है।

15. जनान्तिक (Whispering Aside)

अभिनय के दौरान रंगमंच पर जो बात जिससे छिपानी है, उसके बीच में त्रिपताक[1] हाथ करके, दूसरे आदमी के कान से सटकर जो कुछ कहा जाता है; उसे 'जनान्तिक' कहते हैं। आचार्य विश्वनाथ कदिराज के शब्दों में—

अर्थात्—सभी अँगुलियाँ मिली हुई तथा फैली हुई हों और अँगूठा मुड़ा हो, तो ऐसे हाथ को 'पताक' कहते हैं। पताक में यदि अनामिका अँगुली टेढ़ी हो, तो हाथ की यह स्थिति 'त्रिपताक' कही जाती है।

त्रिपताक-करेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्।
अन्योन्यामन्त्रणां यत्स्यात्तज्जनान्ते जनान्तिकम्।।

।। साहित्यदर्पण।। 6/139।।

16. वृत्ति (Style of Composition)[2]

शृंगारे कैशिकी, वीरे सात्त्वत्यारभटी पुनः।
रसे रौद्रे च वीभत्से, वृत्तिः सर्वत्र भारती।।
चतस्रो वृत्तयो ह्येताः, सर्वनाट्यस्य मातृकाः।
स्युर्नायकादिव्यापार विशेषा नाटकादिषु।।

।। साहित्यदर्पण।। 6/122-123।।

अर्थात्—नायक, नायिका आदि के व्यापार-विशेष को ही नाटकादि में 'वृत्ति'

---

1. प्रसारिताः समाः सर्वा यस्यांगुल्यो भवन्ति हि।
   कुञ्चितश्च तथाङ्गुष्ठः स पताक इति स्मृतः।।
   पताके तु यदा वक्रानामिका त्वंगुलिर्भवेत्।
   त्रिपताकः स विज्ञेयः जनान्तिककारणम्।।
2. इन नाट्य-वृत्तियों को अभिधा, लक्षणा, व्यंजना तथा तात्पर्या आदि वृत्तियों से भिन्न समझना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते हैं। शृंगार रस में विशेषतः 'कैशिकी' वृत्ति और वीर, रौद्र तथा वीभत्स रस में 'सात्त्वती' एवं 'आरभटी' वृत्ति उपयुक्त होती है; किन्तु 'भारती' वृत्ति सर्वत्र उपयुक्त हो सकती है। ये चारों वृत्तियाँ सम्पूर्ण नाट्य की उपजीव्य हैं।

16.1 भारतीवृत्ति (Bharatee Style)

"भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नराश्रयः"

।। साहित्यदर्पण ।। 6/29 ।।

अर्थात्—संस्कृत-बहुल वाग्व्यापार, जो नर के ही आश्रय हो, नारी के नहीं; उसे भारती-वृत्ति कहते हैं। आचार्य भरत मुनि के शब्दों में—

या वाक्प्रधाना पुरुषोपयोज्या स्त्रीवर्जिता संस्कृतवाक्ययुक्ता।
स्वनामधेयैर्भरतैः प्रयुक्ता सा भारती नाम भवेत्तु वृत्तिः।।

प्ररोचना, वीथी, प्रहसन और आमुख के भेद से यह वृत्ति चार प्रकार की होती है।

16.1.1 प्ररोचना (Prarochana)

"प्रशंसातः प्ररोचना।"

साहित्यदर्पणकार की इस परिभाषा के अनुसार, प्रशंसा के द्वारा श्रोताओं को प्रकृत वस्तु की ओर आकर्षित करना 'प्ररोचना' है, जैसे 'रत्नावली' नाटिका में—

"श्रीहर्षो निपुणः कविः, परिषदप्येषा गुणग्राहिणी;
लोके हारि च वत्सराजचरितं, नाट्ये च दक्षा वयम्।

....इत्यादि।

16.1.2 वीथी (Veethee)

वीथ्यामेको भवेदङ्कः कश्चिदेकोत्र कल्प्यते।
आकाशभाषितैरुक्तैश्चित्रां प्रत्युक्तिमाश्रितः।।
सूचयेद्भूरिशृंगारं किञ्चिदन्यान् रसान्प्रति।
मुखनिर्वहणे सन्धी अर्थप्रकृतयोऽखिलाः।।

।। साहित्यदर्पण ।। 6/253-254 ।।

अर्थात्—वीथी में एक अी अंक होता है और कोई एक पुरुष नायक कल्पित कर लिया जाता है। आकाशभापित के द्वारा विचित्र उक्ति-प्रत्युक्ति होती है। शृंगार रस की वहुलता होती है; साथ-ही-साथ अन्य 'रस' भी सूचित होते हैं। इसमें सन्धियाँ, मुख और निर्वहण होती हैं, किन्तु अर्थप्रकृतियाँ सभी होती हैं।

16.1.3. प्रहसन (Farce)

भाणवत्सन्धिसन्ध्यंगलास्यांगाङ्कैर्विनिर्मितम्।
भवेत्प्रहसनं वृत्तं निन्द्यानां कविकल्पितम्।।

।। साहित्यदर्पण ।। 6/264 ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—इसमें 'भाण' के समान सन्धि, सन्ध्यङ्ग, लास्यांग, और अंकों के द्वारा सम्पादित, निन्दनीय-पुरुषों का कवि-कल्पित वृत्तान्त 'प्रहसन' कहलाता है। इसमें आरभटी, विष्कम्भक और प्रवेशक का अभाव होता है तथा 'हास्य' रस की प्रधानता होती है।

16.1.4. आमुख (प्रस्तावना) (Prologue)

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते।।
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा।।
।। साहित्यदर्पण।। 6/31-32।।

अर्थात्—जहाँ नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक,[1] सूत्रधार के साथ अपने कार्य के विषय में विचित्र वाक्यों से इस प्रकार बातचीत करें कि प्रस्तुत कथा सूचित हो जाए; उसे 'आमुख' या प्रस्तावना कहते हैं। उद्घातक, कथोद्घात, प्रयोगातिशय, प्रवर्तक तथा अबलगित के भेद से आमुख के पाँच भेद बताए गए हैं।

16.1.4.1. उद्घातक (Udghataka)

पदानि त्वगतार्थानि तदर्थगतये नराः।
योजयन्ति पदैरन्यैः स उद्घातक उच्यते।।
।। साहित्यदर्पण।। 6/34।।

अर्थात्—अप्रतीतार्थक पदों के अर्थ की प्रतीति कराने के लिए जहाँ पर साथ में और पद जोड़ दिए जाएँ, उसे 'उद्घातक' कहते हैं।

16.1.4.2. कथोद्घात (Kathodghata)

सूत्रधारस्य वाक्यं वा समादायार्थमस्य वा।
भवेत्पात्रप्रवेशश्चेत् कथोद्घातः स उच्यते।।
।। साहित्यदर्पण।। 6/35।।

अर्थात्—जहाँ सूत्रधार के वाक्य या वाक्यार्थ को ग्रहण करके कोई पात्र प्रवेश करें; उसे 'कथोद्घात' कहते हैं।

16.1.4.3. प्रयोगातिशय (Prayogatishaya)

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते।
तेन पात्र प्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा।।
।। साहित्यदर्पण।। 6/36।।

---

1. सूत्रधार के साथ-साथ रहने वाला नट 'पारिपार्श्विक' कहलाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—किसी एक प्रयोग में अन्य प्रयोग की योजना कर दी जाए और उसी के द्वारा पात्र का प्रवेश भी हो, तो इस अतिशय प्रयोग को 'प्रयोगातिशय' कहते हैं।

16.1.4.4. प्रवर्तक (Pravartaka)

कालं प्रवृत्तमाश्रित्य सूत्रधृग्यत्र वर्णयेत्।
तदाश्रयश्च पात्रस्य प्रवेशस्तत्प्रवर्तकम्।।

।। साहित्यदर्पण।। 6/37।।

अर्थात्—जहाँ पर सूत्रधार प्रसंगप्राप्त ऋतु आदि का वर्णन करे और उसी के आश्रय से पात्र का प्रवेश हो; उसे 'प्रवर्तक' कहते हैं।

16.1.4.5. अवलगित (Avalagita)

यत्रैकत्र समावेशात् कार्यमन्यत्प्रसाध्यते।
प्रयोगे खलु तज्ज्ञेयं नाम्नावलगितं बुधैः।।

।। साहित्यदर्पण।। 6/38।।

अर्थात्—जहाँ किसी एक प्रयोग में सादृश्य आदि के द्वारा समावेश करके किसी पात्र का अन्यकार्य सिद्ध किया जाए; उसे 'अवलगित' कहते हैं।

16.2. कैशिकीवृत्ति (Kaishikee Style)

या श्लक्ष्ण-नेपथ्य-विशेषचित्रा स्त्रीसंकुला पुष्कलनृत्यगीता।।
कामोपभोगप्रभवोपचारा सा कैशिकी चारुविलासयुक्ता।।

।। साहित्यदर्पण।। 6/124।।

अर्थात्—जो मनोरंजक नेपथ्य (नायक आदि की वेशभूषा) से विशेष चमत्कृत हो, स्त्री गणों से व्याप्त तथा नृत्य-गीतादि से परिपूर्ण हो; और जिसका उपचार कामसुखोपभोग का उत्पादक हो; अर्थात्—जिसके अंगों से शृंगार रस की अभिव्यक्ति हो रही हो; वह रमणीय-विलासों से युक्त वृत्ति 'कैशिकी' कही जाती है। नर्म, नर्मस्फूर्ज, नर्मस्फोट तथा नर्मगर्भ के भेद से यह 'वृत्ति' चार प्रकार की होती है।

16.3. सात्त्वतीवृत्ति (Satvatee Style)

सात्त्वतीबहुला सत्त्व-शौर्य-त्याग-दयार्ज वैः।
सहर्षा क्षुद्रशृंगारा विशोका साद्भुता तथा।।

।। साहित्यदर्पण।। 6/128-129।।

अर्थात्—सत्त्व, शूरता, दान, दया, सरलता तथा हर्ष से युक्त, यत्किञ्चित् शृंगारवाली, शोकरहित, और अद्भुत-रसयुक्त वृत्ति 'सात्त्वतीवृत्ति' कहते हैं। उत्थापक, सांघात्यक, संलाप तथा परिवर्तक के भेद से यह चार प्रकार की होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

16.4. आरभटीवृत्ति (Arabhatee Style)

मायेन्द्रजाल-संग्राम-क्रोधोद्भ्रान्तादि-चेष्टितैः।
संयुक्ता वधबन्धाद्यैरुद्धतारभटी मता।।
।। साहित्यदर्पण।। 6/132-133।।

अर्थात्—माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, उद्भ्रान्त-चेष्टाएँ, वध और बन्धनादिकों से संयुक्त उद्धत वृत्ति को 'आरभटीवृत्ति' कहते हैं। वस्तूत्थापन, सम्फेट, संक्षिप्ति तथा अवपातन के भेद से यह वृत्ति चार प्रकार की बताई गई है।

17. कथावस्तु (Plot)

रूपकों की प्रथम भेदक वस्तु है। इसे ही कथा, कथावस्तु या इतिवृत्त कहते हैं। कथावस्तु (PLOT) के दो प्रकार बताए गए हैं; एक आधिकारिक और दूसरा प्रासंगिक। इनमें आधिकारिक-कथावस्तु मूल या मुख्य होती है और प्रासंगिक-कथावस्तु गौण होती है—

इदं पुनर्वस्तु बुधैर्द्विविधं परिकल्प्यते।
आधिकारिकमेकं स्यात्प्रासंगिकमथापरम्।।
।। साहित्यदर्पण।। 6/42।।

17.1. आधिकारिक कथावस्तु (Master Plot)

अधिकारः फले स्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
तस्येतिवृत्तं कविभिराधिकारिकमुच्यते।।
।। साहित्यदर्पण।। 6/43।।

अर्थात्—नाटक के प्रधानफल का स्वामित्व ही अधिकार कहा जाता है और उस फल का स्वामी 'अधिकारी' होता है; उस अधिकारी की कथावस्तु को 'अधिकारिक-कथावस्तु कहते हैं, जैसे राजशेखरकृत 'बालरामायण' नाटक में श्रीरामचन्द्रजी, रावण-वध रूपी फल के विषय में स्वामी हैं और उनका चरित्र ही आधिकारिक-कथावस्तु हैं।

17.2. प्रासंगिक कथावस्तु (Relevant Plot)

"अस्योपकरणार्थं तु प्रासंगिकमितीष्यते।।"

साहित्यदर्पणकार के इस वचन के अनुसार, आधिकारिक-कथावस्तु की सहायता (सिद्धि) के लिए प्रसंगप्राप्त कथावस्तु को 'प्रासंगिक-कथावस्तु' कहते हैं, जैसे सुग्रीव का चरित्र, रामचरित के सहायतार्थ प्रयुक्त होने के कारण 'प्रासंगिक' कहा जाएगा।

18. पताकास्थानक (Patakasthanaka)

यत्रार्थे चिन्तितेऽन्यस्मिस्तल्लिंगोऽन्यः प्रयुज्यते।
आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानकं तु तत्।।
।। साहित्यदर्पण।। 6/45।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—जहाँ पर प्रयोग करने वाले पात्र को तो कोई अन्य अर्थ अभिलाषित हो, किन्तु सादृश्य आदि के कारण कोई अन्य अर्थ अतर्कितभाव से प्रयुक्त हो जाए, तो उसे 'पताकास्थानक' कहते हैं—

(पताकावत् नाट्यस्य प्रसिद्ध्युत्पादकत्वात् तादृशबन्धोऽपि पताकास्थानकम्)। नाट्यकथावस्तु में पताकास्थानक का प्रयोग बहुत ही सोच-विचार कर करना चाहिए। इसके चार प्रमुख भेद निम्नलिखित हैं—

1. जहाँ पर एकाएक प्रीति के अनुकूल व्यापार होने से परमप्रीतिकारी प्रयोजन सिद्ध हो जाए; वह **'प्रथम पताकास्थानक'** कहा जाता है।
2. अत्यन्त श्लिष्ट अर्थों के बोधक अनेक शब्दों से युक्त अनेक प्रकार की रचना से विशिष्ट वचन को **'द्वितीय पताकास्थानक'** कहते हैं।
3. जो किसी दूसरे अर्थ का उपक्षेपक, अव्यक्तार्थक, निश्चित, श्लिष्ट तथा प्रत्युत्तर से युक्त वचन हो, वह **'तृतीय पताकास्थानक'** होता है।
4. जहाँ पर सुन्दर श्लेषयुक्त द्वयर्थक वचनों का विन्यास हो तथा जिससे प्रधान अर्थ की सूचना मिलती हो; उसे **'चतुर्थ पताकास्थानक'** समझना चाहिए।

19. अर्थोपक्षेपक (Arthopakshepaka)

अंकेष्वदर्शनीया या वक्तव्यैव च संमता।
या च स्याद्वर्षपर्यन्तं कथा दिनद्वयादिजा।।
अन्या च विस्तरा सूच्या सार्थोपक्षेपकैर्बुधैः।

।। साहित्यदर्पण।। 6/51-52।।

अर्थात्—पूर्वोक्त दूराह्वान, वध, विवाहादि जो कथा, अंक में दिखाने के योग्य तो नहीं है, किन्तु उसको बताना आवश्यक है तथा जो कथा दो दिनों से लेकर वर्षपर्यन्त निर्वाह्य है और जो कथा अत्यन्त विस्तृत है; इन सबको सूचित करने वाले अर्थसूचक वाक्यविशेष को विद्वानों ने अर्थोपक्षेपक कहा है; अर्थात् अर्थोपक्षेपक के द्वारा उपर्युक्त आदर्शनीय कथा की सूचना दे देनी चाहिए। विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकावतार और अंकमुख के भेद से अर्थोपक्षेपकों को पाँच वर्गों में विभक्त किया गया है।

19.1 विष्कम्भक (Vishkambhaka)

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावंकस्य दर्शितः।।
मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः।।

।। साहित्यदर्पण।। 6/55-56।।

अर्थात्—भूत और भविष्यत् कालिक कथाओं का सूचक, कथाओं का संक्षेप करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला तथा अंक के आदि (प्रारम्भ) में प्रयुक्त अर्थोपक्षेपक 'विष्कम्भक' के नाम से जाना जाता है। शुद्ध और मिश्र के भेद से यह दो प्रकार का है—

1. जब एक ही मध्यम मात्र अथवा दो मध्यम पात्र इसका प्रयोग करते हैं, तो यह 'शुद्धविष्कम्भक' कहा जाता है; जैसे—'मालतीमाधवम्' में पंचम अंक के प्रारम्भ में कपालकुण्डला के द्वारा।
2. जब नीच तथा मध्यम पात्रों द्वारा यह प्रयुक्त होता है, तो संकीर्ण या 'मिश्रविष्कम्भक' कहा जाता है; जैसे 'रामाभिनन्दनम्' में क्षपणक और कापालिक के द्वारा।

19.2. प्रवेशक (Interlude)

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अंकस्यान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा।।
।। साहित्यदर्पण।। 6/57।।

अर्थात्—प्रवेशक का प्रयोग, नीचपात्रों के द्वारा कराया जाता है; इसमें उक्तियाँ उदात्त नहीं होती हैं। अर्थात्—यह संस्कृत से भिन्न प्राकृतभाषा में सामान्य ढंग से किसी नीच पात्र के द्वारा प्रयुक्त होता है। इसका प्रयोग हमेशा किन्हीं दो अंकों के बीच में होता है; अर्थात् प्रथम अंक में इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता। शेष बातें विष्कम्भक के ही समान समझनी चाहिए, जैसे 'वेणीसंहारम्' नाटक के तीसरे और चौथे अंक के मध्य में राक्षसयुगल के द्वारा सिन्धुराजवध तथा भावी दुःशासनवध की सूचना।

19.3 चूलिका (Chulika)

''अन्तर्जवनिकासंस्थैः सूचनार्थस्य चूलिका।''।।

आचार्य विश्वनाथ कविराज की इस परिभाषा के अनुसार, जवनिका (पर्दे) के भीतर स्थित पात्रों के द्वारा की हुई किसी वस्तु-विशेष की सूचना को 'चूलिका' कहते हैं। जैसे—'महावीरचरितम्' में नेपथ्य में ''भो भो वैमानिकाः, प्रवर्तन्तां रंगमंगलानि'' के द्वारा यह सूचित किया गया है कि राम ने परशुराम को जीत लिया।

19.4. अङ्कावतार (Ankavatara)

अंकान्ते सूचितः पात्रैस्तदङ्कस्याविभागतः।
यत्राङ्कोऽवतरत्येषोऽङ्कावतार इति स्मृतः।।
।। साहित्यदर्पण।। 6/58-59।।

अर्थात्—पूर्व अंक के अन्त में उसी के पात्रों द्वारा सूचित किया गया, जो अगला अंक अवतीर्ण होता है; उसे 'अंकावतार' कहते हैं। जैसे—'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में पंचम अंक के अन्त में उसके पात्रों द्वारा सूचित किया हुआ षष्ठ अंक पूर्व से अविभक्तरूप से अवतीर्ण हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

19.5. अङ्कमुख (Introductory Act)

यत्र स्यादङ्क एकस्मिन्नङ्कानां सूचनाऽखिला।
तदङ्कमुखमित्याहुर्बीजार्थख्यापकं च तत।।

।। साहित्यदर्पण।। 6/59-60।।

अर्थात्–जहाँ एक ही अंक में सभी अंकों की समस्त सूचनाएँ दे दी जाएँ और जो बीजभूत अर्थ का सूचक हो; उसे 'अंकमुख' कहते हैं। जैसे–'मालतीमाधवम्' के प्रथम अंक के प्रारम्भ में ही कामन्दकी और अवलोकिता ने अगले अंक की सभी बातों की सूचना दे दी है।

20. अर्थप्रकृति (Constituent Element)

अर्थ या प्रयोजन की सिद्धि के कारणभूत तत्त्व को 'अर्थप्रकृति' के नाम से जाना जाता है। बीज, विन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य के भेद से इनकी संख्या पाँच बताई गई है। भली-भाँति समझ करके इनका यथाविधि प्रयोग करना चाहिए। आचार्य विश्वनाथ कविराज के शब्दों में–

बीजं बिन्दुः पताका च प्रकरी कार्यमेव च।
अर्थप्रकृत्यः पञ्च ज्ञात्वा योज्या यथाविधि।।

।। 6/64।।

20.1. बीज (Beeja)

अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद् विसर्पति।
फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजं तदभिधीयते।।

।। साहित्यदर्पण।। 6/65।।

अर्थात्–जिसका पहले तो अत्यल्प कथन किया जाए, किन्तु उसका विस्तार अनेक प्रकार से हो; उसे 'बीज' कहते हैं। अर्थात् 'बीज' वह अर्थप्रकृति है, जो सहकारी कारणों से युक्त होकर अनेक प्रकार के अवान्तर कार्यों को उत्पन्न करती है। इसे फल की सिद्धि का प्रथम कारण (Primary cause) माना गया है, जैसे 'रत्नावली-नाटिका' में अनुकूल दैव से अनुमोदित यौगन्धरायण का क्रिया-कलाप 'बीज' है और रत्नावली की प्राप्ति ही उसका फल है।

20.2. बिन्दु (Bindu)

''अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्''

।। 6/66।।

साहित्यदर्पणकार की इस परिभाषा के अनुसार, अवान्तर कथा के विच्छिन्न होने पर भी प्रधानकथा के अविच्छेद का कारण 'बिन्दु' के नाम से जाना जाता है, जैसे 'रत्नावली' में 'अनंगपूजा' की समाप्ति में कथा का विच्छेद होने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"उदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते" इस पद्यात्मक वाक्य को सुनकर—"क्या यही वह राजा उदयन है?" सागारिका का यह सहर्ष कथन कथा के अविच्छेद का हेतु है।

20.3. पताका (Pataka)

"व्यापि प्रासंगिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते"

।। 6/66 ।।

आचार्य विश्वनाथ कविराज की इस परिभाषा के अनुसार, जो प्रासंगिक कथा दूर तक व्याप्त हो उसे 'पताका' तथा उस कथा के नायक को 'पताकानायक' कहते हैं, जैसे 'रामायण' में सुग्रीव की कथा 'पताका' कही जाएगी और इसका नायक 'सुग्रीव' पताकानायक कहा जाएगा।

20.4. प्रकरी (Prakaree)

"प्रासंगिकं प्रदेशस्थं चरितं प्रकरी मता।"

।। 6/68 ।।

आचार्य विश्वनाथ कविराज की इस परिभाषा के अनुसार, प्रसंगप्राप्त तथा किसी एक प्रदेश (स्थान) विशेष में स्थित चरित्र को 'प्रकरी' तथा उस चरित्र के नायक को 'प्रकरीनायक' कहते हैं, जैसे 'कुलपत्यङ्क' में रावण-जटायु संवाद 'प्रकरी' है तथा इसका नायक 'जटायु' प्रकरीनायक है।

20.5. कार्य (Object)

अपेक्षितं तु यत्साध्यमारम्भो यन्निबन्धनः।
समापनं तु यत्सिद्ध्यै तत्कार्यमिति संमतम्।।

।। साहित्यदर्पण।। 6/69-70 ।।

अर्थात्—जो प्रधान साध्य है, सभी उपायों का प्रारम्भ जिसके लिए किया गया है तथा जिसकी सिद्धि के लिए सभी सामग्रियाँ एकत्र की गई हैं; उसे 'कार्य' कहते हैं, जैसे 'रामायण' में 'रावणवध' कार्य है। आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम के भेद से यह पाँच प्रकार का बताया गया है।

20.5.1. आरम्भ (Commencement)

"भवेदारम्भ औत्सुक्यं यन्मुख्यफलसिद्धये"

।। 6/71 ।।

साहित्यदर्पणकार की इस परिभाषा के अनुसार, मुख्य फल की सिद्धि के लिए जो औत्सुक्य होता है; उसी को 'आरम्भ' कहते हैं, जैसे 'रत्नावली-नाटिका' में कुमारी रत्नावलीं को अन्तःपुर में रखने की यौगन्धरायण की उत्कण्ठा (औत्सुक्य) ही 'आरम्भ' है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

20.5.2. यत्न (Activity)

"प्रयत्नस्तु फलावाप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः"

।। 6/72 ।।

आचार्य विश्वनाथ कविराज की इस परिभाषा के अनुसार, 'फल-प्राप्ति के लिए किए गए अत्यन्त त्वरायुक्त व्यापार को 'यत्न' कहते हैं, जैसे 'रत्नावली-नाटिका' में– "तथापि नास्ति अन्यो दर्शनोपाय इति यथा तथा आलिख्य यथासमीहितं करिष्यामि" इत्यादि के द्वारा रत्नावली का चित्रलेखनरूपी त्वरायुक्त व्यापार 'यत्न' है।

20.5.3. प्रप्त्याशा (Hope of Obtaining)

"उपायापायशंकाभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भवः"

।। 6/72 ।।

आचार्य विश्वनाथ की इस परिभाषा के अनुसार, जहाँ प्राप्ति की आशा, 'उपाय' तथा 'अपाय' की आशंकाओं से घिरी हो; किन्तु प्राप्ति की सम्भावना हो; उस अवस्था को 'प्राप्त्याशा' कहते हैं। जैसे 'रत्नावली-नाटिका' के तृतीय अंक में वेषपरिवर्तन और अभिसरण आदि तो संगम के उपाय हैं, लेकिन वासवदत्ता रूपी अपाय (प्रतिबन्धक) की आशंका भी बनी हुई है। अतः समागम रूपी फल की प्राप्ति के अनिश्चित होने से 'प्रप्त्याशा' है।

20.5.4. नियताप्ति (Certainty of Obtaining)

"अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिस्तु निश्चिता"

।। 6/72 ।।

साहित्य-दर्पणकार की इस परिभाषा के अनुसार, अपाय (विघ्न या प्रतिबन्धक) के दूर हो जाने से प्रधानफल की प्राप्ति का निश्चय ही 'नियताप्ति' कहा जाता है, जैसे 'वेणीसंहार' नाटक में "कर्ता द्यूतश्छलानां...." इत्यादि से भीम और अर्जुन के द्वारा एकमात्र अवशिष्ट दुर्योधन को खोजने से नियताप्ति दिखाई देती है।

20.5.5. फलागम (Result)

"सावस्था फलयोगः स्याद्यः समग्रफलोदयः"

।। साहित्यदर्पण ।। 6/73 ।।

अर्थात्–जहाँ सम्पूर्ण की प्राप्ति हो जाय; उस अवस्था को फलयोग या 'फलागम' कहते हैं। जैसे–'रत्नावली' नाटिका में चक्रवर्तित्व के साथ रत्नावली की प्राप्ति; अथवा 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में सर्वदमन (भरत) नामक पुत्र के साथ-साथ शकुन्तला की प्राप्ति फलागम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

21. सन्धि (Juncture)

आचार्य विश्वनाथ कविराज ने 'सन्धि' को परिभाषित करते हुए लिखा है—"अवान्तरैकार्थसम्बन्धः सन्धिरेकान्वये सति।" ।। 6/75।। अर्थात्—एक प्रयोजन में अन्वित कथा के अंशों का अवान्तर प्रयोजनों के साथ सम्बन्ध, 'सन्धि' कहा जाता है; जैसा कि 'मन्दारमरन्द' में भी कहा गया है—

"मुख्यप्रयोजनवशात् तथाङ्गानां समन्वये।
अवान्तरार्थसम्बन्धः सन्धिः सन्धानरूपतः" ।।

मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा निर्वहण (उपसंहृति) के भेद से ये सन्धियाँ पाँच प्रकार की होती हैं।

21.1. मुख (Mukha)

यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थ-रस-सम्भवा।
प्रारम्भेण समायुक्ता तन्मुखं परिकीर्तितम्।।
।। साहित्यदर्पण।। 6/76-77।।

अर्थात्—जहाँ अनेक अर्थों (वृत्तान्तों) और रसों के व्यञ्जक प्रारम्भ नामक कार्यावस्था से युक्त बीज नामक अर्थप्रकृति की उत्पत्ति होती है; उसे 'मुखसन्धि' कहते हैं। अर्थात—'आरम्भ' नामक अवस्था और 'बीज' नामक अर्थप्रकृति के संयोग को 'मुखसन्धि' कहते हैं, जैसे 'रत्नावली-नाटिका' के प्रथम अंक में रत्नावली और उदयन के अनुराग रूपी बीज की उत्पत्ति होती है।

21.2 प्रतिमुख (Pratimukha)—

फलप्रधानोपायस्य मुखसन्धिनिवेशिनः।
लक्ष्यालक्ष्य इवोद्भेदो यत्र प्रतिमुखं च तत्।।
(साहित्यदर्पण।। 6/77 & 78।।

अर्थात्—मुखसन्धि में निवेशित फलप्रधान उपाय का कुछ लक्ष्य और कुछ अलक्ष्य उद्भेद (विकास) जहाँ पर हो; उसे 'प्रतिमुखसन्धि' कहते हैं। अर्थात् रूपक के प्रधानफल का साधक कथानक, जिसमें कभी गुप्त और कभी प्रकट होता हुआ दिखाई पड़े; वह 'प्रतिमुखसन्धि' होती है। यह सन्धि 'प्रयत्न' नामक कार्यावस्था तथा 'बिन्दु' नामक अर्थ प्रकृति की कार्यश्रृंखला को आगे बढ़ाती है, जैसे 'रत्नावली' नाटिका में वत्सराज और सागारिका के समागम के हेतु अनुराग रूपी बीज को जो प्रथम अंक में कवि के द्वारा सूचित कर दिया गया है; उसे सुसंगता और विदूषक ने जान लिया। अतः वह अनुराग लक्ष्य है और चित्रफलक के वृत्तान्त से वासवदत्ता के द्वारा अनुमान किया जाना अलक्ष्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

21.3. गर्भ (Garbha)

फलप्रधानोपायस्य प्रागुद्भिन्नस्य किञ्चन।
गर्भो यत्र समुद्भेदो ह्रासान्वेषणवान्मुहुः।।
।। साहित्यदर्पण।। 6/78-79।।

अर्थात् -मुख और प्रतिमुख सन्धियों में कुछ-कुछ प्रकट हुए फलप्रधान उपाय का जहाँ ह्रास और अन्वेषण से युक्त बार-बार विकास हो; उसे गर्भसन्धि कहते हैं। 'फल' को भीतर रखने के कारण इसे 'गर्भ' कहा गया है—"**फलस्य गर्भीकरणाद् गर्भः।।**" गर्भसन्धि को परिभाषित करते हुए आचार्य भरत मुनि ने लिखा है—

"उद्भेदस्तस्य बीजस्य प्राप्तिरप्राप्तिरेव वा।
पुनश्चान्वेषणं यत्र स गर्भ इति संज्ञिताः।।

जैसे—'रत्नावली-नाटिका' के द्वितीय अंक में "**सखि अदिक्षिणा....**" इत्यादि सुसंसगा की उक्ति में उद्भेद है; उसी समय वासवदत्ता के प्रविष्ट हो जाने से ह्रास हुआ है। तृतीय अंक में "**तद्वार्तान्वेषणाय....**" इत्यादि राजा की उक्ति से अन्वेषण सूचित हुआ है और "**ही ही आश्चर्य भोः....**" इत्यादि विदूषक की उक्ति में पुनः उद्भेद है; फिर वासवदत्ता भी जान गई; अतः ह्रास हुआ है। इसी प्रकार 'सागारिका' के संकेतस्थान में जाने से अन्वेषण और लतापाश बनाने में अनुराग का उद्भेद हुआ है।

21.4. विमर्श (Vimarsha)

यत्र मुख्यफलोपाय उद्भिन्नो गर्भतोऽधिकः।
शापाद्यैः सान्तरायश्च स विमर्श इति स्मृतः।।
।। साहित्यदर्पण।। 6/79-80।।

अर्थात्—जहाँ मुख्यफल का उपाय 'गर्भसन्धि' की अपेक्षा अधिक उद्भिन्न हो, किन्तु शापादि के कारण अन्तराय (विघ्न) युक्त हो, उसे 'विमर्शसन्धि' कहते हैं। जैसे—'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' चतुर्थ अंक में "**प्रियंवदे यद्यपि गान्धर्वेण विवाहेन निर्वृत्तकल्याणा प्रियसखी शकुन्तला संवृत्तेति....**" इत्यादि अनसूया की उक्ति से लेकर सप्तम अंक में दिखाए गए शकुन्तला के प्रत्यभिज्ञानपर्यन्त जितनी कथा है, वह सब शकुन्तला के विस्मरणरूप विघ्न से युक्त है।

21.5. निर्वहण सन्धि (Nirvahana)

बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।
एकार्थमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।।
।। साहित्यदर्पण।। 6/80-81।।

अर्थात्—बीज से युक्त मुखादि सन्धियों में बिखरे हुए अर्थों का जहाँ एक प्रधान प्रयोजन में यथावत् समन्वय स्थापित किया जाए; उसे 'निर्वहण' या उपसंहृति सन्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते हैं। जैसे—'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में सप्तम अंक में शकुन्तला के परिज्ञान के अनन्तर सम्पूर्णकथा 'निर्वहणसन्धि' का उदाहरण है।

22. लीला (Pastime)

अंगैर्वेषैरलंकारैः प्रेमभिर्वचनैरपि।
प्रीतिप्रयोजितैर्लीलां प्रियस्यानुकृतिं विदुः।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/98।।

अर्थात्—अनुरागातिशय के कारण अंग, वेष, अलंकार तथा प्रेमभरे वचनों से प्रियतम के अनुकरण को 'लीला' कहते हैं।

23. विलास (Playful Gesture)

यानस्थानासनादीनां मुखेनेत्रादिकर्मणाम्।
विशेषस्तु विलासः स्यादिष्टसंदर्शनादिना।।

।। साहित्यदर्पण।। 3/99।।

अर्थात्—प्रिय वस्तु के दर्शन आदि से गति, स्थिति, आसन आदि की तथा मुख, नेत्रादि के व्यापारों की विलक्षणता को 'विलास' कहते हैं।

24. ललित (Lovely)

"सुकुमारतयाङ्गानां विन्यासो ललितं भवेत्"

।। 3/105।।

आचार्य विश्वनाथ कविराज की इस परिभाषा के अनुसार, अंगों का सुकुमारतापूर्ण विन्यास ही 'ललित' कहा जाता है।

25. मद (Pride)

साहित्यदर्पणकार के शब्दों में

"मदो विकारः सौभाग्य-यौवनाद्यवलेपजः"

।। 3/105।।

अर्थात्—सौभाग्य, यौवन आदि के घमण्ड से उत्पन्न मनोविकार को 'मद' कहते हैं।

26. लावण्य (Loveliness)

मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा।
संलक्ष्यते यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते।।

अर्थात्—मोतियों में पाई जाने वाली कान्ति की तरलता की तरह, जो वस्तु अंगों के अन्दर दिखाई देती है, उसे 'लावण्य' कहा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

27. कुतूहल (Curiosity)

साहित्यदर्पणकार के शब्दों में–

"रम्यवस्तुसमालोके लोलता स्यात्कुतूहलम्"

।। 3/109 ।।

अर्थात्–किसी रमणीय या आलौकिक को देखने या सुनने के लिए चंचल हो जाना, 'कुतूहल' कहा जाता है।

28. भरतवाक्य (Bharatavakya)

अभिनय की समाप्ति पर सहृदय सामाजिकों को नट आशीर्वाद देते हैं; लेकिन नाटक के प्रारम्भ में प्रस्तावना के पश्चात् नटों के द्वारा विभिन्न पात्रों के रूप में रंगमंच पर उपस्थित होकर अभिनय करने के कारण, पुनः उसी रूप में उपस्थित न हो सकने के कारण उनके द्वारा प्रयुक्त नटवाक्य ही 'नाटक' की समाप्ति पर 'भरतवाक्य' के रूप में उच्चरित होता है। उदाहरणस्वरूप अभिज्ञानशाकुन्तलम् के सप्तम अंक में प्रयुक्त 'भरतवाक्य' निम्नलिखित है–

"प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः;
सरस्वती श्रुतमहतां महीयताम्।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः;
पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः।।" 7/34 ।।

अर्थात्–राजा, प्रजाजनों के हित में प्रवृत्त होवे; ज्ञानवृद्धि की वाणी का पूर्ण सत्कार होवे; सर्वशक्तिमान् स्वयम्भू शिव मेरे पुनर्जन्म को नष्ट कर देवें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट-2
कालिदास के नाटकों में प्रयुक्त सूक्तियाँ

1. मालविकाग्निमित्रम्
प्रथम अंक

1. अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरूढ़मूलत्वात्।
   नवसंरोहणशिथिलस्तरुरिव सुकरः समुद्धर्तुम्।। 1/8।।
2. अतिमात्रभासुरत्वं पुष्यति भानोः परिग्रहादनलः।
   अधिगच्छति महिमानं चन्द्रोऽपि निशापरिगृहीतः।। 1/13।।
3. अनातुरोत्कण्ठितयोः प्रसिध्यता समागमेनापि रतिर्न मां प्रति।
   परस्परप्राप्तिनिराशयोः वरं शरीरनाशोऽपि समानुरागयोः।। 3/15।।
4. अन्योन्यकलहितयोर्मत्तहस्तिनोरेकतरस्मिन्ननिर्जिते कुतः उपशमः ।। गद्य।।
5. अर्थं सप्रतिबन्धं प्रभुरधिगन्तुं सहायवानेव ।। गद्य।।
   दृश्यं तमसि न पश्यति दीपेन विना सचक्षुरपि।। 1/9।।
6. अहो दुरासदो राजमहिमा ।। गद्य।।
7. कामं खलु सर्वस्यापि कुलविद्या बहुमता ।। गद्य।।
8. न हि कमलिनीं दृष्ट्वा ग्राहमवेक्षते मतङ्गजः ।। गद्य।।
9. पत्तने विद्यमानेऽपि ग्रामे रत्नपरीक्षा ।। गद्य।।
10. पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः।
    जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य।। 1/6।।
11. पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
    सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढ़ परप्रत्ययनेयबुद्धिः।। 1/2।।
12. प्रायः समानविद्या परस्परयशः पुरोभागाः ।। गद्य।।
13. लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम्।
    यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति।। 1/17।।
14. विनेतुरद्रव्यपरिग्रहोऽपि बुद्धिलाघवं प्रकाशयति ।। गद्य।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

15. श्लिष्टाक्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
    यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एवं।। 1/16।।
16. सर्वज्ञस्याप्येकाकिनो निर्णयाभ्युपगमो दोषाय ।। गद्य।।
17. सुशिक्षितोऽपि सर्व उपदेशदर्शने न निपुणो भवति ।। गद्य।।

द्वितीय अंक

18. अहो सर्वास्ववस्थासु चारुता शोभान्तरं पुष्यति ।। गद्य।।
19. उपदेशं विदुः शुद्धं सन्तस्तमुपदेशिनः।
    श्यामायते न युष्मासु यः काञ्चनमिवाग्निषु।। 2/9।।
20. पण्डित परितोषप्रत्यया ननु मूढ़ा जातिः ।। गद्य।।
21. मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः।
    पङ्कच्छिदः फलस्येव निकषेणाविलं पयः।। 2/7।।

तृतीय अंक

22. अनुरागोऽनुरागेण परीक्षितव्यः ।। गद्य।।
23. अहो अविश्वसनीयाः पुरुषाः ।। गद्य।।
24. कर्मगृहीतेन कुम्भीलकेन सन्धिच्छेदनं शिक्षितोऽस्मीति वक्तव्यं भवति ।। गद्य।।
25. आम्रांकुरं विचिन्वत्योरावयोः पिपीलिकाभिर्दष्टम् ।। गद्य।।
26. न शोभते प्रणयिजने निरपेक्षता ।। गद्य।।
27. निसर्गनिपुणा स्त्रियः ।। गद्य।।
28. भ्रमर-संबाध इति वसन्तावतार-सर्वस्वभूतः कि नाम्रप्रसवोऽवतंसनीयः ।। गद्य।।
29. स्थाने प्राणाः कामिनां दूत्यधीनाः ।। 3/14।।
30. मदः किल स्त्रीजनस्य विशेषमण्डनम् ।। गद्य।।

चतुर्थ अंक

31. अहो कुम्भीलकैः कामुकैश्च परिहरणीया खलु चन्द्रिका ।। गद्य।।
32. कार्त्स्न्येन निर्वर्णयितु च रूपमिच्छन्ति तत्पूर्वसमागमानाम्।
    न च प्रियेष्वायतलोचनानां समग्रपातीनि विलोचनानि।। 4/8।।
33. किं नु खलु दर्दुरा व्याहरन्तीति देवः पृथिवीं विस्मरन्ति ।। गद्य।।
34. कुतूहलवानपि निसर्गशालीनः स्त्रीजनः ।। गद्य।।
35. नहि बुद्धिगुणेनैव सुहृदामर्थदर्शनम्।
    कार्यसिद्धिपथः सूक्ष्मः स्नेहेनाप्युपलभ्यते।। 4/6।।
36. बन्धनभ्रष्टो गृहकपोतको विडालिकालोले पतितः।। 4/6।।
37. रमणीयः खलु नवाङ्गनानां मदनविपयावतारः ।। गद्य।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम अंक

38. अहो परिभवोऽपहारिणो विनिपाताः ।। गद्य।।
39. आगामि सुखं वा दुःखं वा हृदयं समर्थीकरोति ।। गद्य।।
40. चन्दनं खलु मया पादुका परिभोगेण दूषितम् ।। गद्य।।
41. तनुभृतामीदृशी लोकयात्रा ।। गद्य।।
42. न शोच्यस्तत्र भवान् सफलीकृतभर्तृपिण्डः ।। गद्य।।
43. प्रतिपक्षेणापि पतिं सेवन्ते भर्तृवत्सलाः साध्व्यः।
    अन्यसरितां शतानि हि समुद्रगाः प्रापयन्त्युदधिम्।। 5/19।।
44. सर्वोऽपि नववरो लज्जातुरो भवति ।। गद्य।।
45. नन्वाकृतिविशेषेष्वादरः पदं करोति ।। गद्य।। (प्रथम अंक)
46. साधुत्वं द्ररिद्र आतुर इव वैद्येनोपमीयमानमौषधमिच्छसि ।। गद्य।। (द्वितीय अंक)
47. मयानाम मुग्धचातकेनेव शुष्कघनगर्जितेऽन्तरिक्षेजलपानमिष्टम्।। (द्वितीय अंक)

2. विक्रमोर्वशीयम्

1. अतिस्नेहः खलु कार्यदर्शी ।। गद्य।। 2/8-9।।
2. अनिर्देश्यसुखः स्वर्गः ।। 3/18।।
3. अवधूतप्रणिपाताः पश्चात्सन्तप्यमानमनसो हि।
   विविधैरनुतप्यन्ते दयितानुनयैमनस्विन्यः ।। 3/5।।
4. आश्वासितः पिशाचोऽपि भोजनेन ।। गद्य।। 2/19-20।।
5. उद्यानं तापशान्तये ।। 2/5।।
6. दुर्लभ प्रणयिनीसमागमोपायः ।। गद्य।। 2/9-10।।
7. न खलु वयसा जात्यैवायं स्वकार्यसहो भरः।। 5/18।।
8. न खल्वक्षिदुःखितोऽभिमुखे दीपशिखा सहते ।। गद्य।। 2/21-22।।
9. प्रियवचनकृतोऽपि योषितां दयितजनानुनयो रसादृते।
   प्रविशति हृदयं न तद्विदां मणिरिव कृत्रिमरागयोजितः।। 2/21।।
10. ब्राह्मणमशितव्यविमुखं दृढं पीडयति ।। गद्य।। 2/0-1।।
11. ब्राह्मणः किं न वन्द्यते? ।। गद्य।। 2/16-17।।
12. भवति सुतरां वेगोदग्रं भुजंगशिशोर्विषम् ।। 5/18।।
13. महोरगः श्वभ्रमिव प्रविष्टम्।। 1/19।।
14. मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सखे मध्ये मधुश्री स्थिता ।। 2/7।।
15. यदेवोपनतं दुःखात्सुखं तद्रसवत्तरम्।
    निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः।। 3/21।।
16. विहिनतसमागमसुखो मनसिशयः शतगुणी भवति।। 3/8।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

17. सर्वः कल्ये वयसि यतते लब्धुमर्थान्कुटुम्बी।
पश्चात्पुत्रैरपहृतभरः कल्पते विश्रमाय।। 3/1।।
18. सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु।। 5/25।।
19. सुरांगना कर्षति खण्डिताग्रात्।
सूत्रं मृणालादिव राजहंसी ।। 1/20।।

3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्

1. अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते।। अंक/2।।
2. अचेतनं नाम गुणं न लक्षयेत्।। अंक/6।।
3. अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम।। अंक/5।।
4. अतिस्नेहः पापशङ्की ।। अंक/4।।
5. अत्यारूढ़िर्भवति महतामप्यभ्रंशनिष्ठा (प्रक्षिप्त)
6. अनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि।। 7।।
7. अनार्यः परदारव्यहारः।। 7।।
8. अनियन्त्रणानुयोगस्तपस्विजनो नाम।। 1।।
9. अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्।। 5।।
10. अर्थो हि कन्या परकीय एव।। 4।।
11. अवश्यम्भाव्यचिन्तनीयः समागमो भवति।। 6।।
12. अवसरोपसर्पणीया राजानः ।। 6।।
13. अविश्रमो लोकतन्त्राधिकारः ।। 5।।
14. आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु पौरवाः ।। 2।।
15. आपन्नस्य विषयनिवासिनो जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितव्यम् ।। 3।।
16. इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि।। 4।।
17. उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणीयोगम्।। 7।।
18. उपपन्ना हि दारेषु प्रभुत सर्वतोमुखी।। 5।।
19. उच्छेत्तुं प्रभवति यन्न सप्तसप्तिः, तन्नैशं तिमिरमपाकरोति चन्द्रः।। 6।।
20. उत्सर्पिणी खलु महतां प्रार्थना।। 7।।
21. उत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः।। 6।।
22. उचितं नः पर्युपासनमतिथीनाम्।। 1।।
23. एवमादिभिरात्मकार्यनिवर्तिनीनाममृतमयवाङ्-मधुभिराकृष्यन्ते विषयिणः ।। 5।।
24. एवमात्माभिप्राय-सम्भावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विडम्बते।। 2।।
25. ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्यः।। 4।।
26. औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा।। 5।।
27. कदापि सत्पुरुषाः शोकवक्तव्या न भवन्ति।। 6।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

28. कष्टं खल्वनपत्यता।। 6।।
29. कामी स्वतां पश्यति।। 2।।
30. किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते।। 3।।
31. किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।। 1।।
32. किमीश्वराणां परोक्षम्।। 7।।
33. कुतः किल स्वयमक्षिणी आकुलीकृत्याश्रुकारणं पृच्छसि।। 2।।
34. को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चित।। 4।।
35. कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति।। 4।।
36. गण्डस्योपरि पिण्टकः संवृत्तः।। 2।।
37. गुणवते कन्यका प्रतिपादनीया।। 4।।
38. गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति।। 4।।
39. ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः।। 3।।
40. चूतलतिकां दृष्ट्वोन्मत्ता परभृतिका भवति।। 6।।
41. छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा।। 7।।
42. ज्वलति चलितेन्धनोग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते।
प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः।। 6।।
43. तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति।। 5।।
44. दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः।। 1।।
45. धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता।। 4।।
46. न खलु मातापितरौ भर्तृवियोगदुःखितां दुहितरं द्रष्टुं पारयतः।। 6।।
47. न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्।। 1।।
48. ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः।। 6।।
49. न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम।। 4।।
50. ननु गर्भः पित्र्यं रिक्थमर्हति।। 6।।
51. निभृतमिति चिन्तनीयं भवेत्।। 3।।
52. पूर्वापरविरोध्यपूर्व एवं विरहमार्गः।। 6।।
53. बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते।। 3।।
54. बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः।। 1।।
55. भवितव्यता खलु बलवती।। 6।।
56. भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र।। 1।।
57. भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः, नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनोघनाः।। 5।।
58. मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।। 1।।
59. यद्वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयाति तत्किम् आत्मनः प्रभावेण।। 2।।
60. राजरक्षितव्यानि तपोवनानि नाम।। 1।।
61. राज्ञां तु चरितार्थता दुःखोत्तरैव।। 5।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

62. रमणीयः खल्ववधिर्विधिना विसंवादितः।। 6।।
63. लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं, श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्।। 3।।
64. विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति।। 3।।
65. विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वानारम्भः प्रतीकारस्य।। 3।।
66. विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः।। 3।।
67. विनीत-वेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम ।। 1।।
68. श्रुतं श्रोतव्यम्।। 3।।
69. सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरण प्रवृत्तयः।। 1।।
70. सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं।। 1।।
71. सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति।।
72. सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी संपद्यते जन्तुः।। 5।।
73. सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति।। 5।।
74. सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृति विशेषाणाम्।। 6।।
75. सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति।। 3।।
76. स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति।। 3।।
77. स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहि शङ्कया।। 7।।
78. स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः।। 5।।
79. सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां, जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते, प्रियाऽप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः।। 5।।
80. सहजं किल यद् विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम्।
पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः।। 6।।
81. सिद्धयन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः, सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्।
82. किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता, तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्।। 7।।
82. हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः।। 6।।
83. स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु,
संदृश्यते किमुत या प्रतिबोधवत्यः।
प्रागन्तरिक्षगमनात्स्वमपत्यजातम्,
अन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति।। 5।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट-3

श्लोक-सूची

1. अक्लिष्टबाल	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.20
2. अग्रे विकीर्ण	मालविकाग्निमित्रम् 5.4
3. अग्रे स्त्रीनख	विक्रमोर्वशीयम् 2.7
4. अंगमनंग	विक्रमोर्वशीयम् 3.16
5. अंगैरन्तर्नि	मालविकाग्निमित्रम् 2.8
6. अचिराधिष्ठित	मालविकाग्निमित्रम् 1.8
7. अतः परीक्ष्य	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.24
8. अतिमात्रभासुर	मालविकाग्निमित्रम् 1.13
9. अदः सुरेन्द्र	विक्रमोर्वशीयम् 1.19
10. अद्याहं पुत्रि	विक्रमोर्वशीयम् 5.14
11. अधरः किसलय	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.20
12. अध्याक्रान्ता	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.14
13. अनतिलम्बि	मालविकाग्निमित्रम् 5.7
14. अनवरतधनु	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.4
15. अनाघ्रातं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.10
16. अनातुरोत्क	मालविकाग्निमित्रम् 3.15
17. अनिमित्तमणि	मालविकाग्निमित्रम् 1.18
18. अनिर्देश्यसुखः	विक्रमोर्वशीयम् 3.18
19. अनिशमपि	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.4
20. अनीशया	विक्रमोर्वशीयम् 2.18
21. अनुकारिणी	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.16
22. अनुचितनूपुर	मालविकाग्निमित्रम् 4.3
23. अनुपनत	विक्रमोर्वशीयम् 3.22

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

24.	अनुमतगमना	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.10
25.	अनुयास्यन्	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.27
26.	अनेन कल्याणि	विक्रमोर्वशीयम् 3.13
27.	अनेन कस्यापि	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.19
28.	अनेने तनुमध्या	मालविकाग्निमित्रम् 3.17
29.	अनेन निर्भिन्न	विक्रमोर्वशीयम् 5.6
30.	अन्तर्गतप्रार्थनं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.2
31.	अन्तर्हिते शशिनि	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.3
32.	अपराधिनि	मालविकाग्निमित्रम् 3.22
33.	अपराधी नामाहं	विक्रमोर्वशीयम् 2.20
34.	अपरिक्षत	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.22
35.	अप्याकरस	मालविकाग्निमित्रम् 5.18
36.	अभिजनवतो	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.19
37.	अभिमुखे मयि	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.11
38.	अभ्यक्तमिव	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.11
39.	अभ्युन्नता	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.6
40.	अमरमुनि	विक्रमोर्वशीयम् 5.21
41.	अमी वेदिं परितः	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.8
42.	अयं स गगनात्	विक्रमोर्वशीयम् 1.15
43.	अयं स तिष्ठति	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.12
44.	अयं तस्या	विक्रमोर्वशीयम् 3.11
45.	अयमरविवरेभ्यः	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.7
46.	अर्थं सप्रतिबन्धं	मालविकाग्निमित्रम् 1.9
47.	अर्धपीतस्तनं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.14
48.	अर्थो हि कन्या	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.22
49.	अलमन्यथा	मालविकाग्निमित्रम् 1.20
50.	अवधूतप्रणिपाताः	विक्रमोर्वशीयम् 3.5
51.	अव्याजसुन्दरीं	मालविकाग्निमित्रम् 2.13
52.	असंशयं क्षत्र	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.21
53.	असौ मुखलंबित	विक्रमोर्वशीयम् 5.2
54.	अस्मात् परं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.25
55.	अस्मान्साधु	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.17
56.	अस्याः सर्गविधौ	विक्रमोर्वशीयम् 1.10
57.	अहं स्थांगनामेव	मालविकाग्निमित्रम् 5.9
58.	अहन्यहन्यात्मन	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.26

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

59. अहिणवमहुलोलुवो	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.1
60. आखण्डलसमो	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.28
61. आचार इत्यवहितेन	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.3
62. आ जन्मनः	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.25
63. आत्मनो वधमाहर्ता	विक्रमोर्वशीयम् 5.1
64. आ दर्शनात् प्रविष्टा	विक्रमोर्दशीयम् 2.2
65. आदाय कर्ण किसलय	मालविकाग्निमित्रम् 3.16
66. आपरितोषाद्	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.2
67. आभरणस्याभरणं	विक्रमोर्वशीयम् 2.3
68. आभाति मणि	विक्रमोर्वशीयम् 5.4
69. आयुषो यौवराज्य	विक्रमोर्वशीयम् 5.23
70. आर्द्रालक्तकम्	मालविकाग्निमित्रम् 3.13
71. आलक्ष्यदन्त	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.17
72. आलोकान्तात्	विक्रमोर्वशीयम् 2.1
73. आविर्भूते शशिनि	विक्रमोर्वशीयम् 1.9
74. आविलपयोधराग्रं	विक्रमोर्वशीयम् 5.8
75. आश्वासितस्य	विक्रमोर्वशीयम् 5.16
76. इतः प्रत्यादेशात्	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.9
77. इदं किलाव्याज	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.18
78. इदमनन्यपरायणं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.17
79. इदमशिशिरैरन्तः	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.11
80. इदमसुलभवस्तु	विक्रमोर्वशीयम् 2.6
81. इदमुपनतमेवं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.19
82. इमां परीप्सु	मालविकाग्निमित्रम् 5.11
83. इयं ते जननी	विक्रमोर्वशीयम् 5.12
84. इष्टाधिगमनिमित्तं	मालविकाग्निमित्रम् 4.5
85. ईषदीषच्चुम्बितानि	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.4
86. उचितः प्रणयो	मालविकाग्निमित्रम् 3.3
87. उत्कीर्णा इव	विक्रमोर्वशीयम् 3.2
88. उत्तरेण किमात्मैव	मालविकाग्निमित्रम् 4.12
89. उत्पक्ष्मणोर्नयनयोः	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.15
90. उत्सृज्य कुसुम	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.20
91. उदयगूढ़शशांक	विक्रमोर्वशीयम् 3.6
92. उदेति पूर्वं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.30
93. उद्गलित दर्भ	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

94.	उन्नमितैकभ्रू	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.13
95.	उन्मत्तानां श्रवण	मालविकाग्निमित्रम् 3.4
96.	उपदेशं विदुः	मालविकाग्निमित्रम् 2.9
97.	उपोदशब्दा न	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.10
98.	उभावभिनयाचार्यौ	मालविकाग्निमित्रम् 1.10
99.	उर्वशीसम्भवस्य	विक्रमोर्वशीयम् 5.7
100.	उष्णालुः शिशिरे	विक्रमोर्वशीयम् 2.22
101.	उरुद्भवा	विक्रमोर्वशीयम् 1.4
102.	एकैकमत्र	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.12
103.	एकैश्वर्ये स्थितो	मालविकाग्निमित्रम् 1.1
104.	एताः सुतनु	विक्रमोर्वशीयम् 1.12
105.	एवमाश्रमविरुद्ध	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.18
106.	एषा कुसुमनिषण्णा	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.19
107.	एष त्वामभिनव	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.27
108.	एषापि प्रियेण	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.16
109.	एषा मनो मे	विक्रमोर्वशीयम् 1.20
110.	औत्सुक्यमात्रं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.6
111.	औत्सुक्य हेतुं	मालविकाग्निमित्रम् 3.10
112.	कःपौरवे	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.23
113.	कथं नु तं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.13
114.	कदा मुखं	मालविकाग्निमित्रम् 4.16
115.	का कथा बाण	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.1
116.	कामं प्रत्यादिष्टां	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.31
117.	कामं प्रिया न	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.1
118.	कार्त्स्न्येन	मालविकाग्निमित्रम् 4.8
119.	कार्यान्तरितो	विक्रमोर्वशीयम् 3.4
120.	कार्या सैकतलीन	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.17
121.	का स्विदवगुण्ठन	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.13
122.	किं शीतलैः	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.19
123.	किं सुन्दरि	विक्रमोर्वशीयम् 5.15
124.	किं कृतकार्यद्वेषो	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.18
125.	किं तावद्व्रतिनां	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.9
126.	किसलयमृदोः	मालविकाग्निमित्रम् 3.18
127.	कुसुमशयनं	विक्रमोर्वशीयम् 3.10
128.	कुतो धर्मक्रिया	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.14

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

129. कुपिता न तु	विक्रमोर्वशीयम् 4.26
130. कुप्यसि कुवलय	मालविकाग्निमित्रम् 4.10
131. कुमुदान्येन	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.28
132. कृतं न कर्णार्पित	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.18
133. कृताभिमर्शाम्	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.20
134. कृत्ययोर्भिन्न	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.17
135. कृष्णसारे	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.6
136. क्व रुजा	मालविकाग्निमित्रम् 3.2
137. क्व वयम्	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.19
138. क्षामक्षामकपोल	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.8
139. क्षौमं केनचिद्	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.5
140. गच्छति पुरः	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.32
141. गतं भयं भीरु	विक्रमोर्वशीयम् 1.6
142. गान्धर्वेण	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.21
143. गाहन्तां महिषा	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.6
144. गूढा नूपुर	विक्रमोर्वशीयम् 3.15
145. गोरोचनानिकष	विक्रमोर्वशीयम् 5.19
146. ग्रीवाभंगाभिरामं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.7
147. चरणान्तनिवेशितां	मालविकाग्निमित्रम् 3.11
148. चला पांगाम्	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.22
149. चित्रगतायामस्यां	मालविकाग्निमित्रम् 2.2
150. चित्रे निवेश्य	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.9
151. चूतानां चिरनिर्गता	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.4
152. छेदो दंशस्य	मालविकाग्निमित्रम् 4.4
153. जनमिमनुरक्तं	मालविकाग्निमित्रम् 2.5
154. जन्म यस्य	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.12
155. जाने तपसो वीर्यं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.2
156. जीमूतस्तनित	मालविकाग्निमित्रम् 1.21
157. ज्वलति चलितेन्धन	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.31
158. ततः परान्	मालविकाग्निमित्रम् 5.15
159. तत् साधुकृतसंधानं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.11
160. तदेषा भवतः	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.26
161. तपति तनुगात्रि	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.15
162. तामाश्रित्य श्रुति	मालविकाग्निमित्रम् 4.1
163. तीव्राघातप्रतिहत	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.31

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

164. तुरगखुरहतः	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.30
165. तुल्यानुरागपिशुनं	विक्रमोर्वशीयम् 2.13
166. तूर्णीरपट्टणरिएणद्ध	मालविकाग्निमित्रम् 5.10
167. तौ पृथग्वरदाकूले	मालविकाग्निमित्रम् 5.13
168. त्रिस्रोतसं वहति	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.6
169. त्वदुपलभ्य	मालविकाग्निमित्रम् 3.6
170. त्वन्मतिः केवला	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.32
171. त्वमर्हतां	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.15
172. त्वं मे प्रसादसुमुखी	मालविकाग्निमित्रम् 5.20
173. तव कुसुमशरत्वं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.3
174. तव न जाने हृदयं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.14
175. तव पितरि	विक्रमोर्वशीयम् 5.22
176. तव सुचरितमंगुलीयं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.11
177. तवास्मि गीतरागेण	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.5
178. तस्याः पुष्पमयी	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.24
179. दर्भांकुरेण चरणः	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.12
180. दर्शनसुखम्	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.21
181. दाक्षिण्यं नाम	मालविकाग्निमित्रम् 4.14
182. दातुं वा प्रभवसि	विक्रमोर्वशीयम् 3.14
183. दिष्ट्या शकुन्तला	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.29
184. दीर्घाक्षं शरदिन्दु	मालविकाग्निमित्रम् 2.3
185. दुर्लभः प्रियो	मालविकाग्निमित्रम् 2.4
186. दुष्यन्तेनाहितं तेजो	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.4
187. देवानामिदम्	मालविकाग्निमित्रम् 1.4
188. देव्या दत्त इति	विक्रमोर्वशीयम् 3.17
189. द्वारे नियुक्त	मालविकाग्निमित्रम् 1.12
190. द्विधा विभक्तां	मालविकाग्निमित्रम् 5.14
191. धृतिपुष्पमयम्	मालविकाग्निमित्रम् 3.19
192. धैर्यावलम्बिनम्	मालविकाग्निमित्रम् 1.22
193. न खलु न खलु	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.10
194. न च न परिचितो	मालविकाग्निमित्रम् 1.11
195. न तथा नन्दयसि	विक्रमोर्वशीयम् 2.14
196. नद्या इव प्रवाहो	विक्रमोर्वशीयम् 3.8
197. न नमयितुमधिज्य	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.3
198. ननु वज्रिण एव	विक्रमोर्वशीयम् 1.17

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

199.	नवकिसलयरागेण	मालविकाग्निमित्रम् 3.12
200.	न सुलभा	विक्रमोर्वशीयम् 2.9
201.	नहि बुद्धिगुणेनैव	मालविकाग्निमित्रम् 4.6
202.	नहि सुलभवियोगा	विक्रमोर्वशीयम् 5.17
203.	नापेक्षितो	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.16
204.	नायं देव्या	मालविकाग्निमित्रम् 5.8
205.	नार्हति कृतापराधो	मालविकाग्निमित्रम् 4.17
206.	नितान्तकठिनां	विक्रमोर्वशीयम् 2.11
207.	नियमयसि	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.8
208.	नीवाराःशुक	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.14
209.	नेपथ्यपरिगता	मालविकाग्निमित्रम् 2.1
210.	नैतच्चित्रं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.15
211.	नैतावता वीर	मालविकाग्निमित्रम् 5.17
212.	पत्रच्छायासु	मालविकाग्निमित्रम् 2.12
213.	पथि नयनयोः	मालविकाग्निमित्रम् 4.11
214.	परभृतकल	मालविकाग्निमित्रम् 5.1
215.	परस्परविरोधि	विक्रमोर्वशीयम् 5.24
216.	परिग्रह बहुत्वेऽपि	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.18
217.	परिजनवनिता	विक्रमोर्वशीयम् 3.3
218.	पर्युत्सकां	विक्रमोर्वशीयम् 2.15
219.	पातुं न प्रथमं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.9
220.	पात्रविशेषे	मालविकाग्निमित्रम् 1.6
221.	पदास्त एव	विक्रमोर्वशीयम् 3.20
222.	पुत्रस्य ते	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.26
223.	पुराणमित्येव	मालविकाग्निमित्रम् 1.2
224.	पुरा नारायणेन	विक्रमोर्वशीयम् 1.16
225.	पृष्टा जनेन	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.9
226.	प्रजाः प्रजाः स्वा	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.5
227.	प्रणयिषु वा	विक्रमोर्वशीयम् 1.2
228.	प्रतिपक्षेणापि	मालविकाग्निमित्रम् 5.19
229.	प्रत्यादिष्टविशेष	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.6
230.	प्रथमं सारंगाक्ष्या	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.7
231.	प्रथमोपपकृतं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.1
232.	प्रभापल्लवितेनासौ	विक्रमोर्वशीयम् 5.3
233.	प्रलोभ्यवस्तु	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.16

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

234. प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.35
235. प्राणानामनिलेन	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.12
236. प्राहुर्द्वादशधा	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.27
237. प्रियमाचरितं	विक्रमोर्वशीयम् 1.18
238. प्रियवचनकृतोऽपि	विक्रमोर्वशीयम् 2.21
239. प्रियसखीवियोग	विक्रमोर्वशीयम् 4.1
240. बाष्पायते	विक्रमोर्वशीयम् 5.9
241. बाष्पासारा	मालविकाग्निमित्रम् 3.21
242. बाष्पेण प्रतिषिद्धे	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.23
243. भर्त्रासि वीरपत्नीनां	मालविकाग्निमित्रम् 5.16
244. भवतु तव विडौजाः	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.34
245. भवनेषु रसाधिकेषु	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.20
246. भवन्ति नम्रास्तखः	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.12
247. भव हृदय साभिलाषं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.26
248. भाग्यास्तमय	मालविकाग्निमित्रम् 2.11
249. भानुः सकृद्युक्त	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.4
250. भावज्ञानानन्तरं	मालविकाग्निमित्रम् 3.14
251. भूत्वा चिराय	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.20
252. भ्रूभंगभिन्नतिलकं	मालविकाग्निमित्रम् 4.9
253. मंगलालंकृता	मालविकाग्निमित्रम् 1.14
254. मधुरस्वरा	मालविकाग्निमित्रम् 4.2
255. मनोरथाय	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.13
256. मन्दारकुसुमदाम्ना	विक्रमोर्वशीयम् 1.7
257. मन्दारपुष्पैः	विक्रमोर्वशीयम् 4.65
258. मन्दोऽप्यमन्दतामेति	मालविकाग्निमित्रम् 2.7
259. मन्ये प्रियाहृतमनाः	मालविकाग्निमित्रम् 3.23
260. मम कुसुमिता	विक्रमोर्वशीयम् 2.8
261. मया ज्ञातं मृगलोचनां	विक्रमोर्वशीयम् 4.8
262. मया नाम	विक्रमोर्वशीयम् 2.16
263. मय्येव विस्मरण	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.23
264. मर्मररणितमनोहरे	विक्रमोर्वशीयम् 4.35
265. महतस्तेजसो	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.15
266. महदपि परदुःखं	विक्रमोर्वशीयम् 4.27
267. महाभागः कामं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.10
268. मानुषीषु कथं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.24

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

269. महासारप्रसवयोः मालविकाग्निमित्रम् 1.15
270. मामियमभ्यु मालविकाग्निमित्रम् 5.6
271. मुक्तेषु रश्मिषु अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.8
272. मुञ्चति न विक्रमोर्वशीयम् 1.8
273. मुनिना भरतेन विक्रमोर्वशीयम् 2.17
274. मुनिसुताप्रणय अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.8
275. मुहुरंगुलि अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.23
276. मूढः स्यामहमेषा अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.29
277. मेदश्छेद कृशोदरं अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.5
278. मोहान्मया अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.25
279. मौर्यसचिवं मालविकाग्निमित्रम् 1.7
280. यः सुप्तवान् मदंके विक्रमोर्वशीयम् 5.13
281. यथा गजो नेति अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.31
282. यदालोके सूक्ष्मं अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.9
283. यदिदं रथसंक्षोभाद् विक्रमोर्वशीयम् 1.13
284. यदि यथा वदति अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.27
285. यदि हार्दमिदं विक्रमोर्वशीयम् 5.10
286. यदुत्तिष्ठति अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.13
287. यदृच्छया त्वं विक्रमोर्वशीयम् 1.11
288. यदेवोपनतं विक्रमोर्वशीयम् 3.21
289. यद् यत् प्रयोग मालविकाग्निमित्रम् 1.5
290. यद् यत्साधु अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.14
291. ययातेरिव अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.7
292. यस्य त्वया अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.14
293. यात्येकतोऽस्त अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.2
294. यावत् पुनरियं विक्रमोर्वशीयम् 1.14
295. या सृष्टिः अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.1
296. यास्यत्यद्य अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.6
297. येन येन अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.23
298. यो हनिष्यति अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.28
299. रक्ताशोकरुचा मालविकाग्निमित्रम् 3.5
300. रत्नमिति न मे विक्रमोर्वशीयम् 5.5
301. रथेनानुद्धात अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.33
302. रम्यं द्वेष्टि यथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.5
303. रम्याणि वीक्ष्य अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

304. रम्यान्तरः कमलिनी	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.11
305. रम्यास्तपोधनानां	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.13
306. लब्धास्पदोऽस्मीति	मालविकाग्निमित्रम् 1.17
307. वचोभिराशा	विक्रमोर्वशीयम् 3.9
308. वसने परिधूसरे	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.21
309. वाचं न मिश्रयति	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.29
310. वामं सन्धि	मालविकाग्निमित्रम् 2.6
311. वासार्थं हर	विक्रमोर्वशीयम् 2.19
312. विचिन्तयन्ती यं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.1
313. विच्छित्तिशेषै	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.5
314. विवादे दर्शयिष्यामि	मालविकाग्निमित्रम् 1.19
315. विपुलं नितम्बदेशे	मालविकाग्निमित्रम् 3.7
316. विरचितपदं	मालविकाग्निमित्रम् 5.2
317. विविक्षोर्यदिदं	विक्रमोर्वशीयम् 2.5
318. विसृज सुन्दरि	मालविकाग्निमित्रम् 4.13
319. वेदान्तेषु यं	विक्रमोर्वशीयम् 1.1
320. वैखान सं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.25
321. वोढा कुरबकरजसां	मालविकाग्निमित्रम् 3.9
322. व्यपदेशमाविलयितुं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.21
323. शक्यमरविन्दसुरभिः	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.5
324. शठ इति मयि	मालविकाग्निमित्रम् 3.20
325. शमप्रधानेषु	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.7
326. शममेष्यति मम	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.21
327. शमयति गजान्	विक्रमोर्वशीयम् 5.18
328. शरकाण्ड पाण्डु	मालविकाग्निमित्रम् 3.8
329. शरीरं क्षामं	मालविकाग्निमित्रम् 3.1
330. शान्तमिदमाश्रमपदं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.16
331. शापादसि प्रतिहता	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.32
332. शिरसा प्रथम	मालविकाग्निमित्रम् 1.3
333. शुद्धान्तदुर्लभ	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.17
334. शुश्रूषस्व गुरुन्	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.18
335. शैलानामवरोहतीव	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.8
336. श्लिष्टा क्रिया	मालविकाग्निमित्रम् 1.16
337. सरोपितेऽत्यात्मनि	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.24
338. सख्युस्ते स किल	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.30

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

339. संकल्पितं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4.13
340. सतीमपि ज्ञाति	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.17
341. संदष्टकुसुम	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.16
342. सरसिजमनुविद्धं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.19
343. सर्वः कल्ये वयसि	विक्रमोर्वशीयम् 3.1
344. सर्वस्तरतुदुर्गाणि	विक्रमोर्वशीयम् 5.25
345. सर्वांगीणः स्पर्शः	विक्रमोर्वशीयम् 5.11
346. सर्वान्तः पुरवनिता	मालविकाग्निमित्रम् 2.14
347. सर्वाशोकतरुणां	मालविकाग्निमित्रम् 5.5
348. सहजं किल	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.1
349. साक्षात् प्रियां	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.16
350. सा निन्दन्ती	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.30
351. सायंतने सवन	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.225
352. सितांशुका	विक्रमोर्वशीयम् 3.12
353. सिद्ध्यन्ति	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.4
354. सुखपरस्य	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.3
355. सुतनु हृदयात्	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.24
356. सुभगसलिला	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.3
357. सुरयुवतिसंभवं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.8
358. सूर्योदये भवति	मालविकाग्निमित्रम् 4.7
359. स्तनन्यस्तोशीरं	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.7
360. स्त्रीणामशिक्षित	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.22
361. स्निग्धं वीक्षित	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2.2
362. स्मयमानमायताक्ष्या	मालविकाग्निमित्रम् 2.10
363. स्मर एव	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.10
364. स्मृतिभिन्नमोह	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.22
365. स्रस्तांशावति	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1.28
366. स्वप्नो नु	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.10
367. स्वसुखनिरभिलाषः	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5.7
368. स्वायम्भुवान्	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7.9
369. स्विन्नांगुलि	अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6.15
370. हस्तं कम्पयते	मालविकग्निमित्रम् 4.15
371. हृदयमिषुभिः	विक्रमोर्वशीयम् 2.10

□□□

145179

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

GURUKUL KANGRI LIBRARY
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Access on	25/03/09
Class on	7/11/09
Cat on	
Tag etc.	
Filing	
E.A.R.	
Any others	
Checked	

Recommended By...... डॉ० ज्ञान प्रकाश शास्त्री

Entered in Database
Signature with Date
25/03/09

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा. मिथिलेश पाण्डेय

जन्म तिथि	1 जुलाई, सन् 1971
पिता	श्री प्रताप नारायण पाण्डेय
माता	श्रीमती शारदा देवी
जन्म स्थान	सुरैला, गौराबादशाहपुर, जौनपुर (उ.प्र.)
शिक्षा	एम. ए. (संस्कृत), पी-एच. डी. (बी.एच.यू, वाराणसी); यू. जी. सी.नेट/ जे. आर. एफ (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, दिल्ली); एडवांस डिप्लोमा इन योग, एडवांस डिप्लोमा इन मराठी, डिप्लोमा इन उर्दू, डिप्लोमा इन फोटोग्राफी (बी. एच.यू वाराणसी)।
सम्प्रति	रीडर, संस्कृत-विभाग, के. ए. (पी. जी.) कालेज, कासगंज, एटा (उ.प्र.)
दूरभाष-क्रमांक	09412062131

- ❖ औपनिषदिक ब्रह्मविद्या और शाण्डिल्यविद्या (राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली)।
- ❖ आदितीर्थ सूकरक्षेत्र (समग्रदृष्टि), राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
- ❖ संस्कृत-निबन्ध-निकरः (उपकार प्रकाशन, आगरा)।
- ❖ स्वप्नसुमन (काव्यसंग्रह) नमन प्रकाशन, नई दिल्ली।
- ❖ कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम् (सम्पादन एवं व्याख्या), महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा।
- ❖ ध्वन्यालोक (सम्पादन एवं व्याख्या), महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा।
- ❖ वेदान्तसार (सम्पादन एवं व्याख्या), महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा।
- ❖ मदनमोहन मालवीय जीवन दर्शन (राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली)।
- ❖ भारतेन्दु हरिशचन्द्र ग्रन्थावली (सम्पादन), नमन प्रकाशन।
- ❖ संस्कृत मुख्य परिक्षा (संघ लोक सेवा आयोग), उपकार प्रकाशन।
- ❖ तर्कशक्ति परिक्षा (यू. जी. सी. नेट/ जे. आर. एफ.) उपकार प्रकाशन।

शोधपत्र — Philosophical Study of the Garuna Purana.

- ❖ एटा जनपदस्य कवियित्र्यः कवयशच।
- ❖ बीसवीं शाताब्दी के जैन मनीषियों का संस्कृत-साहित्य में योगदान।
- ❖ यजुर्वेद में गन्धर्व एवम् अप्सराएँ। कालिदास की बालपोषिका दृष्टि।

पुरस्कार एवं सम्मान
- ❖ उ.प्र. सरकार के माध्यमिक शिक्षा मन्त्री द्वारा 'मानस-मनीषी' की उपाधि से सम्मानित।
- ❖ पं. प्रताप नारायण मिश्र, युवा साहित्यकार पुरस्कार 2006 से पुरस्कृत।

अप्रकाशित कृतियाँ — हिन्दी एवं संस्कृत में लिखित सात पुस्तकें।

विविध — कुशल वक्ता, समालोचक, सम्पादक एवं लब्धप्रतिष्ठ प्राध्यापक।

राधा पब्लिकेशन्स
4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली . 110002
फोन : 23254306, 23247003
ई-मेल- radhapubnitin@yahoo .com

ISBN 817487-528-X
9 788174 875289

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar